श्रीराजमाला

(त्रिपुर राजन्यवर्गों का इतिवृत्त)

द्वितीय लहर

TRIPURA
ETIHAS, KALA,
SANSKRATI

अनुवादक व लेखक
अरविन्द कुमार त्रिपाठी
अलका त्रिपाठी
E_Mail - aktripathi.tripura@gmail.com
Fone - 8762396880

Shri Rajmala /श्रीराजमाला
Tripur Rajanyavargi ka Etivratta (त्रिपुर राजन्यवर्गों का इतिवृत्त)
Dvitiy Lehar/द्वितीय लहर..

Publisher : **Self / E-Book – PDF**

Key Words
इतिहास, त्रिपुरा, त्रिपुरा इतिहास, कला, संस्कृति, पर्यटन राजमाला, श्रीराजमाला,
Shri Rajmala TRIPURA, ETIHAS, ETIHAAS, KALA, SANSKRATI, PARYATAN

Translator / Editor **ARVIND KUMAR TRIPATHI**
ALKA TRIPATHI

Typeset **ARVIND KUMAR TRIPATHI**
ALKA TRIPATHI

Font used **Hindi/ Devnagari - Kruti Dev 010, Size - 14**
English – Arial, Size - 10

Print **PDF format, Other format available on request**
Self-Publishing (No publisher)
E_Mail - aktripathi.tripura@gmail.com
Phone - 8762396880

Price **Rs 00/-, Free, निःशुल्क, मुक्त, स्वतन्त्र**
ISBN **978-93-5493-204-5**
Book Title : **SRIRAJMALA - DVITIY BHAG**

लेखक



अरविन्द कुमार त्रिपाठी, DIG (Retired)
पुत्र स्वर्गीय आचार्य श्री भगवान दास त्रिपाठी
शिक्षा– विज्ञान परास्नातक(भौतिकी), शिक्षा स्नातक
सेवारत कोर्स व प्रशिक्षण (कुल 24),
सी सु ब द्वारा प्रदत्त विभिन्न सेवा
पदक व अलंकरण

E_Mail - aktripathi.tripura@gmail.com
Fone - 8762396880

विज्ञान परास्नातक(भौतिकी), शिक्षा स्नातक के पश्चात अध्यापन कार्य करते हुए 1987 में सीमा सुरक्षा बल में सहायक समादेष्टा **(Assistant Commandant)** के पद पर प्रवेश कर उप महानिरीक्षक के पद से लगभग 33साल का सफल कार्यकाल पूर्ण कर अगस्त 2019 में सेवानिवृत्त हुए।

सेवा कार्यकाल में 1993 ई में त्रिपुरा में पहला पदस्थापन हुआ। सेवा काल में लगभग 11वर्ष त्रिपुरा में रहा और इसी संक्रमण में त्रिपुरा इतिवृत्त, समस्त जनजातियों पर विस्तृत अध्ययन कर लेखन कार्य भी किया।



अलका त्रिपाठी
शिक्षा परास्नातक(हिन्दी),
स्नातक(हिन्दी व संस्कृत)
शिक्षा स्नातक व **M. Phil.**

प्रकाशित पुस्तकें
श्रीराजमाला : प्रथम भाग
श्रीराजमाला : द्वितीय भाग
श्रीराजमाला : तृतीय भाग
श्रीराजमाला : चतुर्थ भाग
और अन्य पुस्तकें

Key Words

lok, kala, geet,git, chitra, chitra kala, song, sahitya, business, byapar vyapaar, krashi, backward, pichhadapan, akal, sukha, femanin, kanluage, boli, idiom, kavat, muhavare, natya, nratya, vadya, kahani, folk, gahane, story,newspaper, club, bhavan, kile, durg, nehru,subhash, bose, aazad chandra shekhar, gandhi, pandit,

banda, history etihas, Itihas, Bhaugolic, Bhaugolik, jal, nadi, bandh Dam, Minral, Soil, Mitty, Talab, Mohal, muhalle, mandir, Cencus, Animal, bird, pakshi tree, shrub, herbs, forest, arthik, Economic,Agricultural, kheti, Mahua, chirongi,tourism, paryatan
Ammend

द्वितीयलहर –1

श्री राजमाला
(त्रिपुर राजन वर्गो का इतिवृत)
द्वितीय लहर
सटीक सचित्र
सेनापति रनचतुर नारायण द्वारा कथित
सम्पादित
श्री काली प्रसन्न सेन विद्या भूषण द्वारा
प्रजा के सुख से सुखी राजा
तद् दुःखे यस्व दुखीत
सकृति युक्त, लोकशनिन त्रेता सर्गे महिरते

विष्णु संहिता

राजधानी अगरतल्ला त्रिपुरा राज्य
राजमाला कार्यालय से प्रकाशित
1337 –त्रिपुराब्द

<u>द्वितीयलहर –2</u>

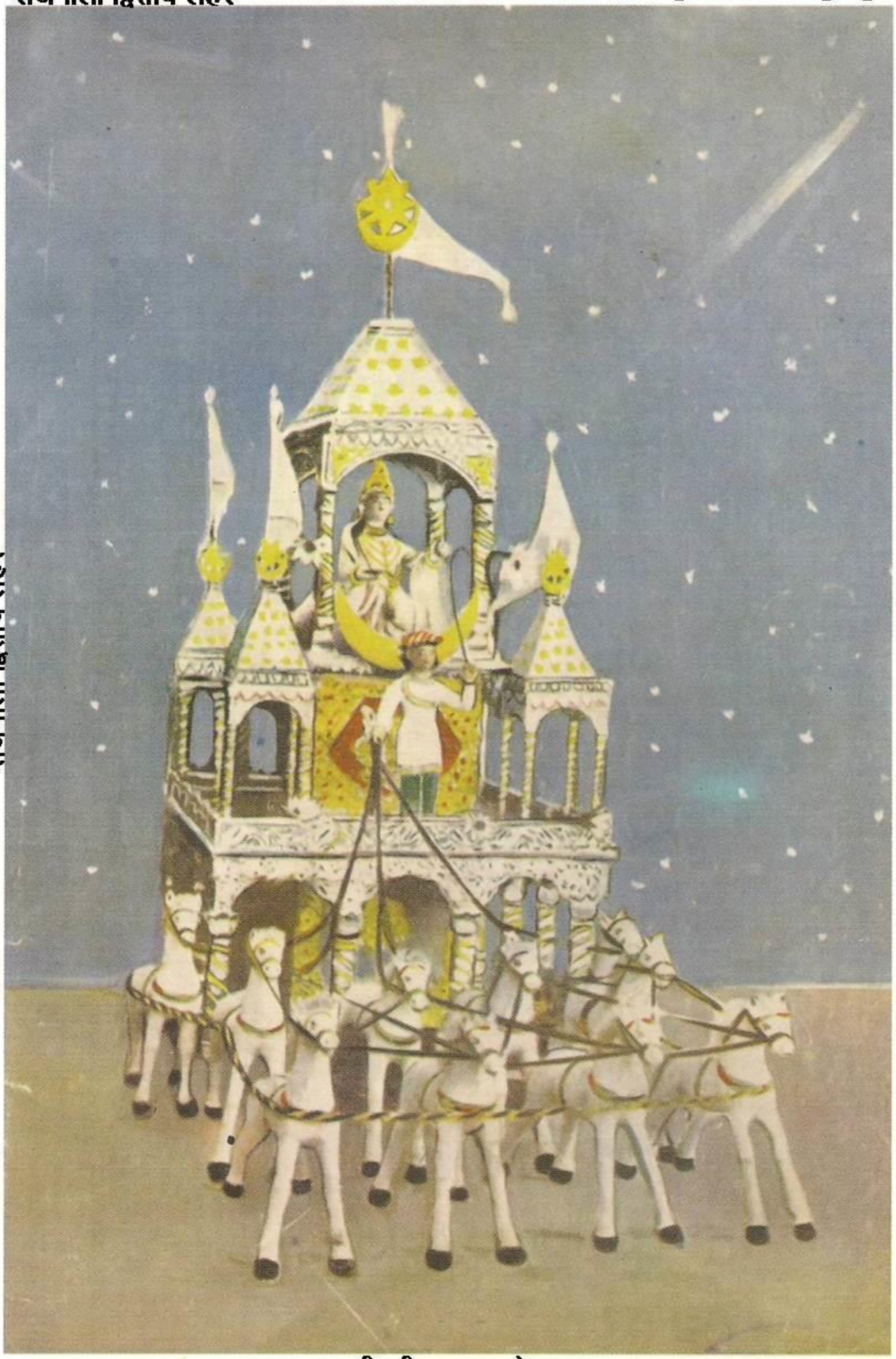
राजधानी अगरतल्ला
राजमाला यन्त्र द्वारा श्री नवोदित चंद्रदेववर्मा द्वारा मुद्रित
त्रिपुरा राज्य

<u>द्वितीयलहर –3</u>

चित्र–1–1

राजमाला द्वितीय लहर **पृष्ठ संख्या – मुखपृष्ठ**

राजमाला द्वितीय लहर



श्री श्री चन्द्रमा देव

सामुद्रं वैश्यमात्रेयं हस्तमात्रेयं सिताम्बरं। श्वेतं द्विबाहुं वरदं दक्षिणं सगदेतरम्
दशाश्वं श्वेत पद्मास्थं विचिन्तोय्माधिदैवतम्। जलप्रत्यधिदैवबन्ध सूर्यास्यमाहबयेत्तथा

<u>द्वितीयलहर –4</u>

<u>निवेदन</u>

परम कारूणिक परमेश्वर की असीम कृपा से राजमाला ग्रन्थ का द्वितीय लहर प्रकाशित किया जा रहा है। इसके संपादन कार्य हेतु प्रथम लहर की प्रणाली अवलम्बन करते हुए भी योग्यता के अभाव से बहुत सारी त्रुटि परिलक्षित होना अनिवार्य है। मैं इस अक्षमतः हेतु सुधि समाज वर्गों से विनीत क्षमा प्रार्थी हूँ।

राजमाला ग्रन्थ के प्रथम लहर की रचना 1431 से 1462 सन् के मध्यवर्ती काल में की गयी थी। तत्पश्चात् किचिंत न्यून 150 साल के बीच महाराज धन्य मानिक तथा विजयमानिक्य इत्यादि यशस्वी एवं ख्यातनामा राजन्य वर्ग से त्रिपुर राज सिंहासन अलंकृत हुए। वे केवल कुशल राजनीतिज्ञ शौर्यशाली धर्मवीर ही नहीं थे, बल्कि साहित्य के पुष्टि विधान हेतु भी इन्होने विस्तर कार्य किये। परन्तु राजमाला के प्रति इन लोगों की दृष्टि आकृष्ट होने के कोई भी प्रमाण नहीं मिलते है। धर्ममाणिक्य तत्पश्चात् क्रमानुसार नृपतिगणों का इस विषय में उदासीन होने के ही संकेत मिलते हैं। इनके परिवर्ती महाराज अमरमाणिक्य द्वारा इन कार्यो हेतु पुनः हस्तक्षेप किया गया। इन्ही के अनुग्रह से राजमाला का द्वितीय लहर ग्रंथित हुआ। पूर्वजों का आरब्ध कार्यो का उत्कर्ष विधान द्वारा महाराज अमर ने सत्य ही अमरत्व प्राप्त किया। वह धर्ममानिक्य द्वारा यत्नपूर्वक रचित अंश के परवर्ती घटनाओं को लिपिबद्ध करने का पथ प्रदर्शक न होने से अन्य लहरों का परम्परागत ढाँचे से रचना होने की आशा नहीं थी। ग्रन्थ के प्रारम्भ में सन्निविष्ट विवरण द्वारा प्रतीत होता है कि 1577 से 1591 सन् के मध्य भाग में किसी समय द्वितीय लहर की रचना हुई। तत्पश्चात् इस अंश के <u>350</u> साल प्राचीन होने के संकेत मिलते है। यह साहित्य एकाधार साहित्य तथा इतिहास रूप में ग्रहण योग्य हैं।

प्रथम लहर के संपादन कार्य हेतु अधिक परिमाण शास्त्र, ग्रन्थ आदि की सहायता लेनी पड़ी जो कि नितान्त ही अपरिहार्य कारण था, राजमाला का प्रथम अंश त्रिपुर इतिहास तथा भारतवर्ष इतिहास का पुराण काल है जिसे ऐतिहासिक युग कहते हैं। तत्सह इसका सम्बन्ध बहुत ज्यादा नहीं हैं। क्योंकि शास्त्रीय प्रमाणों के आश्रित होना नितान्त जरूरी है। द्वितीय लहर के समय से ही मुसलमान संसर्ग भारतवर्ष विशेषकर बंगलादेश इतिहास के साथ त्रिपुर इतिहास का निकट संबंध स्थापित हुआ है। राजमाला के संपादन कार्य हेतु जितना ही अग्रसर होते जा रहे हैं उतना ही आसपास के घटनाओं के सहित इसके संबंध की अधिक घनिष्टता दिखाई देती है। इसी कारण सम्पादक महोदय का दायित्व उत्तरोत्तर उतना दुरूह हुआ जा रहा है कि अनेक स्थानों पर मत विरोधों का जटिल जाल भेद करते हुए अग्रसर होना असंभव प्रतीत होता है। इस लहर के सम्पादन कार्य हेतु पार्श्ववर्ती प्रदेशों के इतिहासों के प्रति तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के भिन्न–भिन्न मतों के प्रति ध्यान रखने का अत्यधिक चेष्टाओं की कोशिश की है ताकि कोई त्रुटि न रहे। परन्तु मूल ग्रन्थ के अनुरोध से कोई कोई एतिध्य का विवरण आंशिक आलोचना का विषय रहा है। परवर्ती लहर समूहों में तत्समस्त क्रमशः पूर्णत्व लाभ करने की आशायें रखते है। फिर भी योग्यता तथा अभिज्ञता के अभाव से इस गंभीर कार्यो में भ्रम प्रमाद संगठित होना विचित्र नहीं है, विशेषतः मतविरोधों के स्थान पर जिन मतों को ग्रहण किया है उनके सर्वसम्मत होने की संभावना अति किंचित प्रतीत होती है कि इतिहास चर्चा से निहित कोई भी व्यक्ति तद्रूप मत विरोधों से

<u>द्वितीयलहर –5</u>

निष्कृति लाभ की आशा नहीं है। इस स्थान पर निवेदन किया जा रहा है कि मतान्तर से जो मत युक्तिगत प्रतीत हुए हैं केवल उन्हें ही ग्रहण किया गया है।

प्रथम लहर के सम्पादन काल में किसी–किसी इतिहासकार के मत का खण्डन करते वक्त विभ्रान्तियों का सामना करना पड़ा है। किसी–किसी व्यक्ति का अनुयोग यह है कि पूर्ववर्ती मतवादी गणों के प्रति नाजायज गालीवर्षित हुए हैं। परन्तु इस अनुयोग का भित्ति अभी भी समझ में नहीं आया। जिन लोगों द्वारा त्रिपुरा का इतिवृत्त थोड़ा भी रचित हुया हैं, उन लोगों का मैं आभारी हूँ कि वो मेरा पथ प्रदर्शक हैं। किसी को गाली देना या अवमानना करना मेरा उद्देश्य नहीं रहा एवं इसकी आवश्यकता भी नही। अज्ञानतावश वैसा कोई कार्य हो जाने पर प्रथम लहर में ही उस असतर्कता–जनित त्रुटि के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ, पुनः इस स्थान में विनीत क्षमा प्रार्थी हूँ। परन्तु किसी मतवादों का प्रतिवाद करने को ही अगर यदि गालीवर्षण कहा जाय तब मेरे उपर नितान्त ही अविचार होगें। साहित्य के क्षेत्र में जिन गुरूजनों को सम्मान दिया है, कर्तव्यानुरोध में वैसे व्यक्तियों की टिप्पणियों की खण्डन की चेष्टा करनी पड़ी, जरूरत पड़ने पर दोबारा भी वैसा ही करूँगा। इस दिशा में मेरा मत ही युक्तियुक्त तथा सुसंगत रूप से निर्विवाद मान लिया जायेगा, ऐसे दृष्टान्तों को मैं हृदय में स्थान नहीं देता हूँ। उपस्थापित सकल प्रकार मतवादों का भला बुरा विचार करने का अधिकार सबको है। परन्तु कई विचारक अगर प्रतिवाद करने को गालीवर्षन आख्या देते हैं तब इस से मुक्ति लाभ का कोई भी रास्ता नहीं है। ईश्वर के द्वार में मेरी प्रार्थना यह है कि इस कार्य को सम्पादन करते वक्त कई कर्तव्य भ्रष्ट या असंगत रास्ते पर भटक न जाँउ।

राजमाला की पाँच पाण्डुलिपियों को विशेष सतर्कता से मिलाकर पाठोद्धार किया है तथा पाद टीका में पाठान्तर का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा द्वितीय राजरत्नाकर, कृष्ण माला, श्रेणी माला, चम्पक विजय, त्रिपुर वंशावली तथा गाजीनामा त्रिपुर का इतिहास जनित हस्तलिखित पुस्तक का यथायथ निष्कर्ष द्वारा जरूरी विवरणों का संग्रह किया गया है। इसके अलावा भी अन्य जिन सब ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है, उसकी संक्षिप्त सूची करके इसके पश्चात् भाग में संयोजित किया गया हैं। इन सब ग्रन्थों के ग्रन्थाकार तथा प्रकाशक वर्ग का सदा ही चिर आभारी रहूँगा। इस आलोचना में अक्लान्त परिश्रम तथा विस्तृत समय को खर्च करना पड़ा। इस बार भी महाराज कुमार श्रील श्रीयुक्त रणवीर किशोर देवबर्म्मन बहादुर से जो ग्रन्थ सहायता मिली, वो कभी नहीं भूलूँगा।

इस कार्य में जिन सब सुहृद व्यक्तित्व के आशीष मिले, उनमें महामान्यवर महाराज कुमार श्रील श्रीयुक्त ब्रजेन्द्र किशोर देवबर्म्मन बहादुर का नाम सबसे पहले ग्रहण योग्य है। राजमाला का कार्य भार शासन परिषदों के पास होते हुए भी इस कार्यो के प्रति उनका उत्साह तथा उज्जवल दृष्टि देखी गई है, उनकी कहीं तुलना नहीं की जा सकती। यहाँ के पूज्यपाद पंडित मंडलियों में त्रिपुरेश्वर के पंडित महामहोपाध्याय श्रीयुक्त वैकुण्ठनाथ तर्क भूषण, राजपंडित श्रीयुक्त रेवती मोहन काव्य रत्न तथा उमाकान्त एकादमी प्रधान संस्कृत शिक्षक श्रीयुक्त पंडित कृष्ण कुमार काव्य तीर्थ महाशय से विस्तृत सहायता मिली। श्रृद्धाष्पद महाराजकुमार श्रील श्रीयुक्त नरेन्द्र किशोर देवबर्म्मन बहादुर, श्रृद्धेय सृहृद श्रीयुक्त राय दिनेश चन्द्र सेन बहादुर **B.A. D. Lit**

द्वितीयलहर –6

एवं दीवान श्रीयुक्त विजय कुमार सेन बहादुर **M.A. B L MRAC London**) बृन्दारण्याश्रमी शास्त्रोदर्शी पूज्यपाद परमहंस श्रील श्रीमन्त गौर गोविन्दानन्द भागवत स्वामी महोदय ने प्रथम लहर की तरह इस लहर की पाण्डुलिपि में विशेष परिश्रम के साथ आलोचना द्वारा मुझे यथायोग्य उपदेश प्रदान कर उपकृत किया। स्वर्गीय महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादुर के समय काल से ही त्रिपुरा राज सरकार के साथ दिनेश बाबू की विशेष घनिष्ठता चली आ रही है। उन्होने उससे पहले से ही मुझे मित्रों में स्थान देकर अपनी असीम उदारता का परिचय दिया। अक्लान्त परिश्रम करके इस कठिन कार्य में यथोचित सहायता प्रदान कर धन्य किया। उनकी यह उदारता तथा स्नेह जिन्दगी में कभी विस्मृत नहीं होगी। ढाका म्यूजियम के सुयोग्य क्यूरेटर श्रृद्धाष्पद श्रीयुक्त नलीनी कान्त भट्टशाली **M.A.** महाशय ने क्षणिक परिचय से, पत्रों द्वारा राजमाला सम्पादन कार्य में सहायक सकल अमूल्य विवरण प्रदान किया, उससे मेरा बहुत ज्यादा उपकार हुआ है। परम श्रृद्धेय महा महोपाध्याय श्रीयुक्त पंडित हर प्रसाद शास्त्री डे **M.A. C I E** महाशय से इस बारे में बातें करके विशेष उपकृत हुआ तथा श्रृद्धाष्पद अध्यापक महामहोपाध्याय श्रीयुक्त पद्मनाथ भट्टाचार्य विद्याविनोद **M.A.** महाशय से ऐतिहासिक तात्पर्य पूर्ण बहुमूल्यवान विवरण प्राप्त किया। पूज्यपाद पंडित श्रीयुक्त चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय द्वारा संकलित त्रिपुर इतिवृत्त ग्रन्थ तथा श्रृद्धेय अध्यापक श्रीयुक्त अमूल्य चरण विद्याभूषण महाशय संगृहीत विवरण मेरे कार्यो में विशेष सहयोगी रहे। स्नेह भजन श्रीमान दीन दयाल देववर्मा महाशय संगृहीत ''दोयापाथरेर विवरण'' से विवरण मिलने से विशेष सुविधा हुई। त्रिपुरेश्वर बहादुर के अण्डर सेक्रेटरी प्रीति भाजन, श्रीमान सत्यरंजन बसु B.A. तथा मेरा सहकारी स्नेहास्पद श्रीमान महेन्द्रनाथ दास महाशय मेरे कार्य में विशेष सहयोगी रहे। इन सभी व्यक्तियों के उनके सौजन्य निमित्त चिर आभारी रहूँगा और भी बहुत सारे ह्रदयवान व्यक्तियों से न्यूनाधिक परिमाण में सहायता मिली, इस स्थान पर उनके नामोल्लेख नहीं कर पाने पर गंभीर त्रुटि हो रही हैं।

राजमाला में जिन व्यक्तियों का नामोल्लेख है, उनके विवरण संगृहीत कर पाना वर्तमान काल में मुश्किल प्रतीत होते हैं उनमें से बहुतों का वंश विलुप्त हैं, बहुतों का अधस्तन वंशगण पैत्रिक वंश भूमि छोड़ कर स्थानान्तरित हो जाने पर उनके परिचय से वर्तमान जन समाज अवगत नहीं हैं। बहुत से अपने पूर्वजों के बारे में अनभिज्ञ है। इन सकल कारणों से प्राचीन युग के बहुत सारे प्रसिद्ध व्यक्तियों का परिचय संग्रह करने की चेष्टा व्यर्थ हुई हैं। स्थानों का विवरण संबंधी तथ्य भी ठीक इसी रूप में है। बहुत स्थानों का नामान्तर हो जाने पर तथा प्राचीन नामों का वर्तमान जन समाज विस्मृत होने से उन सभी का अवस्थान निर्णय करने का मौका नहीं मिल रहा है। अनुसंधान द्वारा जो सकल विवरण मिले, वह इस पुस्तक के अन्तिम भाग में संयोजन किये गये हैं। परन्तु उससे तृप्तीलाभ नहीं मिला हैं।

शासन परिषद द्वारा राज कार्य परिचालित होने के समय से ही राजमाला का कार्य महा मान्यवर महाराज कुमार श्रील श्रीयुक्त ब्रजेन्द्रकिशोर देवबर्मन बहादुर की देख रेख में रहने की बात पूर्व में ही बताई गयी हैं। शासन परिषद के भंग होने के बाद नवीन भूपति पंचश्री युग महाराज वीर विक्रमकिशोरमाणिक्य बहादुर ने सचेष्ट हो कर इस कार्य में सहयोग किया तथा उसी रूप में ग्रहण किया हैं, यह सामान्य आनन्द तथा कम आशाओं की बात नहीं है। श्री श्रीयुक्तमाणिक्य बहादुर

द्वितीयलहर –7

के प्राईवेट सेक्रेटरी मान्यवर श्रीयुक्त रानाबोधजंग बहादुर तथा असिस्टेंट प्राइवेट सेक्रेटरी दीवान साहब श्रीयुक्त कमलाप्रसाद दत्त MA, BL, FES, MRAS महाशय अन्य कार्य परिचालन का विधिवत् बन्दोबस्त कर रहे हैं।

ग्रन्थ का यह भाग स्थानीय राजमाला यन्त्र में मुद्रित हुए हैं। उसके मुद्राकार द्वारा दोषरहित रखने की बहुत सारी चेष्टाएँ हुई हैं पर नाना कारणवश इस विषय में सम्पूर्ण सफलता नहीं मिल पाई हैं, इस त्रुटि निमित्त विशेष रूप से दुखी हूँ। दो कमियों का यहां पर उल्लेख करना संगत होगा। ग्रन्थ के 178 पेज पर 28वीं पंक्ति में 1438 के जगह पर 1443 होगा तथा 290 पेज पर 14वीं पंक्ति में चतुर्भुजा के स्थान पर अष्टभुजा होगा। ये भूल सुधारना आवश्यक है। राजमाला यंत्र का Printer श्रद्धेय मित्र श्रीयुक्त नवद्वीप चन्द्र देव वर्मा महाशय द्वारा पूर्व संशोधन कार्यो में विस्तृत सहायता मिली। इसके लिए भी उनका आभारी रहूँगा।

ईश्वर की असीम कृपा तथा पंच श्रीयुक्त महाराजमाणिक्य बहादुर का सदैव सुदृष्टि लाभ से, राजमाला अवशिष्ट अंश संपादन व प्रचार का कार्य समाप्त कर पाने से अपने आप को धन्य ज्ञान करूँगा तथा परिश्रम सार्थक हुआ, ऐसा मान लूंगा।

अगरतल्ला –'राजमाला' कार्यालय
दोलपूर्णिमा –1337 त्रिपुराब्द — श्री कालीप्रसन्न सेन
(अंग्रेजी 1927 ई.सन)

द्वितीयलहर –8

चित्र–2–8

पृष्ठ संख्या – मुखपत्र



राजमाला के प्रचार प्रयासी

स्व महाराज राधाकिशोर माणिक्य

द्वितीयलहर –9

प्रमाण–पंजी

(जिन सब ग्रंथादियों से द्वितीय लहर के सम्पादन कार्य हेतु प्रमाण तथा उपादान विहित हुए हैं उनकी तालिका)

संस्कृत ग्रंथादि

अग्नि पुराण
अथर्व वेद
उनकोटि तीर्थ महात्म्य (हस्तलिखित)
ऋग वेद संहिता
कथा सरित सार
कवि कल्पलता
कल्प तरू
कालिका पुराण
काली विलास तंत्र
काशी खण्ड
कुर्म पुराण
गरूड पुराण
गार्ग्य संहिता
घटक कारिका
चामुन्डा तंत्र
जैमिनी भारत
ज्योतिष तत्व
तंत्र विभूति
तंत्र सार
तिथि तत्व
तैत्तिरीय आरण्यक
दश कुमार चरित
दान सागर ग्रंथ
दिग्विजय प्रकाश
दुर्गोत्सव तत्व
देवी प्रतिष्ठा तत्व
देवी पुराण
देवी भागवत
नंदी पुराण
पराशर संहिता
पत्र कौमुदी
प्रायश्चित्त तत्व (रघुनन्दन)
बसंत राज शाकुन
वायु पुराण
बाराही तंत्र
विप्र कल्प लतिका
विवाद दर्पण
विद्वोन्माद तरंगिनी
विष्णु धमोत्वर
बृहत संहिता
बृहत धर्म पुराण
बृहन्नारदीय पुराण
बृहन्नील तंत्र
बृहस्पति संहिता
ब्रह्म पुराण
ब्रह्मबैवर्त्त पुराण
ब्रह्मांड पुराण
भविष्य पुराण
मत्स्य पुराण
महाभारत (मूल)
मेदिनी कोष
याज्ञवल्क्य संहिता
युक्तिकल्प तरू
योगवाशिष्ट रामायण
योगिनी तंत्र
योगिनी ह्रदय
रघुवंश
राजानिर्धन्ट
राजरत्नाकर
रूद्रयामल

<u>द्वितीयलहर –10</u>

शक्ति संगम तंत्र
शब्द कल्पद्रुम
शुक्र नीति
शुद्धि तत्व
श्रीमद्‌भागवत
श्रीमद्‌भागवत गीता
श्वेताश्वतर
संस्कृत राजामाला
सायनभाष्य
स्कन्द पुराण
हरिवंश

....

बंगला ग्रंथादि

अद्वैत प्रकाश
आईनी तिरहुत (विश्वकोषध्रुत)
आसाम बुरूंजी
उनकोटि तीर्थ (पैरीमोहन देवबर्म्मन)
कामरूप बुरूंजी
कृष्णकर्णामृत (जदुनंदनदास)
कृष्णमाला (हस्तलिखित)
कैलाश बाबू की राजमाला
गाजीनामा (हस्तलिखित)
गौर लेख माला
गौरे ब्राह्मण
चन्डी काव्य (कवि कंकण मुकुन्द राम)
चन्डी काव्य (माधवाचार्य)
चन्द्रनाथ माहात्म्य (हरि किशोर अधिकारी)
चट्‌टग्राम का इतिहास (पूर्ण चन्द्र चौधरी)
चम्पक विजय (हस्तलिखित)
चैतन्य चरितामृत (कवि राज गोस्वामी)
चैतन्य भागवत (वृन्दावन दास)
चैतन्य मंगल (लोचन दास)
ढाका का इतिहास (जतीन्द्र मोहन राय)
तरप का इतिहास
त्वरिख बंग्ला (अनुवाद)
त्रिपुर वंशावली (हस्तलिखित)
त्रिपुरा का प्राचीन इतिहास (शीतल चन्द्र चक्रवर्ती)
त्रिपुरा स्टेट गेजेट (ग्यारह सौ भाग द्वितीय संख्या)
दुर्गामंगल (माधवाचार्य)
धर्म राज का गीत (कवि रूप राम)
नव्य भारत (कार्तिक 1304)
पद्‌मावती (औवाल कवि)
पादशाह नामा (विश्वकोष धृत)
पृथ्वी का इतिहास (दुर्गा दास लाहिरी)
प्रवासी (कार्तिक 1321)
प्राचीन राजमाला (हस्तलिखित)
फरीदपुर का इतिहास (आनन्द नाथ राय)
बंग भाषा और साहित्य (दिनेश चन्द्र सेन)
बंग का जातीय इतिहास (ब्राह्मण कांड)
बंगाल का इतिहास (राखाल दास बन्द्योपाध्याय)
विश्व कोष (नगेन्द्र नाथ बसु)
भ्रमण वृन्तान्त (धनंजय ठाकुर) हस्तलिखित
मनसा मंगल (द्विज वंशीवादन)
मयनामति का गीत (भवानी दास)
महाभारत (काशी राम दास)
महाभारत (छुटी खान)
महाराज राज बल्लभ सेन की जीवनी
महाराजन ग्रंथ (चट्‌टग्राम का इतिहास धृत)
मादल पंजी (विश्व कोष धृत)
जशोहर खुलना का इतिहास (सतीश चन्द्र मित्र)
राजमाला प्रथम लहर
राजबली (हस्तलिखित)
राजाबाबू का राजमाला (हस्तलिखित)
राजोआं (चट्‌टोग्राम का इतिहास धृत)
रामायण (कृत्तिवास)

द्वितीयलहर –11

रियाजुस–सलातिन (अनुवाद)

शिलालिपि संग्रह (चन्द्रोदय विद्याविनोद)

श्री श्रीयुक्त कैलासहर भ्रमण (चन्द्रोदय विद्याविनोद)

श्री हट्ट इतिहास (अच्युत चरण चौधुरी)

श्रेणी माला (हस्त लिखित)

साहित्य (सावन भादौं 1321)

सीताराम (अक्षयकुमार मैत्र)

सेक शुभोदय(हस्तलिखित)

....

अंग्रेजी ग्रन्थादि –

Akbarnama (By Beveridge)

Analysis of the Rajmala (J.A.S.B. -Vol . XIX**)**

Ayin –i- Akbari (Translation by francis Gladwin)

Beal's Budhist Record –Vol II

Bengal past and present – Oct 1907

Bengal under Lieutenant Governors

Buchanon Hamilton's Hindusthan

Dacca Review- May, 1914 and Oct, 1922

Forward-April 10- 1927,

History of Assam (By E.A. Gait)

History of Tripura(By E.F. Sandys)

History of mediaeval Hindu India –Vol. II

History of the world – Sir Walter Raleigh

Ibn Batuta (Translation)

Journal of Asiatic society of Bengal – Part I 1878, March 1914, Vol XII , XLIII

Journal of the Royal Asiatic Society – January . 1910.

Letter No. 276, from Asstt, Pol . Agent, 11th June. 1888

Letter from Maharaja Beer Chandra Manikya . 03rd Sept .1888.

Letter from Commissioner of the Chittagong (No. 687. 02nd Oct, 1888)

Muir's Sanskrit Texts

North East Frontier of Bengal

Pal King of Bengal(By R D Banerjee)

Pioneers in India - P. 163

Regulation - XVII of 1829

Ralph Fitch's Travels

Science of langauge - Max Muller

Settlement Report of Chakla Roshnabad (By J G Cumming I.C.S.)

Statistical Account of Bengal, Vol. VI

Stewart's History of Bengal

Tavernier's Travels (By J. Phillips)

Von Neor's Akbar

Wright's Marco Polo

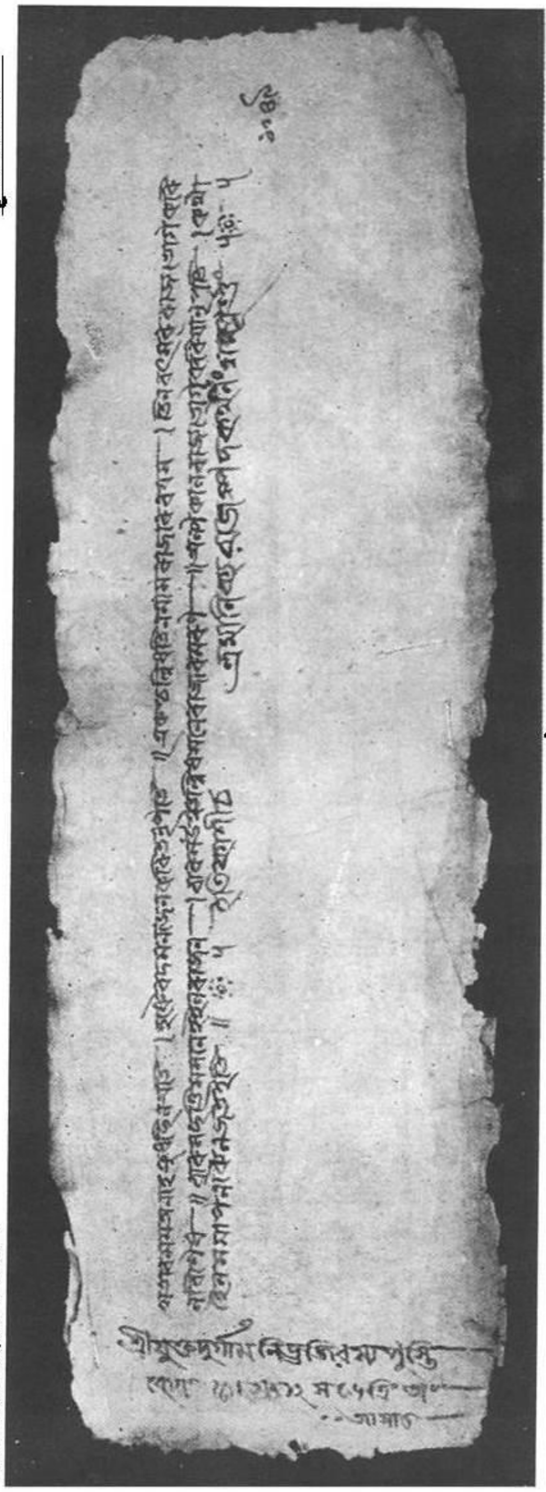
Yule's Marco Polo. Vol. II

...

द्वितीयलहर –12

चित्र–3–12

पृष्ठ संख्या –



राजमाला द्वितीय लहर

राजमाला ग्रन्थ का शेष पृष्ठ

द्वितीयलहर –13

पूर्वाभाष

राजमाला पाण्डुलिपि की अवस्था राजमाला प्रथम लहर के सम्पादन कार्य हेतु जिन पाँच पुस्तकों की सहायता ली गई है, द्वितीय लहर के कार्यो में भी उन पाँच पुस्तकों का ही अवलोकन किया गया है। उन पुस्तकों की सर्वापेक्षा एक प्राचीन पाण्डुलिपि अगरतल्ला स्थित वजीर गृह के पुस्तकालय में थी। कुछ वर्ष पूर्व गृह दाह में वह भस्म हो गई। उस समय और एक पुस्तक राज ग्रन्थ भण्डार से प्राप्त हुई। उक्त दोनों ग्रन्थों की आलोचना का सुयोग मेरे भाग्य में होने से भी तत्काल राजमाला सम्पादन कार्यो में व्याप्त नहीं था। अभी जिन पुस्तकों के अवलम्बन से कार्य किया जा रहा हैं, वह पूर्व ग्रंथ की ही प्रतिलिपि है। उनमें से अपेक्षाकृत प्राचीन ग्रन्थ को 1256 त्रिपुराब्द में वजीर भवन में रक्षित ग्रन्थ से ही नकल किया गया था। वह ग्रन्थ स्वर्गीय महाराज वीर चन्द्र माणिक बहादुर के तत्वाधान में था। उनके स्वर्गवास होने के बाद वह ग्रन्थ उनके सर्व कनिष्ठ पुत्र महाराज कुमार श्रील श्रीयुक्त ज्योतिरीन्द्र चन्द्र देवबर्म्मन बहादुर के हस्तगत हुए। राजमाला के सम्पादन कार्य उपलक्ष्य में उन्होने उसे राज भण्डार को प्रदान कर अपने द्वारा असीम उदारता का परिचय प्रदान किया। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ पृष्ठ की प्रतिलिपि प्रथम लहर के पूर्वाभाष में सन्निवेषित हुई है। उस स्थान पर शेष पृष्ठ का आलोक चित्र प्रदान किया गया है। इस पृष्ठ का बाँयी दिशा में लिपिबद्ध है –

''श्रीयुत दुर्गामणी उजीरस्य पुस्तिकेयं।।1।

सन् 1256 त्रिंग तां तीस आषाढ।''

स्वर्गीय वजीर दुर्गामणी ठाकुर साहित्य के प्रति अनुरागी तथा साहित्य सेवी थे। राजमाला के अवशेष दो लहर भी उन्ही के द्वारा रचित है, परन्तु उनके एक कार्य द्वारा ग्रन्थों का गांभीर्य कुछ कम हुआ हैं। राजमाला के समग्र अंश पर उनके द्वारा हस्त–चालना करने से, भाषायें कुछ परिमाण में उनके समसामायिक भाव लिए हुए हैं। उस संशोधन द्वारा प्राचीन भावों के व्यक्त ना होने से भी भाषाओ का कुछ अपवाद हुआ हैं। इस रूप –कार्य द्वारा प्राचीन ग्रन्थों की जो मौलिकता नष्ट हुई है उसे उन्होनें शायद सोचा नहीं।

प्राचीन राजमाला की पान्डुलिपि प्राचीन भाषा द्वारा संकलित एक पान्डुलिपि राजग्रन्थागार से मिली हैं। परन्तु वह नितान्त ही आधुनिक प्रतिलिपि है। अतिवेदना से उल्लेख करना पड़ रहा है कि इसका भी प्राचीन पान्डुलिपि गृह दाह में विनष्ट हो गई हैं। इसी कारणों से हस्तगत आधुनिक पान्डुलिपियों के उपर ही निर्भर

<u>द्वितीयलहर –14</u>

नहीं किया जा सकता है। इस कारण पूज्यपाद पंडित श्रीयुक्त चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय ने उक्त पांडुलिपि को परित्याग करते हुए, हमारे गृहीत पांडुलिपि का अवलम्बन किया है। आधुनिक नकल होने से भी पुस्तिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। वर्तमान काल में यह ही राजमाला के प्राचीनत्व का एक मात्र निदर्शन है। सुयोग होने पर इसके प्रचार करने की ही चेष्टा रहेगी।

पांडुलिपि का वर्णविन्यास संबन्धित विवरण जिन पाँच ग्रन्थों को ही लेकर वर्तमान समय में कार्य किये जा रहे है, उनमें एक का भी वर्ण शुद्धि नहीं है। नकल कार्य करने वालों द्वारा अपनी अपनी इच्छायें तथा अनभिज्ञता अनुसार भिन्न भिन्न प्रकारों का वर्ण विन्यास लिपि लिए हुए हैं। एक के साथ दूसरे वर्णो का प्रयोग का अनुरूप संसर्ग नहीं है। इस क्षेत्र पर सम्पादन द्वारा कौन सी पुस्तिका प्रणाली है, अवलम्बन करना चाहिए, व निर्णय करना दुःसाध्य है। विशेषकर इस नकल कार्य करने वालों में से किसी भी व्यक्ति ने वर्ण विन्यास संबधित मूल ग्रन्थों का अनुसरण नहीं किया, लग रहा हैं। इस अवस्था में अशुद्व वर्ण विन्यास मुद्रित करके पाठक वर्गो का जानबूझकर कष्टोत्पादन करने की कोई सार्थकता नहीं है। परन्तु ग्रन्थों की भाषा तथा पाठ अक्षुण्ण रखने के लिए अधिकांश स्थान में ही वर्ण विन्यास के उपर हस्तक्षेप किया गया है तथा पाठ के जो अपवाद दिखाये गये हैं, पाद टीका में उनका पाठान्तर प्रदान किया जा रहा हैं। प्रथम लहर भी इस प्रणाली में सम्पादित हुई हैं तथा तत्पश्चात् भी यही करना होगा। यह कार्य संगत न होने से भी पूर्ववत् कारणों से इस विषय पर दूसरा कोई रास्ता नहीं दिखता हैं।

आर्य निवास संबन्धित आलोचना राजमाला का मूलभूत विषय – ययाती नन्दन द्रुहुय तथा उनके वंशधर गणों का विवरण है। द्रुहुय ने पिता द्वारा निर्वासित होकर गंगा यमुना संगम स्थल में सन्निहित प्रतिष्ठान नगर के सुन्दरवनों के निम्न भाग स्थित सगरद्वीप में जाकर आश्रय ग्रहण किया था। त्रिपुर इतिहास के ये ही मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त की नैतिकता प्रदर्शन के पक्ष में प्रथम लहर के पूर्वाभाष में यथा सम्भव प्रयास किये गये हैं। परन्तु आर्य गणों की आदिवास भूमि भारत वर्ष है या नहीं, इस वितर्क का अभी तक सही पता नहीं चल पा रहा है। मूल परिस्थितियों में अनुसांगिक छोटे छोटे विषयों को लेकर प्रश्न उठाना तथा उसका हल निकालने के प्रयास से फलाफल की आशा नितान्त ही विरल है। इस विषय में मतवादों का निष्कर्ष निकालते वक्त सर्व प्रथम अनुकूल मत पोषक पाश्चात्य देशों के विद्वानगणों की बातें याद आती है। इनमें (पृथ्वी का इतिहास) रचयिता सर वाल्टर रैले का नाम सबसे पहले याद आता है। वे सर्व प्रथम अंग्रेजी में पृथ्वी की इतिहास रचना द्वारा विख्यात हुए। उनके ग्रन्थ में स्वीकार किया गया हैं कि भारत वर्ष ही मनुष्यों का आदिवास स्थान है।(1) काउन्ट जोरनस जारोना का कहना है कि आर्यवर्त ही ब्राह्मण धर्म का तथा हिन्दू सभ्यता का

---

(1) **History of the world – Sir Walter Raleigh**

द्वितीयलहर –15

आदि स्थान है। यहीं से ही सभ्यता की किरण पृथ्वी में सर्वत्र फैली हैं। उनके द्वारा लिखे गये कुछ अंश इस स्थान पर प्रदान किये जा रहे हैं।

" It is there (India) we must seek not only for the cradle of the Brahmin religion, but for the cradle of the high civilization of the Hindus, which gradually extended itself in the west to Ethiopia to Egypt, to Phoenicia; in the east, to Siam, to China and to Japan, in the south, to Ceylon, to Java and to Sumatra; in the north, to Persia, to Caldæa and to Colchis, whence it came to Greece and to Rome and at length to the remote abode of the Hyperboreans,"

Count Bjornstjerna, Theogony of the Hindus,

इसके अलावा भी अध्यापक मैक्स मुलर,(2) कर्जन साहब, सर विलीयम जोनस, मुईर(3) विलसन, अध्यापक बोप(4) सर विलीयम हंटर, प्रो0 हीरेन सुविज्ञ श्लेजेल इत्यादि बहुसंख्यक विख्यात विद्वान ने नाना प्रकार से भारत वर्ष की प्राचीनता तथा प्रधानता को स्वीकार किया हैं।

परन्तु उनके विरूद्ध मतवादियों की संख्या भी बहुत है। इनमें से एक पक्ष का मानना है – आर्यगणों ने मध्य एशिया के कई प्रदेशों से भारत में प्रवेश किया था और एक पक्ष का कहना है आर्यगण कैस्पियन सागर के किनारे किसी प्रदेश में निवास था। एक पक्ष का कहना है कि आर्यगण उत्तर मेरू से भारतवर्ष आये थे। परन्तु कोई मतवादी गण आर्यगण का अदिधारा स्थानों का निर्देश तथा अपने मतों के पक्ष में कोई भी उत्कृष्ठ प्रमाण नहीं दे पाये हैं। ऋग वेदों के सूत्र समूहों से जिन नदी नाले तथा जनपदों का नाम मिलते हैं उनको ध्यान में रख कर उन लोगों ने पूर्वरूप मत प्रचार किया। परन्तु उन लोगों द्वारा दिये गये सूत्रों का जो निष्कर्ष निकालता हैं वह प्राचीन वेद तथा वेदान्तकारी गणों के मत विरूद्ध है। इस स्थान पर एक ठीक चौपाई का उल्लेख किया जा सकता है। ऋग वेद संहिता के प्रथम मंडल में तीसवें सूत्र के नवम् श्लोक में उल्लेख है कि

"अनु प्रत्नस्यौकसो हुबे तुबि प्रतिं नरं।
यं ते पूर्वं पिता हुबे ।।1।30।9।।"

....

(2) **Seince of language – Max Muller**

(3) **They could not have entered from the west, because it is clear that the people who lived in that direction were descended from these very Arians of India ......nor could the Arians had entered India from the north or north west, because we have no proof from history or philosophy that there existed any civilised nation with a language and- religion resembling theirs which could have issued from either of those quarters at that early period and have created Indo-Arian civilization."**

Muir's Sanskrit texts

(4) **Sanskrit is more perfect and copious than the Greek and Latin and more exquisite and eloquent than either"**

Prof. Bopp Edinburgh Review.

<u>द्वितीयलहर –16</u>

आधुनिक पंडितों का मानाना है कि इन सूत्रों में प्रयत्नस्यौकसो वाक्य द्वारा आर्यगणों का वास भूमि परिदर्शित है। पक्षांतर में सायानाचार्य ने इस शब्द का अर्थ किया हैं–स्वर्ग भूमि।

और भी एक सुप्रचलित चौपाई का भी उल्लेखयोग्य है–

प्रथम मंडल बाइस सौ सूत्र का अठारह सौ श्लोक में मिलते हैं

''त्रीणिपदा विचक्रमें विष्णुर्गोपा

अदाभाः। अतो धर्मानी धारयण् ''

पाश्चात्य पंडित गणों ने इस <u>त्रिणि पदा विचक्रमें</u> वाक्य का अर्थ निकाला कि आर्य गण भारत आते वक्त रास्ते में विष्णु के आश्रय में तीन स्थानों पर विराम किया था। वेद के निरूक्तकार द्वारा उसका अर्थ अन्य रूप से निकाला गया हैं। शाकपुनि, उर्णनाभ, प्रभृति वेददर्शी मनीशी गणों ने त्रीणि पदा इत्यादि वाक्य द्वारा अर्थ ''पृथ्वी में अन्तरिक्ष में स्वर्ग लोक में'' है समझाया है। उन लोगों का कहना है कि सूर्योदय काल में पूर्व दिशा, मध्य काल में अन्तरिक्ष तथा अन्त काल में पश्चिम दिशा में विष्णु का तीन पद त्रीणि विचक्रमें का अर्थ है।

अतएव अर्थ का पार्थक बहुत ही ज्यादा है और भी किसी किसी ऋग् के निष्कर्ष द्वारा इतना अन्तर हुआ है कि वे एक दूसरे से जमीन आसमान का अन्तर होने से भी अति उक्ति नहीं होगें। इससे संबधित पाश्चात्य मत में शुरू में ही आर्यगण भारत वर्ष का बाहर देश से आये, सिद्धान्त लिया गया। वेददर्शी महापुरूषों के अलावा दूसरों के द्वारा इस विरोध का समाधान निकाल पाना नामुमकिन है। हमारे जैसे अक्षम व्यक्ति द्वारा त्रिपद विचक्र में वितर्क के नजदीक पैर रखना का भी अधिकार नहीं है। पर यह प्रश्न अपने आप ही मन में आता है कि ऋगवेद कृत पृथम से लेकर दशम मंडल का अंश दूसरे मंडल में जिन सकल नदी नाले तथा जनपदों का उल्लेख मिलता हैं इनमें कौन सा भारत वर्ष में तथा काबुल देश में अवस्थित है? अस्तित्व विलोप होने से तथा नाम परिवर्तित होने पर इनका परिचय मिलना असंभव हो रहा है। परन्तु वेदों के किसी भी सूत्र में आर्यगणों के अदिवास स्थान का निःसन्देह निर्णय करने का उपयुक्त वाक्य नहीं मिलता हैं। फिर भी पाश्चात्य पंडित द्वारा वेदो का प्राचीन व्याख्या की उपेक्षा करके आर्यगण भारतवर्ष के बाहर बहिर्भूत कौन से देश की सम्पत्ति है? वह क्यों नहीं बताते है? उन सकल प्रश्नों का हल जो भी हो तो आर्यगण भारत का आदिम आदिवासी या उपनिवेशी जो भी सिद्धान्त की चन्द्रवंशी भूपति गणों का प्रतिष्ठान का राज पाठ आदिम या परिवर्ती काल में प्रतिष्ठत हो – सम्राट ययाति जो उस त्याग से ही पुत्र गणों

<u>द्वितीयलहर –17</u>

को भिन्न भिन्न प्रदेशों के उद्देश्य में निर्वासित किये थे पौराणिक इस विवरण को आविष्कार करने का कोई भी कारण है नहीं लगता।

पुराण समूह आधुनिक ग्रन्थ नहीं पुराण इत्यादि ग्रन्थ व आधुनिक सोच का पाश्चात्य समाज अभी तक इसकी उपेक्षा कर रहे थे। गवेशणा के फलस्वरूप इस उपेक्षा का भार क्रमशः शिथिल होते दिखाई पडते हैं। ईशा पूर्व एकादशशताब्दी में पुराणों का अस्तित्व रहने को वे लोग नहीं मानते थे। सर विलीयम हंटर भी इन्ही मतों के पक्ष में थे। परन्तु उनके द्वारा रचित भारत इतिहास के अगले संस्करण में उन मतों का यत किंचित परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। तत्पश्चात् (1914 ई) में संस्करण में विनसेन्ट स्मिथ ने जो सिद्धान्त किए, पुराण समूह ईशा पूर्व चतुर्थ शताब्दी में प्रमाणिक ग्रन्थों के रूप में स्वीकार किये जा रहे थे। इस वाक्य द्वारा पुराण का उस एकादश शताब्दी ई से ईशा पूर्व चतुर्थ शताब्दी में उठाये गये हैं तथा पूर्व अनुमान की अपेक्षा पुराणों के प्राचिनत्व में करीब डेढ हजार साल वृद्धि हुई है। वाद विवादों के फलस्वरूप उपरोक्त पुराण समूहों को और भी प्राचीन कह कर स्वीकार किये जायेगें। तदानुसार आशय शायद असंगत नहीं होगा। स्मिथ साहब का वाक्य निम्न हैं :–

"I may add that purans in some shape were already authoritative in fourth century B.C. The author of the Arthasastra ranks the Atharvaveda and Itihasha as the fourth and fifth Vedas (BK.I.Ch.3); and directs the king to spend his afternoons in the study of Itihasha which is defined as comprising six factors, namely, (01) (purana) (02) Itivritta (History) (03) Akhhyayika(Tales) (04) Udaharona (Illustrative stories) (05) Dharmasastra. and (06) Arthasastra (BK.I.Ch.5)"

दूसरे पक्षों के मतानुसार भारत वर्ष में चन्द्र तथा सूर्य वंशों के, जो सकल अवस्थान मूल पुराण द्वारा निर्देशित किये गये हैं, वह उन लोगों का अन्तिम स्थान रहा है। संस्करणकर्तागणों का इस विषय में ज्ञान का अभाव हेतु शेष संस्थान को ही आदि संस्थानो के रूप में लेकर आर्यगणों को भारतवर्ष का आदिम आदिवासी बतलाया गया हैं। स्वदेशी सुधिवर्ग में भी इस मत के पक्षपाती मिलेगें। दृष्टान्त फल में विद्यमान प्रत्नतत्वविद् माननीय **C. V. Vaidya M. A. L. .L. B.** महाशय का वाक्य उत्थापित किये जा सकते है। उनका कहना है कि –

"The last position of the solar and lunar races, Viz, Ayodhya and prayaga, were taken to be their first position by these last editors of the purans, because they had no idea whatever of the real course of history viz., that the Aryans spread from north-west to the south-east and south."

History of the mediaval Hindu India – P 279.

मैक्समुलर, त्रिकालदर्शी वेदवेत्ता ऋषिगणों को विशाल पृथ्वी के तत्व विषय में अनभिज्ञ कहकर, उपेक्षा करने में कुंठित नहीं हुए हैं। इस कारण से पुराण संस्कर्ता गणों की धारणा के प्रति कटाक्ष करना विचित्र कथा नहीं है? पर्जितार साहब,

<u>द्वितीयलहर –18</u>

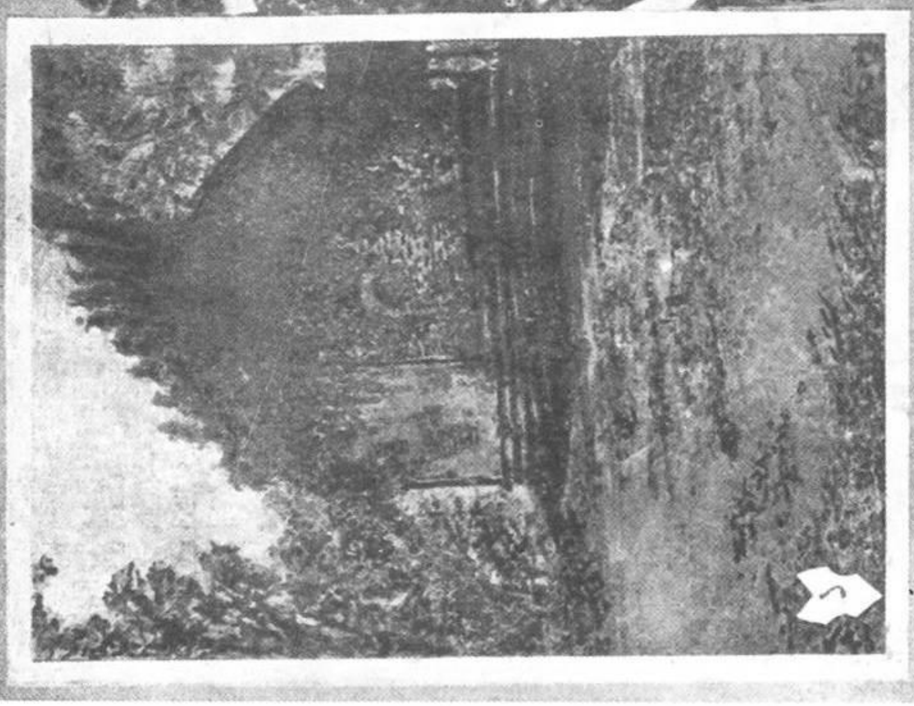
इलाहाबाद को चन्द्रवंशीय गणों का प्रथम राज पाट के रूप में निर्देश करने से, उन्होनें पुराणों पर अतिरिक्त निर्भर किया हैं, इसलिए, वैध महाशय उस ग्रहण को अयोग्य मानते हैं।(1) पुराणों के इन मतों को मानने से वेदों के साथ विरोध होगा ये ही आधुनिक मत हैं। परन्तु कई संतुलन खो बैठे। अनुमानरहित प्रमाणों द्वारा कुछ दर्शाया बोल के पता नहीं है वेद में जो रूप अर्थ मूल में ही आर्यगणों का आदि अवस्थान निर्देश किये गये वो पूर्व में ही प्रदर्शित हुए हैं। पुराणों का संस्कर्तागणों पर दोषारोपण देते वक्त, पुराणों के सही आर्य क्या थे तथा संस्कर्ता गण द्वारा इसमें क्या परिवर्तन किये गये थे, प्रमाण द्वारा दिखाने से शायद साधरणों का विशेष उपकार होता। प्रदर्शित न होने तक पुराणों के प्रति असम्मान प्रदर्शन करना इन सब के लिए संभव होगा, कहना, नहीं माना जा सकता। कारण पुराण संस्कर्ता गणों को जितना ही अनभिज्ञ क्यों नहीं बतलाया जाय, वे लोग ज्ञान में न हो अंततः उम्र के वर्तमान काल के पंडित गणों से बुजुर्ग थे तथा वर्तमान काल जैसा उस समय शास्त्र ग्रन्थ समूह दो चार जनों के हस्तगत नहीं थे। परन्तु ब्राह्मण मात्र ही अत्यधिक परिमाण उनके आलोचक के विषय थे। विशेषकर शास्त्रों को विकृत करना पाप कर्म बोल है, उस समय सभी का विश्वास था। इस परिस्थितियों में प्रकृष्ठ युक्ति प्रमाण व्यतीत पुराणों को विकृत बोल कर उपेक्षा करना संगत होगा कि नहीं वह विशेष विवेचनाओं की बातें हैं। नियमित देखा जा रहा है कि जिन लोगों द्वारा पुराणों के प्रति अश्रृद्धा प्रदर्शित करते हैं जरूरत पड़ने पर वे भी पुराणों के बन्धनों के सहयोग से अपना मत सुदृढ़ करने पर उतावले है। अतएव इसके द्वारा प्रतीयमान होगा कि वे लोग अपने मुख से कुछ भी क्यों नहीं बोले, कार्यकाल में पुराणों की मर्यादाओं की रक्षा करने से कुंठित नहीं होते। प्रकृत पक्ष में पुराण उपेक्षा की वस्तु नहीं है। नीतिशास्त्र वेत्ता चाणक्य पंडित ने पुराणों को चतुर्थ वेद का दर्जा/अन्तर्भुक्त किया तथा इतिहास की परिभाषा में बताया गया कि पुराण, इतीवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण तथा धर्म शास्त्र सभी इतिहासों के रूप में विख्यात हैं।

द्रुहुय उपनिवेश का स्थापन निदर्शन की पुनर्आलोचना निर्वासित द्रुहुय प्रथम कहाँ पर उप निवेष्ट हुए थे, यह भी एक समस्या का विषय है। त्रिपुर इतिहास का कहना है कि द्रुहुय ने सुन्दरवनों के बीच सगरद्वीप में उपनिवेश स्थापन किया था। सगरद्वीप स्थित दांडी गणों से घनिष्ठता त्रिपुरेश्वर द्वारा स्थापित "त्रिपुर सुन्दरी" विग्रह तथा सगरद्वीप में प्रतिष्ठित शिव मंदिर इत्यादि द्वारा इस विषय में विशेष रूप में प्रमाणित हुए है।(2) त्रिपुरेश्वर का प्रतिष्ठित "त्रिपुरा सुन्दरी" मूर्ति आज भी वहाँ विद्यमान रहकर अतीत की स्मृति जागरूक किये हुए है। सुन्दरवनों की तरह बार बार उत्थान और पतनशील भूभाग में सुदुर अतीत काल के इतने सारे निदर्शन रहने के बावजूद भी उसकी उपेक्षा

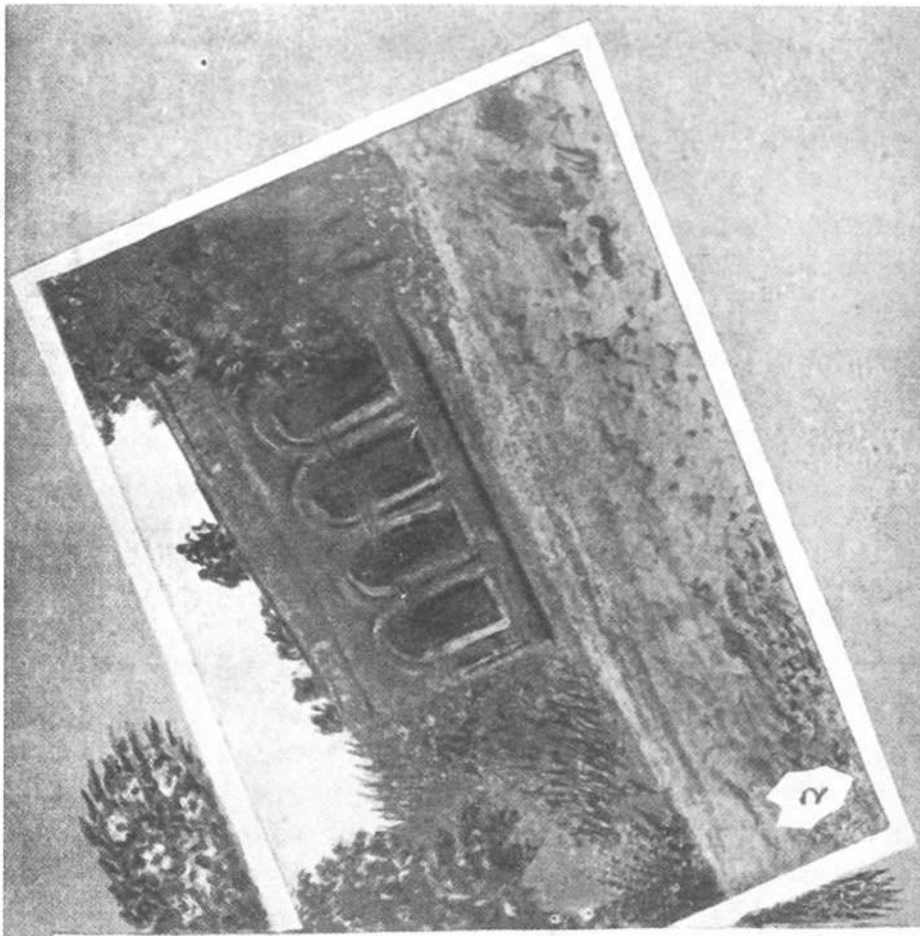
---

(1) **History of mediaeval history India – Vol. II , PP.259-260**
(2) राजमाला – प्रथम लहर पूर्वाभाष दृष्टव्य।

द्वितीयलहर –19
चित्र–4–19



श्री श्री अम्बुलिंग मंन्दिर – सुन्दर वन



श्री श्री त्रिपुरा सुन्दरी मन्दिर – सुन्दरवन

द्वितीयलहर –20

करके किसी किसी का कहना है कि द्रुहुय पुत्र गण द्वारा वर्तमान ढाका (बंगला देश स्थित) जिला के सुवर्ण गाँव में उपनिवेश स्थापित किया था। इस बात का असमंजस्य प्रथम लहर में प्रदर्शित है। और किसी किसी का कहना है कि असम प्रदेश में ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे द्रुहुय पुत्र गण उपनिविष्ट हुए। इस बात की पुष्टि होने पर वे जो इस वंश का ही द्वितीय उपनिवेश था, यह(प्रथम लहर के पूर्वाभाष में) दिखाने की यथोचित चेष्टा की गयी है। तत्समस्त पुनरावृत्ति करते समय बातों को बढ़ाना प्रयोजन नहीं है। परन्तु द्रुहुय तथा उनके वंशज जाति त्रिपुरेश्वर गणों का आधिपत्य का विस्तार का और भी एक दो अनुसांगिक प्रमाण का इस स्थान पर आलोचना करना आवश्यक दिखाई देता है।

श्रद्धेय अध्यापक श्रीयुक्त सतीश चन्द्र मित्र B.A. महाशय ने "जशोहर खुलना के इतिहास" द्वारा उल्लेख किया है कि 1868 ई का दिसम्बर माह में कलकत्ता में एशियाटिक सोसाईटी का एक अधिवेशन हुआ था। वहाँ पर खुलना के रैनी साहब के मध्यम पुत्र (H. J. Rainey) ने सुन्दर वन तथा प्रतापादित सम्बन्ध में एक प्रबन्ध पाठ किया। तब सभापति द्वारा उस प्रबन्ध के बारे में सभी के मत पूछने पर रेवरेण्ड जे लांग (Rev. J. Long) ने कहा है कि 1848 सन् में वे जब पेरिस शहर में गये थे, तब वहाँ के विख्यात अनुसंधान परिषद के एक विद्वान पंडित ने उनको भारतवर्ष का एक पुर्तगाली मानचित्र प्रदर्शित किया। वे, तब से दो सौ वर्ष पूर्व अर्थात मुगल शासन काल के मध्य भाग में प्रस्तुत किये गये थे। उस मानचित्र में सुन्दरवन को समुर्ब्बर देश तथा उनके पाँच नगरी प्रदर्शित हुए हैं। बेरोस (De Barros) प्रणीत एशिया का इतिवृत्त संलग्न मैप तथा डैन्डेन ब्रोक (BROCK) के मैप से भी यही परिलक्षित होता है। इस सकल मानचित्र से पता चलता है कि सुन्दरवन का समुद्र उपकुल में पैकाकुली (Pacaculi), कुईपिटावा (Cuipitavaz) नलदी (Naldy) डापारा (Dapara) तथा तिपारिया (Tiparia) नाम के पाँच प्रसिद्ध बन्दरगाह थे जो कि अभी वहाँ नहीं हैं(1) लेकिन ब्लौकमैन साहब के उन सभी मैप से कुछ भी प्रदर्शित नहीं होता, फिर भी हम लोग उनका पथ अनुसरण करने से सहमत नहीं है। जिन लोगों द्वारा मानचित्र प्रस्तुत किये जाता हैं वे लोग किसी स्थान के नामों का गलत उच्चारण कर सकते हैं। परन्तु उन लोगों द्वारा काल्पनिक कुछ स्थानों को मानचित्र में दर्शाने की बात विश्वास योग्य नहीं है।

जशोहर खुलना का इतिहास–अष्टम परिच्छेद, 83 पेज

सतीश बाबू अन्यत्र कहते हैं :– तिपारिया त्रिपुरा का विकृत नाम लगता हैं

जशोहर खुलना का इतिहास–अष्टम परिच्छेद, 86 पेज

(1) पुर्तगाली के मानचित्र तथा सुन्दरवन में समुद्रों के उपकुल स्थित पाँच बन्दरगाह के विवरण में लांग साहब ने लिखा है, वह इस प्रकार हैं :–

"I Saw in the bibliotheque royale at paris a portuguese map of Bengal, drawn three centuries ago, Which gave the name of five cites to the east of sagar Island on the borders of the sea. The ruins in the sundarbuns confirm the truth of the descriptions" **J.A.S.B. -Vol . XIX**

द्वितीयलहर –21

सतीश बाबू की इस उक्ति के हम पूरे पूरे समर्थक हैं। त्रिपुरेश्वर गणों के पूर्व पुरूषों का जब सुन्दरवन में आधिपत्य था, तब इस प्रदेश में त्रिपुरा नाम का बन्दरगाह स्थापित होना नितान्त स्वाभाविक है। पक्षातंर से इस नाम द्वारा सुन्दरवन में त्रिपुरा के प्राधान्य स्थापन के अकाट्य प्रमाण मिलते हैं।

1927 सन् 10 अप्रैल तारीख के "Forward" पत्रिका में हुगली के प्राचीन विवरण की आलोचना के उपलक्ष में जो आख्यायिका प्रस्तुत की गई, वह उल्लेख योग्य है

"The high and broad embankment with shady trees on either side from tribeni to mahanad used now for cart traffic known as jamai jangal is another place of considerable interest. It is said to have been constructed by the Raja of Mahanad for the convenience of his son-in-law, The son of Tripura raja of Tribeni.

Another legendary tale is attached to this embankment. It is said that the Raja got annoyed with his son-in-law and one day in a sudden gust of anger went so for as to behead him. However the councillors intervened and it was settled that the son-in-law would be allowed to go to Tribeni on horse back and after a few minut would be followed by the Raja with his swords unsheathed and if he succeeded in overtaking the prince, he would instantly be killed. The young princess would not allow her husband to go alone. She also mounted on the same horse with him. The horse started. It was a bid for life. It proceeded at full gallop for about 3 miles when it fainted and fell on the ground. The distant sound of the hoofs of Raja's horse became more and more distinct. He would overtake them in no time. Not a moment could be lost. It was a question of life and death. They ran fast for their lives, but the princess unaccustomed to run became exhausted. The husband could not desert her at this crisis. In their distress, they implored the almighty father to save them. Their earnest solicitations to heaven did not go in vain. White foams of water were seen at a distance, on and on it approached and lo and behold. It rushed forth in tremendous violence and broke the embankment at their back. The damodar was in floods. It had risen high and flooded the country side. The Raja had to go back disappointed. by the mercy of heaven, the princely couple was saved, The portion of the embankment swept away by the floods is still visible. It lies in village Akna and is Known since then as "Chinna" or broken Akna as referred to in the Government catalogue just mentioned"

Paper on the researches in to the antiquities of Hoogly District by Manindra Deb Rai read before the Hoogly district Historical Association reported in "FORWARD" April 10 1927.

स्थूल मर्म यह है कि त्रिवेणी(2) के त्रिपुर राजपुत्र ने हुगली महानद की राजकन्या का पाणिग्रहण किया। दामाद के यातायात सुविधा हेतु राजा ने एक रास्ते

....र...

(2) इस त्रिवेणी शब्द द्वारा त्रिवेग का सृती एतद ही ह्रदय में उदित होता हैं। (रा. स.)

द्वितीयलहर –22

का निर्माण किया था उसका नाम ''जमाई जांगाल'' पड़ा। यह आज भी विद्यमान है।

एक समय राजा किसी कारण वश दामाद के प्रति क्रोधित होकर उसका वध हेतु कृत संकल्प हुए। परिषद वर्गो के अनुरोध से ये निर्धारित हुआ कि जामाता को भवन से जाने हेतु एक घोड़ा प्रदान किया जाय। जामाता अश्वारोहण के द्वारा ससुराल से निष्कासित होने के पश्चात् राजा दूसरा अश्व लेकर उनका अनुसरण करेगें तथा रास्ते में पकड़े जाने पर उनका वध किया जायेगा।

राज जामाता ने ससुर के अभिप्राय से अवगत होकर अश्वारोहण किया। राजकुमारी पति की सहगामिनी होने के उद्देश्य में उसी अश्व पृष्ठ पर जा बैठी। आत्म जीवन रक्षा हेतु अश्व को पूर्ण वेग से चलाकर कुछ दूर जाने के पश्चात् अश्व की मृत्यु हो गई। तब दूसरा उपाय नहीं सूझने से दोनों ने ही दौड़ना आरम्भ किया। परन्तु राजकन्या अधिक समय तक दौड़ने में अक्षम रही, अल्पकाल में ही वह थक गई। इस आने वाले विकट समय में पत्नी को परित्याग करके जीवन रक्षा हेतु राजकुमार ने वहाँ से पलायन नहीं किया। अल्पकाल के ही पश्चात् अनुसरणकारी राजा के अश्व पदों के आने की आवाज सुनाई पड़ी, तब वह समझ गये कि प्राण विनाश में अब अधिक समय नहीं है। कोई उपाय नहीं देखकर तब नवदम्पति ने व्याकुल प्राण से ईश्वर के पादोपाद में अपने को सौंप दिया।

इस समय अकस्मात दामोदर का वक्ष फट गया, बाढ़ के भीषण वेग के कारण राजा की गति रूक गई, इस घटना के बाद से इस स्थान का नाम ''छिन्न आंकना'' हुआ है।

दामोदर की बाढ़ से अभी भी समय समय पर तीर–वासियों को विपन्न होते देखा जाता हैं। फिर भी इस आख्यायिका का सन्निविष्ट बाढ़ कहानी बहुत लोगों का मानना है कि ये काल्पनिक है। फिर भी इस उपख्यान का समग्र अंश उपेक्षा का विषय सोचना शायद संगत नहीं होगा। सभी प्रवाद वाक्यों तथा किंवदन्ती के मूल में ही कुछ परिमाण सत्य निहित रहता हैं। किंवदंती से ही इतिहास का उपादान संग्रहण होता हैं।(1) प्राचीन काल में विशेष विशेष घटनाओं का,

....र..

(1) किंवदंती इतिहासकारों द्वारा सादर गृहीत होते हैं। उनका कहना है कि चार प्रकार के उपादान द्वारा इतिहास संग्रह किया जा सकता है।(1) किंवदंती(2) विदेशी भ्रमणकारी तथा इतिहासकारों द्वारा दिये गये प्रसंग(3) प्राचीन स्थापितादियों से संगृहीत विवरण(4) ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण प्राचीन साहित्य। उस चतुर्विद उपादान में किंवदंती के बारे में इतिहासकार मिन्सेन्ट स्मिथ का कहना है कि

"The Sources of, or original authorites for the early history of India may be arranged in four classes. The first of these is tradition, chiefly as recorded in native literature"

द्वितीयलहर –23

ऐतिहासिक घटनाओं के स्मृति रक्षा के उद्देश्य के अवलम्बन हेतु आख्यायिका, गीति(गीत), गाथा तथा पांचाली रचना करने की पद्धति थी। उनमें से जो सब अलौकिक तथा काल्पनिक बातें मिली हुई है, उनको निकालकर ऐतिहासिक सत्य को ग्रहण करना होता है। हमारे देश के पौराणिक इतिवृत्त की आलोचना करने से हमेशा दिखाई देगा कि बहुत सारे उपाख्यानों के साथ असली घटनायें मिली हुई हैं। चाँद कवि एवं चारण या भट्ट गणों की रचित गाथा से ही राजपूताना इतिहास का उद्धार संभव हुआ, ये बात सभी जानते हैं। केवल अपने देश का ही नहीं बल्कि दूसरे देश के प्राचीन इतिहास की अवस्था भी तदानुरूप है। रोम के प्राचीन इतिवृत्त में भी अद्भुत आख्यायिका का अभाव नहीं है। यूरोप के इतिहास में भी बहुत सारी अलौकिक कहानी मिलती हैं। परन्तु इन कारणों से वह सब उपेक्षित नहीं हुआ। इनमें से बहुत ऐतिहासिक सत्य निष्कासित हो रहे हैं। अतएव उपाख्यान कुछ परिमाण में कल्पना जनित प्रतीत होने से भी अमूलक बोल कर उपेक्षा करना, कोई कारण नहीं है। विशेषकर इसके साथ इतिहास का स्पष्ट सामंजस्य परिलक्षित हो रहा है। इस आख्यायिका की आलोचना से मिलता है कि :–

1. त्रिपुर राजपूत त्रिवेणी में थे तथा उन्होनें हुगली महानद की राजकन्या से विवाह किया था।
2. राज जामाता के परागमन हेतु राजा ने जिस रास्ते का निर्माण कराया था, वह (जमाई जांगाल) आज भी विद्यमान है।
3. त्रिपुर राजकुमार ने अश्वारोहण के द्वारा ससुराल से पलायन किया था।

उपरोक्त बातों से त्रिपुरा का इतिहास मिलाने से दिखाई देगा कि पिता द्रुहुय द्वारा पैतृक निर्वासित होकर सुन्दरवन में जिस राज्य की स्थापना की थी उसका नाम था ''त्रिवेग''(1) त्रिवेग तथा त्रिवेणी एकार्थ बोधक तथा अभिन्न बोलने से शायद किसी को आपत्ति नहीं होगी। विशेषकर सुन्दरवन संन्निहित हुगली जिले में आज भी

....र...

(1) तथोबाच प्रसन्नास्य कपिलस्तं नृपात्मजम्।
मद्वरेण च भोगेन क्षयमेनो गमिष्यति।।
ययातेः शापतो मुक्तिलप्स्यन्ते तब बंशजाः।
एतद्बचो निशाम्याशौ हृष्टचित्तर्स्ततौऽभवत्।।
स्थापयामास तत्रैव त्रिवेग नगरीं शुभाम्।
प्रभाववानभुत्तत्र राज शब्द तिरोहितः।।
स दोर्द्दण्डप्रतापेन बहुदेशान् बशेनयन्।
पालयामास धर्म्मेण प्रजा आत्म प्रजाइव।।
यद यदधिकृतं राज्यं त्रिवेगपतिना नृप।।
तत्वत् सर्व्वं तदारभ्य त्रिवेग ख्यातिमागतम्।

राजरत्नाकर 6 सर्ग,19–23 श्लोक

<u>द्वितीयलहर –24</u>
त्रिवेनी नाम का गाँव विद्यमान है। यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। पहले यह स्थान एक प्रधान व्यवसाय केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। यह गंगा तट में 22 डिग्री 58 मिनिट 10 सेकेन्ड उत्तर अक्षांश में तथा 88 डिग्री 26 मिनिट 40 सेकेन्ड पूर्व देशान्तर(द्रघिमा) में अवस्थित था। यहाँ पर यमुना तथा सरस्वती गंगा के साथ वियुक्त होने पर इस स्थान का नाम ''त्रिवेणी'' हुआ है। प्रयाग में उक्त नदी के त्रयः संयोजित होने पर उसको ''युक्तवेणी'' कहते हैं तथा इस स्थान में नदी त्रय भिन्न भिन्न पथ अवलम्बन करने से ये ''मुक्तवेणी'' नाम से भी अभिभूत हुए हैं। स्मार्त् रघुनन्दन के ''प्रायश्चित'' में मिलता है।

''प्रद्युम्ननगराद् घाम्य सरस्वत्यास्तथोत्तरे।
तद्दक्षिण प्रयागस्तु गंगाता यमुना गता।।
स्नात्वा तत्राक्षयं पुण्यं प्रयाग ईब लक्ष्यते।।''

अर्थ –'' प्रद्युमन नगर का (पांडुआ) दक्षिण तथा सरस्वती नदी के किनारे उत्तर में <u>दक्षिण प्रयाग</u>। उस स्थान पर गंगा को छोड़कर यमुना चली गई है। यहाँ पर स्नान करने से प्रयाग स्नान जैसा ही अक्षय पुण्य लाभ ही मिलते हैं।''

''दक्षिण प्रयाग उन्मुक्त वेणी सप्त ग्रामाख्या दक्षिण देशे त्रिवेनीती ख्यात।''

अर्थ – उन्मुक्त वेणी दक्षिण प्रयाग, सप्त ग्राम के निकट दक्षिण देश में त्रिवेणी नाम से प्रसिद्ध है।

इसके द्वारा पता चलता है कि यह स्थान ''त्रिवेणी'' नाम से केवल नहीं जाने जाते हैं। परन्तु तीर्थ गौरव से इसको ''दक्षिण प्रयाग'' आख्या प्रदान किया गया है। प्राचीन कवि गणों की रचना से ही इस स्थान का तीर्थ जनित सम्मान परिलक्षित होता है। कवि कंकन मुकुन्द राम का कहना है :–

बाम दिके हालि सहर दक्षिने त्रिवेणी।	''बांए हाली शहर के दक्षिण में त्रिवेणी।
यात्रिदेर कोलाहले किछुई ना सुनि।।	यात्रियों के कोलाहल से नहीं देता सुनाई
लक्ष लक्ष लोक एककाले करे स्नान।	लाख–लाख लोग स्नान करे एक साथ
बाँस, हेम, तिल, धेनु द्विजे देय दान।।	बाँस, हेम, तिल, धेनु दान देते द्विज गणों को
गर्भे बसि शिव पूजा करे कोन जन।	गर्भ में बैठकर शिव पूजा करते कई व्यक्ति।
रजतेर सिपे कह करय तर्पण।।	रजत का कोई करते है तर्पण।।
श्राद्ध करे कोन जन जलेर समीपे।	श्राद्ध करते कई व्यक्ति जल के समीप।
संध्याकाल कोन जन देय धूपे दीपे।।	संध्याकाल में कई व्यक्ति देते हैं धूप दीप।।
कवि कंकण चण्डी।	कवि कंकण चण्डी।

कवि कंकण इस त्रिवेणी को तीर्थ का ''चूड़ामणी'' कहते हैं। वर्तमान काल में ही इस स्थान का तीर्थ जनित सम्मान यथेष्ठ है। वारूणी तथा मकर संक्रांती के उपलक्ष्य में यहाँ पर तीन दिन तक मेले लगते हैं तथा बहुत सारे यात्री का समागम होता है।

द्वितीयलहर –25

सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण काल में इस स्थान पर स्नान दानादि करना विशेष पुण्य का काम है, ऐसा अभी भी लोगों का मानना है।

त्रिवेणी का तीर्थ गौरव अपेक्षाकृत समृद्धि गौरव भी कम नहीं था। यहाँ पर एक प्रधान वाणिज्य केन्द्र था। प्राचीन काल के धनपति सौदागर इत्यादि प्रसिद्ध बनिक गण इस स्थान से ही पण्य सामग्री खरीदकर ले जाते थे। कवि कंकण के काव्य से मिलता हैं कि :–

''त्रिवेणी तीर्थो का चूडामणी।
आश्रम करे वहाँ स्नान करके धनपति
नाव भरके जाना सब धन खरीद के

कवि कंकण चण्डी

त्रिवेणी बन्दरगाह से ग्रीक गण भी परिचित थे। प्लिनी की लेखनी से पता चलता है कि दक्षिण में गोदावरी मुहाना (जहाँ पर नदी समुद्र से मिलते हैं) से पटनागामी यात्री समुद्र जहाज भी त्रिवेणी होकर जाते हैं। टलेमी ने भी त्रिवेणी का नामोल्लेख किया हैं। यहां पर मिट्टी के खनन काल में आज भी नावों के भग्नांश, मस्तूल तथा अट्टलीका के चिन्ह आदि मिलते हैं। वे समस्त त्रिवेणी के अतीत समृद्धि का छोटा सा निदर्शन मात्र है।

विद्या विभाग में भी त्रिवेणी कई प्रदेशों से कम नहीं थी। प्राचीन काल में नदिया राज्य में चार विद्या केन्द्र थे। नवद्वीप, भट्टपल्ली, गुप्तीपाड़ा व त्रिवेणी। कभी त्रिवेणी के तीस संस्कृत केन्द्र प्रतिष्ठित थे। सर विलियम जोन्स का संस्कृत का शिक्षक, देश विख्यात पंडित स्वर्गीय जगन्नाथ तर्क पंचानन महाशय की जन्म भूमि तथा वास स्थान, त्रिवेणी गाँव, वर्तमान काल में भी विशेष प्रसिद्ध है।

इस त्रिवेणी की तुलना में सुवर्णग्राम या आसाम का त्रिवेणी उल्लेख योग्य नहीं है। ''त्रिवेणी'' से ही यदि त्रिवेग राज्य का नामकरण हुआ है तब इस त्रिवेणी के उपर ही ध्यान देना संगत होगा।

उद्धृत आख्यायिका वर्णित त्रिपुर राजकुमार कौन से राजा का पुत्र था तथा कौन से समय में विद्यमान थे जिसका पता ठीक से नहीं चलता पर ''त्रिवेणीर त्रिपुर राजकुमार'' शब्द से यही समझा जाता है कि जब सुन्दरवन एवं त्रिपुरा दोनो राज्यों में त्रिपुरेश्वरगणो का राज्य था उस समय की घटना है।

द्वितीय विषय की आलोचना से पता चलता है कि ''जमाई जांगाल'' का अस्तित्व आज भी विद्यमान है। इसलिये आख्यायिका का विवरण भी सत्य है यही प्रमाणित होता है। विशेषकर हुगली का महानद से त्रिवेणी या त्रिवेग तक दामाद के आवागमन हेतु निर्मित पथ होने पर वह स्थान अदूरवर्ती है कहना ठीक प्रतीत होते हैं। तत्काल में वर्तमान ढाका जिले के अन्तर्गत सुवर्ण गाँव की त्रिवेग का तथा सुदूर पूर्व प्रान्त स्थित नौगांव जिला में कपिला नदी के तट स्थित त्रिवेग में त्रिपुरा का राज पाट

<u>द्वितीयलहर –26</u>

प्रतिष्ठत होने से भी ''जमाई जांगाल'' निर्माण करना असम्भव लगता हैं। एतदद्वारा भी सुन्दरवन का राजधानी त्रिवेग में होना ही संभवतः तथा संगत निर्धारण है, प्रतीत होते हैं।

तृतीय विषय ही त्रिपुर इतिहास के पक्ष में अधिकतर अनुकूल है। त्रिपुरा के राजपुत्र के, हुगली के महानद से, अपनी आवास भूमि त्रिवेणी में लाने को अश्व प्रदान किये गये थे, उससे स्पष्ट ही प्रमाणित होता हैं कि उक्त दोनों स्थानों के बीच अश्वारोहण के अनुकूल सुगम पथ थे। पूर्वोक्त ''जमाई जांगाल'' द्वारा भी यही प्रमाणित हो रहा है। तत्काल में त्रिपुरा की राजधानी यदि सुर्वण ग्राम तथा असम में होते तब निश्चित ही जामाता को सात समुद्र तथा तेरह नदी पार होकर पलायन करने हेतु अश्व प्रदान नहीं किया जाता। इस स्थान पर जलयान का ही बन्दोबस्त करना ही सम्भव होता। एतद्द्वारा ही तत्काल के त्रिपुरा की राजधानी सुन्दरवन में ही होना प्रमाणित हो रहा है।

इस स्थान पर प्रश्न हो सकता है कि ययाति नन्दन द्रुहुय का सगरद्वीप व सुन्दरवन में आधिपत्य विस्तार काल में ही राज्य का नामकरण 'त्रिवेग' हुआ था – 'त्रिपुरा' नाम नहीं था। उद्धृत आख्यायिका में त्रिवेग में 'त्रिपुर राजपुत्र' वाक्य मिलता हैं। तत्समय यदि सुन्दरवन में ही राजधानी रहेगी, तब 'त्रिपुर राजपूत्र' क्यों बतलाया गया? तथा वहां त्रिपुर शब्द प्रयोग की क्या जरूरत थी ?

इन प्रश्नों की आलोचना में प्रवृत होने से दिखाई देगा कि सुन्दरवन स्थित त्रिवेग द्रुहुय वंशज का अधिपत्य रहते रहते ही त्रिपुरा के साथ उन लोगों की संधि हुई थी। त्रिवेग पति प्रतर्द्धन ने किरात देश जय करने के पश्चात् त्रिपुरा का अधिपत्य लाभ किया। उस समय महाराज मित्रारी तक पाँच राजा सुन्दरवन तथा त्रिपुरा उभय प्रदेश में शासन करते थे। उस समय वे लोग कभी सुन्दरवन या कभी ब्रह्मपुत्र तटवर्ती राजपाट में अवस्थान करते थे। किरात जय प्रतर्द्धन के पौत्र कालिन्द द्वारा सुन्दरवन में प्रतिष्ठत 'त्रिपुरा सुन्दरी' विग्रह उसका ही महत्वपूर्ण प्रमाण है। राजमाला प्रथम लहर के पूर्वाभाष में इस विषय पर विशेष आलोचना हुई हैं। द्रुहुय वंश गण त्रिपुरा तथा सुन्दरवन उभय प्रदेश में शासन करते समय ही आख्यायिका में वर्णित घटनाऐं घटित हुई थी। समय के अनुसार अवस्था आलोचना में यही प्रतिपादित होता हैं तथा इस कारण से ही त्रिपुर 'राजपूत्र' के शब्दों का प्रयोग किया गया है।

....

द्वितीयलहर –27

वंश विवरण

प्राचीन वंशावली संग्रह करने में विभिन्न बाधाएं

प्राचीन वंशावली की आलोचना करना एक कठिन कार्य है। पुराण आदि शास्त्र ग्रन्थ में भारतीय राजन्य वर्ग की पूर्ण वंशलता नहीं मिलती हैं। वंश मध्य में जो लोग विमल कीर्तिशाली, धर्मपारायण तथा प्रकृतिपुंज के हितगामी थे, शास्त्र ग्रंथों में केवल उनके नाम की ही कीर्तिगाथा मिलती हैं। साधारण लोगों के लिए शास्त्रोकार गणों की दृष्टि नहीं गई है। जो लोग मातृभूमि परित्याग हेतु स्थान भ्रष्ट हुए थे, उन लोगों के कीर्ति मंडित होने से भी पौराणिक ग्रंथों में सभी का नाम गृहीत नहीं हुआ है और ऐसा भी एक काल था जब आदर्श चरित्र कहानी परंपरा में कंठस्थ रटे जाते थे। तत्काल में प्रसिद्ध व्यक्ति वर्गो का नाम उन्ही की कीर्ति कला द्वारा स्मरण किये जाते थे। संतान गण वंशों की आकृति को अल्पकाल में ही भूल जाते थे। इन सभी कारणों से बहुत सारे स्थानों पर वंशावली का क्रम भंग हुआ हैं। वर्तमान काल में उसके उद्धार साधन का कोई रास्ता नहीं है। सत्य त्रेता इत्यादि युग के जो सब विवरण शास्त्रोकार गण द्वारा परित्याग कर दिये गये हैं, वो सब हमेशा के लिए विस्मृति की आत्म–समाधि में लीन हो गये है।

हमारे उद्धिष्ट चन्द्र वंश के विवरण की आलोचना करते समय देखा जायेगा कि यहाँ भी पुराण ग्रंथ समूह में एक दूसरे के विपरीत रहे हैं। महाभारत में इला के पुत्र पुरूरवा से पर्यायक्रम में चन्द्रवंशी नरपति गणों का विवरण वर्णित हुआ है। परन्तु चन्द्रों के साथ इला या पुरूरवा का क्या सम्बन्ध था, इस विषय में कोई भी तथ्य नहीं मिलते हैं। हरिवंश इत्यादि ग्रन्थ में वर्णित हुआ हैं कि ब्रह्मा का पुत्र अत्री, अत्री का पुत्र चन्द्र, चन्द्र का आत्मज बुध तथा बुध का तनय पुरूरवा इत्यादि नाम समूह क्रमशः वंशावली में मिलते हैं। पुरूरवा से ययाति तक वंश धारा में कई पुराणों में नामों का अंतर होने का दृष्टांत विरल नहीं है। इस तरह के नाम न मिलने का हेतु निर्देश करना दुःसाध्य है। पर लिपिका का प्रमाद होना, एक कारण है, वह कहना, लगता है कि असंगत नही होगा। इस स्थल पर उल्लेख किया जा सकता है कि गान्धार के पुत्र का नाम कई ग्रन्थों में 'धर्म' या कुछ ग्रन्थों में 'धर्म्म' लिखा है। धर्म या धर्म्म के पुत्र को कोई ''धृत'', कोई ''घृत'' कहते है। इससे यह स्पष्ट ही समझा जाता है कि लेखको ने ध वर्ण को घ या घ वर्ण को ध लिखकर यह बदलाव लाया। ऐसा उदाहरण और भी मिलेगा। सिर्फ नाम का ही वैकल्य हुआ है ऐसा नही है कई कई स्थान पर पुरुष संख्या का भी बदलाव दिखाई देता है। उसका दृष्टांत पूर्व में भी एक बार दिया हुआ है। इस स्थान पर एक और का उल्लेख किया जा सकता है। कई कई पुराणों के मतों के अनुसार द्रुहुय का पुत्र बभ्रु तथा बभ्रु का आत्मज ''सेतू'' और कई कई पुराण में द्रुहुय का पुत्र ''शेतू'' लिखित हुआ हैं। बभ्रु का नामोल्लेख नहीं है। इससे संबधित पार्थक्य

द्वितीयलहर –28

भी अधिक है। खासकर द्रुहुय के अधस्तन(नीचे) अष्टम स्थानीय प्रचेता का नाम तक शास्त्र आलोचनाओं में मिलता है। प्रचेता के पुत्रों की संख्या एक सौ थी। उनके नाम या वंश का विवरण किसी ग्रंथ में नहीं है। सूर्यवंशों की अवस्था भी चन्द्रवंश के ही अनुरूप है। इस सब कारणों से इन सब शास्त्र ग्रंथों की सहायता से प्राचीन वंश धारा का विशुद्ध भाव से उद्धार करना दुष्कर है, प्रतीत होता है। प्राचीन वंशावली स्मृति के उपर निर्भर करती थी। पूर्वोक्त रूप वैषम्य परिलक्षित होने का यह एक प्रधान कारण है। जो भी हो इस सम्बंधित सामान्य अनैक्य के हेतु स्मरनातीत काल से रखा हुआ प्राचीन वंश पत्रिका समूह की उपेक्षा करना न्याय संगत नहीं होगा। सुविज्ञ पार्जिटार साहब द्वारा भारतीय प्राचीन वंशावली संबंधित गंभीर गवेष्णा द्वारा यही निर्देशित हुआ हैं।(1)

वंशलता संग्रह का प्राचीन सूत्र पुराणों की सहायता द्वारा, व्यतीत सुदूर अतीत की वंशलता संग्रह करना असंभव होने से भी अपेक्षाकृत परवर्ती कालों का विवरण दुष्प्राप्य नहीं है। हमारे देश की चिराचरीत एक प्राचीन प्रथा इस विषय पर विशेष सहयोगी हुई हैं। पूर्व पुरूष गणों की महिमा कीर्तन तथा उनकी कीर्ति कहानी संरक्षण के पक्ष में भारतीय गण चिर अभ्यस्त थे। कुलाचार्य तथा भट्ट गणों की रचित कुल पत्रिका में कवि तथा चारण गणों का गान तथा गाथा में विख्यात कुल समूहों का विवरण काल परंपरा से रक्षीत होते आ रहे हैं। अर्धशताब्दी पूर्व में भी देखा गया है कि हर रोज सायंकाल में बालक गणों को उनके पूर्व पुरूष गणों की गौरव कहानी सुनाई जाती थी तथा धारावाहिक परम्परागत ढंग से उनके नाम कंठस्थ कराना हर एक अभिभावक के कर्तव्य में शामिल होता था। मौखिक वंश पर्याय रक्षा के पक्ष में यह प्रथा विशेष सहायक थी।

त्रिपुर राज्य वंशावली संबन्धी कथा त्रिपुर राज्य वंशावली की आलोचना करना ही इस स्थान का मुख्य उद्देश्य है। प्राचीन काल से ही इस परिवार की वंश विवरण रक्षा का दायित्व चतुर्दश देवताओं के पुजारी, दण्डी समाज के हाथ में था। बाद में सभासद पंडित गणों के उपर यह भार अर्पित हुआ हैं। दण्डी गण पुरूषानुक्रम से विशेष सतर्कता के साथ राजन्य वर्गो के विवरण की रक्षा करते थे। इस कारण से ही चन्ताई के मुख्य निःसृत विवरण को लेकर राजमाला रचित हुई है। पूर्व से ही तदानुरूप बन्दोबस्त होने से राज परिवार की वंश पत्रिका निर्भर योग्य सोची जा सकती हैं। परन्तु पौराणिक अंश अतीत का अंश कह कर उनके सत्यासत्य की कोई बात नहीं की जा सकती।

प्राचीन काल की वंश कहानी उन कालों के लोग दीर्घजीवी थे। बहुतों के सहस्र सहस्र साल जीवित रहने की बात शास्त्र ग्रन्थ आलोचनाओं में मिलती है। उस रुप सुदीर्घ जीवन लाभ की युक्तित्तता कथा दर्शाने के पक्ष में प्रथम लहर में यथा साध्य चेष्टा की गयी है। उस समय सन्तान उत्पादन वर्तमान कालों की तरह कम उम्र में नहीं होते थे। पुरुष के बाल विवाह का प्रचलन नहीं रहना इसका कारण हैं, निर्देश किया जा सकता है। कन्या बाल विवाह हर समय प्रचलित नहीं था। इससे सम्बन्धित –

(1) **Journal of the royal asiatic society – January 1910.**

<u>द्वितीयलहर –29</u>

नाना कारणों से पुराण काल के सुदीर्घ समय की तुलना में बहुवंश की पुरुष संख्या कम परिलक्षित होती है। महाराज त्रिलोचन का, पूर्ववर्ती त्रिपुर राज्यवंश की अवस्था में तद्रुप और पूर्वोक्त कारणों से बहुवंश की पुरुष संख्या घटने की संभावना ही अधिक है और फिर उसी कारणवश अनेक वंशों का पुरूष संख्या बढ़ जाने का संभावना भी ज्यादा है, माननीय ''एफ एफ पार्जिटार, एम.ए. महोदय द्वारा **Ancient Indian Genealogies and Chronology"** शीर्षक प्रबन्ध में इस बारे में जो कहा गया है वह विशेष मूल्यवान एवं इस क्षेत्र(1) में विशेष निर्भर योग्य व प्रयोज्य है। शीर्षक प्रबन्ध में यहां पर त्रिपुर राजवंशों का पौराणिक कालों के वंश पत्रिका शुद्धाशुद्ध निर्धारण के पक्ष में दृढ़ता के साथ मत प्रदान करना असम्भव है, ऐसा मानता हूँ।

त्रिपुर वंशावली के संबन्ध में भिन्न भिन्न व्यक्तिवर्ग का मत पौराणिक युगों का परवर्ती प्राचीन काल से ही उन लोगों की वंश पत्रिका क्रमानुसार यत्नपूर्वक रक्षित होने का प्रमाण मिलने के पश्चात् भी काल प्रभाव से वे आलोचना का विषयभूत हो रहा है। त्रिपुर वंशावली के संबन्ध में कैलाश बाबू का कहना है कि –बौद्ध विद्वेषी ब्राह्मण गणों की कृपा से इस वंश ने क्षत्रियता प्राप्त की थी। यहाँ पर 'कर्नल डेल्टन' साहब की रचित बंग देश का ''डिसक्रिएटिव एमोनलॉजी'' ग्रन्थ में निर्मित वाक्यों की प्रतिध्वनि है एतद्द्वारा पौराणिक युगों से उस वंश की धारा विछिन्न हो रही है। उन मतों का अयोक्तिकता के विषय प्रथम लहर में विशेष रुप से आलोचित हुए है। इस स्थान पर पुनः उल्लेख जरुरी नहीं है।(2)

विश्व कोष सम्पादक महाशय के मत भी तत्काल आंशिक रुप से आलोचित हुए है। परन्तु उनके मतों का अन्त नहीं है। इस स्थान पर उनके कुछ अंश को प्रदान किया जा रहा है।

'राजमाला में त्रिपुराधिपति त्रिलोचन युधिष्ठिर के सम–सामायिक थे, कह कर उल्लेखित हुआ है। परन्तु महाभारत में उनका नामोल्लेख नहीं है। फिर भी राजसूय यज्ञ काल में भीम द्वारा पूर्वदेश विजयकाल में सात किरात नृपतियों की पराजय का विवरण है और घोष यात्रा के पश्चात् कर्ण द्वारा पूर्वोदित विजयकाल में त्रिपुरा राज्य का विजय विवरण लिखित है। भारत युद्ध में शायद किसी पक्ष में त्रिपुरा अधिपति उपस्थित नहीं थे और राजसूय यज्ञ काल में उपस्थित राजन्य वर्गो में भी उनके नाम नहीं मिलते है। परन्तु त्रिलोचन व युधिष्ठिर के समय निरुपण करके देखने से दोनो के किसी भी हालात में सम सामायिक होने का कोई भी सूत्र नहीं मिलता है। राजमाला ग्रन्थ में यहाँ पर त्रिलोचन की वंशावली दी हुई है, उनमें दिखाई देता है कि त्रिपुरा का वर्तमान राजा वीर चन्द्रमाणिक्य का ज्येष्ठ भ्रातुषपुत्र ब्रजेन्द्र चन्द्र तक त्रिलोचन से वंश परम्परा में 109 पुरुष हुए थे। वर्तमान उत्खनन विशेषज्ञों के मतानुसार तीन पुरुष से एक शताब्दी होने पर 109 पुरुष में 3600 साल होते है तथा प्रति तीन पुरुष में शताब्दी गणना में अर्थात प्रति शताब्दी में तीन पुरुष होने पर प्रति पुरुष में 33 साल होकर प्रति शताब्दी में जो एक साल अविशिष्ट रहता है, 3600 साल में उस हिसाब से और भी 36 साल मिलते है। उस 36 वर्ष तथा 109 पुरुषों में जो 3600 वर्ष हुए है। वे यहाँ पर 3636 वर्ष हो रहा है।

---

(1) **Journal of the Royal Asiatic Society of great Britain and Ireland, - Janaury 1910.**

(2) राजमाला <u>प्रथम लहर 41 पेज दृष्टव्य।</u>

<u>द्वितीयलहर –30</u>

अतएव (सुतरां) राजमाला की वंशावली के अनुसार, त्रिलोचन ब्रजेन्द्र चन्द्र से 3636 वर्ष पूर्व जीवित थे। वर्तमान त्रिपुरा राज्य के पूर्ववर्ती महाराज ईसान चन्द्रमाणिक्य की 1277 बंगाब्द में 34 वर्ष की उम्र में मृत्यु हुई थी। उस वक्त उनके पुत्र ब्रजेन्द्र चन्द्र अत्यन्त शिशु थे। अगर युधिष्ठिर कलयुग के शुरु में वर्तमान थे, कह कर मान लिया जाय तो उसका मतलब है कि युधिष्ठिर ब्रजेन्द्र चन्द्र से 4969 वर्ष पूर्व में विद्यमान थे, कहना होगा। क्योंकि ईसान चन्द्र की मृत्यु के समय, कलयुग 4969 वर्ष बीत गया है। उस हिसाब से युधिष्ठिर और त्रिलोचन का अन्तर 1333 वर्ष का होगा।

विश्वकोष अष्टम भाग 199 –200 पृष्ठ

सूक्ष्म से सूक्ष्म गणित के हिसाब के अनुसार युधिष्ठिर तथा त्रिलोचन के बीच 1333 वर्ष का अन्तर निर्णय करने के तुरन्त बाद ही बताया गया –

''महाभारत के वन पर्व में जब त्रिपुरा का नाम मिलता है, तब अनुमान किया जा सकता है कि त्रिलोचन के पिता त्रिपुर युधिष्ठिर के पूर्ववर्ती न होने पर भी उनके समसामायिक है। सभा पर्व में भीम की दिग्विजय में जब त्रिपुरा का नाम नहीं है, किरात नाम ही है, तब समझा जाए कि राजसूय यज्ञकाल में त्रिपुर वर्तमान रहने से भी उस समय राज्य का नाम में परिवर्तन नहीं था, यह भी हो सकता है। कारण राजसूय यज्ञ के पश्चात् दुर्योधन ने द्यूत क्रिया द्वारा पांडव गणों को बारह वर्ष वनवास में भेज दिया था। उस वनवास काल के अन्तिम समय में घोष यात्रा की घटनाएँ हुई। ततपश्चात् कर्ण द्वारा त्रिपुरा पर विजय प्राप्त की गई। परन्तु भीम द्वारा किरात राज्य जय के बारह वर्ष बाद कर्ण द्वारा त्रिपुरा नाम से किरात राज्यों पर विजय पाना कुछ असम्भव नहीं है। उस घटना से आसानी से निर्णय लिया जा सकता है कि त्रिपुर युधिष्ठिर के समसामायिक थे ''द्रुहुय से लेकर बाईस नृपति के बाद त्रिपुर सिंहासन पर आरोहण हुए।'' उस प्रवाद पर विश्वास करने से देखा जायेगा कि ययाति का तृतीय पुत्र द्रुहुय के अधस्तन (नीचे) 3300 पुरुष/योनि में त्रिपुर तथा ययाति का कनिष्ठ पुत्र पुरु के 3800 पुरुष/योनि में युधिष्ठिर विद्यमान थे। (महाभारत के आदि पर्व में सम्भवतः पर्वान्तर गत 95 अध्याय में वैशम्पायन ऋषि द्वारा शेष विस्तृत वंश सूची देखे) पौराणिक विवरण से 4–5 पुरुषों का अन्तर (150–175 वर्ष का पार्थक्य) होने पर भी ये ग्रहण योग्य नहीं है। अतएव राजमाला के मत से त्रिलोचन को युधिष्ठिर के समसामायिक स्वीकार कर लेने की अपेक्षा <u>महाभारत के मतानुसार</u> <u>त्रिपुर को युधिष्ठिर का समसामायिक स्वीकार करना ही संगत होगा।</u>

विश्वकोष अष्टम भाग 200 पेज

इसके पश्चात् फिर बताया गया है कि :–

''इस स्थान पर बोलना उचित होगा कि वे सब घटना ऐतिहासिक है अतः ग्रहीत नहीं है। उन्हें पौराणिक आख्यायिका–स्वरुप माना जा सकता है।''

विश्वकोष के विवृत की आलोचना अभी प्रश्न है कि उनका कौन सा मत ग्रहण योग्य है? नगेन्द्र बाबू द्वारा उनके शेष उद्धित उक्ति द्वारा उन्हे पौराणिक आख्यायिका के रुप में मान लिया है। अतः ऐतिहासिक मर्यादा प्रदान करने में असम्मत है। परन्तु उनके हिसाब से त्रिलोचन तथा युधिष्ठिर के बीच 1333 वर्ष का पार्थक्य/अन्तर हो रहा है। प्रकारान्तर उसी को संगत निर्देश मानते है। उन्होनें हिसाब करते समय महाराज वीर चन्द्रमाणिक्य की तरह प्रख्यात नामा में राजन्य वर्गो का नामोल्लेख करते हुए भी उन्हें छोड़कर उनके भ्रातुष पुत्र ब्रजेन्द्र चन्द्र को ग्रहण करने का कारण समझ में नहीं आता है। जो भी हो अनजाने में ही वे शुरुआत में ही वह बड़ी गलती कर बैठे यह समझ नही पाए? उनके

द्वितीयलहर –31

हिसाब से त्रिलोचन से ब्रजेन्द्र चन्द्र तक 109 पुरुषों का अन्तर किया गया था। सभी संयोजित राजवंशावली आलोचना में ज्ञात होगा कि कुवँर ब्रजेन्द्र चन्द्र महाराज त्रिलोचन के अधस्तन 135 स्थानीय हैं। परन्तु यहाँ पर पुरुष संख्या का हिसाब करते समय गणित में भूल हुई और महाराज ईसान चन्द्रमाणिक्य के स्वर्ग प्राप्ति के बाद जिस समय (1277 बंगाब्द) को लिया गया तथा युधिष्ठिर तथा कुवँर ब्रजेन्द्र चन्द्र में 4969 वर्ष का अन्तर निर्णय किया गया, वह भी भ्रम संकुल है। महाराज ईसान चन्द्र को स्वर्ग प्राप्ति 1272 त्रिपुराब्द की (1269 बंगाब्द) श्रावण माह की 17 तारीख बेला 10 बजे को हुई है। नगेन्द्र बाबू के उस सकल प्रमादपूर्ण हिसाब के कारण से ठीक सिद्धान्त पर पँहुचना सम्भव नहीं है।

भारत सम्राट युधिष्ठिर तथा त्रिपुरेश्वर त्रिलोचन समसामायिक थे, उस विषय पर प्रमाण संग्रह करने के लिए ज्यादा सोचने की जरुरत नहीं है। वे दोनों लोग ही कलियुग के प्रारम्भकालीन राजा थे, पूर्व ही प्रमाणित हुआ हैं(1) अभी (1337 त्रिपुराब्द या 1334 बंगाब्द के अन्तिम काल में) कलयुग का 5028 वर्ष अतीत होने जा रहा है। अतएव महाराज त्रिलोचन को युधिष्ठिर के समसामायिक निर्णय करने पर, वर्तमान समय उनका प्राचीनत्व 5028 वर्ष होना आवश्यक है। त्रिपुर वंशावली का पुरुष संख्या के साथ उस प्राचीनत्व का तुलना करने पर स्पष्ट ही दिखाई देगा कि युधिष्ठिर तथा त्रिलोचन का समसामायिक होने की बात असम्भव या काल्पनिक नहीं है। त्रिपुर सिंहासन का वर्तमान अधिष्ठाता पंच श्रीमन् महाराज वीर विक्रम किशोर देववर्मा माणिक्य बहादुर महाराज त्रिलोचन का अधस्तन 138 स्थानीय हैं।(2) साधारणत वंशानुक्रम से तीन पुरुष में एक शताब्दी मानकर उस अनुपात से प्रतिपुरुष में लगभग 33 वर्ष लिया गया है। त्रिलोचन का प्राचीनत्व 5028 वर्ष के साथ राजवंशों के 138 पुरुषों का लगभग हिसाब निकालने से दिखाई देगा कि प्रति पुरुष (5028÷138=36.4) 36 वर्ष का भी कुछ अधिक समय निर्धारित होता है। किसी किसी स्थान पर उस वंश का पुरुष पंरपरा क्रम भंग करके राजा के भ्राता तथा निकट सम्पर्क के दूसरे व्यक्ति ने भी राजत्व किया है। प्रतिपुरुषानुक्रम उम्र 33 वर्ष के स्थान पर 36 वर्ष के होने का यही एक प्रधान कारण बताना प्रतीयमान होता है। उस स्थान पर ''त्रिलोचन तथा युधिष्ठिर का समय निरुपण करके देखने पर उभय को समसामायिक बोलकर प्रतीयमान नहीं होते'', यह बात ग्रहण योग्य है क्या?

महाभारत के अन्दर एक मात्र घोष यात्रा का वर्णन करने से त्रिपुर का नाम मिलता है। प्राच्यविद्यार्णव महाशय ने निम्न रुप मत प्रकाश किया है। राजसूय यज्ञ काल में किरात

....र...

(1) राजमाला के प्रथम लहर में उस विषय पर विस्तृत आलोचित हुए हैं। (161 से 170 पृष्ठ देखें)

(2) पश्चात्य भाग में सन्निविष्ट वंश पत्रिका आलोचना से जाना जायेगा कि श्री श्री चन्द्रमा देव से महाराज त्रिलोचन 47 तथा वर्तमान महाराज 184 स्थानीय है। अतएव इस सब से 138 पुरुष अन्तर प्रमाणित होता है।

द्वितीयलहर –32

नरपति गणों के साथ त्रिपुरेश्वर थे तथा भारत युद्ध में त्रिपुरापति ने कोई भी पक्ष अवलम्बन नहीं किया, ये भी उनका अनुमान मात्र है। महाभारत का गहराई से अवलोकन करते वक्त पूर्व की तीनों घटनाओं में त्रिपुरेश्वर की उपस्थिति के प्रमाण उपलब्ध होगें। इस विजय पर प्रथम लहर में आलोचना किये जाने के बावजूद भी इस स्थान पर महाभारत के कुछ श्लोकों को पुनः प्रदान किया जा रहा है। घोष यात्रा के उपलक्ष्य में कर्ण द्वारा त्रिपुरा विजय सम्बन्धी बात महाभारत में मिलती है :–

बत्सभूमिं विनिर्जित्य केरलां मृत्तिकाबतिम्।
मोहनं पत्तनं चैव त्रिपुरीं कोशलां तथा।।

(महाभारत–कर्ण पर्व, 253 अ, 10 श्लोक)

भारत युद्ध में त्रिपुरेश्वर ने तत्कालीन भारत सम्राट दुर्योधन का पक्ष अवलम्बन किया था। भीष्म के द्वारा रचित व्यूह के अन्दर अनुसंधान करने से मिलता है :–

''द्रोनादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्।
मगधैश्च कलिंगैश्च विशाम्पते।।
प्रागज्योतिषादनुनृपः कोशल्योऽथ वृहद्वलः।
मेकलैः कुरूविन्दैश्च त्रिपुरैश्च समन्वितः।।

भीष्म पर्व, 87 अ, 8–9 श्लोक।

राजसूय यज्ञ में त्रिपुरेश्वर का उपस्थिति विवरण त्रिपुरा में प्रख्यात प्रवाद वाक्यों द्वारा चले आ रहे है। उस समय सम्राट युधिष्ठिर ने त्रिपुरेश्वर को सिंहासन प्रदान किया था तथा सम्राट के आदेशानुसार उन्होनें सकल त्रिपुरेश्वर गण द्वारा सम्पादित सनन्द इत्यादियों में ''राजधानी हस्तिनापुर'' लिपि की थी। उस सभी प्रवाद वाक्यों को अमूलक कह कर नकारा नहीं जा सकता केवल प्रवाद वाक्य में ही नहीं बल्कि त्रिपुरा के इतिहास में भी यही मिलता है। संस्कृत राजमाला में भी महाराज त्रिपुर के विवरण में लिपिबद्ध हुआ है :–

''युधिष्ठिरस्य यज्ञार्थे सहदेवेन निर्जितः।
राजसूये स गतवान युधिष्ठिर समादृतः।।''

त्रिलोचन का हस्तिनागमन की बात भी राजमाला में वर्णित हुई है। महाभारत में वर्णित राजसूय यज्ञ के वर्णन में 'त्रिपुरा' नाम नहीं होगा। क्योंकि तत्काल राज्य का नाम था 'किरात' या 'त्रिवेग' उसके कुछ समय पश्चात् त्रिपुरा नामकरण हुआ था। घोष यात्रा के पूर्व में ही जिस राज्य का नाम परिवर्तित हुआ था, वह महाभारत, राजमाला तथा राजरत्नाकर की आलोचना द्वारा स्पष्ट होता है। ब्रह्मपुत्र नदी की तटवर्ती कपिली नदी के सन्नहित स्थान तत्काल राजपाट था पर महाभारत का राजसूय यज्ञ वर्णन उपलक्ष्य में लिपिबद्ध हुआ है :–

''ये परार्द्धे हिमवतः सूर्योदय गिरौनृपाः।
कारूषे च समुद्रान्ते लौहित्यमभितश्च ये।।

द्वितीयलहर –33

फलमूलासना ये च किराताश्चर्म्म वाससः।
क्रूर शस्त्राः क्रूरकृतस्तांश्च पश्याम्यहं प्रभो।। इत्यादि
सभापर्व 52 अ 8–9 श्लोक।

इस स्थान पर ब्रह्मपुत्र नदी के उभय तटवर्ती समस्त राजन्य वर्गो का उल्लेख मिलता है। अतएव उक्त नदी का तटवर्ती त्रिवेगपति भी (त्रिपुरेश्वर) इनके अन्तर्निविष्ठ हुए है। ये बात अति सहज बोध्य, विशेषकर त्रिपुराधिपति के अधिनस्थ किरातगणों की उपस्थिति द्वारा भी उनकी विद्यमानता प्रमाणित हो रही है। जिस स्थान पर त्रिपुरेश्वर की उपस्थिति नहीं है। उस स्थान पर उनके अधिनस्थ किरातगणों की उपस्थिति सम्भव नहीं है।

त्रिपुरावंशावली के प्रति आरोपित दोष व खण्डन   कोई कोई त्रिपुरावंशावली समूह को दूषित कह कर भी इंगित करते है। स्व. कैलाश चन्द्र सिंह महाशय का कहना है :– "महाराज रामगंगामाणिक्य कृत (1804 ई.) वंशावली में द्रुहुय के पुत्र त्रिपुर लिखित हुए है। चक्रध्वज ठाकुर उर्फ वीर चन्द्र युवराज 1863 ई0 नौ नम्बर तथा राजकुमार नवद्वीप चन्द्र देवबर्म्मन उर्फ महाराज वीर चन्द्रमाणिक्य बहादुर 1874 ई0 35 नम्बर दीवानी मुकदमा में विवादी महाराज बहादुर ने स्ववंश की जो सुदीर्ध वंशावली उपस्थित की है, उसमें भी "त्रिपुर पिछौरे द्रुहुय" लिखित हुआ है। परन्तु जल तरंग के कृपा से राजवंश की जो अभिनव वंशावली प्रकाशित हुई है, उनमें द्रुहुय तथा त्रिपुर के बीच कुछ एक काल्पनिक नाम सन्निवेशित हुए है। पहले से ही हमारा प्राचीन इतिहास कल्पना जाल से विस्तरित है उपर से फिर इस तरह का घृणित कार्य नितान्त विस्मयजनक है।"

कैलाश बाबू की राजमाला दूसरा भाग, द्वितीय अंक, 15 पृष्ठ।

मुकदमा में जो सब वंश पत्रिका उपस्थित किये गये थे। उनका मुख्य उद्देश्य अपना अपना स्वत्व स्थापन करना था। त्रिपुर से लेकर वंशधारा दर्शाने से ही इस उद्देश्य का साधन हो सकता है। पूर्ववर्ती गणों की नामावली प्रदान करने की जरुरत नहीं है, बोल के उस शकल वंश लता में वे संयोजित नहीं हुए है। फिर भी त्रिपुर राजपरिवार जो द्रुहुय वंशीय है उसको दर्शाने के निमित्त ही त्रिपुर नाम के पूर्व द्रुहुय का नाम सन्निवेशित हुआ है। एतद् द्वारा "द्रुहुय का पुत्र त्रिपुर" बतलाया गया है। यह रुप धारण करने का कोई कारण नहीं है। इसे दृष्टांत द्वारा समझाना आवश्यक है। कैलाश बाबू के राजमाला में जिस पृष्ठ पर पूर्वधृत वाक्यावली मुद्रित हुई है, उस पृष्ठ को पाद टीका में दिया है। संक्षिप्त राजमाला से ही उद्धृत है :–

"ययाति राजार पुत्र द्रुहुय नाम भार।	"ययाति राजा का पुत्र द्रुहुय नाम जिनका।
तान वंशे दैत्य राजा चन्द्रवंश सार।।	उनके वंश में दैत्य राजा चन्द्रवंश का,
ताहार तनय राजा त्रिपुर नाम धर्मे।	उनके तनय राजा त्रिपुर नाम उनका।।"

राजमाला की इस तरह की उक्ति और भी मिलती हैं। उनमें एक इस प्रकार है :–

द्रुहयु बंशे दैत्य राजा किरात नगर।	द्रुहयु वंश में दैत्य राजा किरात नगर।
अनेक सहस्र वर्ष होइलो अमर।।	अनेक सहस्र वर्ष हुआ अमर।।

<u>द्वितीयलहर –34</u>

बहु काल परे तान पुत्र उपजिलो।	बहु काल बीता पुत्र उपजा उनके घर।
त्रिवेगेते जन्म नाम त्रिपुर राखिलो।।	त्रिवेग में जन्म हुआ नाम रखा त्रिपुर।।
राजमाला प्रथम लहर, दैत्य खण्ड 6पृ	राजमाला प्रथम लहर, दैत्य खण्ड 6पृ

इस वाक्य द्वारा स्पष्ट हो रहा है कि द्रुहुय के वंश में दैत्यराज का जन्म हुआ था। त्रिपुर उनका पुत्र है, अतएव त्रिपुर जो द्रुहुय का पुत्र नहीं है तथा द्रुहुय एवं त्रिपुर के मध्य और भी वंशधर थे। यह समझने में कष्ट क्या है? कैलाश बाबू इन सब वाक्यों को जानते हुए भी तथा खुद उद्धृत करके भी क्यों इन बातों की उपेक्षा करते हैं, यह समझना दुष्कर है। हम लोग देख रहे हैं कि पूर्वोक्त रुप में संक्षिप्त भाव से वंश वर्णन करना त्रिपुरा की प्राचीन प्रथा है। पाँच सौ वर्ष पूर्व रचित संस्कृत राजमाला में मिलता है :–

''द्रुहुयराज सूतजातस्त्रिपुराख्यो महाबलः।
तमोगुण समायुक्त सर्व दैवाती गर्व्वितः।।''

उस स्थान पर त्रिपुर को द्रुहुय का 'सूत' बतलाया गया है। उस सूत शब्द के द्वारा पुत्र नहीं बल्कि वंशधर समझाया गया है। मुकदमा में उपस्थित किये गये पूर्वोक्त वंश पत्रिका इन्ही का ही अनुसृति में प्रस्तुत है, प्रतीत होता है। राजरत्नाकर में वर्णित वंशानुक्रम तथा हमारा पूर्व कथित समय के साथ पुरुष संख्या की आलोचना करने पर वंशपत्रों के प्रति किसी भी रुप से ''प्रक्षिप्त'' दोष में कमी को नहीं बतलाया जा सकता।

और भी एक विषय इस स्थान पर उल्लेख योग्य है। महाराज वीर चन्द्रमाणिक्य के शासन काल में उनके विरुद्ध सामयिक उत्तेजना के कारण एक समाजिक दल का गठन हुआ था। उस दल का प्रकाशित ''सामायिक समालोचना'' नामक पुस्तिका में एक स्थान पर लिखित हुआ है :–

महाराज कल्याणमाणिक्य के पूर्व राजा मुचुगं, माचूंग, खाहाम, दानकुरु फा, कालातर फा इत्यादि त्रिपुरा राजगणों के नाम सुनने पर पर्वतीय प्रतीत होता है।

जिन लोगों को समय की अवस्था के बारे में ज्ञात नहीं है तथा उत्तेजना वश राजपरिवार को ग्लानि लिप्त करना ही जिनका उद्‌देश्य है, उनके लिए यह रुप प्रतीत होना अस्वाभाविक नहीं है। राजमाला प्रथम लहर के पूर्वभाषा में दिखाया गया है कि त्रिपुरा में वर्तमान राज वंश के अधिपत्य विस्तार के पूर्व उस स्थान में हालाम जातियों का प्राधान्य था। उस कारण से त्रिपुर दरबार में हालाम भाषा के बहुत से शब्दों को प्रवेश लाभ मिला है। विशेषकर स्थानीय रीति नीति सभी जगह समाज तथा वंश विशेष के प्रति प्रभाव विस्तार करते है। उसका प्रभाव आदिवासी गणों के नाम तथा उपाधियों के उपर भी पड़ता है। त्रिपुर वंशावली की आलोचनाओं में दिख जायेगा कि उनके प्रथम या शेष भाग में (राजवंश के सुन्दरवन में बंग देश के संसर्ग में रहते समय में ही तथा किरात देश में आगमन के बाद बंग देश के साथ पुनः घनिष्ठता होने के समय से ही) सभी के ही आर्य समाज सम्मत नाम मिलते है। मध्य भाग में (बंग देश के साथ सम्बन्ध क्षीण रहते वक्त) आर्य नाम के साथ एक एक पर्वतीय भाषा जात उपनाम संयोजित

हुआ था। यथा हरिहर (मूचं फा), चन्द्र शेखर (माइचोंग फा) इत्यादि। ये स्थानीय प्रभावजनित फल है।(1) इनमें क्या दोष है? परन्तु इस के द्वारा वंश पत्रिका की अकृत्रिमता ही प्रमाणित हो रही है। वंशावली की मौलिकता में हस्तक्षेप करने पर उनमें उल्लेखित पार्वत्य नामों का नामोनिशान मिलना सम्भव नही होता।

त्रिपुर राजवंश का अतीत जैसा गौरवान्वित वैसा उज्ज्वल रहा था। भारतवर्ष के राजकुलों का अधिकांश धारावाहिक इतिहास संग्रह करना वर्तमान काल में असम्भव हुआ है। परन्तु त्रिपुर इतिहास धारा किसी काल में भी विछिन्न तथा आज भी विनष्ट नहीं हुई है। विशेषतः महाभारत के समय से एक ही वंश के हाथ में अक्षुण्ण रुप से राज्य के अधिपत्य रहने के कारण एक मात्र त्रिपुरा का नाम उल्लेख किया जा सकता है। इस प्राचीन राजवंश की अपेक्षा दूसरों का अस्तित्व नहीं मिलता है। स्वयं महिर्षि कपिल ने जिस वंश को शिष्य रुप ग्रहण करके धन्य किया था, सगरद्वीप स्थित दण्डि समाज ने जिस वंश का पौरोहित्य का भार ग्रहण किया, प्राचीन काल से उन सब महापुरुष द्वारा तथा, तत् परवर्ती पर्वतीय काल में ब्राह्मण गण द्वारा जिस वंश का विवरण धारावाहिक भाव से सुरक्षित होते आ रहे है, उस वंश की वंश पत्रिका के प्रति कटाक्ष करना अतीत के प्रति श्रृद्धधावान व्यक्तियों का कार्य नहीं बताया जा सकता। अतीत के प्रति सम्मान प्रदर्शन को विस्तृत कर के हम लोग भविष्य को प्रतिदिन उच्छृंखल तथा तुच्छ करते आ रहे है। अर्थात अतीत के प्रति श्रद्वावान न होने पर भविष्य का गठन कार्य किसी भी रूप से सुनियन्त्रित नहीं हो सकता।

इस विषय को लेकर तर्क वितर्क यहीं समाप्त करते है। त्रिपुर भूपतिगणों के नामों की धारावाहिक सूची प्रथम लहर में प्रदान की गयी है। इस बार अनेक शाखा प्रशाखाओ के विवरणों की एक पूर्ण वंश पत्रिका दी जा रही है। राजमाला सन्निवेशित नामावली प्राचीन काल से रक्षित वंश पत्रिका स्वर्गीय महाराज वीर चन्द्रमाणिक्य बहादुर का प्रचारित श्री मद्भागवत्, स्वर्गीय कैलाश चन्द्र सिंह महाशय संग्रहीत राजमाला, श्रीयुक्त अच्युतचरण चौधुरी महाशय रचित श्रीहट्ट का इतिहास तथा विश्वकोष इत्यादि ग्रन्थ में सन्निवेशित वंशावली राज्य सरकार संसृष्ट मुकदमा समूह सें लिया गया वंशलता की विशेष सतर्कता के साथ आलोचना की गयी है तथा स्वयं अनुसंधान द्वारा विवरण संग्रहपूर्वक वंश–पत्रिका पूर्ण एवं विशुद्ध रुप से प्रस्तुत पक्ष की त्रुटि नहीं हुई है। इस कार्य में बहुत कष्ट स्वीकार तथा समय व्यतीत हुआ है। परन्तु बहुत चेष्टाओं के बावजूद भी महाराज कल्याणमाणिक्य के पूर्ववत् राजन्य वर्गो प्रशाखाओं का विवरण संगृहित नहीं हो पाया है। वर्तमान काल में उनका उद्धार साधन नितान्त ही असम्भव प्रतीत हो रहा है। संगृहित अंश भी पूर्ण तथा निर्मूल हुए है, इस प्रकार की टिप्पणियां दृढ़ता के साथ नहीं कहा जा सकता।

(1) राजमाला प्रथम लहर, 31 पृष्ठों पर वर्णित विवरण देखें।

द्वितीयलहर –36

त्रिपुर वंशावली

(नामों के बाँये स्थित संख्या राजगणों का क्रमिक संख्यांक)

01 चन्द्र
↓
02 बुध
↓
03 पुरुरवा (1)
↓
04 आयू
↓
05 नहुष
↓
06 ययाति
↓
07 द्रुहुय (2)
↓
08 बभ्रु
↓
09 सेतू
↓
10 आनर्त (आरद्ध या आरद्वान)
↓
11 गान्धार
↓
12 धर्म (घर्म्म)
↓
13 धृत (घृत)
↓
14 दूर्मद
↓
15 प्रचेता
↓
16 पराची (शतधर्म)
↓
17 परावसु

17
↓
18. पारिषद
↓
19. अरिजित्
↓
20. सुजित(असूजित)
↓
21. पुरुरवा (द्वितीय)
↓
22. विवर्ण
↓
23. पुरुसेन
↓
24. मेधवर्ण
↓
25. विकर्ण
↓
26. वसुमान
↓
27. कीर्ति
↓
28. कनियान
↓
29. प्रतिश्रवा
↓
30. प्रतिष्ठ
↓
31. शक्रुजित्(शत्रुजित्)
↓
32. प्रतर्दन (3)
↓
33. प्रमथ

(1) वे पिता द्वारा प्रयाग के उस पार प्रतिष्ठान नगर में प्रतिष्ठ हुए। यह स्थान वर्तमान काल में ''झूसी'' नाम परिचित है।

(2) वे पिता द्वारा अभिशप्त तथा निर्वासित होकर पैतृक राजधानी प्रतिष्ठान नगर परित्याग कर गंगा के सागर संगम के स्थान पर सगरद्वीप स्थित कपिलाआश्रम में आश्रय ग्रहण करके तथा स्वयं के बल प्रदर्शन से राज्य विस्तार किया था।

(3) वे सगरद्वीप राजपाट से कछार जाकर ब्रह्मपुत्र तट संलग्न स्थान पर नया राज्य प्रतिष्ठा के लिए प्रयासरत हुए थे। इस प्रयास से ही किरात गणों पर विजय प्राप्त कर वर्तमान त्रिपुर राज्य स्थापित हुआ है।

<u>द्वितीयलहर –37</u>

33

↓

34. कलिन्द

35. क्रम (क्रथ)

36. मित्रारी

37. बारिवर्ह

38. कार्मुक

39. कलिंग (कालांग)

40. भीषण

41. भानुमित्र

42. चित्रसेन (अघः चित्रसेन)

43. चित्ररथ

44. चित्रायुध

45. दैत्य

46. त्रिपुर (1)

48

↓

49. तयदाक्षिण(तैदाक्षिण)

50. सुदाक्षिन

51. तरदाक्षिण

52. धर्मतरु (धर्मातर)

53. धर्मपाल

54. सधर्मा (सुधर्म)

55. तरवंग

56. देवांग

57. नरांगित

58. धर्मान्गद

59. रुक्मांगद

60. सोमांगद (सोनांगद)

61. नौयुगराय (नौगयोग)

46

↓

47त्रिलोचन (2)

↓

दृकपति (वीरसेन) | 48दाक्षिण | दक्ष | द्रुमायु | द्रविण | दृष्टघ्नो | भृगु | दूर्धर | द्रुह | दुष्मायु | दैविरि | दम्पा

(काछार का राजा)

---

(1) इनके समय से ही त्रिपुर राज्य काफी सुदृढ़ हुआ है तथा ''त्रिपुरा'' नाम के प्रर्वतक थे।

(2) इनके ज्येष्ठ पुत्र दृकपति को कच्छार में माता दादी का राज पाट प्राप्त होने पर द्वितीय पुत्र दक्षिण ने त्रिपुरा के सिंहासन पर अधिकार किया था।

<u>द्वितीयलहर –38</u>

61
↓
62. तरजुंग
↓
63. राजधर्मा (तरराज)
↓
64. हामराज
↓
65. वीरराज
↓
66. श्रीराज
↓
67. श्रीमान (श्रीमन्त)
↓
68. लक्ष्मीतरु
↓
69. रुपवान (तरलक्ष्मी)
↓
70. लक्ष्मीबान् (माइलक्ष्मी)
↓
71. नागेश्वर
↓
72. योगेश्वर
↓
73. निलध्वज (ईश्वर फा)(1)
↓
74. बसुराज (रंगखाई)
↓
75. धनराज फा
↓
76. हरिहर (मुचं फा)(2)
↓
77. चन्द्रशेखर (माइचोंग फा)
↓
78. चन्द्रराज (ताभूराज या तरुराज)

78
|
79.त्रिपलि (तरफनाई)
↓
80. सुमन्त
↓
81. रूपावन्त(श्रेष्ठ)
↓
82. तरहोम (तरहाम)
↓
83. हरिराज (खाहम)
↓
84. काशीराज (कतर फा)
↓
85. माधव (कालातर फा)
↓
86. चन्द्रराज (चन्द्रफा)
↓
87. गजेश्वर
↓
88. वीरराज (द्वितीय)
↓
89. नागेश्वर (नागपति)
↓
90. सिखीराज (सिक्खराज)
↓
91. देवराज
↓
92. धृस्वरंग (दुरासा या धराईश्वर)
↓
93. बारकीर्ति (बीरराज या विराज)
↓
94. सागर फा
↓
95. मलयचन्द्र
↓
96 सूर्यनारायण (सूर्यराचय)

97 इन्द्रकीर्ती (आचंगफनाई या उत्तंगफणी)

98 वीरसिंह (चराचर)
↓
99 सुरेन्द्र(हाचुं फा या आचं फा)

....र...

(1) इसके समय से ही त्रिपुरेश्वरगणों ने ''फा'' उपाधि ग्रहण की थी।

(2) इस समय से राज्यगणों ने आदर प्राप्त करने हेतु बहुतों ने हालाम जनित एक एक नाम ग्रहण करते थे। वर्तमान राज्यवंश के आधिपत्य विस्तार के पूर्व में त्रिपुरा पर हालाम जातियों का प्रभुत्व था। राजन्यवर्ग का हालाम भाषाओं में नाम ग्रहण करने का तथा स्थान विशेष में हालाम भाषा प्रचलित रहने का यही एक कारण है।

द्वितीयलहर –39

99

|

100. बिमार

101. कुमार

102. सुकुमार

103. धीरचन्द्र (तैछराव या तक्षराव)

104. राज्येश्वर(राजेश्वर)

105. नागेश्वर(क्रोधेश्वर या मीछलिराज)

106. तौछंग फा (तेजंग फा)

107. नरेन्द्र

108. इन्द्रकीर्ति

109. विमान (पाइमाराज)

110. यशोराज

111. बंग (नबांग)

112. गंगाराय (राजगंगा)

113. चित्रसेन (शुक्रोराय या छाक्रुराय)

114. प्रतीत

115. मारिचि(मिछली,मालछी या मरूसोम)

116. गगन (काकुथ)

117. कीर्ति (नवराज या नबराय)

118. हिमति(जुझारु फा या हामतर फा)

119. राजेन्द्र (जांगि फा या जनक फा)

120. पार्थ (देवराज या देवराय)

121. सेवराय (शिवराय)

122. किरीट (आदिधर्म फा, डुंगुर फा, दानकुरू फा या हरिराय)(1)

---

(1) इनके सम्पादित ताम्र शासन में ''धर्म पा'' लिखित हुआ था।

द्वितीयलहर –40

122

123. रामचन्द्र (खारुंग फा या कुरुगुं फा)

124. नृसिंह (छेगंफणाई या सिंह फनी)

125. ललित राय

126. मुकुंद फा (कुन्द फा)

127. कमल राय

128. कृष्णदास

129. यशोराज(यश फा)

130. उद्धव(मोचं फा)

131. साधुराय

132. प्रताप राय

133. विष्णु प्रसाद

134.बाणेश्वर(बाणीश्वर)

135. वीरबाहु

136. सम्राट

137. चम्पकेश्वर (चाम्पा)

138. मेघराज (मेघ)

139. धर्मधर (छेंकाछाग)

द्वितीयलहर –41

139

↓

140. कीर्तिधर (छेंगथुम फा या सिंहतुंग फा)

↓

141. राजसूर्य (आचंग फा या कुन्जहोम फा)

↓

142. मोहन (खिचुगं फा)

↓

143. हरिराय (डांगर फा)

144. राजा फा 145. रत्न फा (रत्नमाणिक्य)(1)

146. प्रतापमाणिक्य 147. मुकुटमाणिक्य (मुकुन्द)

148. महामाणिक्य

149. धर्ममाणिक्य (द्वितीय) गगन फा

150. प्रतापमाणिक्य 151 धन्यमाणिक्य कुच फा (पुरुन्दर)

162. कल्याणमाणिक्य

152. ध्वजमाणिक्य 153. देवमाणिक्य

154. इन्द्रमाणिक्य 155. विजयमाणिक्य 159.अमरमाणिक्य(रामदास)

डुगुंर 156. अनन्तमाणिक्य

157. उदयमाणिक्य(2)

158. जयमाणिक्य (लोकतर फा)(2)

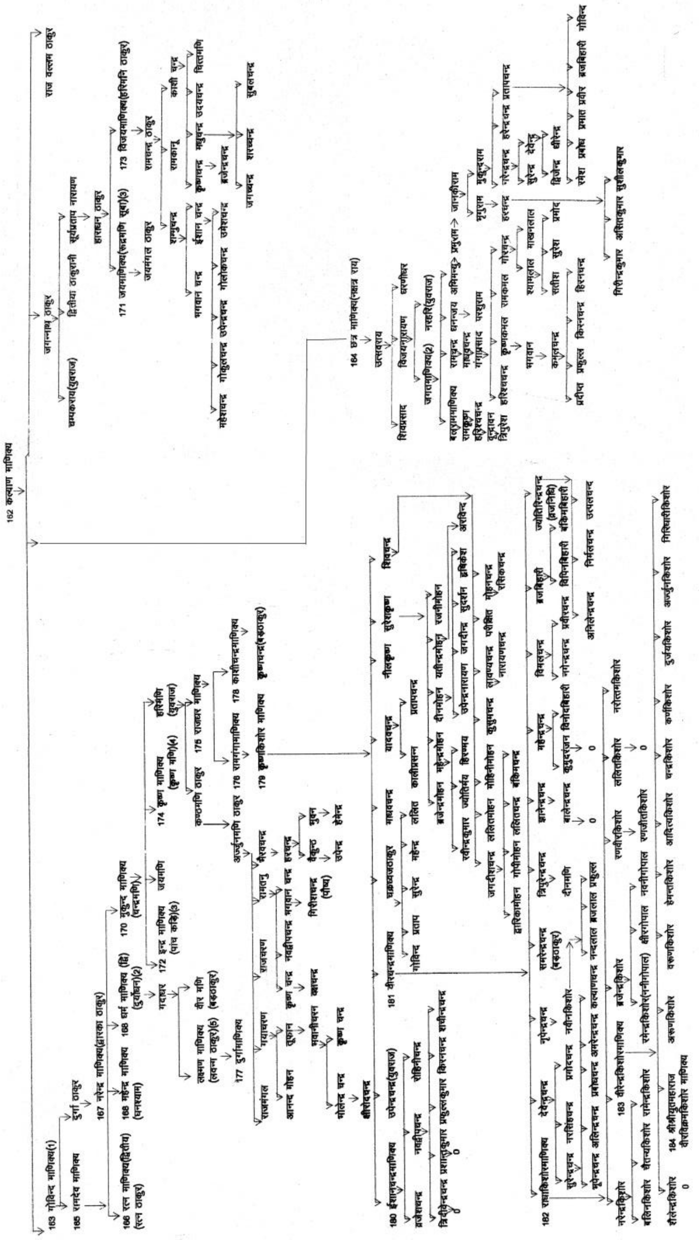
160. राजधरमाणिक्य

161. यशोधरमाणिक्य

---

(1) इस समय से ही त्रिपुरेश्वरगण 'माणिक्य उपाधि धारण कर रहे है। तत्परवर्ती काल में राजकुमारगणों में किसी किसी की फा उपाधि मिलती है।
(2) 157 तथा 158 संख्या के राजा भिन्नवंशीय है।

द्वितीयलहर –42
वंश पत्रिका जोडे, 162 से 184 तक के राजा, बडे साइज का कागज ए–2 साइज
चित्र–4–42



<u>द्वितीयलहर –43</u>

मुद्रादि की सहायता से राजत्व कालों की आलोचना

धर्ममाणिक्य के राजत्वकाल की आलोचना राजमाला द्वितीय लहर के अन्तर्गत राजगणों के काल निर्णय सम्बन्ध में ग्रन्थ भाग में ही विशेष चेष्टा की गयी है (174 से 184 पृष्ठ) इस लहर के प्रारम्भ में ही महाराज धर्ममाणिक्य का नाम मिलेगा। 1353 से 1384 शक तक इनका शासनकाल निर्धारित हुआ है तथा इस सम्बन्ध में राजमाला इत्यादि ग्रन्थों की टिप्पणीयां तथा ताम्र शासन इत्यादि की सहायता से प्रमाण प्रयोग के क्षेत्र में कोशिश की कमी नहीं हुई है। परन्तु इनके समयों की मुद्रा संग्रह की चेष्टा विफल रही क्योंकि इस सम्बन्ध में प्रमाण उपस्थित करने की सुविधा नहीं हुई है।

प्रतापमाणिक्य के राजत्वकाल सम्बन्धी बात धर्ममाणिक्य के पुत्र प्रतापमाणिक्य का राजत्वकाल एक साल भी पूर्ण नहीं हुआ था। इस कारण इनके शासनकाल की प्रमाण उपयोगी मुद्रा का निदर्शन करने का आशय नहीं है।

धन्यमाणिक्य का शासनकाल धन्यमाणिक्य के शासनकाल संबंधी जो सब प्रमाण मिले है वह शायद कम नहीं है। उन्होंने 1385 शक से 1437 शक तक राजत्व किया था। उनके शासनकाल की इक्कीस रौप्य मुद्रा(चांदी की) मिली हैं। उनमें से सत्रह मुद्रा 1412 शक की, एक 1419 शक की, एक 1428 तथा दो अब्दविहीन है। इनका प्रथम राज्यांक (राज्याभिषेक काल की समय ज्ञापक) निर्भर योग्य मुद्रा आज भी आविष्कारित/प्राप्त नहीं हुई है। वह न मिलने पर भी मिली हुई मुद्राएं, ग्रन्थभाग में प्रदत्त प्रमाण का पोषक व आसानी से ही प्रमाणित होती हैं। शकांक–युक्त–मुद्रा में से सर्वपेक्षा एक प्राचीन मुद्रा (1412 शक में मुद्रित) तथा शकांक विहीन एक मुद्रा की प्रतिकृति इस स्थान पर प्रदान की जा रही है। शेषोक्त मुद्रा, प्रथमोक्त मुद्रा के पूर्व या परिवर्तित काल में मुद्रित है, शकांक के अभाव से निर्णय करने की सुविधा नहीं है। परन्तु एक कारण से शकांक विहीन मुद्रा ही अधिक प्राचीन (राज्याभिषेक कालों में मुद्रित) प्रतीत होते है। त्रिपुरा की मुद्रा में राजा के नाम के साथ पट्ट–महिषीयों का नाम उत्कीर्ण होना चिरन्तन खानदानी प्रथा है। वैसे भी जिन सभी त्रिपुरेश्वरो की एक से ज्यादा महिषी थी, उनके नामों के साथ प्रत्येक मनुष्य का नामयुक्त अलग –अलग मुद्रा प्रचलित की थी, ऐसा आलोचना स्थल में मिलता हैं। 1412 शक अंकित मुद्रा में महारानी का नाम संयुक्त हुआ है। परन्तु शकांक विहीन मुद्रा में एक मात्र राजा का ही नाम मिलता है। राजमाला की आलोचना से ज्ञात हो रहा है कि महाराज धन्य ने राजत्व प्राप्ति के बाद विवाह किया था।(1) उस समय राज्याभिषेक काल में अविवाहित थे।

.... र ....

(1)

ए बोलिया मंत्री सबे स्नान कोराइलो।	यह कहकर मंत्रियों ने कराया स्नान।
सिंहासने बोसाइया प्रणाम कोरिलो।।	बैठाया सिंहासन पर, किया प्रणाम।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8पृ

<u>द्वितीयलहर –44</u>
मुद्रा में महारानी का नाम मुद्रित नहीं हुआ था। इससे पता चलता है कि इस कारणों से उक्त मुद्रा को ही प्रथम मुद्रित बोल के निर्धारित करना ही संगत होगा। उक्त उभय मुद्रायों में जो सब वाक्य उत्कीर्ण हुए है, वे नीचे प्रदान किये जा रहे है।

सिंहमूर्ति (इसके नीचे) शक 1412	1	त्रिपुरेन्द्र श्री श्रीधन्य माणिक्य श्रीक मला देब्यौ
सिंहमूर्ति	2	श्री श्रीध न्य माणि क्य देवः

त्रिपुरा के मुद्रा सम्बन्धी साधारण बात त्रिपुरा के मुद्रा सम्बन्ध में बहुतों का विश्वास है कि त्रिपुरेश्वरगण राज्याभिषेक समय पर एक बार मुद्रा प्रस्तुत करते थे। उस समय मुद्रा का ढाँचा (**Die**) प्रस्तुत किये जाते थे। समग्र राजत्व काल में वही प्रयोग किया जाता था। इसी धारणा के मूल में, वे लोग जब जो मुद्रा प्राप्त करते थे उनमें अंकित शासन के ही राजा का राज्यारम्भ का काल है, कह कर निर्धारित करते थे। ये नितान्त ही प्रमादपूर्ण चिन्ताधारा है। इससे पूर्व देखा गया है कि धन्यमाणिक्य के शासनकाल में भिन्न भिन्न समयों के भिन्न भिन्न ढाँचें में मुद्रित चार प्रकार की मुद्रा मिली है। कोई नया प्रदेश स्वयं विजय प्राप्त करने पर, तीर्थ दर्शन करने पर तथा सराहनीय कार्य करने पर त्रिपुरेश्वरगण इस विषय को उल्लेखित कर नयी मुद्रा प्रस्तुत करते थे। इस तरह के दृष्टान्त की कमी नहीं है। उस काल में मुद्रा प्रस्तुत करने को ''जरोपमारा'' ''मोहरमारा'' इत्यादि कहा जाता था। धन्यमाणिक्य की पूर्वोक्त चतुर्विधि मुद्रा के अतिरिक्त चट्टग्राम के उपर विजय प्राप्त के बाद उस घटना के

....र...

लोके धन्य बलिया तखने कहिलेक।	लोकधन्य बोल के तभी कहलाये।
श्रीधन्य माणिक्य राजा होइल अभिषेक।।	धन्यमाणिक्य राज हुए अभिषेक।।
बड़ो सेनापति दिलो आपनार कन्या।	बडे सेनापति दिये अपनी कन्या।
महारानी कमला नाम पृथिवीते धन्या।।	महारानी कमला नाम पृथ्वी में धन्य।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8पृ

इससे पता चलता है कि महाराज धन्य ने सिंहासन प्राप्ति के बाद तथा 1412 शक में मुद्रांकित करने के पूर्व में किसी एक समय महारानी कमला महादेवी को पट्ट महिषि के रुप में ग्रहण किया था।

द्वितीयलहर –45
चित्र–5–45

राजमाला द्वितीय लहर पृष्ठ संख्या – 45



महाराज धन्यमाणिक्य की 1412 शक की मुद्रा



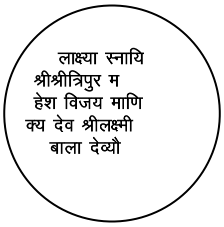
महाराज धन्यमाणिक्य की शकविहीन मुद्रा

<u>द्वितीयलहर –46</u>

स्मृति चिन्ह स्वरूप मुहर का प्रचलन किया था।(1) इस मुहर का संग्रह नहीं हो पाया है। प्रथम लहर के सम्पादन काल में महाराज रत्नमाणिक्य द्वारा 1288 शक में उत्कीर्ण मात्र दो मुद्रा के बारे में अवगत थे। तत्पश्चात् उनके शासन काल की और बीस मुद्रा मिली है। उनमें से 1286 शक, 1288 शक तथा 1289 शक की निर्मित मुद्रा भी शामिल है। विजयमाणिक्य सुवर्णग्राम (ध्वजघाट) विजय का, पद्मा नदी का स्नान का तथा लक्ष्या स्नान का स्मृति रक्षा के उद्देश्य में स्वतन्त्र मुद्रा प्रस्तुत करने का निदर्शन मिलता है। ऐसे उदाहरण, दृष्टान्त और भी बहुत है। अतऐव त्रिपुरा की मुद्रा मिलने से ही उनके राज्याभिषेक कालों की मुद्रा के रुप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है। वैसा करने पर राजगणों के काल निर्णय सम्बन्ध में भीषण भ्रम उत्पादित होगें।

ध्वजमाणिक्य, देवमाणिक्य तथा इन्द्रमाणिक्य का विवरण धन्यमाणिक्य के परवर्ति ध्वजमाणिक्य, देवमाणिक्य तथा इन्द्रमाणिक्य के मुद्रा का अनुसंधान नहीं मिल पाया है। इस कारण इनके सम्बन्ध में ग्रन्थ भाग में आलोचित विवरण के अतिरिक्त कोई टिप्पणी करने का उपाय नही है।

विजयमाणिक्य का शासनकाल विजयमाणिक्य ने 1450 शक में सिंहासन प्राप्त किया। उनके राज्याभिषेक काल की मुद्रा नहीं मिल पा रही हैं। राजमाला की आलोचना से ज्ञात होता है कि उन्होनें सुवर्णग्राम (ध्वजघाट) विजय तथा ब्रह्मपुत्र में स्नान का तथा लक्ष्या एवं पद्मा नदी में अवगाहन पश्चात् स्वतन्त्र मुद्रा प्रस्तुत की थी। इनमें 1480 तथा 1481 शक की मुद्रा मिली है। प्रथमोक्त मुद्रा का विवरण नीचे प्रदान किया जा रहा है। इस मुद्रा को लक्ष्या नदी में स्नान के उपलक्ष्य में मुद्रित करना था।





शकांक – 148 x –यहां x चिन्ह शून्य के परिवर्तित रुप में व्यवहारित हुए है। त्रिपुरा में गणित शास्त्र का यह एक प्राचीन प्रथा है। दो अंको का मध्यवर्ती 0 शून्य स्थान पर खाली रखा जाता है तथा दक्षिण तरफ में शून्य होने पर तत् परिवर्तित x चिन्ह प्रयोग होता था।

---

(1)

तार पोरे श्रीधन्य माणिक्य नृपवर।	इसके बाद श्रीधन्य माणिक्य नृपवर।
चाटिग्राम जिनिलेक कोरिया समर।।	चट्ट गांव जीत लिया करके समर।।
चौद्शो पांचत्रिश शाके समर जिनिलो।	चौदह सौ पैंतीस शक में जीता समर।
चाटि ग्राम जय कोरि मोहर मारिलो।।	चट्ट गांव जीतकर निकाली अपनी मुहर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ

द्वितीयलहर –47

इससे संबधित विवरण इस भाग में (98–99 पृष्ठ पर) विस्तृत रुप से आलोचित हुआ है। प्राचीन काल में 8 ''अंक का परवर्ति में X'' यहां चिन्ह प्रयोग का दृष्टान्त भी मिले है, परन्तु '0' ज्ञापक तथा 8 अंक ज्ञापक चिन्ह दोनों के अन्दर आकृतियों के पार्थक्य मिले है।

उपरोक्त मुद्रा की सहायता से ज्ञात हो रहा है कि विजयमाणिक्य 1480 शक में बंग अभियान में बहिर्गत हुए थे। इस अभियान के उपलक्ष्य में लक्ष्या में स्नान करने के पश्चात् मुद्रा प्रस्तुत करने की बात राजमाला में मिलते है।(1)

विजयमाणिक्य के परिवर्ति राजगण — विजयमाणिक्य, तत्पश्चात् अनन्तमाणिक्य, उदयमाणिक्य तथा जयमाणिक्य की मुद्रा नहीं मिल पायी है। इस कारण ग्रन्थ भाग में विस्तृत विवरण व्यतीत करके, इनके शासनकाल संबंधी निर्भर योग्य दूसरे विवरण संग्रह करने की सुविधा नहीं मिली।

स्वतन्त्र रक्षा का प्रचेष्टा

स्वाधीनता रक्षा और राज्य विस्तार की चेष्टा — राज्य रक्षा तथा परराष्ट्र विजयार्थ त्रिपुरेश्वरगण हमेशा प्रयत्नशील थे। किसी राजा के समय, राज्यों के कुछ अंश हस्तान्तरित होने पर, परिवर्ती भूपतिगण उस क्षति को पूरा करने के निमित्त लगातार आप्रान चेष्टा करते थे तथा उद्देश्य पूरा होने तक उस चेष्टा में त्रुटि नहीं रखते थे। राजपुत्र, राजभ्राता इत्यादि वीरेन्द्रवर्ग राजा तथा राज्य के कल्याण के लिए थे व निर्भय व जीवन विसर्जन करने को प्रस्तुत थे। किसी किसी राज महिषि को युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण होकर राज्यों का स्वार्थ तथा कुल मर्यादा रक्षा करते देखी गई है। उनके इस अदम्य उद्यम तथा स्वतन्त्र रक्षा का प्रबल आकांक्षा अतीव प्रशंसनीय है।

रत्न फा का व्यवहार — सिंहासन पर विराजमान पिता तथा ज्येष्ठ भ्रातागणों को विताड़ित करते हुए असंगत उपाय से राज्यप्राप्ति के प्रयास में रत्न फा ने मुसलमान शक्ति पृष्ठ पोषकता से सिंहासन अधिकार द्वारा राजनैतिक क्षेत्र में जो कुदृष्टान्त के बीज बोए थे, उसके विषफल के द्वारा त्रिपुरा को प्रतिनिमित्त विषक्रिया में डुबाते गये। उत्तर पुरुष गणों के अन्दर बहुतों ने रत्न फा प्रदर्शित पथ के अनुसरण द्वारा राज्य की शक्ति तथा मान मर्यादाओं का उल्लंघन किया है। राज्य में अशान्ति उपद्रव करा कर प्रकृति पुंज का विस्तृत क्षति की थी। रत्न फा ने मुसलमान शक्तियों के कृपा से बहुलबाधा विहीन करके, अतिक्रम करके सिंहासन लाभ किया थे। मुसमान सम्राट तथा शासनकर्ताओं को बहुमूल्य हस्ती तथा सुदुर्लभ भेक मणि उपहार प्रदान

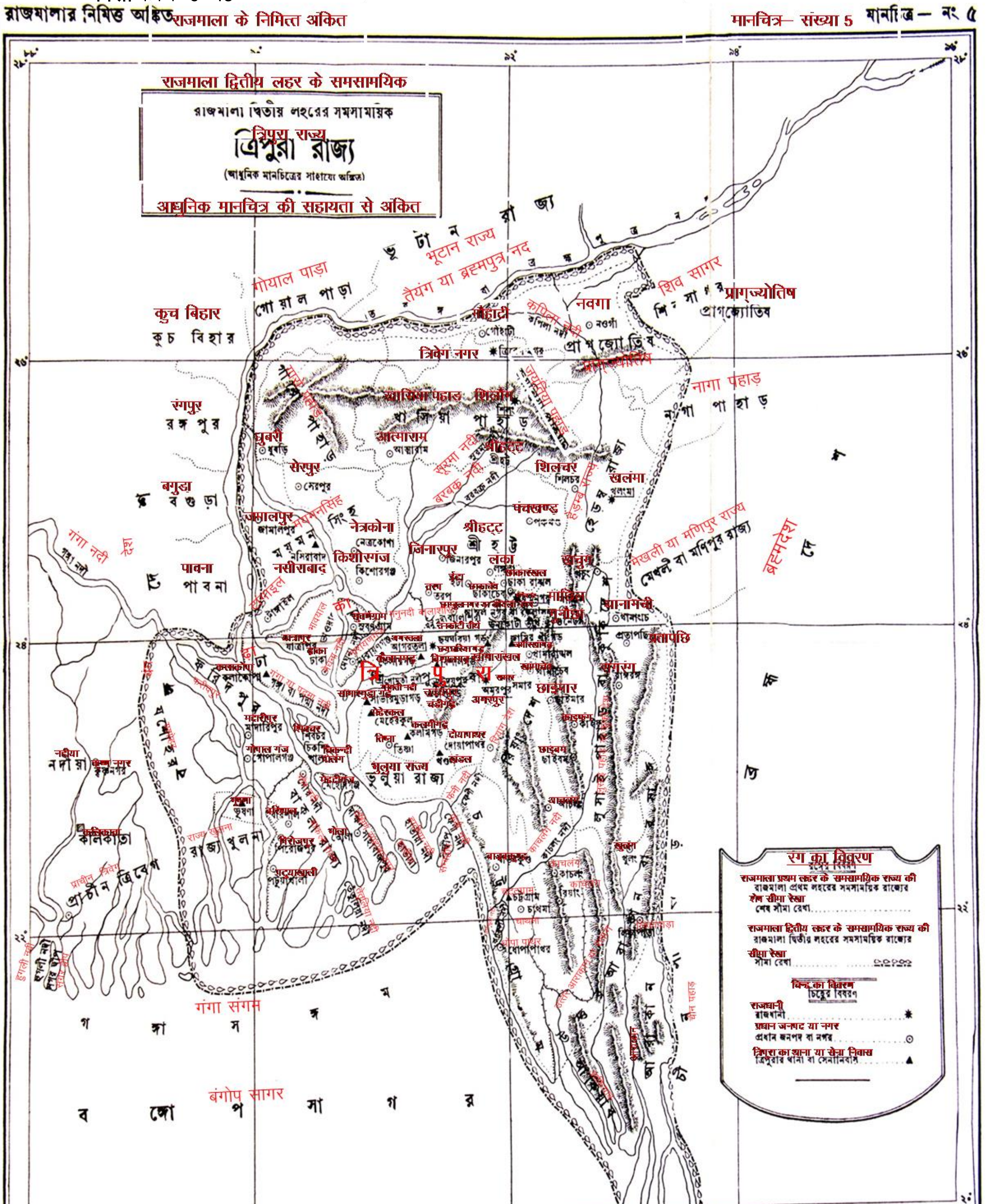
....र...

(1)

ब्रह्मपुत्र स्नान करी जरफ मारिलो।	ब्रह्मपुत्र में नहाकर स्वर्ण मुद्रा जारी की।
ध्वजघाट विजयी बलि महोरे लिखीलो।।	स्वर्ण मुद्रा में ध्वजघाट विजय लिखा है।।
तीर्थ राज स्नान करे लक्ष्याते गमन।	तीर्थराज में स्नान कर लक्ष्या की ओर प्रस्थान।
लक्ष्या स्नान बलि जरफ मारिलो राजन।।	लक्ष्या स्नान पर मुद्रा प्रस्तुत की।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ

द्वितीयलहर –47 ए

नक्शा चित्र–6–46



द्वितीयलहर –48

द्वारा सन्तुष्ट करते हुए 'माणिक्य' उपाधि लाभ से अपने आप को गौरवान्वित समझने लगे। परन्तु अन्याय, अनन्य स्वार्थ वशीभूत होकर पूर्व पुरुषों द्वारा कष्टार्जित अमूल्य स्वतन्त्रता मणि को कितना म्लान किया गया, वह इनके समझ में नहीं आया। इस घटना के पश्चात् ही त्रिपुरा की अवस्था विपर्यय में सूत्रपात हुई थी।

राज्य सीमा परिवर्तन विषयक विवरण इनके बाद भी त्रिपुरेश्वरगण प्रतिनिनियत घात प्रतिघात सहन करते हुए स्वाधीनता तथा स्वतन्त्र रक्षा करने में पश्चात्–पद नहीं हुए है। राजमाला प्रथम लहर काल में राज्य की जो सीमा निर्धारित थी, राष्ट्र विद्रोह के फलस्वरुप बारम्बार उसमें परिवर्तन हुआ है। कोई कोई प्रदेश बार बार त्रिपुरा के हस्तगत तथा हस्तच्युत हुए है। परन्तु किसी भी समय हृत(खोया हुआ) भू–भाग पुनर्उद्धार के चेष्टा पर किसी भी प्रकार का कोई त्रुटि नहीं हुई है। महाराज धन्यमाणिक्य ने मेहेर कुल, पटिकरा, गंगा मण्डल, बगासारी, बरदाखात तथा खण्डल इत्यादि भू–भाग तथा श्रीहट्ट हृत अंश पर पुनर्बार अधिकार किया था। इसके अलावा भी लुसाई इत्यादि कुकि प्रदेश, चट्टग्राम, एवं रसांग(अराकान) पर त्रिपुरा का आधिपत्य पुनः संस्थापित हुए थे। देवमाणिक्य ने भुलुआ राज्य विजय द्वारा राज्य का नष्टोद्धार किया था। विजयमाणिक्य के गंगातीर तक अधिकार करने का प्रमाण मिलता है। खासिया, श्रीहट्ट, सुवर्णग्राम तथा भूषणा इत्यादि अंचल में उनके आधीपत्य पुनः प्रतिष्ठित हुए थे। ईछामति तथा पद्मा नदी के तीर में दूसरे नाना स्थान पर उनके सेनानिवास स्थापित होने का प्रमाण मिलता है। इस समय राज्य की सीमा कितनी दूर प्रसारित हुई थी, संलग्न मानचित्र में उनका आभास मिलता है। परन्तु यह आधिपत्य अधिक समय तक स्थायी नहीं हुआ था। पाठान जाति के अभ्युथान के समय से उत्तरोत्तर बहु प्रदेश त्रिपुरा के हस्तच्युत हुआ था।

धन्यमाणिक्य और गौड़ेश्वर होसेन शाह मुसलमानगणों के साथ त्रिपुर शक्तियों का जो सकल संग्राम हुए थे, उनमें से गौड़ेश्वर होसेन शाह के साथ त्रिपुरेश्वर धन्यमाणिक्य की लड़ाई की बातें विशेष रुप से उल्लेख योग्य है। लगातार दो बार त्रिपुरा आक्रमण करता हुआ होसेन शाह सम्पूर्ण रुप से पराभूत तथा विषम क्षतिग्रस्त हुए थे। त्रिपुर सेनापति रियांग जाति के रायकाचग तथा रायकछम नामक सहोदर के बाहुबल से ही तत्काल में त्रिपुरा प्रधान सम्बल तथा सुदृढ शक्ति में परिगणित था। रायकाचग इस रुप में पराक्रान्त थे कि मेकेन्जी साहब ने उन्हें त्रिपुरा का राजा भ्रम से ''चयचागमाणिक्य'' कहकर उल्लेख किया है। उन्होने होसेन शाह के पराजित सेनापति से एक तोप तथा एक धातु निर्मित पताका बल पूर्वक ग्रहण की थी। तोप लम्बाई में 9फुट–2इन्च, इसके अग्र भाग की गोलाई 2फुट–8इन्च तथा पिछले भागों की गोलाई 2फुट–10इन्च मुख का व्यास 11.5 इन्च, गोला निर्गमन रन्ध्र का व्यास 3 इन्च था। यह तोप सुदीर्घ काल उदयपुर की प्राचीन गारद सन्निहित जंगल में प्रतीत अवस्था में था। स्वर्गीय महाराज

द्वितीयलहर –49

वीर चन्द्रमाणिक्य बहादुर के समय में उसे अगरतल्ला में लाया गया है। (वर्तमान समय यह उज्जयंत प्रासाद के सामने संस्थापित है।) इस तोप के पिछले भाग से 49'' ऊपर में संलग्न छोटे से पीतल की चादर में खुदे एक खण्ड में पारसी भाषा में कुछ वाक्य लिखित थे। इनमें से अभी मात्र कुछ एक अक्षर दृष्टि मात्र होते है। अधिकांश लेख अपाठ्य तथा कुछ एक सम्पूर्ण विलुप्त हो गए है, इस कारण से क्या लिखे हुआ था, उद्धार करना असाध्य हो रहा है।

विजित पताका पीतल निर्मित तथा दीर्घ दण्ड के उपर संस्थापित इनके दो पार्श्वो में घुँघरु है तथा इनमें निम्नलिखित वाक्य अरबी भाषा में खुदे है।

उपर का चुडा में लिखित है, ''लाइलाहा इल्लाल्ला हो मौहम्मदुर रसुलाल्ला।''

दक्षिण पंखुडी में लिखित है, ''या अली, या अली, या अली।''

बायें पंखुडी में लिखित है, ''अल्ला या फात्ता हो, या फात्ता हो, या फत्ता हो।''

वक्ष स्थल में लिखित है, ''लाइलाहा इल्लाल्ला।''

कोई कोई इस मत का पोषक है कि इनके निम्न भाग में सन का अंक है। परन्तु निसंदिग्ध रूप में पाठ–उद्धार करना संभव नहीं हुआ है। इस विषय पर पुनरालोचन की इच्छा रह रही है।

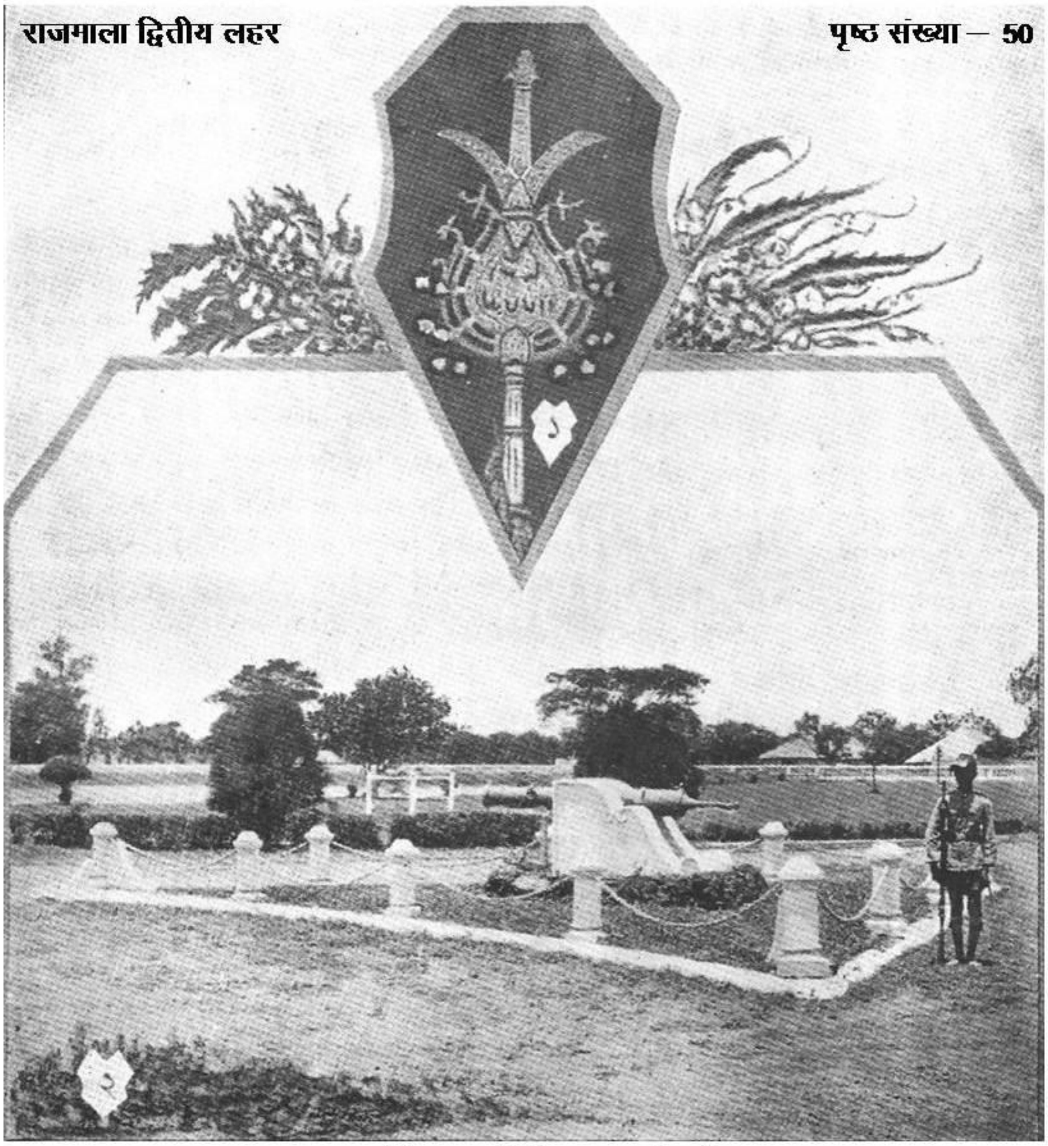
इस पताका को सेनापति रायकाचाग द्वारा धन्यमाणिक्य के समक्ष उपस्थित करने पर महाराज ने खुशीमन से आदेश किया है – ''यह पताका तुम्हारे द्वारा ही जय की गई है, यह तुमको ही भेंट कर रहा हूँ। विजय गौरव के निदर्शन स्वरूप यह पुरुषानुक्रम में प्रदान करते जाना।'' तद्विधि काल से परम्परा रूप में रियांग जाति के राय गण (प्रधान सरदार) दूसरे राजदत्त चिन्ह के साथ साथ यह भी धारण करते आ रहे है। रियांग भाषा में इस पताका को ''तावफिंगक्रांग'' (मयूर का पूँछ) बतलाते है। इस वस्तु के मयूर आकृति विशिष्ट होने के कारण यह आख्या प्रदान की गयी है।

होसेन शाह का तृतीय आक्रमण होसेन शाह का तृतीय बार त्रिपुरा आक्रमण राजमाला में सन्निविष्ट नहीं हुआ है। इस आक्रमण से राज्य का कुछ अंश मुसलमानों का हस्तगत हुए थे। आनुसंगित प्रमाण द्वारा इस रुप में समझा जाता है। नीचे एक प्रमाण का उल्लेख किया जा रहा है।

सुवर्णग्राम की शिलालिपि सुविज्ञ कनिंगहम साहब ने सुवर्णग्राम की मस्जिद में प्राप्त अरबी भाषा में लिखित एक खण्ड शिलालिपि का उद्धार किया था। उनमें खदित वाक्य की आलोचना में ज्ञात होता है कि गौड़ेश्वर होसेन शाह के शासनकाल में उक्त मस्जिद के निर्माता मुआज्जमाबाद का वजीर खौवास खाँ त्रिपुरा का शासन प्राप्त किए हुए था। इस लिपि का अंग्रेजी अनुवाद राजमाला के मध्य (128 पृष्ठ) में सन्निविष्ट हुआ है। उसके कुछ अंश रह जाने पर आलोचना में सुविधा निमित्त दूसरे पेज पर पुनः प्रदान किये जा रहा है।

द्वितीयलहर –50
चित्र–6–50

1, गोडेश्वर होसेनसाह की पताका



2, गोडेश्वर होसेनशाह की तोप

महाराज धन्यमाणिक्य की विजित दो वस्तुएं

द्वितीयलहर –51

"This mosque was built in the reign of the Sultan of the age, the heir of the Kingdom of Solomen, Alauddunya waddin Abdul Muzaffor Hussain Shah. May God perpetuate his Kingdom and rule, and elevate his condition and dignity, and render in every minute his proof Victorious, by the great and noble Khan, Khawas Khan, Governor of the land of Tiparah and Vazir of the District in Muazzamabad,- may God preserve him in both worlds. Dated 2nd Rabi 11, 919 (7th June 1513)"

On a new king of Bengal- J.A.S.B.- Vol. XII, 1872 Pt 1, PP 333-34.

इसमें ई सन का अंक विशुद्ध नहीं है। 919 हिजरी में ई सन 1513 नहीं हो सकता –1501 होगा। –हिन्दी अनुवादक

अर्थ – यह मस्जिद तत्कालीन सुल्तान सुलेमान राजत्व उत्तराधिकार अल्लाउद्दीन का वाद्दीन अबुल मुज्फर होसेन शाह के समय निर्मित हुआ था। भगवान उनके राजत्व या शासन चिर स्थायी करे – तथा उनके वर्तमान अवस्था तथा राजेश्वरीय वर्धित हो। त्रिपुरा भूमि की शासनकर्ता, मुआज्जमाबाद का वजीर, शक्तिमान महानुभाव खौवास खान की सहायता से सर्वदा जय युक्त हो, तथा उपर वाले उनके यह लोक तथा परलोंकों की रक्षा करे। तारीख दूसरा रब्बि 919 (7 जून 1513)

उद्धित अनुवाद आंशिक प्रतीत होता है – सम्भवतः सम्यक लिपि का अनुवाद नहीं किया गया है। उक्त शिलालिपि को देखने का सौभाग्य हम लोगों को नहीं मिला है। श्रद्धेय अध्यापक श्रीयुक्त अमूल्यचरण विद्या भूषण महाशय ने उक्त लिपि का मूल अंश (अरबी) का कुछ प्रमाण संग्रह किया है। वे पूर्व उद्धित अंग्रेजी अंश की अपेक्षा सम्पूर्ण नये है। इनके उद्धित अंश में मस्जिद निर्माण का, खुदाताला के प्रति ईमान रक्षा का, परलोक में विश्वास स्थापन का, नमाज पढने का तथा जायकात देने के फलों का विशेष उल्लेख है। जो मस्जिद के गात्र में उक्त लिपि थी, तद् विवरण तथा उक्त मस्जिद निर्माता की बात उद्धित लिपि में नहीं है। स्वर्गीय कैलाश चन्द्र सिंह महाशय ने तत् संग्रहित राजमाला में, (1) श्रद्धेय श्रीयुक्त राखालदास बन्दोपाध्याय महाशय के बंगला इतिहास (2) तथा स्वर्गीय केदार नाथ मजूमदार महाशय के मयमनसिंह का इतिहास में (3) इस शिलालिपि की विषय आलोचना की है, उनमें किसी में भी अमूल्य बाबू का संग्रहित अंश नहीं है। एशियाटिक सोसाइटी जरनल में भी इसके अंक सग्रहित नहीं हुए है। अमूल्य बाबू को यह कहाँ से मिले है, नहीं बतलाया। उनके संग्रह भी असम्पूर्ण ही प्रतीत होते है।

मुआज्जोमाबाद के अवस्थान विषयक विवरण

आलोच्य शिलालिपि में मिलते है कि खौवास खाँ मुआज्जोमाबाद का वजीर थे। मुआज्जोमाबाद नाम द्वारा स्थान का परिचय करना कठिन कार्य है। प्राच्यतत्विद्/इतिहासकार ब्लोकमैन साहब ने मुआज्जोमाबाद के अवस्थान निर्णय के सम्बन्ध में असमर्थ होकर पहले बतलाया है –

"The Union of Tiparah (Tripurah) and Muazzamabad confirms my

(1) कैलाश बाबू का राजमाला –द्वितीय भाग, तृतीय अंक, 50 पेज
(2) बंग्ला इतिहास नवम् परिच्छेद, 251 पेज
(3) मैमनसिंह का इतिहास चतुर्थ अध्याय, 41 पेज

conjecture that Muazzamabad belong to Sonargaon"(4) इसके एक साल बाद उन्होनें दूसरे प्रबन्ध में वर्तमान पूर्व मयमनसिंह को ''मुआज्जोमाबाद'' कहकर निर्धारित किया है। परलोकगत कैलाश चन्द्र सिंह के मतानुसार मुआज्जोमाबाद सुवर्णग्राम का ही नामान्तर है **(5)** एक काल में सुवर्णग्राम शासनाधीन भूभाग उक्त नाम से अभिहित किये जाते थे। अवस्था आलोचना के दौरान यह रुप सिद्धान्त किया जा सकता है।

खौवास खाँ व त्रिपुरा पूर्वोक्त शिलालिपि में खौवास खाँ को त्रिपुरा का शासनकर्ता कह कर उल्लेख करने पर त्रिपुरा का कुछ अंश होसेन शाह के शासनाधीन होने का आभास मिलता है। समूह अवस्था में आलोचना से यह समझा जाते है कि विजित भू –भागों का परिमाण अति नगण्य था तथा अधिक काल तक मुसलमान गण अपने हस्तगत रखने में असमर्थ रहे। इस सामान्य घटना को शिलाखण्ड में उत्कीर्ण तथा मस्जिद गात्रों में संलग्न करते हुए विजय स्मृति रक्षा करने के चेष्टा आडम्बर सी प्रतीत होती है। धन्यमाणिक्य के द्वारा होसेन शाह बारम्बार जिस रुप में अपमानित हुए थे, उसकी तुलना में इस विषय कहानी को शिलाखण्ड में उत्कीर्ण करना श्रीकरनन्दी की तरह चाटुकारों का कार्य है, दूसरा कुछ नहीं बतलाया जा सकता। ग्रन्थ भागों में सन्निविष्ट विवरण आलोचना से सम्यक अवस्था के प्रकाश मिलेगें।

त्रिपुरा का शौर्य के विषय में अंग्रेजों का मन्तव्य त्रिपुरा का सम्मान, स्वाधीनता की अवस्था केवल त्रिपुर इतिहास में ही निबद्ध नहीं है बल्कि मुसलमान राजपुरुष, ऐतिहासिक अंग्रेज राजदूत, विदेशी परिव्राजक तथा सामयिक पत्र सम्पादन इत्यादि लेखन निवृत विवरण से ही अल्पाधिक परिमाण में इनके प्रमाण मिलेगें। मुसलमान गणों द्वारा संग्रहित विवरण को छोड़कर एक मात्र अंग्रेज लेखक गण द्वारा दिये गये विवरण ही इस स्थान पर काफी प्रतीत होते है – कारण यही सर्वापेक्षा परवर्ती कालों की बात है।, उनके मतों का कुछ आभास, नीचे प्रदान किये जा रहे है।

राल्फ फिच **(Ralph Fitch)** साम्राज्ञी एलीजाबेथ के समय राजदूत रुप से चीन सम्राट के दरबार में प्रेरित किये गये थे। तत्काल में पथक्रम से बंग देश में आगमन हुआ था – यह 1585 ई की बात है। इस समय वे त्रिपुरा राज्य की अवस्था का पर्यवेक्षण करते हुए, जो टिप्पणीयां की है, **Sir Harry Johnson** ने उनके निम्नांकित भाग से प्रकाशित किया है –

"In the delta of the Ganges, on the verge of the Tipperah District, he found the people not yet subdued by the Mughal Emperors."

Pioneers In India- P_ 163.

इस वाक्य से पता लगता है कि त्रिपुरा राज्य तत्काल गंगा नदी के संगम तक विस्तृत था तथा प्रबल पराक्रमी मुगल साम्राज्यों के प्रतिनियत आक्रमण

---

(4) **On a new King of Bengal(J.A.S.B.-1872)**

(5) कैलाश बाबू की राजमाला द्वितीय भाग, तृतीय अध्याय, 50 पेज।

<u>द्वितीयलहर –53</u>

पर प्रतिघात करता हुआ, अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखने पर समर्थ हुए थे। राल्फ फिच के अर्ध शताब्दी से कुछ ज्यादा के बाद (1652 ई) पीटर हिलीन (Peter Heyleyn) ने इस राज्य के सम्बन्ध में जो सकल बातें बतलाइ है, वे भी इस स्थान पर उल्लेख योग्य है। उनके वाक्य इस प्रकार है :–

"Here is also the Kingdom of Tippura, naturally fenced with hills and mountains and by that means hitherto defended against the Mongul Tartars their bad neighbours, with whom they have continual quarrels."

Bengal past and present (Oct. 1907) India Intra and Extra Gangem-PP. 50-51

इसके द्वारा ज्ञात हो रहा है कि त्रिपुर राज्य, प्राकृतिक पर्वत प्राचीर द्वारा सुरक्षित होने पर दुर्दान्त प्रतिवेषी मुगलों के हाथों बच रहे है। परन्तु उनके साथ इस राज्य को सर्वदा ही युद्ध में लिप्त रहना पड़ता है। जो राज्य सुविस्तीर्ण पराक्रमशाली मुगल साम्राज्यों का प्रतियोगी था, उस राज्य के बल विक्रम की बातें अति सहज से ही समझी जा सकती है। 1870 ई चार मई तारीख '"पायोनियर" (Pioneer) पत्रिका में त्रिपुरा की स्वाधीनता के बारे में जो लिखा गया था, कैलाश बाबू की राजमाला से इसका अर्थ इस स्थान पर प्रदान किया जा रहा है।

"सम्पूर्ण स्वाधीनता तथा शासन से मुक्त रहना यदि राजन्य वर्ग को सुख प्रदान करते है तथा समकक्ष गणों के मध्य में श्रेष्ठता संस्थापन का कारण होते है, वैसा होने पर पर्वत त्रिपुरा का राजा अवश्य ही भारत वर्ष नृपति मण्डली के बीच सर्वपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली तथा सर्वप्रधान है। इस तीन सहस्त्र वर्ग मील(1) राज्य का अधिपति उनके आदेश ही जीवन मरण तक एक मात्र व्यवस्था थी, जो किसी को भी कर नहीं देते थे, जो स्व–आदेशानुसार संग्राम घोषित करने तथा कर निर्धारण करने में सक्षम थे, जो ब्रिटिश कर्मचारियों के अधीन नहीं थे, जिनके राज्य विदेशी गणों के दृष्टिगोचर नहीं हुए थे या उनके कार्यकलाप संवाद पत्र द्वारा समालोचित नहीं होते थे। इस प्रकार गर्वित स्वाधीनता के उपर एक मात्र यह नृपति ही दण्डायमान है।"

कैलाश बाबू की राजमाला द्वितीय भाग, 17 अंक, पेज 239 –240.

मैकेनजी साहब ने बतलाया है(2) कि यह बात महाराज वीर चन्द्रमाणिक्य बहादुर के शासनकाल के समय की ही है। इसके द्वारा त्रिपुरा के आधुनिक स्वाधीनता गौरव के प्रज्वलित प्रमाण मिल रहे है। किस कारण तथा किस अवस्था में पतित होकर यह पराक्रमशाली गौरव मण्डित राज्य में दिन दिन प्रतिदिन हीन प्रभाव आ रहे है, परवर्ती लहर समूह में वे क्रमशः मिलेगें।

---

(1) इस स्थान पर राज्यों का विस्तार कम लिखा गया है। त्रिपुर राज्य का वर्तमान काल का संकुचित परिमाण सीमा पर चार सहस्त्र वर्गमील से भी कुछ ज्यादा है। (राजमाला अनुवादक)

(2) **North East Frontier of Bengal- P . 561**

द्वितीयलहर –54

त्रिपुरा किसी काल में भी किसी प्रबल शक्ति के निकट अवनत मस्तक सन्धि सूत्रों में आबद्ध नहीं हुआ है। त्रिपुरा का अम्लान गौरव भी अंग्रेजो के वाक्यों द्वारा ही प्रमाणित होगा। इस स्थान पर किचिंत प्रमाण प्रदान किये जा रहे है।:–

" The British Government has no treaty with Tipperah"

Treaties Engagements and Sunnuds.

Edition 1862, Vol. I, p. 77.

सैन्य बल सम्बन्धित आलोचना — इस प्रगति के युग में सैन्य बल भी सुदृढ़ थे। अबुल फजल ने त्रिपुरा के दो लाख पदातिक तथा एक सहस्त्र हाथी देखे थे।(1) रियाज–उस–सालतीन ने भी यही बात कही है। राजमाला में मिलता है, कि महाराज धन्यमाणिक्य ने नये सैन्य दल गठन में उनके अधीन बारह कोटि पदातिक नियुक्त किये थे।(2) ये संख्यायें अत्यधिक प्रतीत होती है। प्राचीन काल में सैन्य संख्या गणना के नानाविध नियम थे। अक्षौहिणी इत्यादि संख्या उनमें से एक है। कोषकार अमर तथा भरत इत्यादि ने इस संख्या के बारे में बतलाया है।

एकेभैकरथा त्रश्या पत्तिः पंचपदातिका
पत्त्यंगैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरं।
सेनामुखं गुल्म गणौ वाहिनी पृतना चमुः
अनीकिनी दशानी किन्यक्षौहिण्यप संपाद।

अक्षौहिणी संख्या का विश्लेषण निम्नतः भाव से किये गये है।

अक्षौहिन्यामित्याधिकैः सप्तत्यन्ताष्टभिः शतैः।
संयुक्तानी सहस्त्राणी गजानामेक विंशती।।
एवमेव रथानान्तु संख्यानं कीर्तितं बुधैः।
पंचषष्ठी सहस्त्राणी षट्शतानि दशैव तु।।

अमरकोष प्रणेता इत्यादि पूर्वोक्त मतानुसंधान द्वारा सैन्यगण संख्या निर्धारण की जो प्रणाली उपलब्ध है। निम्न में वे प्रदान किये जा रहे है।

विभाग का नाम	पदाति संख्या	अश्व संख्या	हस्ति संख्या	रथ संख्या	कुल संख्या	मंतब्य
पत्ति	5	3	1	1	10	
सेनामुख	15	9	3	3	30	ये पत्ति का तीन गुण।
गुल्म	45	27	9	9	90	यह सेनामुख का तीन गुण।
गण	135	81	27	27	270	यह गुल्म का तीन गुण।
वाहिनी	405	243	81	81	810	यह गणों का तीन गुण।
पृतना	1215	729	243	243	2430	यह वाहिनी का तीन गुण।
चमु	3645	2187	729	729	7290	यह पृतना का तीन गुण।
अनिकिनी	10935	6561	2187	2187	21870	यह चमु का तीन गुण।
अक्षौहिणी	109350	65610	21870	21870	218700	यह अनिकिनी का दस गुण।

(1) आइन–ई–अकबरी
(2) राजमाला द्वितीय लहर 12 पृष्ठ

द्वितीयलहर –55

यह सेना संख्या निर्धारण की एक प्रणाली है। प्राचीन काल में और भी अलग अलग प्रणाली अवलम्बन से यह कार्य साधित होने का आभास मिलता है। सहस्त्र, करोड़ इत्यादि संख्या की सहायता से सैन्य गणना प्रथा रहने के विषय भी प्राचीन ग्रन्थ आलोचना में मिलते है।(1) इस प्रणाली अवलम्बन से महाराज धन्यमाणिक्य की बारह करोड़ की पदातिक संख्या निर्णीत हुई है। क्या यह अतिरंजित वाक्य है, जानने का उपाय नहीं है। इसको कवि–कल्पना बोल के, पतित होने से भी इसका बीच में जो त्रिपुरा का सैन्य संख्या के अधिक्य का आभास निहित है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक पक्ष में उस काल में त्रिपुर राज का सामरिक बल जो सुदृढ था, राजमाला आलोचनाओं में तद् विषय पर विस्तार में प्रमाण मिलेगें। तत्काल राज्य की एक विशेषता यह थी कि जाती निर्विशेष सकल पुरुष को ही युद्ध विद्या में पारदर्शित किये जाते थे तथा सकल राज्य रक्षार्थ आत्मनियोग हेतु बाध्य थे। इस तरह, उस समय विस्तृत राज्यखण्ड में प्रजा की संख्या अधिक रहने पर सामरिक विभाग के पुष्ट रहने का विशेष मौका मिला था। इसमें कोई संदेह नहीं है। तत् परवर्ती काल में त्रिपुरा का सैन्य संख्या उत्तरोत्तर ह्लास/कम होने का प्रमाण भी राजमाला आलोचना में मिलता है।

प्राचीन राजन्य वर्गो की बहुत सारी कीर्ति कहानी राजमाला में सन्निविष्ट नहीं हुई है। अभी उनका अनुसंधान करना दुःसाध्य है। बहुत सारी कीर्ति कहानी भी विलुप्त हुई है। दैवायतोनादि बहुत कीर्ति स्तम्भ आज भी विद्यमान रहकर त्रिपुरेश्वरगणों का विमल यश घोषणा करते आ रहे है। परन्तु तत् समूहों के स्थापनकर्ता के नाम निर्देशक सबन्धी कोई भी सूत्र नहीं मिलता है। त्रिपुरेश्वरगणों के प्रतिष्ठित बहुत सारे विग्रह देवोत्तर सम्पत्ति तथा व्यक्ति विशेष के हस्तगत होने पर इस अवस्था में, बहु कीर्ति सम्बन्ध में, प्रतिष्ठाता का नाम लोक विस्मृत हो गए है। उदाहरण स्वरुप महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा लोहगढ परगना संस्थापित शिव–विग्रह के बारे में उल्लेख किया जा सकता है। यह देवायतन त्रिपुर राजस्थ बक्सानगर में उत्तर पश्चिम कोण में अनुमानित एक कोस दूर में अवस्थित है। इस देवालय के सम्बन्ध में त्रिपुरा के भूतपूर्व राजस्व सचिव श्रृद्धास्पद श्रीयुक्त जगत चन्द्र सेन **B.A.** महाशय से प्रथम संवाद

....र..

(1) निम्नांक वाक्य समूहों द्वारा लक्ष्य, करोड़ इत्यादि संख्या द्वारा सैन्य गणना की प्रथा विद्यमान रहने के प्रमाण मिलते है।

1एक लक्ष नर यदि युद्ध कोरि मरे। तबे से कबन्ध नाचे गगन ऊपरे।। राजमाला प्रल छेंथुगफा खण्ड 58पृ	एक लक्ष नर यदि मर जाये रण में। तो कबन्ध एक नाचता है गगन ऊपर में।। राजमाला प्रल छेंथुगफा खण्ड 58पृ
2"मरे कोटि दस पैदल यबही। नाचत एक कबन्ध रण तबही।।"	कोटिदस पैदल मरें जब ही। नाचता एक कबन्ध रण में तब ही।।" तुलसीदास का रामायण, लंका काण्ड।

3 नागानामयुतं तुरंगनियुतं सार्द्ध रथानां शतं पत्तिनां दश कोटयो निपतिता एकः कबन्धो रणे।
(इति प्राचीनाः) शब्दकल्पद्रुम, 271 पृष्ठ

द्वितीयलहर –56

मिलते है। वहां दर्शन तथा तत् सम्बन्धी तथ्यानुसन्धान के उद्देश्य में मेरे सहकारी श्रीमान् महेन्द्र चन्द्र दास गये थे। वह शिव मन्दिर नवियाबाद ग्राम अवस्थित है, इसकी अवस्था अति जीर्ण तथा विशाल वट वृक्ष अन्यान्य झाड़ी के साथ भाराक्रान्त भग्न शरीर से दण्डायमान है। इसका परिसर 15फीट गुणे 15 फीट अन्दर 6 फीट गुणे 6 फीट परिसर विशिष्ट एक मात्र प्रकोष्ठ, इसकी दीवार मोटाई $4^{1}/_{2}$ फुट इसकी उँचाई 24 फीट होगी। उपर गुम्बद टूटे हुए है। इसके गर्त में शिलालिपि नहीं है। पूर्व में थी या नहीं, कोई बता नहीं सकता। मन्दिर के पश्चिम प्रान्त में एक क्षुद्र द्वार है। उनके कुछ अंश में वट वृक्ष अधिकार किये हुए है।

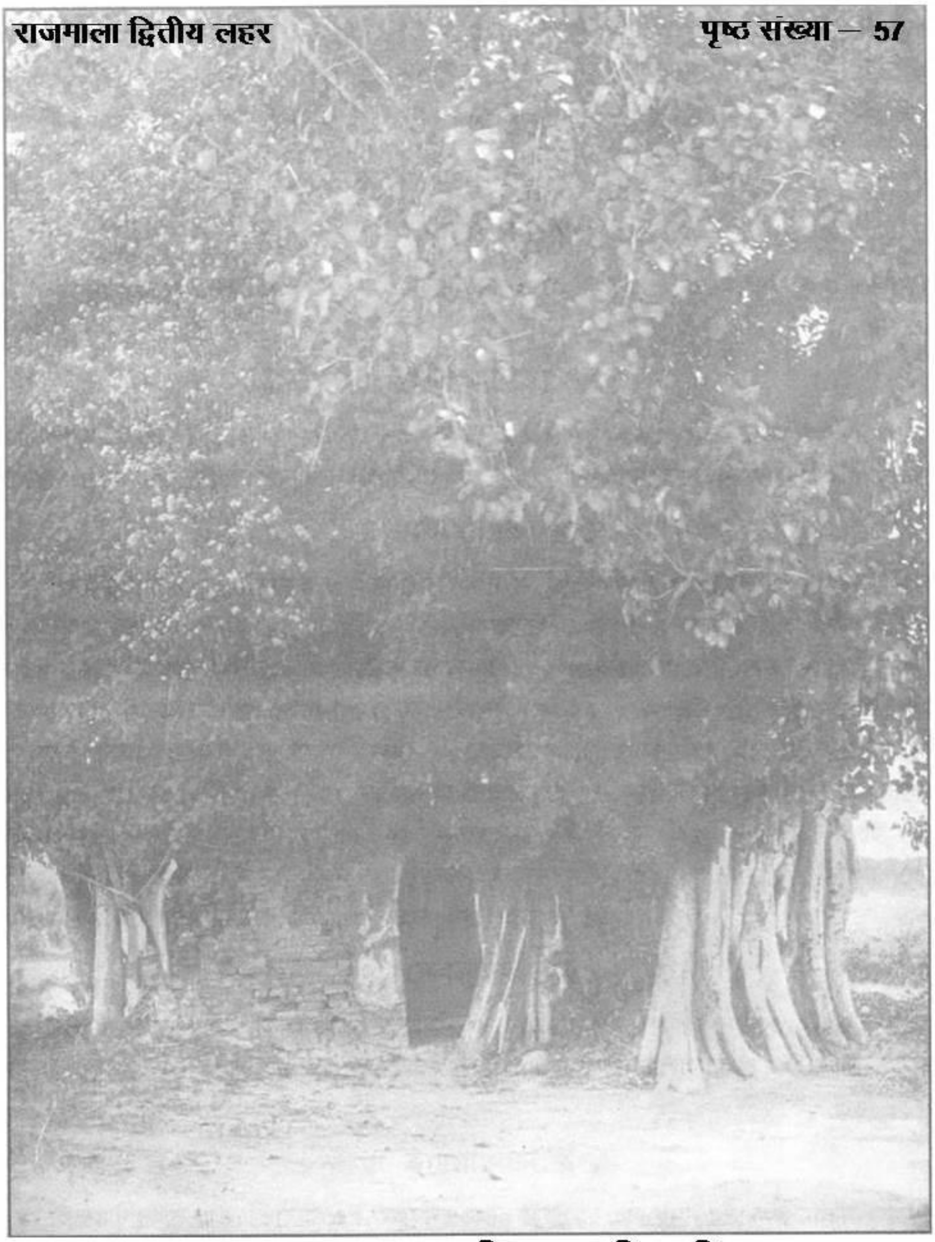
मन्दिर में कृष्णपत्थर निर्मित शिवलिंग प्रतिष्ठित है। देवता पूजा निमित्त मन्दिर संलग्न चतुर्थ पार्श्व में 72 द्रोण भूमि थी। उनका अधिकांश विनष्ट हुआ था। अभी कुमिल्ला कलेक्टर के रजिस्ट्री बुक में कुछ परिमाण भूमि स्थिर है।

कृष्णपुर ग्राम निवासी परशुराम शर्मा सेवाइत सूत्रों में इस देवालय तथा देवोत्तर सम्पत्ति के अधिकार में थे। उनके वंशधर नहीं रहने के कारण स्वयं के गुरुदेव को दान कर दिया था। जशोहर जिला के अन्तर्गत आउडिया (उडिया) निवासी गुरुवंशी श्रीयुक्त काली कुमार काव्यतीर्थ महाशय इस देवालय के वर्तमान सत्ताधिकारी हैं व कृष्णपुर के जय कुमार चक्रवर्ती वेतन लेकर देवता की सेवा तथा पूजा का कार्य करते है।

गंगामण्डल तथा लौहगढ के बारे में जानने के बहुत विषय है। परवर्ती लहर में उसके आलोचना की चेष्टा की जायेगी। उक्त विग्रह जो महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा प्रतिष्ठित है वह बहुतों को पता नहीं है। स्वर्गीय चन्द्र नाथ की तरह प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र में महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा श्री श्री स्वयम्भू नाथ का मन्दिर तथा महाराज गोविन्दमाणिक्य द्वारा स्वर्गीय चन्द्रनाथ विग्रह का मन्दिर निर्मित होने की बात भी वर्तमान काल में बहुत लोग जानते है। परन्तु स्वर्गीय अन्नपूर्णा तथा बडबानल का मन्दिर त्रिपुरेश्वरगण द्वारा निर्मित होने की बात प्रचलित रहने से भी वह जो धन्यमाणिक्य के आत्मज महाराज देवमाणिक्य द्वारा निर्मित हुए थे, यह बहुत लोग नहीं जानते है। यह मन्दिर स्वर्गीय त्रिपुरेश्वर वीरेन्द्र किशोरमाणिक्य बहादुर की अग्रमहिषि श्री श्रीमति महारानी प्रभावती महादेवी द्वारा पुनः संस्कृत हुए थे। उदयपुर शहर के वक्ष में अवस्थित बहुत प्राचीन मन्दिर का परिचय उद्धार करना वर्तमान काल में असाध्य हुआ है। इस सकल कारणों से प्राचीन कीर्ति का सम्यक विवरण संकलन की आशा नहीं है। फिर भी इस विषय में साध्यानुरुप चेष्टा की त्रुटि नहीं हो रही है। आज भी इस चेष्टा में विरत नहीं रहेगें। इसके फलाफल सम्पूर्ण उपर वाले की इच्छा पर निर्भर करते है।

श्रीकालीप्रसन्न सेन।

<u>द्वितीयलहर –57</u>
चित्र–6–57



महाराज धन्यमाणिक्य का शिवमन्दिर
लौह गढ़

द्वितीयलहर –58

सूची पत्र

ग्रन्थारम्भ

धर्ममाणिक्य खण्ड

प्रतापमाणिक्य खण्ड

धन्यमाणिक्य खण्ड

देवमाणिक्य खण्ड

इन्द्रमाणिक्य खण्ड

<u>द्वितीयलहर –59</u>

विजयमाणिक्य खण्ड

अनन्तमाणिक्य खण्ड

उदयमाणिक्य खण्ड

जयमाणिक्यखण्ड

मध्यमणि (टीका)

राजमाला द्वितीय लहर तथा उनके रचियता

<u>द्वितीयलहर –60</u>

पारिवारिक

धर्ममत

तीर्थ स्थान का विवरण

सामरिकबल और समर इत्यादि विषयक विवरण

चित्र सूत्री

<u>द्वितीयलहर –64</u>

मानचित्र

– – – – – –

कृतज्ञता स्वीकार

इस लहर में चित्र संग्रह विषय में, चित्र कला विधि सयुंक्त धीरेन्द्रकृष्ण देवबर्म्मन महाशय तथा स्वर्गीय चन्द्रनाथ तीर्थ का सेवायत तथा साहित्यक राय साहब श्रीयुक्त हरकिशोर अधिकारी विद्याविनोद महाशय से कुछ परिमाण में सहायता प्राप्त हुई है। इसके लिए उनका सदा आभारी रहूँगा।

श्रीकालीप्रसन्न सेन

द्विल –1

ॐ सरस्वतै नमः
(द्वितीय लहर)

मंगलाचरण

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।

प्रस्तावना	प्रस्तावना
अमरमाणिक्य(1) छिलो धर्म महाराज।	अमरमाणिक्य(1) थे धर्म महाराज।
सिंहासन बोसिलेक मंत्रीर समाज।।	सिंहासन बैठे ले मंत्री समाज।।
सेई तो सभाते छिलो बृद्ध सेनापति।	उसी सभा में थे प्रबुद्ध सेनापति।
रण चतुर नारायण छिलो तार ख्याति।।	रण चतुर नारायण थी उनकी ख्याति।।
अमरमानिक्य राजा ताके जिज्ञासिलो।	अमरमाणिक्य राजा ने उनसे पूछा।
महामणिक्येर(2) पोरे जतो राजा होइलो।।	महामाणिक्य(2) के पश्चात हुए जितने राजा।।
श्रेणीक्रमें कह तुमि से सब कथन।	श्रेणी क्रम से कहो तुम उनका कथन।
जे मते शासिलो राज्य प्रजार पालन।।	जिस तरह किया शासन और प्रजा पालन।।

———————

ग्रंथारम्भ

	धर्ममाणिक्य का संन्यास व्रत
महामनिक्य नृपति पुण्यतर नर।	महामाणिक्य नृपति पुण्यात्मा नर।
ताहार तनय छिलो पंच सहोदर।।	उनके तनय थे पंच सहोदर।।

....

(1) अमरमाणिक्य :– त्रिपुराधिपति। ये महाराज जयमाणिक्य के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 158 और त्रिपुरा से 113 पुरुष थे। इनके आदेश से राजमाला द्वितीय लहर की रचना हुई थी।
(2) राजमाला प्रथम लहर में महामाणिक्य के शासन काल तक का विवरण लिपिबद्ध हुआ है। इस लहर में उसके पश्चात जितने राजा हुए उसका विवरण मिलेगा।

द्विल –2

ज्येष्ठ पुत्र धर्म नाम सन्यासी होइया।	ज्येष्ठ पुत्र धर्म नाम सन्यासी होकर।
कर्म पाशे नाना तीर्थ गेलेक चलिया।।	कर्म पाश से नाना तीर्थ भ्रमण किया चलकर।।
नानातीर्थ भ्रमिया से पुन्य उर्पाजिलो।	नाना तीर्थ भ्रमण कर पुण्य उपार्जन किया।
बाराणासी क्षेत्रे पुनि आसिया रहिलो।।	वाराणसी घूम के आया दोबारा।।
एक दिन निद्रा युक्त बृक्ष मुले शुइलो।	एक दिन वृक्ष नीचे सो गया निद्रा युक्त होकर।
सर्पे पट(3) धरिया जे मस्तक रहिलो।।	फण(3) फैला सर्प ने किया छाया सिर पर।।

---

(3) पट –(बंगला में) फण।

जिनके मस्तक पर सर्प फण विस्तार करता है। वह व्यक्ति भविष्य में राजा बनेगा – हिन्दुओं का यही विश्वास है। इस बारे में राजमाला के समालोचक रेवरेण्ड लांग साहब ने कहा है

Dharma Manik, the 104th Raja travelled as a Fakir through various places; when at Benares his future exaltation was signified by a snake twined round his body with his head reared over his person. This is considered by the Hindus a presignification of future sovereignty; they derive the practice from the period when Bhagaban or Krishna slept in the Ksairoda Samudra on the back of the snake Ananta who covered him with his expended hood. **J.A.S.B. -Vol . XIX**

सर्प घटित नाना कथायें प्राचीन ग्रंथों में पाई जाती हैं। यहाँ पर केवल दो घटनाओं को उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा हैं।

(क) जब विशु सात वर्ष के थे, उस समय नित्य कर्मों के पश्चात क्लान्त होकर एक वृक्ष की छाया में सो रहे थे। सूर्य के प्रखर ताप से पसीना आ रहा था व अन्य सभी बालक दूरी पर थे। इसी समय एक प्राचीन सर्प ने आकर मस्तक के ऊपर अपना फण का विस्तार कर धूप का निवारण किया था। जब विशु की निद्रा भंग हुई, तब वह सर्प वन में चला गया। विशु ने घर में आकर माता से सविस्तार कहा

– राजाबली, देव खण्ड, सप्तम अध्याय

(ख) समसेर गाजी के बारे में मिलता है –

आर दिन गाजीबर मयदाने जाइया।
+ + + + रूप दराक्ष (वृक्ष) देखिया।।
छायाते चादर अर्द्ध डालिया तखन।
अर्द्धेक ऊपरे डालि डाकिया (ढाकिया)बदन।।
वृक्षेर सिखर परे कर मुंड दिया।
पाइया सितल बाइउ रहिलो सुतिया।।
हेनो काले आइखे (आंखे) निद्रा आचंवित लागे।
पशु पक्षी नाई ताहे दुप्रहर भागे।।
\+ + + + + + + +
ताते विधि परसने बसन ऊपरे।
भुजंगे संगमें दुई जराजरि कोरे।। इत्यादि

गाजीनामा पूथि

भावार्थ –दूसरे दिन गाजीवर ने मैदान में जाकर एक वृक्ष देखकर उसकी छाया में वृक्ष के नीचे एक चादर का आधा भाग बिछाकर और आधा भाग से अपना शरीर ढक दिया। वृक्ष की जड़ में हाथ के ऊपर अपना सिर रखकर सोने का प्रयास किया। भरी दोपहरी में कहीं कोई पशु पक्षी नहीं थे। ठंडी हवा चल रही थी। उनकी आंखें में हठात् नींद आ गई। दो सांप उनके कपड़े के ऊपर आकर संगम क्रिया करने लगे – गाजीनामा।

द्विल –3

कौतुक नामेते एक कनौजिया(1) द्विज।	कौतुक नाम के एक कनौजिया(1) द्विज।
सस्त्रीक होइया रहे बाराणसे निज।।	रहते थे वाराणसी स्वयं सस्त्रीक।।
सर्प पट धरियाछे सन्यासिर माथे।	सर्प ने उठाया फण सन्यासी के सिर।
ब्येस्तते(2) जागाय द्विज सन्यासी के पथे।	व्यस्तता(2) से जगाया सन्यासी को फिर।।
जिज्ञासिलो बिप्रे ताके कोन देशी लोक।।	पूछा द्विज ने तुम वासी किस देश के।
एखाने थाकिया केने पाव एत दुःख।	यहाँ क्यों रहते हो तुम इतना क्लेश से।।
सन्यासिये बोले आमि जातिये त्रिपुर(3)।।	कहा सन्यासी ने मैं हूँ जाति से त्रिपुर(3)।
अग्नि कोने राज्य आमा होय बहु दूर।	अग्नि कोण में घर हमारा है बहुत दूर।।
ब्राह्मणे बोलेन तुमि निकृष्ट ना होय।।	कहा ब्राह्मण ने तुम नहीं हो निकृष्ट।
देशे चलो राज्य पाबा बोलिलो निश्चय्।	चलो देश राज्य मिलेगा यह है स्पष्ट।।
ए कथा सुनिया राजा ईषत् हासिलो।।	यह बात सुन राजा ने दिया थोड़ा सा हंस।
आपनी जाइबा संगे बिप्र के बोलिलो।।	कहा चलेंगे आप भी, जहां मेरा देश।।
कौतुक ब्राह्मण बोले जाबो आमि संगे।	कौतुक विप्र ने कहा जाउंगा मैं संग।
रांगामाटी(4) बंचिब जे त्रिपुराते रंगे।।	रांगामाटी(4) को सजाना है त्रिपुरा के रंग।।
सत्य कोरे ब्राह्मणे राजा ये सत्य कोइलो।	ब्राह्मण ने संकल्प लिया, राजा ने भी किया।
विश्वेश्वर पूजा कोरि बासाते आसिलो।।	कर पूजा विश्वेश्वर की, घर लौट आया।।
सेई काले देशी लोक गेलेक तथाते।	इसी समय देश से लोग गये उन्हें लेने।
राजा कोरि बार हेतु धर्म के आनिते।।	राजा बनाने हेतु धर्म को ले जाने।।
बारानस स्थाने लोक चर्चिलो(5) जखन।	बनारस में लोगों ने खोजा(5) उन्हें बहुत।
कौतुक ब्राह्मणे पाइया आनिलो तखन।।	कौतुक ब्राह्मण खोज लाये वहां तब।।
राज पुत्र होइयाछे सन्यासी स्वरूप।	राज पुत्र होकर यह सन्यासी स्वरूप।
देखिया देशेर लोक मनेते बिरूप।।	देख लोग स्वदेश का, मन में हुए विरूप।।
नमस्कार कोरि कहे जतेक प्रसंग।	नमस्कार कर कहा सभी ने सारा प्रसंग।
राजा होइबारे चल ना छाडिबो संग।।	राजा होने चलो वहा, नहीं छोडूंगा संग।।
तोमा पिता महामाणिक्य शीतला(6) होइया।	तुम्हारे पिता, महामाणिक्य बसन्त(6) रोग होकर।
बैकुंठ निवासी होइलो पंच सुत राखिया।।	बैकुण्ठ वासी हो गये पंच पुत्र रखकर।।

---

(1) कनौजिया –कान्यकुब्ज का रहने वाला। (2) ब्योस्तते –व्यस्तता से।

(3) त्रिपुरा वासी होने के नाते उन्होने जाति में अपने को त्रिपुर बताया। जैसे बंग देश वासी अपने को बंगाली, उड़ीसा वाले अपने को उड़िया कहते हैं।

(4) रांगामाटी –त्रिपुरा की राजधानी उदयपुर का प्राचीन नाम रांगामाटी था।

(5) चर्चिलो –अनुसंधान किया।

(6) शीतला –बसन्त रोग (Pox)

द्विल –4

तोमा चारि भाई आछे रणेर माझार।
सेनापति नाहि दिछे राजा कोरिबार।।(7)
दस सेनापति मध्ये राजा होते चाय।
ना माने काहाके केहो मने भय पाय।।
पात्र मित्र सकले तोमाके आकांक्षिया।
आमा सब पाठाइछे एई निवेदिया।।
शीघ्र चलो राजा होइबा राजा शून्य देश।
विलम्ब ना कोरो एई कोहिलो विशेष।।
ताहा सुनिय राज सुत कोहिलेक रंगे।(8)
कौतुकादि अष्ट विप्र लोइलेक संगे।।
कोतो दिने आसिलेक देश सन्निहिते।
सैन्य सेनापति आसे आगु बाडी निते।।
पंच भ्रातृ मिलिया कोरिलो आलिंगन।
राजपद धुलि लोइलो सेनापति गण।।

रण मध्य फंसे तुम्हारे चारों भ्राता।
सेनापति नहीं होने देता(7) उन्हें राजा।।
दस सेनापति में राजा होना कोई चाहता उनमें।
न मानते किसी को वे, सब डरते हैं मन में।।
पात्र मित्र सबको है अब तुम्हारी आकांक्षा।
भेजा हैं यहाँ, न करो देर, तुम्हारी है प्रतीक्षा।।
होगें राजा शीघ्र चलो राजा शून्य है देश।
न करो विलम्ब तुम अब, कहता हूँ विशेष।।
यह सुन राजा तनय(8) चले खुश होकर।
कौतुकादि आठ विप्रों को अपने साथ लेकर
कितने ही दिनों पर लौटे देश अपने।
सेनापति आये उन्हें आगे लेने।।
पंचभ्राताओं ने किया परस्पर आलिंगन।
राज पद की धूलि लिये सेनापति गण।।

———

धर्ममाणिक्य खण्ड

शुभ क्षणे शुभ दिने कोरिलेक राजा।
सिंहासने बोसाइलो मिलि सब प्रजा।।
प्रथम बयस काले बहु धर्म कोइलो।
सेई कारणे धर्ममाणिक्य नाम होइलो।।
काला खाँ, गगन खाँ और खाँ छामथुम।
आमात्य होइलो तारा शत्रु कालधूम।।(9)
तेरशत आसि शके श्री धर्ममाणिक्य।
नृपतिर नीति धर्म बोलिते अशक्य।।(10)
चिरकाल राज्य पालिलेक महाराजा।
शत्रु नाहि छिलो तार बंचिलेक प्रजा।।

———

धर्ममाणिक्य खण्ड

शुभ क्षण शुभ दिन पर किया उन्हें राजा।
सिंहासन बैठाया, मिलकर सारी प्रजा।।
किया बहुत धर्म, प्रथम उम्र में अपने।
इसी कारण धर्ममाणिक्य नाम रखा सबने।।
काला खाँ, गगन खाँ और खाँ छाम थुम।
आमात्य हुए, शत्रु हित काल धूम।।(1)
1380 शक में धर्ममाणिक्य।
नृपति के नीति धर्म कहते अशक्य।।(2)
चिरकाल तक राज्य पाले महाराजा।
शत्रु था नहीं, पाला पोषा अपनी प्रजा।।

---

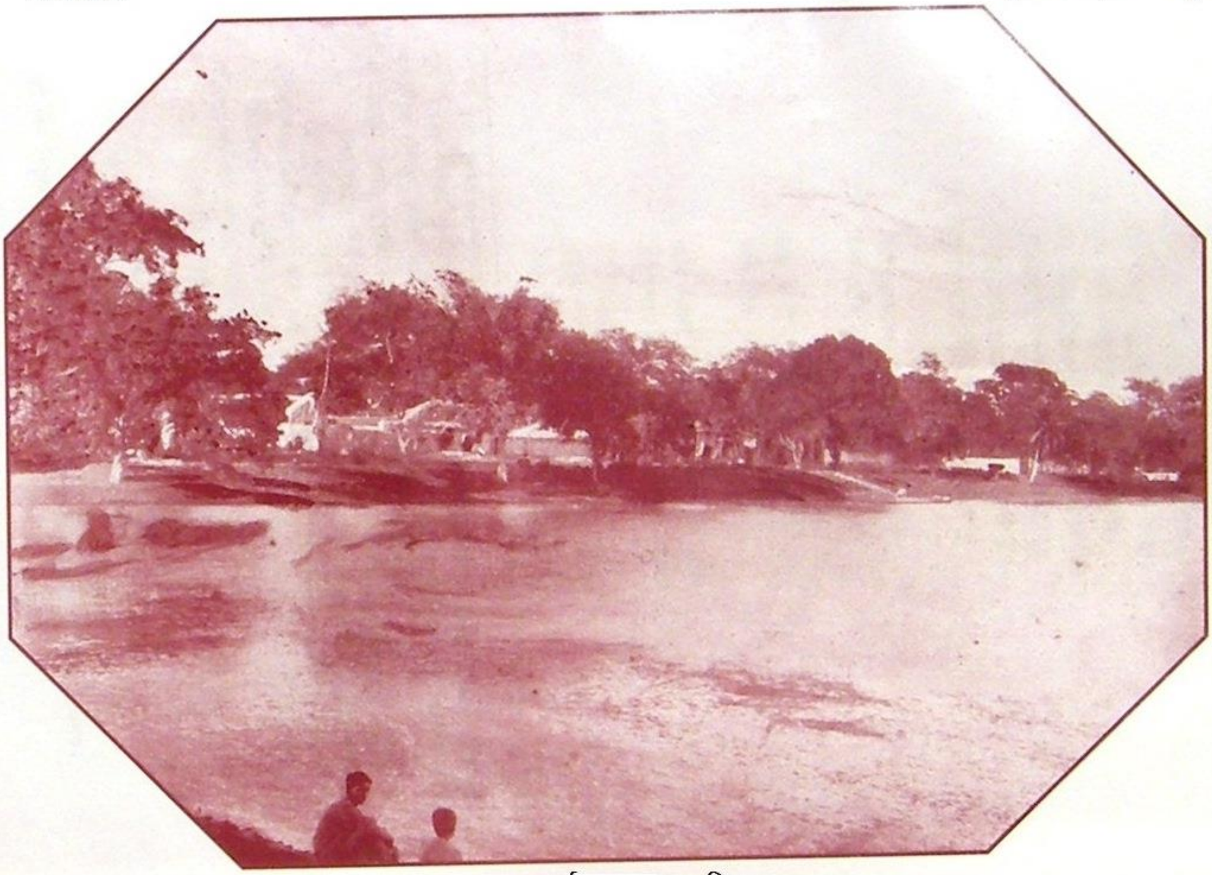
(7) तुम्हारे चारों भाई राज्य लालसा में युद्ध कर रहे हैं, किन्तु सेनापति गण उन्हें राजा होने नहीं देना चाहते।

(8) पाठान्तर –हेनो सुनि राज पुत्र चलिलेक रंगे। (फिर सुना कि राजपुत्र खुश होकर चल पड़े)

(9) शत्रु काल धूम –शत्रु के लिए ये यम के समान थे और शत्रु विध्वंस के लिए धूमकेतू के समान थे।

(10) अशक्य –असाध्य और दूसरों के सामर्थ्य से परे हो।

द्विल –5
चित्र Page-05



धर्म नगर –कु मिल्ला

द्विल –5

परोकाल चिंति राजा चित्त शांताइलो।(3)	हुआ मन शांत कर परलोक का चिंतन।(3)
भूमिदान कोरिबारे ब्राह्मण आनिलो।।	भूमिदान करने हेतु ले आये ब्राह्मण।।
धर्म सागर(4) नामेते जलाशय दिया।	धर्म सागर(4) नाम से खनाया जलाशय।
तार चारि पारे सब द्विज बोसाइया।।	उनके चारों किनारे दिया द्विजों को आश्रम।।
महाविषुवेते(5) दिलो भूमि उत्सर्गिया।	महाविषु(5) में किया भूमि उत्सर्गण।
कौतुकादि बाणेश्वर ब्राह्मण अर्चिया।।	कौतुकादि बाणेश्वर ब्राह्मणों का करके अर्चन।।
कौतुकादि ब्राह्मणेते कोरे भूमिदान।	कौतुकादि ब्राह्मणों को करके भूमिदान।
ताम्र पत्रे लिखि दिलो वचन प्रमाण।।	ताम्र पत्र में लिखा अपना वचन प्रमाण।।
अथ श्लोक	अथ श्लोक
चन्द वंशोद्भवः स्वाप महामाणिक्यजः सुधीः।	चन्द वंशोद्भवः स्वाप महामाणिक्यजः सुधीः।
श्रीश्रीमद्धर्म माणिक्य भूपश्चन्द्रकुलोद्भवः।।	श्रीश्रीमद्धर्म माणिक्य भूपश्चन्द्र कुलोद्भवः।।
तथार पयार	तथार पयार
चन्द्र बंशेते महामाणिक्य नृपवर।	चन्द्र वंश में जन्मे महामाणिक्य नृपवर।
तानपुत्र श्री धर्ममाणिक्य शशधर।।	उनके पुत्र श्री धर्ममाणिक्य शशधर।।
श्लोकः	श्लोक
शाके शून्याष्ट विश्वाब्दे वर्षे सोम दिने तिथौ।	शाके शून्याष्ट विश्वाब्दे वर्षे सोम दिने तिथौ ।
त्रयोदश्यां सिते पक्षे मेषे सूर्यस्य संक्रमे।।	त्रयोदश्यां सिते पक्षे मेषे सूर्यस्य संक्रमे ।।
तथार पयार	तथार पयार
तेर शत आशी शके सोमवार दिने।	तेरह सौ अस्सी शक सोमवार का दिन।
शुक्ल पक्ष त्रयोदशी मेष संक्रमणे।।	शुक्ल पक्ष त्रयोदशी मेष संक्रमण।।

....(3)

शान्ताइलो –(बंगला में है) इसका अर्थ होता है शान्त किया।

(4) कुमिल्ला शहर के मध्य स्थल में सुनील और स्वच्छ जल से पूर्ण जो विशाल सरोवर श्री कृष्ण वक्षः स्थित कौस्तुभ मणि की तरह शोभा पा रहा है, वही महाराज धर्ममाणिक्य की उज्जवल कीर्ति है। धर्म सागर, इसके पूर्व के किनारे पर कुमिल्ला का जिला स्कूल है।

कैलारगढ़ में (कसबा में) और एक धर्म सागर है। वह भी इसी महा पुरूष की कृति है।

(5) महा विषु –सूर्य मीन राशि से जिस समय मेष राशि में जाता हैं, उसे मेष संक्राति कहते है। इस समय दिन रात समान होते हैं, इसी से इसे महाविषु कहते हैं। इसका दूसरा नाम चैत्र संक्रांति है। इस संक्रमण के दिन को अतिशय पुण्य दिन माना जाता है। इस समय यव का सत्तू और जल–पूर्ण घट दान करने से परमागति प्राप्त होती है।

यथा – एष धर्म घटोदत्तो ब्रह्म विषणु शिवात्मक।
अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः।।
वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने।
ददाति सुरराजेन्द्रः स याति परमं गतिम्।

(तिथि तत्व)

इस दिन पितृ लोक के उद्देश्य से जल पूर्ण घट, छत्र और पादुकादि दान का विशेष महत्व है।

द्विल –6

ताम्र पत्रे लिखि दिलो ए सब वचन।	ताम्र पत्र में लिखा ये सब वचन।
आमा वंशे मारि जेबा होय तो राजन।।	मेरे वंश में होगे यहाँ जो राजन।।
ताहार दासेर दास होइबेक आमि।	उनके दासों का दास होउंगा स्वयं।
आमाकीर्ति ब्रह्मवृत्ति ना लांघिओ तुमि।(1)	मेरी कीर्ति ब्रह्म वृत्ति कभी न करना लघंन।(1)
एई मते महाराजा श्री धर्ममाणिक्य।।	इसी तरह महाराज श्री धर्ममाणिक्य।।
यथेष्ट कोरिला दान कहिते अशक्य।।	यथेष्ठ दिया दान, कहने से अशक्य।
पूर्ब राजमाला छिलो त्रिपुर भाषाते।	पहले राजमाला था त्रिपुर भाषा में।
पयार गांथिलो सब सकले बुझिते।।(2)	छन्द बनाया जैसे आये सबकी समझ में।।(2)
सु–भाषाते(3) धर्मराजे(4) राजमाला कोइलो।	सुभाषा में(3) धर्म राजा(4) ने राजमाला किया।
राजमाला बोलिया लोकेते नाम होइलो।।	राजमाला कहकर, नाम लोगों में हुआ।।
बत्रिस बत्सर राजा राज्य भोग छिलो।	बत्तीस सालों तक राज्य भोग किया राजा।
सुमधुर बाक्ये राजा प्रजाके पालिलो।।	सुमधुर वाक्यों से राजा ने पाला अपनी प्रजा।।
शीतला होइया राजा स्वर्ग आरोहण।	बसन्त रोग से राजा का हुआ स्वर्गारोहण।
श्रीधन्य प्रताप दुई ताहार नन्दन।।	श्रीधन्य और प्रताप थे उनके दो नन्दन।।
———	———
प्रतापमाणिक्य खण्ड	प्रतापमाणिक्य खण्ड
प्रताप कनिष्ठ पुत्र लोके राजा कोरे।	प्रताप, कनिष्ठ पुत्र को, लोगों ने किया राजा।
अधार्मिक देखि ताके लोके मारे पोरे।।	अधार्मिक देख उसे मारे उसकी प्रजा।।
महाबलबंत देखि दिने ना मारिछे।	महाबलबन्त देख मार न सके दिन में।
सेनापति सबे चक्रे रात्रिते बधिछे।।	कर चक्रांत सेनापतियों ने वध उसे रजनी में।।
हुलस्थूल भय बहु रांगामाटी होइलो।	बहुत धुल स्थूल हुआ तब रांगामाटी में।
पुरोहित गुप्त भाबे धन्य के राखिलो।।	पुरोहित ने छिपाया धन्य को गुप्त भाव से।।
परस्पर राजा होइते चाहे सेनापति।	परस्पर राजा होना चाहे सेनापति।
ना माने काहारे केहो प्राण भय अति।।	न मानता किसी को कोई, प्राण भय अति।।
श्रेष्ठ बडो सेनापति मनेते भाविया।	श्रेष्ठ बड़े सेनापति, सोचा अपने मन।
बिबेचना कोरिलेक स्थिरता होइया।।	स्थिर होकर मन में, किया एक विवेचन।।

---

(1) सनन्द का विवरण अगले पृष्ठ में।

(2) यह राजमाला प्रथम लहर की बात है।

(3) राजमाला त्रिपुर भाषा में बंगाली में रचित हुई थी। यहाँ पर बंगला भाषा को सुभाषा(सु भाषा) कहा गया है।

(4) धर्मराज –धर्ममाणिक्य।

द्विल –7

धन्य नामे आछे एक नृपति नन्दन।	धन्य नाम है एक नृपति नन्दन।
ताहाके कोरिबो राजा कोरि शुभ क्षण।।	उसे ही करूंगा राजा देख शुभ क्षण।।
एहा भावि गेलो तारा धात्रि आछे यथा।	यही सोच गये धात्री मां के यहाँ।
जिज्ञासिलो धन्य तुमि राखियाछो कोथा।।	पूछा उनसे, धन्य को, रखे हो कहां।।
राजा कोरिवार तरे चाहि ये ताहारे।	राजा करने के लिए चाहता हूँ उसे।
शुभ दिने राजा कोरि देव आनि तारे।।	शुभ दिन में राजा करने लाओ अभी उसे।।
ए कथा सुनिया धात्री हरिष विषाद।	यह बात सुन धात्री को हुआ हर्ष विषाद।
मारिबार चाहे बुझि ना जानि प्रमाद।।	अगर मारना चाहे सोच मन में किया प्रमाद।।
धात्री बोले जानि धन्य गेछे कोन स्थान।	धात्री बोली मैं जानती हूँ, वह गया किस स्थान।
तुमि सत्य कोइले आमि विचारि संधान।।(4)	यदि तुम कहते हो सत्य, करूं मैं सन्धान।।(4)
सत्य कोरि सेनापति शालग्राम छुइलो।	प्रतिज्ञा कर सेनापति ने छुआ शालग्राम।
पुरोहित घरे छिलो संकेते बोलिलो।।	कहा, पुरोहित घर में करो उसका सन्धान।।
परे दश सेनापति सैन्य सज्जा कोरि।	पश्चात दसों सेनापति सैन्य सज्जा करके।
पुरोहित गृहे गेलो हस्ती अश्वे चडि।।	पुरोहित के घर गये हस्ती घोड़ा चढ़ के।।
माचांगेर(5) नीचे होइते धन्यके आनिछे।	मचान(5) के नीचे से धन्य को ले आये।
भय युक्त मधुर वाक्य बालक बोलिछे।।	भययुक्त मधुर वाक्य बालक के मुख भाये।।
एकादश वर्ष होइछे धन्येर बयस।	एकादश वर्ष हुआ है धन्य का वयस।
बालक मारिया नहे राखिओ कुयश।।	बालक को मारकर न करना अपना कुयश।।
पुरोहित घरे आमि सेवक होइया।	पुरोहित घर में मैं रहूँगा सेवक बनकर।
एक मुष्टी अन्न खाई उच्छिष्ट फेलिया(6)।।	एक मुठ्ठी अन्न खांउगा जूठन फेंककर।।(6)
पुरोहिते बोले सत्य कराइछि आमि।	कहा पुरोहित ने कराते शपथ इनकी हम।
मने भय ना करिबा राजा होबा तुमि।।	मन में भय न करना राजा बनोगे तुम।।

---

(4) पाठान्तर –"आमि तो ना जानि धन्य गेलेन कोथाई। तुमि सत्य कोरो आमि विचारिया चाई।।" (अर्थात मैं नहीं जानता धन्य कहां है। तुम प्रतिज्ञा करो उसे नहीं मारोगे तो देखती हूं वह कहां है।)

(5) माचांग –वंशमंच, मचान। सेनापतियों के आगमन से भयभीत होकर प्राण रक्षा निमित्त कुमार धन्य बांस के मचान के नीचे छिपे थे।

(6) पाठान्तर –पुरोहित घरे, आमि सेवक होइया। एक मुष्टि अन्न खाइमु उच्छिष्ट फेलिया।। (पुरोहित के घर में सेवक होकर रहूँगा और जूठन फेंकने का काम करके बदले में एक मुष्ठी अन्न ही खाउंगा)। प्राण भय से भीत राज–कुमार ने सेनापतियों की कृपा दृष्टि के लिए इस तरह की दैन्य याचना की थी।

द्विल –8

भार्गवे(7) आनिया येनो बलि राजा कोरे।(8)	भार्गव(7) को लाकर जैसे बलि राजा हुआ।(8)
पुरोहिते धन्य दिलो सबार गोचरे।।	पुरोहित ने सबके सामने धन्य को दे दिया।।
धन्येरे देखिया तबे यतो सेनापति।	धन्य को देख तब सभी सेनापति।
विनय पूर्वक सबे कोरिलो प्रणति।।	विनय पूर्वक सब ने की उनकी प्रणति।।
अधार्मिक देखि तोमार भ्रातृके मारिलो।	अधार्मिक देख तुम्हारे भाई का वध किया।
राजा कोरिबारे तोमाय निबार आसिलो।।	राजा करने हेतु तुम्हें यहाँ से लेने आया।।
तोमार पितार धर्म स्मरिया आपने।	तुम्हारे पिता का कार्य स्मरण कर स्वयं।
पालह सकल प्रजा जार जेई स्थाने।।(9)	पालन करो सभी प्रजा को, जो है जिस स्थान।।(9)
———	———
धन्यमाणिक्य खण्ड	धन्यमाणिक्य खण्ड
ए बोलिया मंत्रीसबे स्नान कोराइलो।	यह कहकर मंत्रियों ने कराया स्नान।
सिंहासने बोसाइया प्रणाम कोरिलो।।	बैठाया सिंहासन पर, किया प्रणाम।।
लोके धन्य बोलिया तखने कोहिलेक।	लोगों ने धन्य धन्य कहा उन्हें तभी।
श्रीधन्य माणिक्य ख्याति होइलो अभिषेक।।	करके अभिषेक हुई श्रीधन्य माणिक्य की ख्याति।।
बडो सेनापति(10) दिलो आपनार कन्या।	बडे सेनापति ने उन्हें दी अपनी कन्या।(10)
महारानी कमला नाम पृथिबीते धन्या।।	महारानी कमला विश्व में हुई धन्य।।
बंगभाषा गीत राजा ताते ना बुझिलो।	बंगभाषा गीत नृप ने वहा नहीं समझा।
प्रेत चतुर्दशी गान वर्णिया सुनिलो।।(11)	प्रेत चतुर्दशी गीत वर्णन कराके सुना।।(11)

....

(7) भार्गव – भृगुनन्दन, शुक्राचार्य।

(8) श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के 15वें अध्याय में लिखा है। दैत्यराज बली देवताओं के साथ युद्ध में पराजय और इन्द्र द्वारा निहत हुए थे। निज गुरू शुक्राचार्य की कृपा से पुनः जीवित हो गये और उन्हीं के अनुग्रह से स्वर्ग पर विजय प्राप्त की और देवताओं को खदेड़ कर इन्द्र की अपार सम्पदा को प्राप्त किया था। सेनापतियों के हाथों से मृत्यु से आशंकित धन्यमाणिक्य नें पुरोहित के प्रयत्न से राज्य प्राप्त किया। इसे ही मृत बली के पुनर्जीवन के साथ राजत्व प्राप्ति को बली के साथ तुलना की गई।

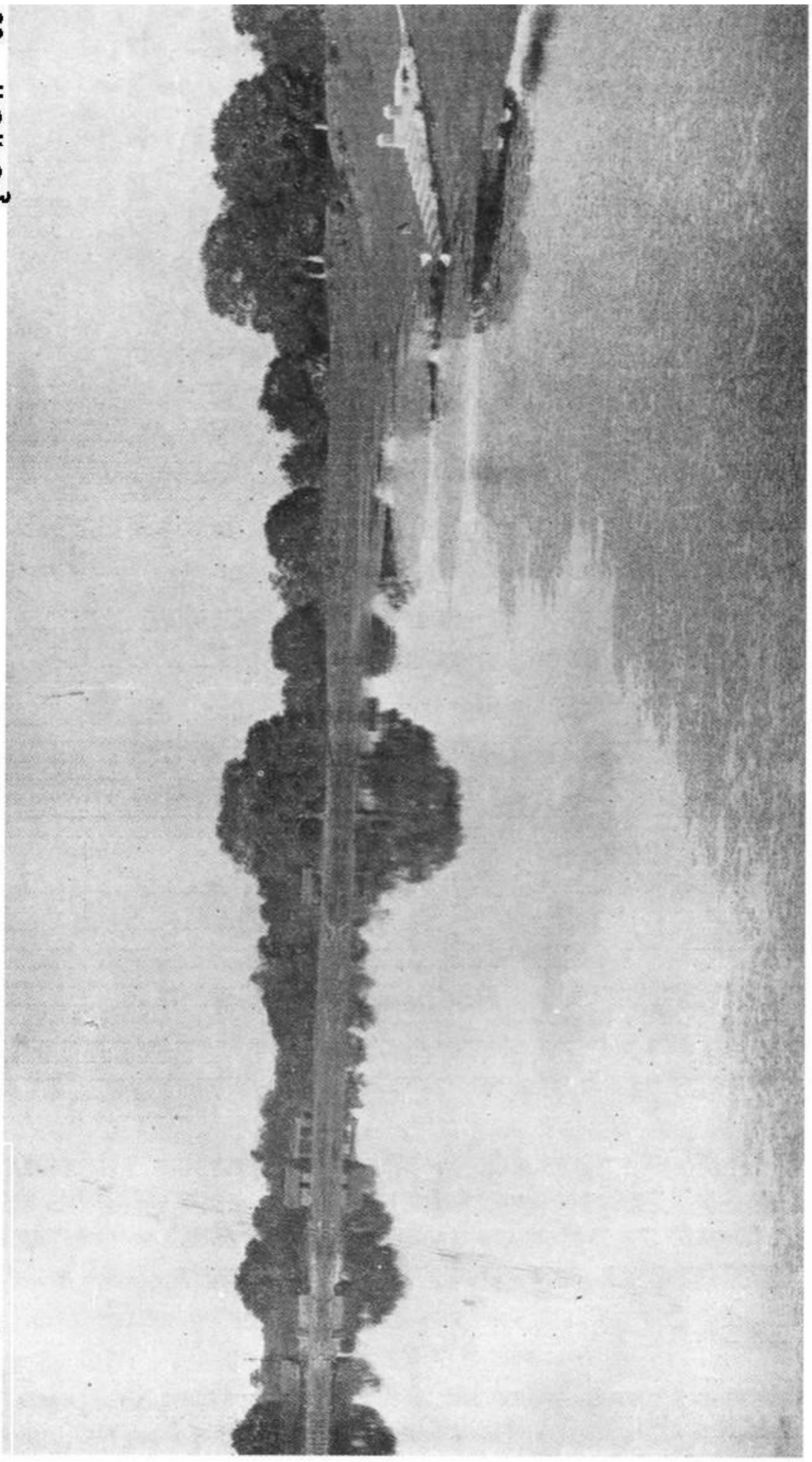
(9) जो व्यक्ति दरबार में जैसा स्थान पाने योग्य है। उसे अपने पितृ निर्धारित नियमानुसार स्थिर रखकर प्रजा का पालन करो।

(10) बड़ो सेनापति –इनका नाम था दैत्यनारायण। ये प्रधान सेनापति थे। धन्यमाणिक्य की महिषी इनकी कन्या थी। उनका नाम कमला महादेवी था।

(11) पाठान्तर – "बंगभाषाये तेंई कथा ना बुझिलो।
प्रेत चतुर्दशीर नाट सुभाषाये शुनिलो।।

अर्थात बंग भाषा में उन्होनें इन बातों को नहीं समझा। प्रेत चतुर्दशी के अवसर पर सविस्तार वर्णन कराके सुना। सुभाषा में अर्थात त्रिपुर भाषा में उन्हें सुनाया गया।"

अश्विन महीने की कृष्णा चतुर्दशी को प्रेत चतुर्दशी या यम चतुर्दशी कहते हैं। इस तिथि में भूत के उपद्रव के निराकरण के लिए उस दिन नाना कार्य किये जाते हैं। स्कन्ध पुराण, विष्णु खण्ड के नवम् अध्याय में प्रेत चतुर्दशी का उल्लेख मिलता है। यह कार्तिक महीने की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी तिथि



कमला सागर – कस्बा

द्विल –9

राम कवि सृजिलेक सेई तो नृपति।(12)	राम कवि के रचे गीत सुने नृपति।(12)
श्रीधन्य माणिक्य राजार ताते होइलो प्रीति।।	श्रीधन्य माणिक्य के मन में सुनकर हुई प्रीति।।
नाना स्थाने कमला जे दीर्घिका दियाछे।(13)	नाना स्थान कमला ने किया दीर्घिका खनन।(13)
पुण्य हेतु पुष्करिणीते तृण ना जन्मिछे।।	पुण्य हेतु दीर्घिका जन्मा नहीं तृण।।
देब गुरू द्विजे भक्ति सुचरित्रा अति।	देव गुरू द्विज भक्ति सुचरित्रा अति।
विष्णुर कमला हेनो, शिबेर पार्वती।।	विष्णु की कमला जैसी शिव की पार्वती।।
अनेक करिलो धर्म शुनो महाराज।	अनेक किया धर्म–काज सुनो महाराज।
विस्तारि कहिलो पुनः होइबेक व्याज।।	विस्तार से कहने पर पुनः होगा व्याघात।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा होइया नरपति।	श्रीधन्य माणिक्य राजा होकर नरपति।
बत्सरेक हेन मते पालिलेक क्षिति।।	एक साल इसी तरह पाला स्वयं क्षिति।।
सेनापति सकलेर अनुमति बिने।	सभी सेनापतियों की बिना अनुमति।
किछु कर्म नृपति ना कोरे कोन दिने।।	कोई कार्य किसी दिन न करे नृपति।।
एई मते राज कार्य चलिलो तखन।	इसी तरह राज काज चलता उन दिनों।
पुरोहिते नृपतिये मंत्रणा रचन।।	पुरोहित नृपति को देते रहे मंत्रणा।
दश सेनापति स्थाने सैन्य बहुतर।	दस सेनापतियों के घर सेना बहुतर।।
राज सैन्य मध्ये आमि विप्र एकेश्वर।।(14)	राज सैन्यों में हूँ मैं विप्र एकेश्वर।(14)
सहस्त्रेक सैन्य पंच सहस्र पाइछे।(15)	कोई सहस्र कोई पंच सहस्त्र पाया।।(15)
सेनापति सबे सैन्य बांटिया लोइछे।।	सेनापतियों ने सेनाओं को बांट लिया।।

थी। बंग भाषा में प्रेत चतुर्दशी गीत का प्रचलन था। राजमाला से यह तथ्य जाना जाता है। महाराज के इस गीत को न समझ पाने पर सुभाषा में पुनः इसकी रचना हुई थी। इस सुभाषा शब्द द्वारा संस्कृत भाषा को उल्लेख कर कहा गया है या नहीं यह स्पष्ट नहीं हुआ है।

(12) पाठान्तर –''राम कवि सृजिलेक सेई नृत्य गीत। श्रीधन्य माणिक्य राजार होइलेक प्रीत।।'' (राम कवि ने नृत्य गीत का सृजन किया जिसे सुनकर श्रीधन्य माणिक्य राजा प्रसन्न हुए)। इस वाक्य से जाना जाता है कि प्रेत चतुर्दशी के गीत राम कवि के द्वारा रचित है। इस कवि का परिचय या उनके रचित गीत इस समय पाने का कोई उपाय नहीं है। सम्भवतः यह प्रेतभय निवारक रामायण होगा।

(13) कसबा के करीब ''कमला सागर'' तालाब महारानी कमला देवी की समुज्जवल कीर्ति है। इस सागर का जल इतना उत्कृष्ट है कि उसे पीने पर लोग रोग मुक्त होते हैं, साधारण जन समाज में यह बात प्रचलित है। आसाम बेंगाल रेलवे ''कमला सागर''(भारत) रेल स्टेशन, कसबा (अब बंगला देश में) के करीब है। उस सरोवर के नाम से कमला सागर स्टेशन का नामकरण हुआ है। उदयपुर में भी एक कमला सागर है।

(14) पाठान्तर –''दश सेनापति घरे हसम बिस्तर। राज सैन्य आनि मात्र होइछि ऐकेश्वर।।'' (दस सेनापतियों के घर में बहुत सी सेनायें हैं। राज सैन्यों में केवल मैं ही एक राजा हूँ) प्राचीन काल में त्रिपुरा राज्य के सेनाओं को ''हसम'' कहा जाता था। इस समय भी हसम भोजन की व्यवस्था है। इस लहर की टीका देखिये)।

(15) पाठान्तर –''केह सहस्र केहो पंच सहस्र पाइछे।''

द्विल –10

त्रिलोचन राजा बधि एमत होइछे।	त्रिलोचन राजा वध इसी तरह हुआ।
सेनापति सकले राजाके बोधियाछे।।	सेनापति सभी ने राजा का वध किया।।
आपना होइते राजा मारे सृष्टि कोरे।	स्वयं वे मारते राजा और करते सृष्टि।
एहा भाबि चित्त आमार सदा थाके डरे।।	यह सोच सब, मेरे मन में रहती है भीति।।
सैन्य सेना काड़ि लोइले निर्बली होइबो।	सैन्य सेना ले लेने पर दुर्बल हो जाउंगा।
राजा बलबन्त हेनो तबे भय पाइबो।।	राजा बलवन्त की तरह तब भय पाउंगा।।
असम्मते सैन्य सब तुमि काड़ि निते।	असम्मति से सेना सब तुम्हारे लेने पर।
ना जानि कि करे तारा आमार सहिते।।	क्या जानें क्या करेगें वे मेरे साथ आकर।।
कोलाहल कि कारणे बाड़ाइते चाहो।	कोलाहल किस कारण बढ़ाना चाहते हो।
नखे छेदि बृक्ष केनो कुठार लागाहो।।(1)	नख छेदन योग्य वृक्ष पर क्यों कुठार लगाते हो।।(1)
महा व्याधि जन्में यदि अधिकांग होय।	महा व्याधि होने पर यदि अधिकांग हो जाये।
विकृति आकारे हेरि लज्जा ये जन्माय।।	विकृत आकार देख लज्जा ही तो आये।।
अस्त्र दिया छेद कोरि तारे यदि फेले।	अस्त्रोपचार से छेदन कर उसे अलग करने पर।
तबे ताके उपहास्य ना कोरे सकले।।(2)	उसे उपहास्य तब नहीं करता कोई भी आकर।(2)
अति शिष्ट ना होइबो नाति क्रोध मति।	अतिशिष्ट न होना है और न क्रुद्ध मति।
एई मते बुझाइछे शुक्र बृहस्पति।।(3)	ऐसा कहते हैं शुक्र और बृहस्पति।।(3)
राजसिक भाब यदि राजार ना होय।	राजा का ना हो यदि राजसिक भाव।
अति शिष्ट होइले राजा जीवन संशय।।	अतिशिष्ट राजा का होता सदा जीवन सशंय।।
कहिलो तोमाते युक्ति आमि पुरोहित।	कहा तुम्हें युक्ति, मैं हूँ राज पुरोहित।
आमा कथा मते चलो पाइबा विहित।।	मेरी बातें मान चलो पाओगे विहित।।
मल्ल विद्या शिखिया थाकिबा अंतपुरे।	मल्ल विद्या रहो सीखते अपने अन्तःपुर में।
राजार व्याम बलि कबो प्रजा सकलेरे।।	राजा को है रोग कहूँगा प्रजाओं में।।

---

(1) नख से छेदन योग्य वृक्ष पर कुठार लगाना व्यर्थ है।

(2) महा व्याधि अथवा अधिअंग होने पर उसका छेदन करना जैसे निन्दनीय नहीं है, उसी तरह अत्याचारी सेनापतियों का वध भी निन्दनीय नहीं है।

(3) न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुहि परिभूयते।
न भाव्यं दारूणे नाति तीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्योभवति काले भवति दारूणः।। मत्स्य पुराण, 220 अध्याय, 22–23 श्लोक।
(मामार्थ –राजा अतिशय मृदु नहीं होगें, क्योंकि मृदु व्यक्ति की हार होती है)। अति उग्र प्रकृति होने पर राजा से भी सभी उद्विग्न रहते हैं। राजा समय से मृदु और समय से उग्र होंगे।

यह नीति वाक्य शुक्र नीति और महाभारत प्रभृति ग्रंथों में मिलते हैं।

द्विल –11

भाल युक्ति बलियाछ राजाय बोलियाछे।	अच्छी युक्ति दी है तुमने, कहा राजा ने।
ऐ होते अधिक युक्ति आर नाही आछे।	इससे अच्छी युक्ति और कहां है दुनिया में।।
धन जन दिया कार्य सेनापति कोरे।।	धन जन देखकर कार्य करते हैं सेनापति।
तीन मासावधि राजा रोगान्वित धरे।	राजा रोगान्वित घर में रहे, तीन मासावधि।।
राजार होइयाछे रोग जाने सर्वलोके।।	राजा को हुआ है रोग, फैला चारों ओर।
रानी पिता सेनापति राजद्वारे थाके।	रानी पिता सेनापति रहते राजद्वार।।
राज कर्म कोरे जे सतर सेनापति।।	राज कर्म करे मिलकर दस सेनापति।
मल्ल विद्या शिक्षा करे घरे नरपति।	मल्ल विद्या शिक्षा करते घर में नृपति।।
रानी संगे देखा राजार नाहि कदाचित।।	रानी साथ दर्शन भी नहीं होता कदाचित्।
रानी पिता सुनिलेक एसब चरित।	रानी के पिता ने सुना ये सब चरित्र।।
सेनापति कन्या स्थाने जिज्ञासा कोरिछे।।	सेनापति ने कन्या से पूछ लिया हालात।
जामाता नृपतिर किबा व्याम जन्मियाछे।	जामाता नृपति को है किस रोग का व्याघात्।।
कन्या बोले आमि ताके ना देखि विस्तर।।	कहा कन्या ने, हमें देखे हुए बहुत दिन।
अंधकारे थाके राजा शरीर बृहत्तर।	अंधेरे में रहते हैं राजा, विशाल हुआ है तन।।
सेनापति बुझिलेक जल जन्य रोग।।(4)	सुनकर समझा सेनाधिपति ने, यह तो है जलरोग।(4)
एहाते नृपेर बुझि होबे दुःख भोग।	इससे नृपति का बढ़ेगा ही दुख भोग।।
नृपति देखिते चाहे सेनापति गण।।	नृपति को देखना चाहे सेनापति गण।
पुरोहित शुनिया बोले होइलो विलक्षण।	पुरोहित ने सुनकर कहा, यह हुआ विलक्षण।।
बडो दुख पाय राजा कहे पुरोहित।।	बड़े दुख भोगते हैं राजा, कहा पुरोहित।
कालि देखाइबो राजा चलिहो सहित।	कल दिखांउगा उन्हें, चलना मेरे साथ।।
राजार निकटे कहे पुरोहित तखन।।	राजा से कहा पुरोहित ने उस क्षण।
पुरोहित नृपति मंत्रणा सेई क्षण।	पुरोहित राजा की मंत्रणा हुई तक्षण।
त्रिश चल्लिस जन सेना तखनि आनिया।।	तीस चालीस सेना को तभी बुलाकर।।
गुप्त कथा शिखाइलो गोपन कोरिया।	गुप्त बातें सिखाई उन्हें गोपन रखकर।
पुरोहित कोरे जाके इंगित आकार।।	पुरोहित करे इंगित जिसकी ओर।।
खड्ग दिया मस्तक काटिबा शीघ्र तार।	खड्ग से शीघ्र मस्तक काटना वहाँ पर।
ऐमतो सन्धाने द्वारे राखे बीर जन।।	इस तरह द्वार पर रखा वीर जन।।
निशा काले कोरे राजा ये सब रचन।	निशा काल में राजा ने की यह रचन।

(4) राजा का शरीर हृष्ट पुष्ट हुआ है, सुनकर सेनापति ने मन में सोचा कि पाण्डु रोग ग्रस्त हुए हैं।

द्विल –12

नृपति देखिते चले दश सेनापति।।	नृपति को देखने चले दसों सेनापति।।
पुरोहित लोइया गेलो अति शीघ्र गति।	पुरोहित वहा ले चले अति शीघ्र गति।
पुष्ट होइछे नरपति मल्ल विद्या क्रमे।	पुष्ट हुए नरपति मल्ल विद्या क्रम में।
देखि सेनापति गणे राजा के प्रणमे।।	देख उन्हें सेनापतियों ने किया प्रणाम।।
प्रीति कथा कहि राजा विदाय कोरे पुनि।(1)	मीठी बातें कहकर राजा ने दिया विदाय।(1)
प्रणमिया सेनापति विदाय तखनि।	प्रणत हुए सेनापति विदा होते समय।।
इंगित कोरिल द्विजे नमस्कार काले।।	इंगित किया द्विज ने नमस्कार के क्षण।
खड्गेते मस्तक काटे सेनापति(2) छले।।	खड्ग से सिर काट लिया सेनापतियों का तत्क्षण।।(2)
सेनापति देह सब कोरिलो अन्तर।	सेनापतियों की देह को रखा वहां छिपाकर।
पुत्र पौत्र मारिया लूटिलो सेना घर।।	पुत्र पौत्रों को मारकर सेना ने लूटा घर।।
सेनापति गण धरे वीर शून्य होइलो।	सेनापतियों का घर हुआ वीर शून्य।
नृपति नवीन सैन्य विबेचि(3) राखिलो।।	विवेचना करके नृप ने लिया नवीन सैन्य।।(3)
गौड़ेश्वर सैन्य मतो सैन्य जे राजार।	गौड़ेश्वर की सैन्य जैसी सेना हुई नरपति।
बार कोटि पदाति नृप करये प्रचार।।	किया प्रचार सैन्य संख्या है बारह कोटि।।
सरदार कोरिलेक अर्द्ध सैन्य दिया।	सरदार बनाया अर्द्ध सेना देकर।
हाजारी कोरिया छिलो कोतो सैन्य लोइया।।	हजारी बनाया कुछ सेना और लेकर।।
बार कोटि सेना होइलो अनुक्रम मते।	बारह कोटि सेना हुई अनुक्रमानुसार।
अशेष राजार सैन्य होइलो ताहाते।।	अशेष राजा की सेना हुई तदनुसार।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा तदवधि सेना।	श्रीधन्य माणिक्य की तब से हुई सेना।
बडुया पदवी ख्याति कोरिलो रचना।।	बडुया पदवी ख्याति की, उन्होनें की रचना।।
नूतन कोरिलो राजा सब सेनापति।	राजा ने बनाये सभी नये सेनापति।
राज आज्ञा अनुसारे कार्य कोरे गति।।(4)	राजाज्ञानुसार हुई काम में उनकी गति।।(4)
एई मते सेना लोक कोरिलो स्थापन।	इसी तरह सेना में दिया लोगों को स्थान।
श्रीधन्य माणिक्य राजा पूण्येर भाजन।।	श्रीधन्य माणिक्य राजा पुण्य के भाजन।।
कालान्तरे महाराजा मने बिबेचिलो।	कालान्तर में राजा के मन में आई विवेचना।
बंगदेश जिनि लोइते मनेते चिंतिल।।	बंगदेश जीतने की मन में हुई कल्पना।।

(1) पुनि –पुनर्वार
(2) सेनापति –सेनापति का
(3) विवेचि –विवेचना करके
(4) सेनापतियो की क्षमता को नष्ट करके राजाज्ञानुसार कार्य परिचालना की व्यवस्था हुई थी



महाराज धन्यमाणिक्य के प्रासाद के भग्नावशेष
उदयपुर

द्विल –13

मेहारकुल पाटीकारा गंगामण्डल ग्राम।	मेहरकुल, पाटिकारा और गंगामण्डल ग्राम।
बगासारि आदि कोरि बहुबिध नाम।।	बगासारि आदि थे बहुत से नाम।।
बेजुरा जे कैला आदि भानुगाछ देश।	वेजुरा, कैला आदि भानुगाछ देश।
बिष्णाजूड़ी लंगला लय जिनिया विशेष।।	विष्णाजूड़ी, लंगला लिया जीत विशेष।।
गौड़ाधिपति राज्य बरदाखात आदि।	गौड़ाधिपति राज्य बरदाखात आदि।
राजाये काड़िया लोइलो होइया बिरोधि।।(5)	राजा ने लिया छीन, होकर वहां विरोधी।।(5)
बरदाखाते जमीदार प्रताप महामति।	बरदाखात के जमीदार प्रताप महामति।
गौड़े ना मिलिया राजा संगे कोरे प्रीति।।	गौड़ सेना से न मिल, किया राजा से प्रीति।।
एईरूपे बंगदेश आमल सकल।	इस तरह बंगदेश पर हुआ यहाँ दखल।
ना मिले खंडल राज्य होइया सबल।।	नहीं मिला खण्डल राज्य, होकर सबल।।
खण्डले नृपति सैन्य बसाइलो थाना।	खण्डल में राजा ने बसाया सैन्य थाना।
लस्कर(6) कोरिया राखे राज एक सेना।।	लस्कर(6) बनाकर राजा ने रखा एक सेना।।
आमल(7) कोरिया खण्डल ससैन्ये बोसिलो।	दखल(7) कर खण्डल पर, सेना रही वहीं बैठी।
खण्डलिया लोके ताते लस्कर धरिलो।।	खण्डलियों ने पकड़ा लस्कर को।।
लस्कर धरिया तारा निलेक गौड़ेते।	लस्कर को पकड़ कर वे गये गौड़ देश।
युक्ति कोरि दिलो निया गौड़ेर अग्रेते।।	बांध कर गौड़ के सामने किया पेश।।
हस्ती दिया मारिते गौड़ेश्वरे आज्ञा दिलो।	हाथी से मारने का, दिया आदेश गौड़ेश्वर ।
हस्त पदे जिंजिर(8) लस्कर लोइया गेलो।।	हाथ पैर में श्रृंखल(8) लगा, गये वहां लेकर।।
लस्करे बुझिलो ताके मारिबे निश्चय।	लस्कर ने समझ लिया, देगें मौत जरूर।
एक सेना हस्त होइते खड्ग काड़ि लय।।	एक सेना के हाथ से खड्ग लिया झपट कर।।
मारिलो विंशति जन विक्रम कोरिया।	करके विक्रम मार गिराया सेना संख्या बीस।
माहुते टुआइलो(9) गज अंकुश मारिया।।	महावत ने हाथी क्रोधित किया चुभाकर(9) अंकुश।।
नाके मुखे मारिलेक पंच तलवार।	नाक मुंह में किया उसने, पांच खड्गों का वार।
भंग दिलो सेई गज छाडिया चीत्कार।।	भाग खड़ा हुआ गज, करके घोर चीत्कार।।
अन्य महागज आनि पुनः टुआइलो।	दूसरे महागज को लाकर किया पुनः उत्तेजित।
बिक्रमे मारिलो कोब् दन्तेते लागिलो।।	किया खड्ग का वार लगा दन्त के बीच।।

---

(5) इन सभी स्थानों का विवरण इस लहर के टीका में दी गई है

(6) लस्कर –शासन कर्ता, यह पद मुसलमानो के अनुकरण से बना था

(7) आमल –दखल

(8) जिंजिर –श्रृंखल

(9) टुआइल –क्रोधित किया

द्विल –14

धन्य धन्य बोलि ताके कहे सर्बलोके।	धन्य धन्य करने लगे सभी लोग वहां।
एमत विक्रम लोक पर्वतेते थाके।	ऐसे विक्रम पर्वतों में है ऐसा यहाँ कहां।।
आर चोट मारिछिलो खड्ग जे भांगिलो।।	और एक चोट से ही टूट गया खड्ग।
सेई तो कारणे गजे ताहाके बधिलो।।	इसी कारण गज ने किया उसका वध।।
ए कथा शुनिया कहे गौडेर ईश्वर।	यह बात सुनकर कहे गौड़ेश्वर ।
फिराइया ना आनिला आमार गोचर।।(10)	क्यों नहीं लौटा लाये मेरे गोचर।।(10)
आपनार कर्म दोषे एमते मरिलो।	अपने कर्म दोष से मरा इस तरह।
श्रीधन्य माणिक्य राजा ए सब शुनिलो।।	श्रीधन्य माणिक्य राजा सुने धैर्य सह।।
अग्नि हेनो क्रोधे ज्वले राजा महाबल।	अग्नि की तरह जल उठे क्रोध से महाबल।
रायकाचाग सेनापति पाठाय खण्डल।।	रायकाचाग सेनापति को भेजा खण्डल।।
कटक(11) देखिया तारा भयातुर होइलो।	भारी सेना(11) देख वे हो गये भयातुर।
विष कुम्भ(12) पयो मुख मते मिलि छिलो।।	विष मुख(12) पयो कुंभ सा किया व्यवहार।।
द्वादश बोसिक(13) से जे खण्डल जमीदार।	द्वादस बसिक(13) थे खण्डल के जमीदार।
आनिलो राजार पासे मान्य व्यवहार।।(14)	राजा को पेश किया आकर भेंट–व्यवहार।।(14)
प्रधान बसिक संगे मित्रता राजार।	प्रधान बसिक के साथ थी राजा की मित्रता।
आर बसिक मित्रता जे सेना समखार।।	और बसिकों के साथ थी सेना की मर्यादा।।
आर दिन राजा बोले बसिकेर ठांई।	एक दिन कहा राजा ने, बसिक के वहां।
आपना हाजिरा देह देखिते जे चाई।।	अपनी हाजरी दो सभी, देखना चाहता यहाँ।।
गोपनेते शिखाइलो त्रिपुर सैन्येरे।	गुप्त रूप से सिखाया, कहा त्रिपुर सैन्यों से।
एक सेना एक बसिक थाकिबा अंतरे।।	एक एक सेना पीछे खड़ी रहेगी उनसे।।
ये समय आमि बोलि सबे मित्र करो।	जब मैं कहूँ करो मित्र सब मिलकर।
जार जेई भागे पड़े काटिबा सत्वर।।	जिसके भाग में जो आये काटना सिर सत्वर।।

---

(10) मेरे यहाँ क्यों नहीं ले आया

(11) कटक –सेना

(12) विषपूर्ण कुंभ के मुख पर थोडा सा घी देकर उसे धृत कुंभ करने का प्रयास। बहुत से शत्रुओं का हृदय विद्वेष भरा रहता है। लेकिन बाहर से मीठी बोली से अपने को ढ़ककर मित्र की तरह व्यवहार करता है, लेकिन भीतर भीतर शत्रु भाव पोषण करता है। नीति शास्त्र इस तरह के लोगों को "विषकुंभ पयोमुखम्" कहता है। इन्हें त्याग करने को शास्त्रों में श्रेयस्कर कहा गया है। यथा –

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिन।
वर्ज्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।

(13) बसिक –भूम्याधिकारी, शासन कर्ता। मुसलमानों के शासन काल में भू भाग पर एक एक शासक नियुक्त किया जाता था। उक्त विभक्त भूभाग को "सिक" और उसके शासक को बसिक या "सिकदार" कहा जाता था। "दक्षिण सिक" और "छत्र सिक" आदि कहा गया है।

(14) मान्य व्यवहार –भेंट–व्यवहार

द्विल –15

आमिह काटिवो तार प्रधान बसिक।	मैं भी काटूंगा सिर प्रधान बसिक का।
आद्ये(15) बोसइबो ताके मान्ये मित्राधिक।।	आगे(15) बैठाउंगा उसे मान्य दे मित्राधिक सा।।
ए सब मंत्रणा शुनि राज सैन्यगने।	यह सब मंत्रणा सुनकर राज सेना गण।
सुसज्जा कोरिया आइलो राजार सदने।।	सुसज्जित होकर आये नृप के सदन।।
बसिक सकल आइलो हाजिरा दिबारे।	हाजरी देने सभी बसिक हुए वहा हाजिर।
दुई सहस्र पदाति आसिलो धनुःशरे।।	साथ पदातिक धनुर्बाण ले आये दो हजार।।
बसियाछे महाराजा सिंहासन पोरे।	बैठे महाराजा अपने सिंहासन पर।
बसिक सकल बोइसे तारा पाट घरे।।(16)	बसिक सभी बैठे ''तारापाट घर''।(16)
पंक्ति कोरिया सबे लिखाय हाजिरा।	पंक्ति करके सभी ने लिखाया अपनी हाजिरा।
काहेस्ते गणिया बसिक लिखये मुजरा।।	अपने हाथों से गिन गिन कर लिखाये मुजरा।।
एक एक सेना आगे एक एक बसिक।	एक एक सेना के आगे रहे एक बसिक।
पंक्ति पाछे रोइलो गिया होइया रसिक।।	पंक्ति के पीछे रहे जाकर होकर और रसिक।।
राज आज्ञा अनुसारे दांड़ाइलो गिया।	राजाज्ञा मान खड़े हुए जाकर।
इसाराते कहे सेलाम बाद्य बाजाइया।।	ईशारा से कहा सलाम, वाद्य बजाकर।।
सेलाम कोरिते शिर नत जेई काल।	सलाम करने हेतु जैसे हुए नत सिर।
सेई काले सेना बसिक काटे खड्गे भाल।।	उसी समय सेना ने काटा सिर सत्वर।।
प्रधान बसिक घाते नृपतिये आगे।	प्रधान बसिक को महाराजा ने काटा स्वयम्।
सेनाय कोटिलो बसिक जार जेई भागे।।	सेना ने काटा जिसके भाग जो आया उस क्षण।।
एई रूपे काटिया जे खण्डलेर प्रजा।	इस तरह काटकर खण्डल के प्रजा।
ससैन्ये खण्डले गेलो सेई महाराजा।।	सेना साथ खण्डल आये महाराजा।।
वृक्ष पत्र पोराइया(17) खण्डल लुटिलो।	लूट लिया खण्डल वृक्ष पत्र पहनाकर(17)।
एई रूपे खण्डल देश आपना होइलो।।(18)	इस तरह खण्डल(18) अधीन हुआ हारकर।।
पुर्नवार देशे आसि धर्म आरंभिलो।	पुनः आकर देश में धर्मारंभ किया।
धर्ममठ धन्य सागर(19) प्रतिष्ठादि कोइलो।।	धर्ममठ धन्य सागर(19) प्रतिष्ठादि किया।।

(15) आद्ये –अग्रभाग या सामने।

(16) तारा पाट घर –दरबार गृह। नक्षत्र सदृश परिषद वर्गो के दरबार में बैठने के लिए आसन का नाम ''तारा पाट'' और दरबार गृह का नाम ''तारा पाट घर'' रखा गया है।

(17) पोइराइया –पहनाकर।

(18) खण्डल अचंल को लेकर राजा रामगति की एक कहानी प्रचलित है जिसे बाद में टीका में हम देगें।

(19) धन्य सागर –यह सुविशाल सरोवर त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी उदयपुर में अब भी है। यह महाराज धन्यमाणिक्य की कीर्ति की घोषणा कर रहा है। यह विशाल सरोवर ''फूल कुमारी'' मौजे में है। इसकी लम्बाई 1000 गज(एक हजार गज) है और चौडाई 270 गज है। गहराई का सतह नौ द्रोण के समान है। इसलिए सरोवर के बारे में श्रेणीमाला ग्रंथ में लिखा गया है। ''धन्य सागर उदयपुरे करिलो खनन'' –''अर्थात धन्य सागर को उदयपुर में खनन कराया।''

द्विल –16

दुई बर्षे काटिछिलो से धन्य सागर।	दो वर्षों में खनन हुआ धन्य सागर।
कोरिलो अनेक दान सेई नृपवर।।	किया अनेक दान वह नृपवर।।
भूम्यादि षोड़श दान(1) कोरिलो बिस्तर।	किया बहुत सा भूमि आदि षोडश दान।(1)
बिबाह कोराय राजा ब्राह्मण कोंउर।।	विवाह कराए राजा कुंवर ब्राह्मण।।
द्विज ज्ञाति भोजन कोराय नृपवर।	द्विज ज्ञानि को भोजन कराए नृपवर।
आर खाउयाइलो सैन्य सेना बहुतर।।	फिर खिलाया सैन्य सेनाओं को पेट भर।।
सागरेर चारि पारे बैसाय नाना जाति।	सागर के चारों ओर बैठाया नाना जाति।
रंधन भोजन तथा जार जेई पंक्ति।।	रन्धन भोजन कराते जिसकी जैसी पंक्ति।।
सेई स्थानेते राजा मंचेते बोसिलो।	वहीं बैठे राजा मंच के ऊपर।
कुकिर सरदारे सेना गणिते बोलिलो।।(2)	राजाज्ञा से मिलने गया कुकि सरदार।।(2)
सेना गणे रन्धन भोजन कोरे सुखे।	सेना गण रन्धन भोजन कर रहे सुख से।
सरदार गणिवारे गेलेन समुखे।।	गिनती हेतु सरदार आया सम्मुख से।।
सेना अन्न यष्टि(3) लोइया र्स्पर्शिया गनिलो।	सेना ने अन्न यष्टि(3) लेकर गिना सबको छूकर।
खाइते छुइलो जाके काठिछोया होइलो।।	खाते समय जिसे छुआ, रहा काठिछोआ होकर।।
ना छुइते आगु पीछे खाइलो उत्तम।	न छूते आगे पीछे खाया उत्तम।
जार मुखे अन्न छिलो सेई तो अधम।।	जिसके मुख में अन्न था वही तो हुआ अधम।।
राज घरे दिछे सिधा(4) त्यजिते ना पारे।	राजघर में दिया सिधा(4) त्याग नहीं सके।
छोया अन्न गिलिलेक मारिबेक डरे।।	स्पर्शित अन्न खा लिया मरने के डर से।।
एई मते काठिछोया(5) नाम कोतो सेना।	इस तरह काठिछोआ(5) हुई कितनी सेना।
श्रीधन्य माणिक्याबधि होइलो गणना।।	श्रीधन्य माणिक्य द्वारा हुई गणना।।

---

(1) षोड़श दान –श्रद्धादि में अथवा पुण्य लाभार्थ सोलह तरह के द्रव्यों के दान की व्यवस्था है।

(1) भूमि (2) आसन (3) जल (4) वस्त्र (5) दीप (6) अन्न (7) ताम्बुल (8) छत्र या छाता (9) गंध (10) माला (11) फल (12) शय्या (13) पादुका (14) धेनू (15) हिरण्य (16) रजत (चांदी)। इसी सोलह दान को षोड़श दान कहते हैं। (शुद्धि तत्व)

(2) पाठान्तर – ''एमत समये राजा मंचेत बोसिया।
लम्फुल सरदारके बोले देखह गणिया।।''
(राजा ने मंच पर बैठकर लम्फुल सरदार को कहा गिनकर देखो)

(3) अन्नयष्ठि –भात या चावल पकाने वाली छोटी लाठी।(4) सिधा – भेंट देना,। चावल, दाल आदि आहार्य वस्तु इकठ्ठा कर देने को सिधा कहते हैं।

(5) काठिछोया का विवरण लहर की टीका में दिया गया है।

द्विल –17

सागरेर खनन देखिते महारानी।	सागर का खनन देखने को महारानी।
सैन्येर रमणी संगे रात्रिते आपनि।।	महारानी के साथ आई सेनाओं की रमणी।।
ज्योत्सना काल कोन रात्र नारीगण संगे।	किसी चांदनी रात में नारियों के संग।
मद्य मांस खाउयाइया चाहे बहु रंगे।।	मद्य मांस खिलाया चाहा बहु रंग।।
एई मते आनन्देते बंचिल तखनि।	इस तरह आनन्द में डूबे, रात थी चांदनी।
श्रीधन्य माणिक्य राजा कमला महारानी।।	श्रीधन्य माणिक्य राजा कमला महारानी।।
डांगर फा राजार काले थानांछिते थाना।	डांगर फा राजा के समय थानांछि में था थाना।
थानांछि ना मिलिलेक राजाते आपना(6)।।	थानांछि न मिला, राजा को वहां अपना।।(6)
थानांछिते एक हस्ती धबल आछिलो।	थानांछि में एक हाथी था धवल वर्ण।
हेड़म्ब(7) राजाये ताके चाहिया पाठाइलो।।	हेड़म्ब(7) से राजा ने मांगा उसे तत्क्षण।।
हेड़म्बेर दूते आसि थानांछिते बोले।	हेड़म्ब के दूत ने थानांछि में कहा आकर।
त्रिपुर सेबक तुमि आमार जे होइले।।	त्रिपुर सेवक थे तुम, रहो हमारे होकर।।
ताहा शुनि रूष्ट होइलो थानांछि नृपति।	यह सुन हुए रूष्ट थानांछि नृपति।
त्रिपुर तोमाते नाहि दिबो एई हाती।।(8)	त्रिपुर तुम्हें न देगें वह हाथी।।(8)
सेबक नहे आमि त्रिपुर राजार।	नहीं मैं सेवक राजा त्रिपुर।
शुक्ल हस्ती नाहि दिबो युद्ध कोरो सार।।	श्वेत हस्ती नहीं दूंगा युद्ध करो सार।।
शुनिया हेड़म्बपति आसिलेक रोषे।	सुनकर हेड़म्बपति हुए रोषपूर्ण।
सैन्येते बेष्टित कोइलो थानांछि चारि पासे।।	सेना से चहुं ओर थानांछि घेरा करने दर्प चूर्ण।।
सेई काले त्रिपुर दूत कहे थानांछिते।	उस समय त्रिपुर दूत कहा थानांछि को।
त्रिपुरे ना दिया हस्ती देह हेड़म्बेते।।	त्रिपुर को न हस्ती देकर दे दो हेड़म्ब को।।
एत शुनि बोलिलेक थानांछि नृपति।	यह सुनकर कहा थानांछि नृपति।
आमाके जिनिया तोरा नेह एई हाती।।	मुझे जीतकर तुम ले जाओ यह हाथी।।
महा पर्बतेते थाना एक तार द्वार।	महा पर्वत पर है थाना उसका एक ही द्वार।
महा यत्ने हेड़म्बे ना पारे पोशिबार।।	महा प्रयत्न करके हेड़म्ब न जा सके उस पार।।
छय मास चेष्टा कोरि हेड़म्बे चाहिलो।	छः मास चेष्टा करके हेड़म्ब ने देखा।
तथापिह थानांछि हेड़म्ब ना भजिलो।।	तथापि थानांछि, हेड़म्ब से रहा अनदेखा।।
सेई से कारणे कुकि राजाते ना मिले।	न बना कुकि का राजा इसी वजह से।
से पथे आसिते कुकि थानांछि लुटे बोले।।	कुकि ने थानांछि को लूटा आते उसी राह।।

(6) थानांछि में (कुकि प्रदेश में) डुंगुर फा के शासन काल में सेना का एक थाना था। धन्यमाणिक्य के समय वहां सभी कुकि विद्रोही हो उठे। त्रिपुर के साथ मिलने में असम्मत हुए थे।

(7) हेड़म्ब –काछाड राज्य।

(8) यह हाथी त्रिपुरेश्वर को अथवा तुम्हें नहीं दूंगा।

द्विल –18

श्रीधन्य माणिक्य राजा ए वार्ता शुनिया।
रायकाचाग सेनापति युद्धे पाठाईया।।
त्रिपुर सहस्र सैन्य दिलो तार संगे।
रायकाचाग सेनापति चले युद्धे रंगे।।
शुभ क्षणे सैन्य सेना कोरिलो गमन।
कोतो दिने थानांछि पाइलो सैन्य गण।।
राजदूते चाहे थानांछि मिलाइते।
ना मिलिला सेई राजा प्रणय कोरिते।।
अष्ट मास युद्धा सब गड़(1) बेडि रहे।
तथापि थानांछि गड़ लंघिवार नहे।।
चारिदिके गड़ सब पाषान पर्वते।
लंघिवार कार शक्ति नहिलो ताहाते।।
विश त्रिश जन गड़द्वारे बोसि थाके।
मद्य मांस खाय तारा अस्त्रधारी फांके।।
गड़ेर ऊपरे सैन्य मदे मत्त होइया।
त्रिपुराके गालिदेय पद देखाइया।।
रायकाचाग सेनापति ताते क्रुद्ध होइलो।
आपना सैन्येर प्रति बहुल भर्त्सिलो।।
कापुरूष होवो तोरा चरखा हस्ते लोबा।(2)
राजार साक्षाते जाइया कि उत्तर दिबा।।
ए बोलिया सेनापति घर चाल फोड़े।
बृष्टि जल पडुक घरेर भीतरे।।
जलेते भिजिले सैन्य निद्रा ना आसिबे।
तबे से राजार कर्म बुझिया कोरिबे।।
एई युक्ति सेनापति कोरिलो सलिका।(3)
दैव गति तथा एक पाइलो गोधिका।।(4)
अष्ट हस्त दीर्घ गोधा पार्श्वे तिन हाथ।
गोधार कमरे(5) बान्धे दीर्घ बेत्र तात।

श्रीधन्य माणिक्य राजा यह वार्ता सुनकर।
रायकाचाग सेनापति को भेजा युद्ध पर।।
त्रिपुर सहस्र सेना दिया उसके संग।
रायकाचाग सेनापति चले युद्ध के रंग।।
शुभ क्षण देखकर सेना ने किया प्रस्थान।
कुछ दिनों पश्चात सेना थानांछि पंहुची करने रण।।
राजा दूत ने चाहा थानांछि को मिलाना।
न मिले वे राजा से, प्रणय इनसे करने।।
योद्धा रहे गढ़(1) घेरे आठ महीने तक।
तथापि थानांछि गढ़ न आया इनके हाथ।।
चारों ओर से गढ़ सभी थे पाषाण पर्वतों पर।
लांघने की शक्ति नहीं रही, इनमें रत्ती भर।।
बीस तीस पहरेदार खड़े रहते द्वार पर।
मद्य मांस खाते पीते, अस्त्र धारियों से हटकर।।
गढ़ के ऊपर बैठी सेना, मद मांस से होकर चूर।
त्रिपुरा को गाली देते, अपना पैर दिखाकर।।
रायकाचाग सेनापति इससे क्रुद्ध होकर।
अपनी सेनाओं की, भर्त्सना की, जी भरकर।।
कापुरूष हो तुम, लो हाथों में चरखा।(2)
महाराज के वहां जाकर कैसे दोगे उत्तर।।
यह कहकर सेनापति ने, घर के छत को फोड़ा।
वर्षा का पानी गिरे घर भीतर, आराम नहीं अब थोड़ा।।
पानी में भीगने से आयेगी नहीं नींद।
तभी राजा का कर्म समझ करेगें ठीक।।
इस युक्ति का सेनापति ने किया था संधान।(3)
देव गति से पाया एक गोह उस स्थान।।(4)
आठ हाथ लम्बाई और प्रस्थ था तीन हाथ।
गोह कमर(5) में लम्बे बेत को बांधा कसकर ।।

(1) गड़ –गढ़, दुर्ग

(2) त्रिपुर राज्य में अकर्मण्य सेनाओं को दण्ड स्वरूप चरखा दिया जाता था। इस विवरण को अगली टीका में देखिये।

(3) सलिका –सन्धान। (4) गोधिका –गोह।

(5) कमर –कटि देश।

द्विल –18
2nd Leher-Page-18



शक्ति अस्त्रधारी सेना
कत्रिपुरा की कूकी सैन्य
बन्दूकधारी सेना

द्विल –19

2nd Leher-Page-19



शिशु सन्तान के साथ कुकि दम्पत्ति

द्विल –19

छाडिया दिलेक गोहिल गड़ेर ऊपर।	छोड़ दिया गोह को चढ़ने गढ़ के ऊपर।
जतो दुर जाय गोधा जोडे बेत्रान्तर।	जितना दूर चढ़े गोह बेत को बांधते जोड़कर।।
एई मते चढ़े गोधा गड़ेर उपर	इस तरह गोह चढ़ गई गढ़ के ऊपर।
टानिया चाहिलो सैन्य होइलो दृढ़तर।।	देखा खींच सैन्य ने हुई है वह दृढ़तर।।
गड़े छिलो यतो लोक मद्य मांसे भोला।	गढ़ में जितने लोग, मद्य मांस में दिया भुला।
ना लोइलो चौदिगे बार्ता कोरि अबहेला।।	नहीं देखा चंहु ओर वार्ता करके छोड़ा।।
रात्रि योगे योद्वा सबे बेते धरि ताय।	रात में योद्धा सभी बेत पकड़ के चढ़े।
खड्ग चर्म हात कोरि कोठ(6) पोरे जाय।।	खड्ग चर्म ले हाथों दुर्ग(6) पर चले बढ़े।।
गड़े चडिते सेना ढाले शब्द होइलो।	ढाल में हुई आवाज गढ़ पर उनके चढ़ते चढ़ते।
गबये(7) घसिछे गाव थानांछि बुझिलो।।	गबय(7) घिस रहा बदन है सेना समझे।।
रात्रि शेष होय ताते दुई दण्ड आछे।	रात शेष होनें में अभी दो दण्ड हैं बाकी।
राज सैन्य कोठे गेलो कौतुकेते नाचे।।	सेना गई दुर्ग पर, बात हुई यह कौतुकी।।
पुरूष सकल जतो प्राणी के बधिलो।(8)	सभी पुरूषों को गढ़ में तत्क्षण दिया वध(8) कर।
थानांछिर गड़ो परे रक्त नदी होइलो।।	थानांछि में लहू की नदी बहाया गढ़ पर।।
नारी सब लुटिया लोइलो सर्ब जन।	लूट लिया नारियों को मिलकर सभी जन।
दैबगति मासेकेर(9) बालक रक्षण।।	दैवगति से हुआ एक माह के लडकी का रक्षण।।(9)
जार माता तखनेते(10) स्वामी एक कोरे।	जिसकी माता ने किया स्वामी एक।(10)
कन्या बोलिया ताके पालिलो सत्वरे।।(11)	अपनी कन्या कहकर पाला सत्वर भूल विभेद।।(11)
एई मते आमल होइलो थनांछिर थाना।	इस तरह दखल हो गया थानांछि का थाना।
राजनीति थानादार थाके एक जना।।	राजनीति थानेदार रख दिया एक जना।।7
दुर्गोत्सव होय तथा नृप नाम कोरि।	दुर्गोसत्व होता वहां करके नृप का नाम।
तद्बधि थानार नाम त्रिपुरार पुरी।।	तब से हुआ त्रिपुरा पुरी उस थाने का नाम।।

---

(6) कोठ –दुर्ग। (7) गबय –गौ और भैंसें के लक्षण युक्त एक वन्य जन्तु।

(8) गढ़ में जितने आदमी थे सभी का वध कर दिया। (9) मासेकेर –एक महीने का।

(10) तखनेते उस समय

(11) पाठान्तर – जार माता सेई क्षणे स्वामी एक कोइलो।
कन्याटि लोइया तारे पालिते राखिलो।।

"जिसकी मां ने उसी क्षण एक को स्वामी बना लिया और अपनी कन्या समझ कर पालन किया"।

त्रिपुर वाहिनी द्वारा जय करने के पश्चात विजयी सेनाओं ने पराजित सेनाओं के सभी पुरूषों की हत्या कर दी। दैव गति से एक महीने के उम्र वाले सभी बच्चों की रक्षा हो गई। स्त्रियों को भी त्रिपुर सेनाओं ने लूट लिया। जिन रमणियों ने उस समय त्रिपुर सेनाओं में किसी किसी को पति के रूप में स्वीकार कर लिया। उन रमणिओं की कन्याओं को प्रतिपालनार्थ रखा गया था।

द्विल –20

रायकाचाग सेनापति नृपेते लिखिलो।	रायकाचाग सेनापति ने लिखा सब नृप को।
जेमते थानांछि थाना आमल होइलो।।	कैसे थानांछि हुआ दखल मिला त्रिपुराधिपति को।।
ताहा सुनि महाराजा बड़ो तुष्ट होइलो।	यह सुन महाराज हुए बड़े तुष्ट।
तद्बधि सेनापति पुत्र मान्य छिलो।।	तब से सेनापति को माना अपना पुत्र।।
जतो जतो भालो द्रब्य युद्धे पाइया छिलो।	जो कुछ अच्छे द्रव्य मिले थे युद्ध में वहां।
राजार साक्षाते सब ताहा पाठाइलो।।	भेज दिया सब कुछ राजा के यहाँ।।
इनाम(1) पठाइलो नृपे अनेक बसन।	इनाम भेजा नृप ने बहुत से वस्त्र।(1)
परे रायकाचाग गेलो किरात भूबन।।(2)	पश्चात रायकाचाग गया किरात भुवन।।(2)
पूर्ब दिगेते आद्ये कुकि मिलाइलो।	पूर्व दिशा में पहले कुकियों को मिलाया।
दक्षिणेते छिलो कुकि जिनिया आनिलो।।	दक्षिण में कुकियों को जीत लिया।।
साम्बुल प्रधान स्थाने आपने रहिया।	छाम्बुल, प्रधान जगह, स्वयं रह गया।
छाइमार छाइबेम देशे दूत पाठाइया।।	छाईमार छाइबेम देश में दूतों को भेजकर।।
छाकाचेब खामाचेब रांगरंग आदि।	छाकाचेब खामाचेब रांगरंग आदि।
छाका रांखल खामा रांखल पूर्बकुलाबधि।।	छाका रांखल, खामा रांखल, पूर्वकुलाविधि।।
गुनैछा खर्च्छुं मार्च्छिलो आर कुकि जाति।	गुनैछा, खर्च्छुं, मार्च्छिलो और कुकि जाति।
भेंटिलो सकल आसि पूर्बपर रीति।।	भेंट दिया सबने आकर जिसकी जैसी रीति।।
सेनापति कोहिलेक पूर्बपर कथा।	सेनापति ने कहा आद्यंत सब कथा।
त्रिपुरार प्रजा तोरा पूर्बावधि गाथा।।	त्रिपुरा की प्रजा की पहले की है गाथा।।
अधर्म कोरिला तोरा लंघि निज धर्म।।	अधर्म किया तुमने, छोड अपना धर्म।
से कारण क्षय तोरा बुझियाछि मर्म।	इसी कारण से क्षय तुम्हारा, समझा हूँ मैं मर्म।।
नृपेते दिलेक भेट पूजिबो चौद्धदेबा।।	नृप को दिया भेंट पूजेंगे चौदह देवा।
सेई पुण्ये तोमा सब दीर्घ जीबी होबा।।	उसी पुण्य से तुम सभी होंगे दीर्घ जीवा।।
एहा यदि सेनापति ताहाके कोहिलो।	यह सब बातें सेनापति ने तब उनसे कहा।
देबता साक्षाते तारा सत्य निर्बन्धिलो।।(3)	देवता को साक्षी कर प्रतिज्ञा सबने किया।।(3)
राजाते ना दिया भेंट आद्ये ना खाइबो।	पहले राजा को भेंट तब तक न खाउंगा।
यदि इहा नाहि कोरि तबे नष्ट होइबो।।	यदि न करूं यह तो, नष्ट हो जाउंगा।।
शिबालय स्थान सुबराईखुंग(4) नाम।	शिवालय स्थान सुबराईखुंग(4) नाम।
उत्सव कोरिलो तथा यथा अनुपम्।।	उत्सव किया वहा सुन्दर अनुपम।।

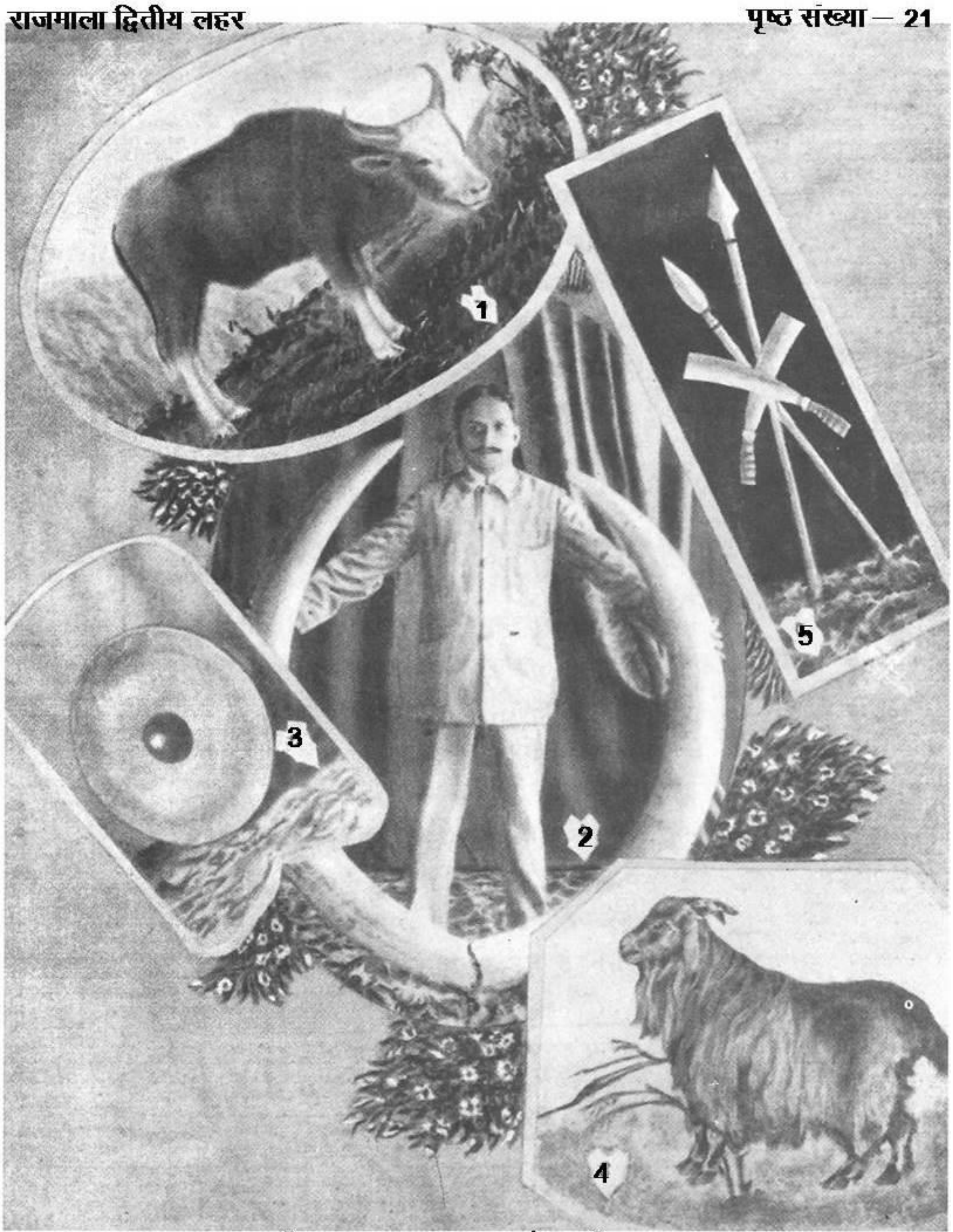
(1) इनाम –बक्शिश, पुरूस्कार।

(2) किरात भुबन –लुसाई पर्वत और उसके करीब के कुकि प्रदेश।

(3) सत्य निर्बन्धिलो –प्रतिज्ञाबद्ध हुए।

(4) स्थानों का नाम परवर्ती टीका में देखिये।

द्विल –21
(2nd Leher-Page-21



किरात प्रदत्त राज–भेंट की वस्तुएं
1. गबय(गयाल) 2. गजदन्त 3. घोंग वाद्य 4. कुकिया छाग 5. शक्ति अस्त्र

द्विल –21

एई मते सेनापति सत्य कराइया।	इस तरह सेनापतियों ने प्रतिज्ञा कराया।
राजार साक्षाते कुकि दिलो पाठाइया।।	राजा के यहाँ कुकियों को भेज दिया।।
गज दन्त गबय छाग(5) कांस्य बाद्य घोंग।(6)	गज दन्त, गबय, छाग,(5) कांस्य वाद्य घोंग।(6)
रक्त कृष्ण श्वेत वस्त्र विशाल सु –रंग।।(7)	रक्त कृष्ण श्वेत वस्त्र विशाल सु–रंग।।(7)
कांस्य थाली पिकदानी ताम्रेर कंकण।	कांस्य थाली, पीकदानी, तांबे का कंकण।
उबाफेरू(8) जलपात्र देबदारू बन।।	उबाफेरू(8) जलपात्र देवदारू बन।।
किरातिया खड्ग शक्ति पित्तल कांस्य झारि।	किरातिया खड्ग शक्ति पीतल कांस्य झारी।
राज भेंट पाठाइलो पूर्ब अनुसारि।।(9)	राज भेंट पठाया पूर्वरूप अनुसारी।।(9)
नानाविध बस्तु जतो नाना रंग घोड़ा।	नानाविध वस्तु जितने नाना रंग के घोड़ा।
सहस्र सहस्र कुकि आसिलो दिगम्बरा।(10)	सहस्त्र सहस्त्र कुकि आये होकर दिगम्बरा।।(10)
इत्यादि कोरिया द्रब्य लोइया विस्तर।	यह सब करके द्रव्य लेकर प्रचुर।
मिलिलो आसिया कुकि राजार गोचर।।	मिले आकर कुकि राजा के गोचर।।
भेंट देखि नरपति हरिष अन्तर।	भेंट देखकर नरपति हर्षि अन्तर।
सेनापतिर मन्द कहे राजार गोचर।।	राजा के सामने सेनापति को मन्द कहे।।
दुई बत्सर हय तथा सेनापति जाय।	दो साल हुए वहां, सेनापति के गये।
आसिबार इच्छा नाहि राजा होइते चाय।।	आने की इच्छा नहीं, राजा होना वे चाहे।।
बड़ुआ सबेर कन्या मनोरम जतो।	बड़ुया सबकी कन्या जो है रूपमती।
संभोग करये से जे नानाविध मतो।।	संभोग करते हैं वे लेकर नानाविधि।।
ए कथा सुनिया राजा हासिलो तत्पर।	ये बातें सुनकर नृप हंस दिये, यह कहकर।
ताके केने मन्द –बोलो रायकाचाग पुत्रबर।।	उसे क्यों बुरा कहते हो, रायकाचाग है पुत्रवर।।
फरमान(11) लिखिलो रायकाचाग आसिते।	फरमान(11) लिखे रायकाचाग को आने।
राजधानी सेनापति आनिते त्वरिते।।	राजधानी में सेनापति को जल्द आने।।
साम्बुल थानाते लस्कर राखि एक जन।	छाम्बुल थाना में रखा एक लस्कर।
बहुतर भेट लोइया आसिलो तखन।।	तब वह आया बहुत सा भेंट लेकर।।

---

(5) छाग –कुकियों के द्वारा पालित एक तरह की बकरी, जो तिब्बत देश की बकरियों की तरह की है।

(6) घोंग –कांस्य धातु के द्वारा निर्मित एक वाद्य यंत्र। इसकी आवाज गंभीर तथा दूर दूर गूंजती है। कुकि उत्सव आदि के अवसर पर बजाते हैं।

(7) सु–रंग –सुन्दर वर्ण।

(8) उबाफेरू –जलपान करने का पात्र।

(9) पूर्ब अनुसारी –पहले के नियमानुसार।

(10) दिगम्बरा –उलंग, नंगा।

(11) फरमान –राजाज्ञा

द्विल –22

सिंहासने बोसिआछे त्रिपुर राजन।	सिंहासन पर बैठे हैं त्रिपुर राजन।
सेई काले सेनापति कोरिलो भेटन।।	सेनापति ने भेंट पेश किया उसी क्षण।।
सुवर्ण रजत आदि बस्त्रेर आधिक्य।	सुवर्ण रजत आदि वस्त्रों का आधिक्य।
देखि बड़ो तुष्ट होइलो श्रीधन्य माणिक्य।।	देख तुष्ट हुए श्रीधन्य माणिक्य।।
रायकाचाग सेनापति नृपेते बोलिलो।	रायकाचाग सेनापति ने कहा नृप से।
आमार विपक्षे मन्द साक्षाते(1) बोलिलो।।	मेरे मन्द विपक्ष ने कहा है समक्ष(1) आप से।।
कुगन्धा पत्नीते केनो एतो श्रद्धा करो।	कुगन्धा पत्नी में क्यों श्रद्धा अपार।
सुगन्धा नारी के केनो प्राणेते संहारो।।(2)	सुगन्धा नारी को क्यों किया प्राणों से संहार।।(2)
हासिया नृपति ताके बहु मान्य कोइलो।	हंसकर नृपति ने उसे बहु मान्य दिया।
वस्त्र पुष्प हस्ती दिया गृहे पाठाइलो।।	वस्त्र पुष्प हस्ती दे घर भेज दिया।।
बहुतर ग्राम पाइलो राज पुत्र सम।	बहुत से ग्राम मिले राजपुत्र सम।
रायकाचाग रायकछम युद्धेते उत्तम।।	रायकाचाग रायकछम युद्ध में उत्तम।।
तार पोरे श्रीधन्य माणिक्य नृपवर।	इसके बाद श्रीधन्य माणिक्य नृपवर।
चाटिग्राम जिनिलेक कोरिया समर।।	चट्ट गांव जीत लिया करके समर।।
चौद्शो पांचत्रिश शाके समर जिनिलो।	चौदह सौ पैंतीस शक में जीता समर।
चाटि ग्राम जय कोरि मोहर मारिलो।।(3)	चट्ट गांव जीतकर निकाली अपनी मुहर।।(3)
गौड़ेर जतेक सैन्य चट्टलेते छिलो।	गौड़ की जितनी सेना थी चट्ट गांव में।
श्रीधन्य माणिक्य ताके दूर कोरि दिलो।।	उन्हें दूर कर दिया श्रीधन्य माणिक्य ने।।
होसेन सा गौड़ेश्वर ए वार्ता सुनिया।	होसेन शाह गौड़ेश्वर ने यह वार्ता सुनकर।
बहुल कटक पाठाय गौड़ मल्लिक दिया।।	विशाल वाहिनी भेजा, गौड़ मल्लिक को देकर।।
बार बांगाला(4) सैन्य गौड़ मल्लिक संगे।	बारह बंगला(4) की सेना गौड़ मल्लिक के संग में।
आर बहु सैन्य दिलो जतो आछे बंगे।।	और बहुत सैन्य दिया जितनी थी बंग में।।
बहुतर नौका संगे गोमती(5) उजाइया।	बहुत सी नौकायें लेकर गोमती(5) के ऊपर।
हस्ती घोड़ा सैन्य संगे साजाइया।।	हस्ती घोड़ा सैन्य सेनाओं के साथ सजाकर।।
मेहार कुल(6) गड़े आसि प्रथम यूझिलो।	मेहर कुल(6) गढ़ में जाकर हुआ प्रथम रणागंन।
सेई कोठे युद्धे ताते मोगल लोइलो।।	दुर्ग युद्ध में मिला मुगलों को शासन।।

(1) साक्षाते –यहाँ। अर्थ होगा राजा के सामने।

(2) रायकाचाग ने अपने को सुगन्धा और अभियोगकारी प्रजा वृन्दों को कुगन्धा कहा है।

(3) पहले के दिनों में देश पर विजय प्राप्त कर विजय के निदर्शन स्वरूप सिक्का प्रचलन का रिवाज था। यहाँ पर स्वर्ण मुद्रा को मुहर कहा गया है।

(4) बार बांगाला –द्वादश भौमिकों के द्वारा शासित बंग के बारह विभाग।

(5) गोमती –त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी उदयपुर इस नदी के किनारे है।

(6) मेहार कुल –कुमिल्ला नगरी और उसके नजदीकी स्थान।

द्विल –23

त्रिपुर सैन्ये चंडिगड़(7) परे थाना कोरे।	त्रिपुर सैन्य नें चंडीगढ़(7) में अपना थाना किया।
गौड़ाई मल्लिक सेई गड़ लोइते नारे।।	गौड़ मल्लिक उस दुर्ग को फतह नहीं कर पाया।।
खोजा छिलो एक जन मंत्रणा परिपाटी।	था वहा एक खोजा मंत्रणा में सुदक्ष।
गोमती बान्धिलो सेई सोनामुड़ार भाटी।।	गोमती को बांधा उसने सोनामुडा समक्ष।।
नदी कुले बोइसे त्रिपुर रांगामाटी राज।	गोमती तट पर बैठे त्रिपुर रांगामाटी राज।
नदी बान्धि डुबाइया मारिबो समाज(8)।।	नदी बांध, डूबा मारूगां मैं दुश्मन को आज।।(8)
एई युक्ति कोरिया सेनाके आज्ञा दिलो।	यह युक्ति कर सेना को आज्ञा किया।
सोनामुड़ा भाटी दिया गोमती बान्धिलो।।	सोनामुडा के नीचे गोमती को बांध दिया।।
तिन दिन राखिलेक बान्धिया गोमती।	तीन दिनों तक बांध रखा गोमती।
पर दिन भांगि नदी होइया बेगबती।।	इसके बाद तोडा बांध, नदी हो गई वेगवती।।
पाठान सकल जले चाबुक मारय।	पाठान सभी मारते चाबुक नदी में।
रहो रहो बोलि गाली देय ए विषय।	रहो रहो कहकर गाली देते पानी में।
क्रोधे मत्त होइया जतो पाठान बर्ब्बर।	क्रोधान्मत हो उठे सभी पठान बर्बर।
ना माने नदीये वाक्य कम्पे थर थर।।	न माने नदी को जुबान कांपती उनकी थर थर।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा गुरूते कहय।	गुरू से कहा राजा श्रीधन्य माणिक्य।
अभिचार(9) कर्म करो शत्रु होउक क्षय।।	अभिचार(9) कर्म करें शत्रु को करने क्षय।।
अभिचार कर्मारंभ कोरे द्विजबरे।	अभिचार क्रियारंभ किया द्विजवर ने।
सुन्दर मण्डप कोइलो तथाय चत्वरे।।	सुन्दर मण्डप किया यहाँ आंगन में।।
प्रथम वयस कृष्ण वर्णेर चंडाल।	प्रथम वर्ष कृष्ण वर्ण चाण्डाल।
कुंडेर ऊपरे दिलो चान्दोयादि भाल।।	कुंड के ऊपर बनाया चन्दोया पांडाल।।

(7) चंडीगढ़ –यह स्थान सोनामुडा से पूर्व की ओर मेलाघर, कांकडा बन के बीच में स्थित है। यहाँ त्रिपुरा राज्य का एक दुर्ग था।

(8) समाज –दल, यहाँ पर पठानों को ही समाज कहा गया है।

(9) अभिचार –हिंसा कर्म। अथर्ववेद में मारण उच्चाटनादि अभिचार कर्म के अधीन हैं। तन्त्र में छह प्रकार के अभिचार का उल्लेख मिलता है। 1. मारण, 2. मोहन, 3. स्तंभन, 4. विद्वेषण, 5. उच्चाटन, 6. वशीकरण।

1. मारण –दैव क्रियादि द्वारा किसी का प्राण लेना।
2. मोहन –किसी के मन को भुलाना।
3. स्तंभन –मंत्र आदि द्वारा अस्त्र, अग्नि आदि की शक्ति को नष्ट कर देना।
4. विद्वेषण –मंत्रादि प्रयोग द्वारा दो लोगों में मतभेद लाना या प्रणय भंग करना, उभय पक्ष में विरोध पैदा करना।
5. उच्चाटन –मन अस्थिर कर देना अर्थात मंत्र या दवा द्वारा उन्माद करना।
6. वशीकरण –स्त्रियों को वश में करना।

इसके प्रत्येक कार्य के मंत्रादि, कार्य प्रणाली एवं आवश्यकीय द्रव्यादि का विवरण तंत्र में मिलते हैं।

द्विल –24

सप्त दिन सप्त रात्र मण्डपे रहिलो।	रहा मण्डप में सात दिन सात रात।
यज्ञ शेषे चण्डालेर मस्तक काटिलो।।	यज्ञ अंत चाण्डाल का सिर लिया काट।।
राय बार(1) संगे दिलो से मुण्ड लुकाइया।	दूत के पास दिया वह मुण्ड छिपाकर।(1)
गौड़ाइ मल्लिकेर सैन्ये(2) मुण्ड गाड़े(3) निया।।	गौड़मल्लिक सैन्य(3) मध्य सिर रखा गाडकर(3)।।
आचंभित(4) रात्र काले महा शब्द होइलो।	अकस्मात्(4) रात को हुआ शब्द भयंकर।
त्रिपुर सैन्य आइसे बलि गौड़ भंग दिलो।।	त्रिपुर सैन्य आ रही, सोच भागी सेना गौड़।।
भय पाइया गौड़ सैन्य दूरेते रहिलो।।	भय पाकर गौड़ सेना रही दूर जाकर।
कापुरूष बोलिया सबे डाकिया कहिलो।।	बुलाया सबको कापुरूष कहकर।।
होसेन शाह मल्लिकके भर्त्सिलो बिस्तर।	होसेन शाह ने मल्लिक की बहुत सी भर्त्सना।
लज्जा भय पाइया मल्लिक होइलो कातर।।	मल्लिक ने झुकाया सिर अपना लज्जा कातरता से।।
गौड़ाई मल्लिक भंग दिल युद्ध होइते।	रण भंग कर दिया गौड़ाई मल्लिक ने।
श्रीधन्य माणिक्य चले चाटिग्राम लोइते।।	श्रीधन्य माणिक्य चले, चट्ट गांव लेने।।
चाटिग्राम होते भंग दिलो गौड़ सेना।	चट्ट गांव से भी रण भंग किया गौड़ सेना ने।
रसांग मर्दन(5) नारायणके बसाइलो थाना।।	रसांग मर्दन(5) नारायण बैठाया उस थाना में।।
राम्बु छत्रसिक राजा आमल कोरिलो।	राम्बू छत्रसिक राजा ने जीत लिया।
रसांग जिनिया किल्ला पुष्कर्णी खोनिलो।।	रसांग को जीत किला, पुष्करिणी खनाया।।
निज रसांग लोइते नारे सेनापति।	अपना रसांग ले न सके सेनापति।
रसांग मर्दन नारायण तार होइलो ख्याति।।	रसांग मर्दन नारायण की हुई ख्याति।।
रायकाचाग रायकछम दुई सेनापति।	रायकाचाग रायकछम दो सेनापति।
क्रोध होइया नृपतिये पाठाय शीघ्रगति।।	क्रुद्ध होकर नृपति ने भेजा शीघ्रगति।।
चौद्सो सात्रिश शके चाटिग्राम जिने।	चौदह सौ सैंतीस शक में चट्टग्राम जीता रण में।
शुनिया होसन शाहा महा क्रोध मने।।	सुनकर होसेन शाह महाक्रुद्ध हुए मन में।।
युद्धेते आसाम कोच मारिया लोइलो।	युद्ध में आसाम कोच मार ले गया।
त्रिपुरार सैन्ये आमा अपमान दिलो।।	त्रिपुरा की सेना ने मेरा अपमान कर दिया।।
मनेते चिंतिया सैन्य पाठाये विस्तर।	मन में सोच सेना भेजी बडी भारी।
होइतन खाँ करा खाँ दुई पाठाय सत्वर।।	हैतन खाँ, करा खाँ की थी अब बारी।।
रांगामाटी जिनिवारे होइतन खाँ चलिलो।।	रांगामाटी जीतने चले हैतन खाँ।
होसेन शाहा आश्वासिया बहु सैन्य दिलो।।	होसेन शाह ने भरोसा दिया, मिली बहुत सेना।।
रांगामाटी देशेते त्रिपुर सैन्य रय।	रांगामाटी देश में त्रिपुर सेना आलय।
मारिआ आनहो ताके शीघ्र कोरि जय।।	मारकर लाओ उसे, करके विजय।।

(1) रायबार –दूत।

(2) सैन्ये –सेना के बीच, शिविर मे

(3) गाडे –प्रोथित करना, गाड देना।

(4) आचंभित –अकस्मात्, हठात्।

(5) रसांग मर्दन –रसांग (आराकान) विजयी सेनापति की उपाधि

द्विल –25

एक शत हस्ती पंच सहस्र घोटक।	एक सौ हाथी पांच हजार अश्वारोही।।
लक्षैक पदाति चले धानुकी कटक।।	एक लाख पदातिक चले धनुर्बाणधारी।
द्वादश बांगाला चले होइतन खाँ सहिते।	द्वादश बंगला चले हैतन खाँ के साथ।।
विदाय कोरिलो गौड़े शिरस्त्रान माथे।।	विदा किया गौड़ ने शिरस्त्राण दे माथ।
चलिल होइतन खाँ मही कम्पमान।	चला हैतन खाँ धरती हुई कम्पमान।।
कोतो दिने उत्तरिलो राज्य सन्निधान।।	बहुत दिनों पर पंहुचे राजा सन्निधान।
सराइल पथे आइसे युद्ध सैन्य लोइया।	सराइल के राह से आये युद्ध सेना लेकर।।
कैलागढ़ होइया आइसे विशालगढ़ दिया।।	कैलागढ़ से आये विशालगढ़ होकर।
जामिर खाँ गड़े प्राते चडिलो पाठान।	जमीर खाँ गढ़ पर प्रातः चढ़े पठान।।
त्रिपुरार अल्प सैन्य तार छिलो ज्ञान।।	त्रिपुरा अल्प सेना का उसे था ज्ञान।
खड्ग राय आदि कोरि अनेक त्रिपुर।	खड्ग राय आदि हैं बहुत से त्रिपुर।।
सेई गड़े बहु युद्ध कोरिलो प्रचुर।।	उस गढ़ में हुआ युद्ध हुआ तब भयंकर।
लोइलेक सेई गढ़ होइतन खाँ पाठान।	ले लिया गढ़ हैतन खाँ पठान ने।
छघरियार गड़े गेलो राजा विद्यमान।।	छघरिया के गढ़ में गये राजा विद्यमान।।
गगन खाँ नामेते राजार सेनापति।	गगन खाँ नाम का था, राजा का सेनापति।
तार सने घोर युद्ध होइलो हाताहाती।।	उसके साथ घोर युद्ध भिड़े एक दूजे के प्रति।।
परस्पर महारण ताते बहु होइलो।	वहां बहु हुआ परस्पर महारण।
हेनो मते दुई सैन्ये घोर युद्ध कोइलो।।	दोनों सेनायें भिड़ी कोई किसी से नहीं कम।।
तिन प्रहर यूझिलेक गगन खाँर सने।	तीन प्रहर जूझे युद्ध में गगन खाँ के संग।
भंग दिलो गगन खाँ जिनिलेक हैइतने।।	भंग किये गगन खाँ, जीते हैतन।।
यशपुर छाडि राजा रांगामाटी आइसे।	यशपुर छोड़ राजा रांगामाटी आये।
सेई पथे होइतन खाँ चलिलो विशेषे।।	इसी राह हैतन खॉ चलते हुए आये।।
गंगानगर होइते राजा डोम घाटी पथे।	गंगानगर होते राजा डोम घाटी के पथ पर।
रहिलेक होइतन खाँ गड़ कोरि ताथे।।	रह गये हैतन खाँ वहा गढ़ बनाकर।।
दुई प्रहरे खनिलेक ताते एक दीघी।	दो प्रहर में खनाया वहा एक पुष्करिणी।
ना खाय गोमतीर जल विष दिबो लागि।।	विष मिलाया गोमती में, न पिये गोमती का पानी।।
तद्बधि सेई दिघि डोक नाम तार।	तब से तालाब डोक हुआ उसका नाम।
परे देवमाणिक्य ताके कोरिछे विस्तार(6)।।	पश्चात देवमाणिक्य ने किया और उन्नयन।।(6)

---

(6) पाठान्तर – "दुई प्रहरे खनिलेक एक महा दीधी।
ना खाये नदीर जल विष दिछे लागि"।।

अर्थात दो प्रहर में एक महा पुष्करिणी का खनन किया। नदी के पानी में विष मिला दिया।

द्विल –26

परे राजा रहे गिया छन गांग ऊपर।
आर जतो सेनागन रहे थरे थर।।
छन गांग तैकातान देबद्वार नाम।
तार कत बांक उजान माछिछडा धाम।।
होइतन खाँ संगे छिलो जतो शिल्पकर।
निर्माइछे गड़ पोरे देब बहुतर।।
गड़ देखिबार तरे चलिलो भूपति।
उच्च स्थाने थाकि गड़ देखिलो नृपति।।
भाटि बांके(1) गौड़ सैन्ये बान्धियाछे गड़ ।
ताहार उजाने गड़ त्रिपुरार तत्पर।।
बोसिलेक नरपति बृक्ष छाया तले।
डाइन(2) सब डाकि आनि राजा ताके बले।।
आमार प्रजा खाव तोरा डाइन सब लोक।
एखन ना खाव केनो हैतन खाँ सम्मुख।।(3)
नृपतिर वाक्य सुनि बलागमा युवती।
नमस्कार कोरि कहे सुनो हे भूपति।।

पश्चात जा के रहे राजा छन गांग के ऊपर।
और जितनी सेनायें थी कांपती थी थर थर।।
छन गांग तैकातार देवद्वार नामा।
उसके मोड पार है माछिछडा धाम।।
जितने कारीगर थे हैतन खाँ के साथ।
निर्माण करो गढ़ कहा बहुत दूंगा पश्चात।।
गढ़ देखने चले भूपति।
उंची जगह से गढ़ देखे नृपति।।
नदी नीचे बहु मोड़, गौड़ सेना ने बनाया गढ़।
त्रिपुरा का गढ़ था उसकी ऊपर की ओर।।
आ बैठे नृपति वृक्ष छाया तले।
डायनों(2) को बुला तब राजा थे बोले।।
मेरी प्रजा को तुम खाती सभी।
क्यों खाती नहीं हैतन खाँ को कभी।।(3)
बात सुन नृपति की बलागमा युवती।
नमस्कार कर कही सुनो नृपति।।

....र...

सेई त तुडुक दीधी देशेते प्रचार।
श्री देवमाणिक्य तारे करिल विस्तार।।

पहाडों में एक तरह की लता होती है। जो अत्यन्त विषैली होती है। इसे पीसकर नदी में फेंकनें से पानी विषैला हो जाता है। पहाडी ईलाकों में अब भी मछली पकड़ने के लिए इस प्रणाली को अपनाया जाता है। इस लता को पानी में फेंकने से मुसलमानी फौजों ने नदी का पानी नहीं पिया और पानी पीने के लिए एक तालाब खुदवाया था। उनके खुदवाये गये इस जलाशय का नाम ''तुडुक दिधि'' या तुडुग तडाग (असल में तुरूक शब्द का अपभ्रंश है तुडुग शब्द) अब इसे डोक दिधि कहते हैं। बाद में देवमाणिक्य ने इस सरोवर का और विस्तार किया था। विषलता की उत्पत्ति के बारे में कृष्णमाला ग्रंथ में आख्यायिका की आलोचना हम बाद की टीका में संयोजन करेगें।

(1) भाटिबांक –नदी के निम्न भाग में स्थित वक्र मोड़।

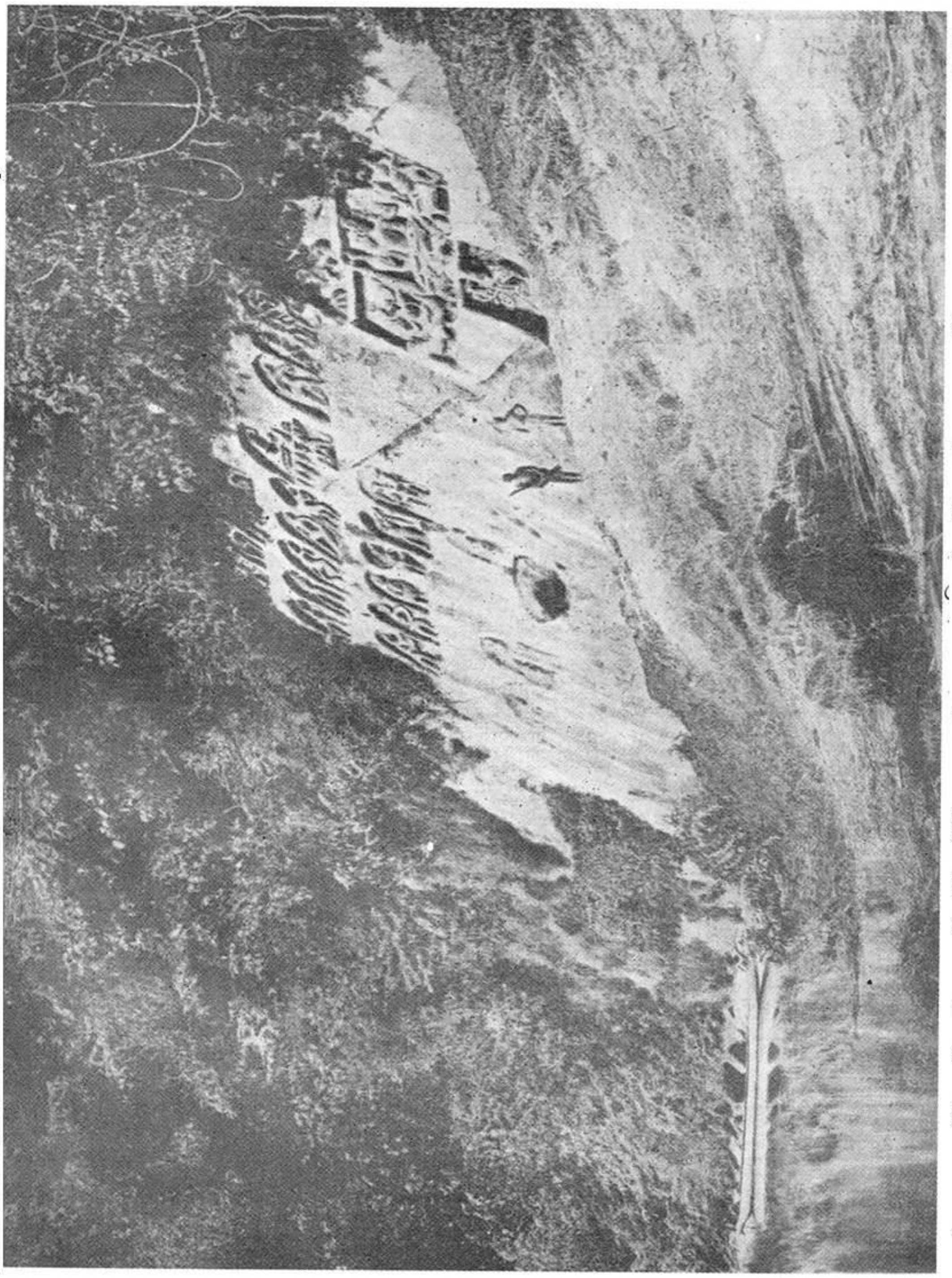
(2) डाइन या डायन –डाकिनी। पार्वत्य जातियों में विश्वास है कि कोइ कोई पुरूष या नारी दैव शक्ति की सहायता से साधना द्वारा ये लोग अकारण या सामान्य कारणों से मंत्र शक्ति द्वारा लोगों का वध कर देते हैं। स्थानीय भाषा में इसे ''डायन'' या ''डाइन'' कहते हैं। लोग इनसे डरते हैं और भ्रांत विश्वास वश कभी कभी इनका वध कर देने में भी नहीं हिचकते।

(3) तुम हमारी प्रजा को खाती हो, अब हैतन खाँ सामने है उसे क्यों नहीं खाते।



पर्वत के भीतर पत्थर पर खोदित देव–देवी मूर्ती

द्विल –27
2nd Leher-Page-27



पर्वत पर खुदित देव देवताओं की मूर्ति देवतामुड़ा – (माछि छा) विवरण 310 पृष्ठ पर देखें

द्विल –27

मंगलवार रात्रे आमि स्तम्भिब गोमती।	मंगल की रात मैं करूगी स्तंभन गोमती नदी।
सप्त दिन जल स्तंभ राखिबो सम्प्रति।।	सात दिन जल स्तंभ कर दूंगी सम्प्रति।।
बलागमार वाक्ये राजार तुष्ट होइलो मन।	बलागमा की बातों से तुष्ट हुआ मन।
बलागमाके राज प्रसाद दिलो सेई क्षण।।	बलागमा को राज प्रसाद दिया तक्षण।।
मंगलवार रात्रिते ससज्ज हइल।	मंगल की रात वह सुसज्ज हो गई।
दुई कुला बाहु मूले बान्धि उडादिल।।(4)	दो सूप बाजुओं में बांध उड़ गई।(4)
दुई शत हाथ उच्चे उडिल गगन।	दो सौ हाथ ऊपर उड़ा गगन।
उड़िया नदीर मध्ये हइल पतन।।	उड कर हुआ नदी में पतन।
उजाने चालाय स्रोत चर पड़े भाटि।	ऊपर चले स्रोत नीचे बढ़ी रेत।।
आनन्दित गौड़ सैन्य रहे परिपाटी।।	आनन्दित गौड़ सेना जाने नहीं भेद।
होसन शाहेर भाग्ये नदी दिल चर।	होसेन शाह के भाग्य से नदी ने छोडा रेत।।
चरेते रहिल सैन्य करि बासा घर।।	रेत में रहने लगी सेना मिला बडा खेत।।
आर देखे नदी तीरे पासान प्रतिमा।	और देखती नदी तट पर पाषाणी प्रतिमा।
हिन्दू सबे पूजा करे जानिया महिमा।।	हिन्दू सब पूजे उसे, जान उसकी महिमा।।
सेई स्थाने नाम छिल माचिछा विख्यात।	नाम उसका था माचिछा विख्यात।
पुनर्जन्म नहे बोले त्रिपुरा साक्षात।।(5)	दर्शन से पुनर्जन्म नहीं, कहे त्रिपुर साक्षात।।(5)
एई मत नानालाप सैन्य मध्ये हइल।	हुआ सेनाओं में नानाविध संलाप।
नाना भोगे गौड़ सैन्ये बहु निंद्रा गैलो।।	नाना भोग भोगते सुख निद्रा सोये आप।।
भेरूआ(6) काटिया सैन्ये साजाय विस्तर।	सजाया सेनाओं ने भेला काटकर।(6)
तिन तिन पुतला राखे भेरूआ ऊपर।।	तीन तीन पुतलों को बैठाया उस भेले के ऊपर।।
दुई दुई बुन्दा(7) दिलो पुतलार हाते।	दो दो मशाल(7) जलाकर दिया पुतलों के हाथ।
सहस्र सहस्र बुन्दा पुतला सहिते।।(8)	हजारों मशाल रखा पुतलों के साथ।।(8)
निशा काले बलागमाय उठे जल होते।।	निशा काल में उठी बलागमा पानी के भीतर से।
कल कल शब्द कोरे गोमतीर स्रोते।।	कल कल कर गोमती का पानी बहा प्रबलतर से।।
सहस्र सहस्र भेरूआ चलिलो भाटित।	सहस्र सहस्र बहता भेला तेजी से नीचे की ओर।
सहस्र सहस्र बुन्दा ताते प्रज्वलित।।	सहस्र सहस्र मशाल चले प्रज्जवलित होकर।।

(4) उडादिलो (उड गया) –उड्डीय मान हुआ।

(5) देवस्थान का दर्शन करने से पुनर्जन्म नहीं होता, त्रिपुरा वासियों का यही विश्वास है।

(6) भेरूआ, भेला, बोंगा।

(7) बुन्दा –मशाल, उल्का।

(8) प्रत्येक भेला का बोंगा पर तीन पुतले बैठाये थे और प्रत्येक पुतला के हाथ में दो दो मशाल दिये गये थे।

द्विल –28

गौड़ सैन्य नदी चरे सुखे निद्रा जाय।	गौड़ सेना बालू पर सुख से थी सोई।
हेनो काले नदी श्रोते सकल डूबाय।।	इसी समय गोमती ने सबको ले डूबाई।।
हस्ती घोड़ा नौका जतो भासाइलो बेगे।	हाथी घोड़े नाव सभी को ले गई बहाकर।
मनुष्य निर्बल होये कि कोरिबो रागे।।	क्रोध कर क्या करेगा कोई निर्बल होकर।।
प्रज्जवलित बुन्दा सब पुतलार हाते।	जलती मशाल थी सभी पुतलों के हाथ।
नदी तीरे त्रिपुर सैन्य पथे घिरे ताते।।	नदी तीर त्रिपुर सेना ने घेरा पथ के साथ।।
गौड़ेर सैन्येर पाछे छिलो एक बन।	गौड़ सेना के पीछे था वहा एक वन।
सई बने अग्नि दिलो त्रिपुरार गण।।	वहा लगा दी आग त्रिपुर के ही गण।।
महाशब्द कोरि अग्नि उठिलो तखन।	महा शब्द कर जाग उठी अग्नि उस क्षण।
अन्य पथे त्रिपुर सेना कोरे निरीक्षण।।	दूसरी ओर से त्रिपुर सेना कर रही निरीक्षण।।
नदीर स्रोते सर्ब्ब सैन्य प्रलय कोरिलो।	नदी स्रोत में सभी सेनाओं का हुआ प्रलय।
भय पाइया गौड़ सैन्य सबे भंग दिलो।।	भय से भाग चली गौड़ सेना मानो होगा विलय।।
हैतन खाँय करा खाँय सहिते ना पारे।	हैतन खाँ और करा खाँ सह नहीं सके इस बार।
भंग दिलो सैन्य संगे घोड़ार ऊपरे।।	रण भंग किया सेना के साथ अश्वारूढ़ होकर।।
काटिते काटिते जाय त्रिपुरार सेना।	काट रही थी पथ में उन्हें त्रिपुरा की सेना।
सेई रात्रे भागाइलो(1) चारि पांच थाना।।	उसी रात खदेड़ा(1) उन्हें चार पांच थे थाना।
बहु अश्व गज तार पाइलो तथाय।	बहु अश्व गजादि उन्हें मिला वहां से।
ताहा छाडि हैतन खाँय भंग दिया जाय।।	उन्हें छोड़ हैतन खाँ भाग गया यहाँ से।।
छकडियार घाटे गिया सत्य कोरि कोइलो।	छकडिया के घाट पंहुचकर उसने किया प्रतिज्ञा।
एत सैन्य संगे आमि जिनिते ना पाइलो।।	इतनी सेना साथ लेकर भी क्यों नहीं जीत सका।।
एहार अधिक सैन्य जाहार जे होय।	इससे अधिक सेना हो जिसकी सहाय।
से पुनि आसुक एथा परम निर्भय।।	वही पुनः आये यहाँ पर होकर निर्भय।।
ता होते अल्प सैन्य ना आसुक एथा।	इससे कम सेना वाले कभी न आये यहाँ
शपथ कोरिलो आमि एई सत्य कथा।।	शपथ कर कहता हूँ यह है सत्य बयां।
जे सब पाठान होय जेई योद्धा सब।	जो सब पठान हैं वही हैं योद्धा सब।
अल्प सैन्ये जेबा आसे से सब गर्दभ।।	थोड़ी सेना जो ले आये वह है गर्दभ।।
ए बालिया हैतन खाँ गौड़े चलि गेलो।	यह कह हैतन खाँ गौड़ चले गये।
गौड़ेश्वरे तार प्रति निष्ठुर बोलिलो।।	गौड़ेश्वर ने उनके प्रति निष्ठुर वचन कहे।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा युद्धे जय पाइया।	श्रीधन्य माणिक्य राजा ने युद्ध जीतकर।
चतुर्दश देब पूजे विधि बलि दिया।।	चतुर्दश देवता पूजे विधिपूर्वक बलि देकर।।

(1) भगाइल –खदेड़ा।

द्विल –29

पूर्बेते त्रिपुर राजा नरबलि दितो।	पहले त्रिपुर राजा नरबलि देते।
सहस्रे सहस्रे बंग(2) बर्षे काटा जाइतो।।	सहस्र सहस्र बंगवासी(2) हर वर्ष काटे जाते।।
श्रीधन्य माणिक्ये माना ताहाके कोरिलो।	श्रीधन्य माणिक्य ने इसे मना किया।
तद्बधि नरबलि निषेध होइलो।।	तब से नरबलि कर्म बन्द हो गया।।
तिन बत्सरे एक नर चतुर्दश देबे।	एक नर चतुर्दश को तीन साल बाद।
कालिकाते एक नर पाइबेक जबे।।	कालिका एक नर पायेंगी तब।।
दौचा पाथरे दुई नर शत्रु पाइले होय।	दौचा पाथर दो नर यदि शत्रु मिल जाये।
गोमती ते दुई बलि घटे जे समय।(3)	गोमती में दो बलि तब हो जाये।।(3)
इहाते अधिक बलि माना कोरे राजा।	इससे अधिक बलि मना किये राजा।
तद्बधि निश्चिंते रहिलो राज्य प्रजा।।	तबसे निश्चिंत होकर रहने लगी प्रजा।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा कमलार पति।	श्रीधन्य माणिक्य राजा कमला के पति।
उत्कल खण्ड(4) पांचाली(5) रचाइलो महामति।।	उत्कल खण्ड(4) पांचाली(5) रचाये महामति।।
ज्योतिषेर यात्रारत्नाकरनिधि आर।	और ज्योतिष के यात्रा रत्नाकरनिधि।
पांचाली रचाइलो राजा लोके बुझिबार।।	पांचाली रचाये राजा, समझे लोग सभी।।
त्रिहुत देशे होइते नृत्य गीत आनि।	त्रिहुत देश से नृत्य गीतादि को लाकर।
राज्येते शिखाय गीत नृत्य नृपमणि।।	राज्य में सिखाये सभी को समझाकर।।
त्रिपुर सकले गीत सेई क्रमें गाय।	सभी त्रिपुर उसी क्रम से गाते।
छाग अन्ते(6) तार यन्त्र त्रिपुरे बाजाय।।	छाग आंत(6) से बने तार यंत्र पर त्रिपुर बजाते।।
एई मोते अति सुखे आछेन नृपति।	इस तरह बड़े चैन से रहते त्रिपुर नृपति।
प्रजा सब महासुखे बंचिलेक क्षिति।।	प्रजा सभी महा सुखी थे बदल दिये थे क्षिति।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा धर्मे चित्त दिलो।	श्रीधन्य माणिक्य राजा ने धर्म में दिया मन।
प्रतिमा भुवनेश्वरी सुवर्णे निर्माइलो।।(7)	भुवनेश्वरी प्रतिमा का किया स्वर्ण से निर्माण।।(7)
एक मन सुवर्णेर प्रतिमा निर्माइया।	एक मन सुवर्ण से प्रतिमा को बनाकर।
जीबन्यास कोराइलो साधक आनिया।।	जीवन्यास किया तब साधक को बुलाकर।।
प्रतिमा नासाय तुला लगाइया राखे।	प्रतिमा के नासिका में रूई लगाकर रखा।
श्वासे तुला उड़ि जाय पूजा काले देखे।।	सांसो से उड़ गई रूई पूजा समय देखा।।

---

(2) बंग –बंग देशवासी, बंगाली।

(3) गंगा पूजा के समय गोमती नदी में बलि दी जाती थी। इस समय राजधानी अगरतल्ला को छूकर बहने वाली हावड़ा नदी में गंगा पूजा दी जाती थी।

(4) यह ग्रंथ इस समय कहीं नहीं मिल रहा है।

(5) पांचाली –चालीसा की तरह छन्दोबद्ध।

(6) अंत –आंत। इसके द्वारा वाद्य यंत्र के तार बनाये जाते हैं। यह बकरी या बकरे के आंत से तार की तरह पतला बनाया जाता है।

(7) यह प्रतिमा इस समय नहीं है। शायद मुसलमान या मगों ने लूट लिया है।

द्विल –30

राजार पुत्रेह मूर्ति देखिते ना पारे।
गुप्त कोरि राखिलेक पूजार मन्दिरे।।
पोरे विष्णु मठ एक नृपे निर्माइलो।
सात्विक होइया राजा उत्सर्गिया दिलो।।
आर एक मठ निते आरम्भ कोरिलो।
वास्तु पूजा संकल्प विष्णु प्रीते कोइलो।।
भगवती राजाते स्वप्न देखाय रात्रिते।
एई मठे आमा स्थापो राजा महा सत्वे।।(1)
चाटिग्रामे चट्टेश्वरी ताहार निकट।
प्रस्तरेते आमि आछि आमार प्रकट।।
तथा होइते आनि आमा एई मठे पूजो।
पाइबा बहुल बर जेई मते भजो।।(2)
स्वप्न देखि नरपति द्विजेते कोहिलो।
ब्राह्मण सकले मिलि साधुबाद कोइलो।
रसांग मर्दन नारायण पाठाय चट्टले।
स्वप्ने जेई स्थाने देखे मिलिलेक भाले।।
उत्सव मंगल बाद्ये राज्येते आनिलो।
सत्वर गमने राजा नमस्कार कोइलो।।
कोतो दिन पोरे मठ प्रस्तुत होइलो।
पून्याह दिनेते राजा उत्सर्गिया दिलो।।
जन्म सफल राजार कालिका स्थापिया।
नाना बलिदान कोरे नर आदि दिया।।(3)
नानाविध उपहार दिलेन पूजार।
मत्स्य मांस प्रभृति जतेक प्रकार।।
मठ मध्ये पाथरे लिखिलो एई श्लोक।
पयारे लिखिलो श्लोक बुझिबारे लोक।।

राजा के पुत्र मूर्ति को न पाये देखने।
गुप्त करके रखा पूजा के मन्दिर में।।
इसके बाद विष्णु मठ, एक राजा ने बनवाया।
सात्विक होकर राजा ने उत्सर्ग उसे कर दिया।।
और एक मठ आरम्भ किया।
वास्तु पूजा का संकल्प विष्णु को किया।।
भगवती ने राजा को रात में दिया सपन।
इस मठ में राजा तुम करो मेरा स्थापन।।(1)
चट्ट गांव में चट्टेश्वरी के निकट।
पत्थरों में मैं हूँ करो मुझे प्रगट।।
वहां से लाकर तुम इस मठ में पूजो।
पाओगे बहुत वर जब जिस मत से भेजो।।(2)
स्वप्न देख नरपति ने द्विजों से कहा।
सभी ब्राह्मणों ने मिल साधुवाद किया।।
रसांगमर्दन नारायण को भेजा चट्टगांव।
देखा उन्होनें मिल गया वह स्थान।।
उत्सव मंगल वाद्यों से राज्य में ले आये।
तुरंत जाकर राजा नमस्कार कर आये।।
कुछ दिनों पश्चात मठ निर्माण हो गया।
पूजा के दिन ही राजा ने उत्सर्ग कर दिया।।
जन्म सफल राजा का, हुआ कालिका स्थापन।
नर आदि को लेकर दिया बहुत बलिदान।।(3)
दिया पूजा में नानाविध उपहार।
मत्स्य मांस आदि भी जितने थे प्रकार।।
मठ के मध्य पत्थर में लिख दिया यह श्लोक।
सरल छन्दों में लिखा श्लोक जैसे समझे लोग।।

---

(1) यह पीठ देवी त्रिपुरा सुन्दरी का मन्दिर है। इस मन्दिर का विवरण इस लहर की टीका में देखिये।

(2) त्रिपुरा सुन्दरी मूर्ति का विवरण प्रथम लहर के टीका में दिया गया है।

(3) बलि विषयक शास्त्रीय विधान इस लहर की टीका में मिलेगा।

द्विल –31
2nd Leher-Page-31



त्रिपुरेश्वर महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा निर्मित
श्री श्री स्वयम्भू नाथ का मन्दिर
चन्द्रनाथ तीर्थ

द्विल –31

अथ श्लोक

माया मुवारे रियमम्बिका या।
मुंचत्य मुष्या निकटं न कूत्र।।
प्रान्ते भवान्या ध्रुब मास केशबः।
श्रीधन्य माणिक्य विनिश्चिति स्तियम्।।(4)

श्लोक छन्द (पयार)

हरिर मायाते मल्लिकार प्रकाश।
तेन माया बेस्टित थाके मानबेर पाश।।
एई तत्व सत्य जानो केशब ताहाते।
श्रीधन्य माणिक्य कृत निर्मित इहाते।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा आर मठ दिलो।
रत्नपुरे चतुर्दश देबता स्थापिलो।।
सेई मठे पूजा कोइलो श्रीधन्य माणिक्य।
फलमतीश्वर तीर्थ दक्षिणे आधिक्य।।
फलमतीश्वर तीर्थे जरब मारिया।
चाटिग्राम आमल कोरे मोहर निर्माइया।।
हेनकाले शुने राजा कुकिर समाचार।
कुकिनी सबेर संगे शिबेर व्यवहार।।
आर तत्व महाराजा शुनिलो तखन।
कुकि राज्ये सुवर्णेर होयेत उत्पन्न।।
राजार जामाता होपाकलाउ नाम तार।
कुकिते पाठाय शिब लिंग आनिबार।।
कोतो दिने उत्तरिलो किरात भबन।
शिब लिंग यत्ने से जे धरिलो तखन।।
पान बाटा मध्ये लिंग कापड़े जड़िलो।
मोहर कोरिया बाटा सत्वरे पाठाइलो।।
शिब लिंग लोइया गेलो राजार साक्षाते।
बाटा होइते निकलिछे(5)शिब लिंग पथे।
मनु नदी सीमाना तक बाटाते आछिलो।
मनु नदी पार होइते फिरि तथा गेलो।।

अथ श्लोक

माया मुवारे रियमम्बिका या।
मुंचत्य मुष्या निकटं न कूत्र।।
प्रान्ते भवान्या ध्रुब मास केशबः।
श्रीधन्य माणिक्य विनिश्चिति स्तियम्।।(4)

श्लोक छन्द(पयार)

हरि की माया से मल्लिका का प्रकाश।
उन माया से वेस्टित रहे मानवो का पाश।।
महाराज सत्य जानो केशव है वहां।
श्रीधन्य माणिक्य द्वारा निर्मित यहाँ।।
श्रीधन्यमाणिक्य राजा का मठ था और एक।
रत्नपुर में चतुर्दश देवता का स्थापन किया देख।।
उस मठ में पूजा किया श्रीधन्य माणिक्य।
फलमतीश्वर तीर्थ का दक्षिण में अधिक्य।।
फलमतीश्वर तीर्थ में जरप कर दिया।
चट्टगांव को दखल किया मोहर बनाया।।
इसी समय सुना राजा ने कुकि समाचार।
कुकिनियों के साथ शिव का व्यवहार।।
और तत्व महाराजा ने सुना उस क्षण।
कुकि राज्य में होता है सुवर्ण उत्पन्न।।
राजा के जामाता होपाकलाउ उनका नाम।
शिव लिंग लाने भेजा कुकि स्थान।।
कुछ दिनों पश्चात पहुंचे वे किरात भवन।
शिव लिंग सयत्न से पकड़ा उस क्षण।।
पान पात्र में कपड़े में लपेट कर।
मुहर बन्द करके भेज दिया सत्वर।।
शिव लिंग ले गया राजा के समीप।
पानपात्र से निकल(5) गया शिव लिंग पथ बीच।।
मनु नदी सीमान्त तक शिव पान पात्र में थे।
मनु नदी के पार होते लौट गये वे।

---

(4) त्रिपुरा सुन्दरी के मन्दिर पर श्लोक लेख का विवरण बाद में टीका में देखें।
(5) निकलिछे –(बंगला में) बाहर हुआ।

द्विल –32

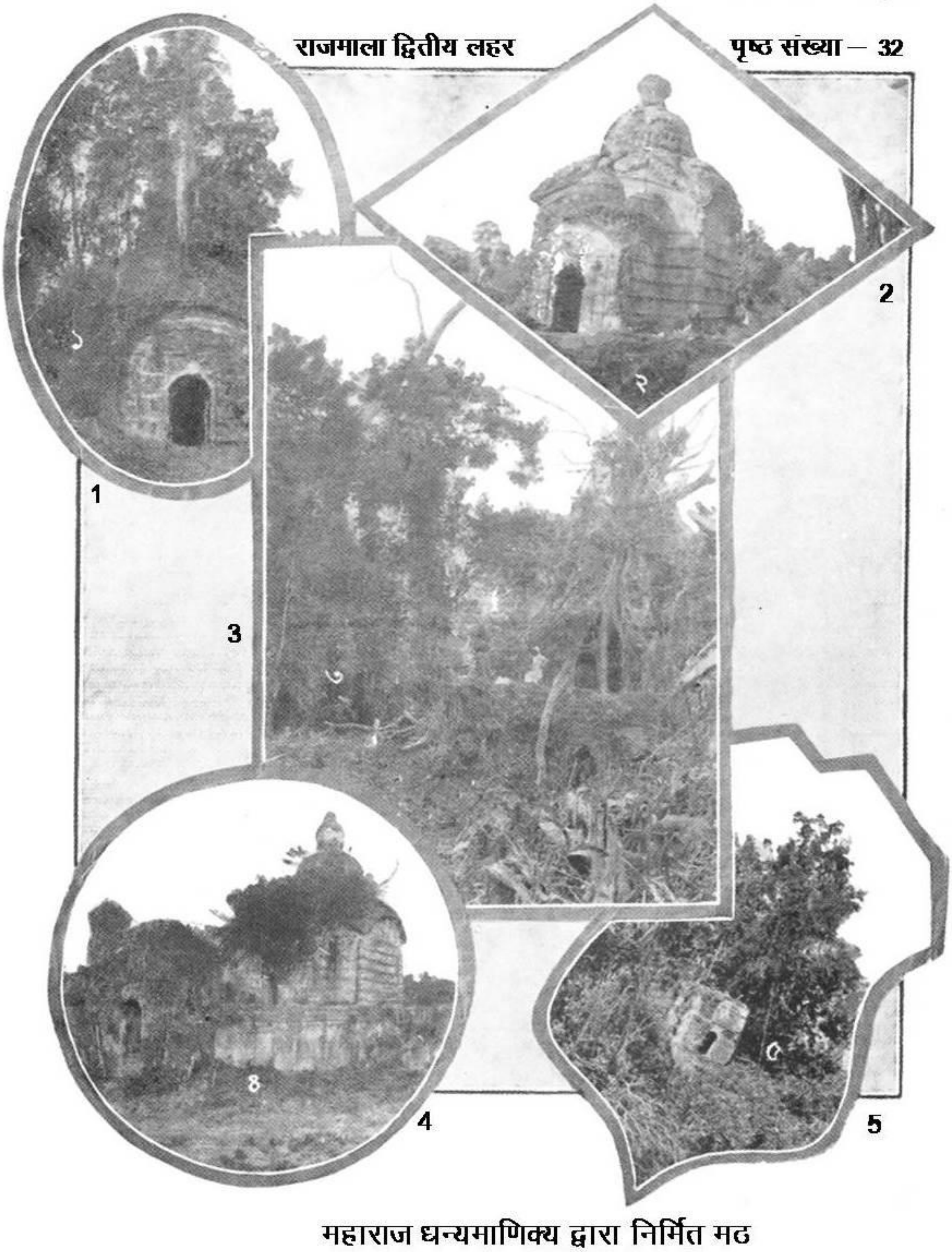
ए कथा शुनिया राजा विस्मित अन्तरे।	यह बात सुनकर राजा विस्मित अंतर में।।
मने बिबेचिया राजा बोलिलो ताहारे।।	राजा ने तब कहा उससे विवेचना कर मन में।।
ब्रह्मा धरिते नारे जे पदारबिन्द।	ब्रह्मा धर नहीं सके जिसके पदार विन्द।
ताहाके धरिते चाहि आमि मति मन्द।।	उसे मैं पकड़ना चाहता हूं मैं हूँ मति मन्द।।
जामाता होपाकलाउ मने गर्ब तार।	जामाता होपाकलाउ मन में गर्व अपार।
थांचाांग(6) चडिया जाय सोना आनिबार।।	स्वर्ण लाने चला वह पालकी(6) चढ़कर।।
किरात सकले मिलि युक्ति कोरे सार।	सभी किरात मिल कर युक्ति करे सार।
सोना पाइले थाना एथा थाकिबो राजार।।	सोना मिलते ही राजा का थाना होगा इस बार।।
मंत्रणाते जामाताके मद्य पान दिलो।	मंत्रणा में जामाता को मद्य पान दिया।
मद्येते विह्वल जामाई कुकिये काटिलो।	मद्य विह्वल जामाता को कुकियों नें कत्ल किया।।
नृपति सुनिया ताते जामाता मरण।	नृपति ने सुना वहां जामाता मरण।
आनिया से सब कुकि करिलो दण्डन।।	लाकर उन कुकियों को किया दण्डन।।
श्रीधन्य माणिक्य चारि मठ दिलो क्रमे।	श्रीधन्य माणिक्य ने चार मठ बनाये क्रम से।
कारिकर गणे इनाम(1) पाइलेक श्रमे।।	कारिगरों ने इनाम(1) पाया अपने श्रम से।।
करिकर स्थाने पोरे नृपति जिज्ञासे।	कारीगर से बाद में नृपति ने की जिज्ञासा।
ता होइते अधिक शिक्षा जानह विशेषे।।	जानते हो विशेष तुम पर न हुई अधिक शिक्षा।।
राजार बचन शुनि बोले कारिकरे।	राजा का वचन कारिगरों को था कहना।
ता होइते अधिक जानि मठ बानाइबारे।।	इससे भी अधिक हूँ जानता मठ का बनाना।।
ताहा शुनि क्रुद्ध होइलो राजा महाजन।	यह सुन क्रुद्ध हुए राजा महाजन।
बार बार कह तोरा एमत कथन।।	बार बार कहते हो क्यों इस तरह कथन।।
जतो गुण आछे तोमा देखाइते बोलिला।	जितना गुण है दिखाने को कहकर।
एखाने राखिला शिक्षा आमाके बंचिला।।	मुझसे किया बंचना इतनी शिक्षा रखकर।।
आमा कथा हेला कोइले जानिलो निश्चिते।	हमारी बात की अवहेलना यह है निश्चित।
आज्ञा कोरे काट निया नदीर तीरेते।।	राजाज्ञा है काटो नदी तीर पर्यन्त।।
निजार्जित कर्मे तार एमत घटिलो।	निजार्जित कर्म से उसका हुआ इस तरह।
राज आज्ञाय काटे ताके केहो ना बोलिलो।।(2)	राजाज्ञा से काटा उसको, कोई कुछ न बोला।।(2)
नाना बाद्य सब यंत्र बहु रंग ताते।	नाना वाद्य सब यंत्र बहुत से रंग भरे।
बहुल कबिता गान रचिलो से मते।।(3)	बहुत कवितायें गान इसी तरह रचा करें।।(3)..

(6) थांचांग –पालकी की तरह।

(1) इनाम पुरुस्कार

(2) राजाज्ञा से वध हुआ, उसकी रक्षा के लिए किसी ने अनुरोध नहीं किया।

(3) इन कविताओं के संग्रह का कोई उपाय नहीं है।



महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा निर्मित मठ
(1) विष्णु मन्दिर (2) पुरातन तालाब के किनारे पर मन्दिर
(3) लोकपालनी (झूलन) मन्दिर (4) हरि मन्दिर (5) भग्न मन्दिर

द्विल –33

कोतो काल सुखे नृपे राजत्व कोरिलो।	बहुत दिनों तक सुख से नृप ने राजत्व किया।
दैबगति महाराजार बसंत होइलो।।	दैवगति बलवान पीलिया ने नृप को ग्रास किया।।
एई रूपे महाराजार स्वर्ग प्राप्ति होइलो।	इस तरह महाराज की स्वर्ग प्राप्ति हुई।
महादेबी कमला जे सहगामी गेलो।।	महादेवी कमला भी सहगामी हो गई।।
तार पोरे जेबा होइलो सुन नृपमणि।	इसके पश्चात जो हुआ सुनो नृपमणि।
मन्वन्तर(3) फिरे जेनो हेनो राजधानी।।	मन्वन्तर(3) जैसे लौट आया राजधानी।।
अमरमाणिक्य स्थाने कहे रण चतुर।	अमरमाणिक्य से कहे रण चतुर।
तोमा बंशावली शुनो बड़हि निष्ठुर।।	तुम्हारी वंशावली सुनो बड़ा ही निष्ठुर।।

———

देवमाणिक्य खण्ड

श्रीधन्य माणिक्य राजा काल बश पोरे।	श्रीधन्य माणिक्य राजा कालवश हुए।
तान पुत्र देवमाणिक्य अभयन्तरे।।(4)	अभयन्तर(4)उनके पुत्र देवमाणिक्य नृप बन गये।।
देवमाणिक्य महाराजा अति शुभाजन।	देवमाणिक्य राजा अति शुभ भाजन।
भुलुया आमल कोरि समुद्र गमन।।	भुलुया दखल कर, दिया समुद्र गमन।।
फलमति तीर्थे स्नान कोरे महामति।	फलमति तीर्थ में स्नान किये महामति।
मोहर मारिलो तथा दान धर्म यति।।	मुहर बनाया किया दान धर्म यति।।
दुराशा बलिया सेई स्थानेर नाम बोले।	दुराशा स्थान नाम उसका कहे सब लोग।
स्नान तर्पण तथाते नृपति कोरिले।।	स्नान तर्पणादि का नृपति ने किया योग।।
ए तीर्थ कोरिया राजा फिरिलो तखन।	यह तीर्थ करके राजा फिरे उसी क्षण।
चाटिग्रामे थाना राखि राज्ये आगमन।।	चट्टगांव थाना बना किया राजा आगमन।।

---

(3) मन्वन्तर –प्रत्येक मनु का शासन काल। एक मन्वन्तर में देवमान के हिसाब से 71 युग होते हैं। शास्त्रों में है हर कल्प में स्वायम्भूव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्म सावर्णि, रूद्र सावर्णि, देव सावर्णि, और इन्द्र सावर्णि, –यही चतुर्दश मनु अविर्भूत होते हैं। इस समय वैवस्वत मनु का समय चल रहा है। हर मन्वन्तर के अंत में महा प्रलय होता है। धन्यमाणिक्य की तरह सर्वगुणालंकृत राजा के परलोक गमन के पश्चात त्रिपुर राजधानी में मन्वन्तर परिवर्तन की अवस्था हो गई थी।

(4) पाठान्तर – हरिनाम स्मरणे नृपति स्वर्ग होइलो।
तान पुत्र श्रीदैवमाणिक्य राजा होइलो।।

अर्थात, हरि नाम स्मरण करते हुए नृपति का स्वर्गवास हुआ और उनका पुत्र देवमाणिक्य राजा हुआ।

द्विल –34

लक्ष्मीनारायण नाम मिथिला निवासी।	लक्ष्मीनारायण नाम मिथिला निवासी।
जानेन्त अनेक तन्त्र ये मत सन्यासी।।	जाने अनेक तन्त्र ऐसे थे सन्यासी।।
तार स्थाने दीक्षित महाविद्या(5) क्रमे।	उनके यहाँ दीक्षित हुए महाविद्या(5)क्रम से।
पुरश्चरण(6) कोरे नृपे दिव्य भाव(7) भ्रमे।।	पुरश्चरण(6) करे नृप दिव्य भाव(7) के भ्रम से।।

(5) महा विद्या –महा विद्या संख्या 10, यथा –

"काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धुमावती तथा।।
बगला सिद्धिविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः।। चामुण्डा तन्त्र

काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धुमावती, बगला, मातंगी और कमलात्मिका यही है – दस महाविद्या। इन्हें सिद्धि विद्या भी कहते हैं।

तंत्र सार के अनुसार काली, नीला, महादुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यंगिरा, कामाख्या, वासली, बाला, मातंगी और शैलवासिनी ये सभी देवियां महाविद्या हैं –

यथा –

"अथ वक्ष्यामहं या या महाविद्या महीतले।
दोषजालैर संस्पृष्टा स्ताः सर्वाहि फलैः सह।।
काली नीला महादुर्गा त्वरिता छिन्नमस्तका।
वाग् वादिनीचान्नपूर्णा तथा प्रत्यंगिरा पुनः।।
कामाख्या वासली बाला मातंगी शैलवासिनी।
इत्याद्याः सकला विद्याः कलौ पूर्णफल प्रदाः।।" – तंत्र सार।

(6) पुरस्चरण –मंत्र ग्रहण पूर्वक तत्सिद्धि के निमित्त प्रयोग विशेष। इस विषय में योगिनी ह्रदय में लिखा गया है –

गुरूराज्ञां समादाय शुद्धान्तः करणोनरः।
ततः पुरस्क्रियां कुर्यान्मन्त्र–संसिद्धि–काम्यया।।
जीवहीनो यथा देही सर्वकर्मसू न क्षमः।
पुरश्चरण हीनोऽपि तथा मंत्रः प्रकीर्तितः।।

मर्म –पवित्रचेता मानव गुरू की आज्ञा ग्रहण कर मंत्र सिद्धि करने के अभिलाष से मंत्र का पुरूस्चरण का विधान करेगें। पुरूस्चरण भिन्न मंत्र सिद्ध होने का और कोई उपाय नहीं है। जीवहीन देह में जैसे किसी भी विषय में क्षमता नहीं रहती उसी तरह पुरूस्चरण हीन मंत्र की कोई क्षमता नहीं होती।

(7) दिव्यभाव –तांत्रिक आचार विशेष। दिव्य, वीर और पशु इन तीन तरह से तान्त्रिक क्रियायें सम्पन्न होती हैं। तंत्र में इस विषय पर जो विधान प्रदान किये गये हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं।

श्रृणु भावत्रयं देवि दिव्य वीर पशु क्रमात्।
दिव्यस्तु देववत् प्रायो वीरश्चोद्धत मानसः।।
सत्यत्रेतार्द्ध पर्यन्तं दिव्यभाव विनिर्णयः।
त्रेताद्वापर पर्यन्तं वीरभाव इतीरितं।।
मद्यं मत्स्यं तथा मांसं मुद्रां मैथुनमेव च।
श्मशान साधनं भद्रे चितासाधनमेव च।।
एतत्ते कथितं सर्वं दिव्यवीर मतं प्रिये।
दिव्यवीर मतं नास्ति कलिकाले सुलोचने।। –कालिविलास तंत्र।

द्विल –34
(2nd Leher-Page-34



अन्नपूर्णा और वाड़वानल मन्दिर
चन्द्रनाथ तीर्थ

द्विल –35

बीर भाबी(8) होइलो राजा ताहार पश्चात्।	वीर भाव(8) राजा उनके पश्चात।
चक्रेते(9) आरम्भ कोरे अधर्म साक्षात।।	चक्र में(9) आरम्भ किया अधर्म साक्षात्।।
श्मशान साधन(10) कार्ये राजाके बसाय।	श्मशान साधन(10) कार्य में राजा को बैठाया।
सेई काले बासुयाके(11) ब्राह्मणे शिखाय।।	उसी समय बासुया को(11) ब्राह्मण ने सिखाया।।
वृक्षे उठि वासुआय डाकि ताके कहे।	वृक्ष उपर से वासुआ ने उसे बुलाकर कहा।
सेनापति बलि देहो देखा हवे ताहे।।	सेनापति की बलि दो उससे मुलाकात होगी।।
आर दिन रात्रे राजा सेनापति निया।	दूसरे दिन रात को राजा ने सेनापति को।
बलिदान कोरे राजा श्मशानेते गिया।।	श्मशान में ले जाकर बलि किया।।
आर दिन महाराजा बसिलो शमशाने।	दूसरे दिन महाराजा श्मशान में जाकर बैठा।
आर सेनापति चाहे नृपतिर स्थाने।।	राजा के स्थान पर और सेनापति चाहिये।।
आष्ट जन सेनापति क्रमे बलि दिलो।	आठ सेनापतियों को क्रम में बलि दिया।
तथापिहो महाराजा देवी ना देखिलो।।	फिर भी महाराजा को देवी नहीं दिखीं।।
कृष्ण बर्ण होईलो राजा सेनापति बधि।	सेनापति वध करके राजा कृष्णवर्ण हो गये।
ऐक जन बोलिलेक नृपति सम्बोधि।।	एक नर ने नृपति को सम्बोधन कर कहा।।
स्नान काले स्नान घरे(12) नृपेते कोहिलो।	स्नान के समय स्नानघर में(12)नृप से कहा।
तोमा शत्रु मग पाठान आनन्द होइलो।।	तुम्हारा शत्रु मग, पठान खुश हुआ।।
पैत्रिक सेनाधिपति तुमि से बधिला।	पैत्रिक सेनाधिपति को तुमने वध किया।
राजधानी स्थान तुमि वीर शून्य कोइला।।	राजधानी को तुमने वीर शून्य कर दिया।।

(8) वीर भाव –तांत्रिक भाव विशेष। ''दिव्यभाव'' शीर्षक टीका में विषय वर्णित है। जिन तीन भावों में तांत्रिक साधना होती है उन्हें पुनः यहाँ दिया जा रहा है –

''भावस्तु त्रिविधः प्रोक्ता दिव्य वीर पशुक्रमात्।
गुरबस्तु त्रिधा चात्र तत्रैव मंत्र देवता।।'' – रूद्रयामल 1100 पटल।

(9) चक्र –तंत्रोक्त भैरवी प्रभृति चक्र। तंत्र शास्त्र में भैरवी चक्र को तत्व चक्र भी कहते हैं। इसके अलावा रूद्रयामल में महाचक्र, राजचक्र, दिव्यचक्र, वीरचक्र और पशुचक्र इस तरह के पांच चक्रों का उल्लेख है। चक्र विषय विशेष विवरण तंत्र शास्त्र में देखिये।

(10) श्मशान साधन –तांत्रिक गण श्मशान में उपस्थित होकर अपने ईष्ट देवता के साधना करने की व्यवस्था तंत्र शास्त्र में है।

(11) बासुया –ब्राह्मण गणों के गुलाम सम्प्रदाय युक्त एक श्रेणी के शूद्र हैं –त्रिपुरा अचंल में उन्हें ''बसुया'' कहते है। त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी उदयपुर में ''बासुयापाडा'' नामक एक गांव है वहां इस तरह के शूद्रों की एक बस्ती थी।

(12) राजा को गुप्त बातें बतलाने के लिए स्नानघर ही सुविधा जनक स्थान है। इस तरह का निर्जन स्थान और नहीं है। स्नान कार्य के समय दूसरे लोगों का वहां प्रवेश अंगीकार नहीं है।

द्विल –36

वीर सून्य होइलो तुमा शुनो नरेश्वर।	वीर शून्य हुए तुम सुनो नरेश्वर।
ब्राह्मणे करिलो तोमा ऐतो अथान्तर(1)।।	ब्राह्मण ने तुम्हारा अनिष्ट(1) किया।।
देशेर यतेक लोक अति भय पाय।	देश के बहुत लोग अति भयभीत हुए।।
काहाके कोन रात्रे श्मशाने लोइया जाय।।	कब किस रात को श्मशान में लेकर जाय।
आपनार बल राजा आपने भांगिला।	राजा ने अपनी हिम्मत खुद तोड़ी।।
ब्राह्मणेर हेतू सर्व राज्य नष्ट कोइला।।	ब्राह्मण के कारण सारा राज्य नष्ट किया।
ऐतो सुनि नृपतिए ना दिलो उत्तर।	यह सुनकर नृपति ने जबाब नहीं दिया।।
साधन कोरिते गेलो श्मशान उपर।।	साधना करने के लिए श्मशान पर गया।
ऐसब सुनिया विप्रे मोने भय पाइलो।	यह सुनकर विप्र के मन में डर पैदा हुआ।।
राजारे धरिया विप्रे श्मशाने बधिलो।।	राजा को पकड़ विप्र ने श्मशान में वध किया।
बधिया राखिलो राजा श्मशान माझार।	राजा को वध करके बीच श्मशान में रखा।।
लोकेते जानाय विप्र बहु शिष्टाचार।।	लोगों को विप्र ने बहुत शिष्टाचार से बताया।
विप्र बले महाराजा मरिलो श्मशाने।	कि महाराज श्मशान में मर गये।।
यक्ष(2) किन्नर(3) भय पाइयाछिलो मने।।	यक्ष(2) किन्नर(3) से मन में भयभीत हुए।
सैन्य सहिते विप्र चिता स्थाने गेलो।	सेना के साथ विप्र चिता पर गया।।
मृत राजा देखि सबे क्रन्दन करिलो।।	मृत राजा को देख कर सभी रोये।
विजय कुमार मात्रि चन्ताईर कन्या।	विजय कुमार की मां थी चंताई की कन्या।
सहगामी होइलो रानी रुपे गुणे धन्या।।	सहगामी हुइ राणी रूप गुण में धन्या।।
———	———

---

(1) अथान्तर – अनिष्ट।

(2) यक्ष/जक्ख्य – देवयोनि विशेष, कुबेर का धन रक्षक।

(3) किन्नर – देवयोनि विशेष, इनके मुख अश्व की तरह, दूसरे अवयव मनुष्य तुल्य। यह जाति संगीत पटु व देव सभा के गायक है।

द्विल –37

इन्द्रमाणिक्य खण्ड

कनिष्ठा राजरानी इन्द्रमाणिक्य जननी।
दुराचार विप्र सने करिछिलो तिनि।।
सेई विप्र मंत्रणा कोरिलो आपनी।
इन्द्रमाणिक्य राजा करे राजधानी।।
राजार प्रधान पुत्र विजय जे नाम।
महाशील(1) दिया राखे हिरापुर ग्राम।।
ऐई मते वत्सरेक ब्राह्मणे शासय।
आडाई शत योद्धा आनी मिथिला राखोय।।
लक्ष्मी नारायणे कोरे राज्येर व्यवार।
काट मार सदाकाल ब्राह्मण दुराचार।।
ऐ सब अधर्म्म देखि त्रिपुर सकल।
मंत्रणा करये सबे होइया सबल।।
सर्वलोके बोले देशे होइलो अमंगल।
त्रिपुर राज्येर लोक अनाथ सकल।।
दैत्य नारायण नाम प्रधान सेनापति।
ब्राह्मण मारिते युक्ति करिलो संगति।।
मंत्रणा कोरिया तारा घाटे चकि(2) दिबो।
राजपुरे द्विज आइसे से काले धरिबो।।
द्वितीय प्रहर काले ब्राह्मणेते कहे।
राजमाता ब्यामोह होइलो आसिया देखो हे।।
उदोरेते व्यथा होईछे शीघ्र आसि देखो।
क्षणेक विलम्ब होइले देखो बा ना देखो।।
ब्राह्मणे बलेन आमि देखीआछि भालो।
दैवगति होईते पारे ना जानी कि होइलो।।

इन्द्रमाणिक्य खण्ड

कनिष्ठा राजरानी इन्द्र माणिक्य जननी।
विप्र के साथ इन्होंने दुराचार किया था।।
वहीं विप्र ने अपनी मंत्रणा किया।
इन्द्र माणिक्य राजा किया राजधानी।।
राजा के प्रधान पुत्र विजय इनका नाम।
कैद(1) कर के हीरापुर में रखा।।
इस तरह ब्राह्मण ने एक साल राज्य किया।
ढ़ाई सौ योद्धा मिथिला से लाकर रखा।।
लक्ष्मी नारायण ने राज्य को बेकार किया।
ब्राह्मण ने सदा मारकाट व दुराचार किया।।
यह सब अधर्म देख सभी त्रिपुरावासियों ने।
सबने सबल होकर मंत्रणा किया।।
सभी लोग बोले देश का अमंगल हुआ है।
त्रिपुर राज्य के सभी लोग अनाथ हो गये।।
दैत्य नारायण नाम के प्रधान सेनापति।
ब्राह्मण को मारने की सभी ने युक्ति की।।
मंत्रणा हुई कि घाट पर पहरा(2) देगें।
राजपुर से द्विज आने पर तुरंत पकड़ेगें।।
द्वितीय प्रहर काल में ब्राह्मण से कहा।
राजमाता बीमार हुई आकर देखो ।।
पेट में दर्द हो रहा है जल्दी आकर देखो।
थोड़ी देर होने से देखो या मत देखो।।
ब्राह्मण ने कहा कि मैने देखा अच्छी हैं।
पता नहीं क्या हुआ दैवगति हो सकता है।।

---

(1) महाशील – कैद। पूर्वकाल में कैदी गणों के वक्ष पर शील (शिला/पत्थर) दिये जाते थे। इस कारण 'महाशील' शब्द व्यवस्थित हुआ है।

(2) चकी – पहरा।

द्विल –38

चतुर्दोल(1) आनो बलि डाकोए सत्वर।
चौदले चड़ीया विप्र जाये ऐकेश्वर।।(2)
नदी पार होइया घाटे उत्तरिलो(3) जबे।
त्रिपुरेर सेनाय विप्र धरीलेक तबे।।
सेई क्षणे शूलेते दिलेक द्विजवर।
श्लोक ऐक पडि मरे शूलेर उपर।।

अथ श्लोक

किं नैईव सन्ति भुवी तामरसाबतंसा।
हंसाबलिबलयिनो जलसन्निवेशाः।।
कोदग्रदूर्ग्रहतरां खलु चातकस्य।
पौरन्दरीं तदपि वान्छति वारिधारां।

अथ पयार

पृथ्वीते नाहि किबा, पद्मे अलंकृत।
हंस श्रेणी वलयाकृति जल सन्निहित।।
कोन दुग्रह ताते निश्चय चातोकेर।
तथापिहो वान्छित जलधारा इन्द्रेर।।
पोरे दैत्य नारायण महा सेनापति ।
ससैन्ये साजिया गेलो जथाए नृपति।।
इन्द्रमाणिक्य राजा आछाडिया वधे।
आडाई श मिथिला सेना खेदाइलो युद्धे।।
कतो मोइलो कतो गेलो आत्मरक्षा करि।
राजमाता वधिलेक सर्वोलोके बेडि।।

———

चतुर्दोल(1)(पालकी) तुरंत लाओ कहा।
चतुर्दोल चढ़कर विप्र अकेले गया(2)।।
नदी पार होकर जब घाट पर उतरा।(3)
त्रिपुर की सेना ने विप्र को पकड़ा।।
उसी समय द्विजवर को सूली पर चढ़ाया।
सूली पर चढ़ाकर एक श्लोक पढ़ा।।

अथ श्लोक

किं नैईव सन्ति भुवी तामरसाबतंसा।
हंसाबलिबलयिनो जलसन्निवेशाः।।
कोदग्रदूर्ग्रहतरां खलु चातकस्य।
पौरन्दरीं तदपि वान्छति वारिधारां।

अथ पयार

पृथ्वी में शायद पद्म अलंकृत नहीं हैं।
हंस श्रेणी वलयाकृति जल के निकट।।
कौन दुग्रह, चातक जैसी दुर्गति हुई।
फिर भी इन्द्र की जल धारा प्राप्त नहीं हुई।।
बाद में दैत्यनारायण महा सेनापति।
सजधजकर राजा के पास गया।।
इन्द्रमाणिक्य राजा को फेंककर मार दिया।
ढ़ाई सौ मिथिला सैनिकों को युद्ध से खदेड़ा।।
कुछ मरे, कुछ आत्मरक्षा में भागे।
राजमाता का वध किया सभी लोगों ने घेरकर।।

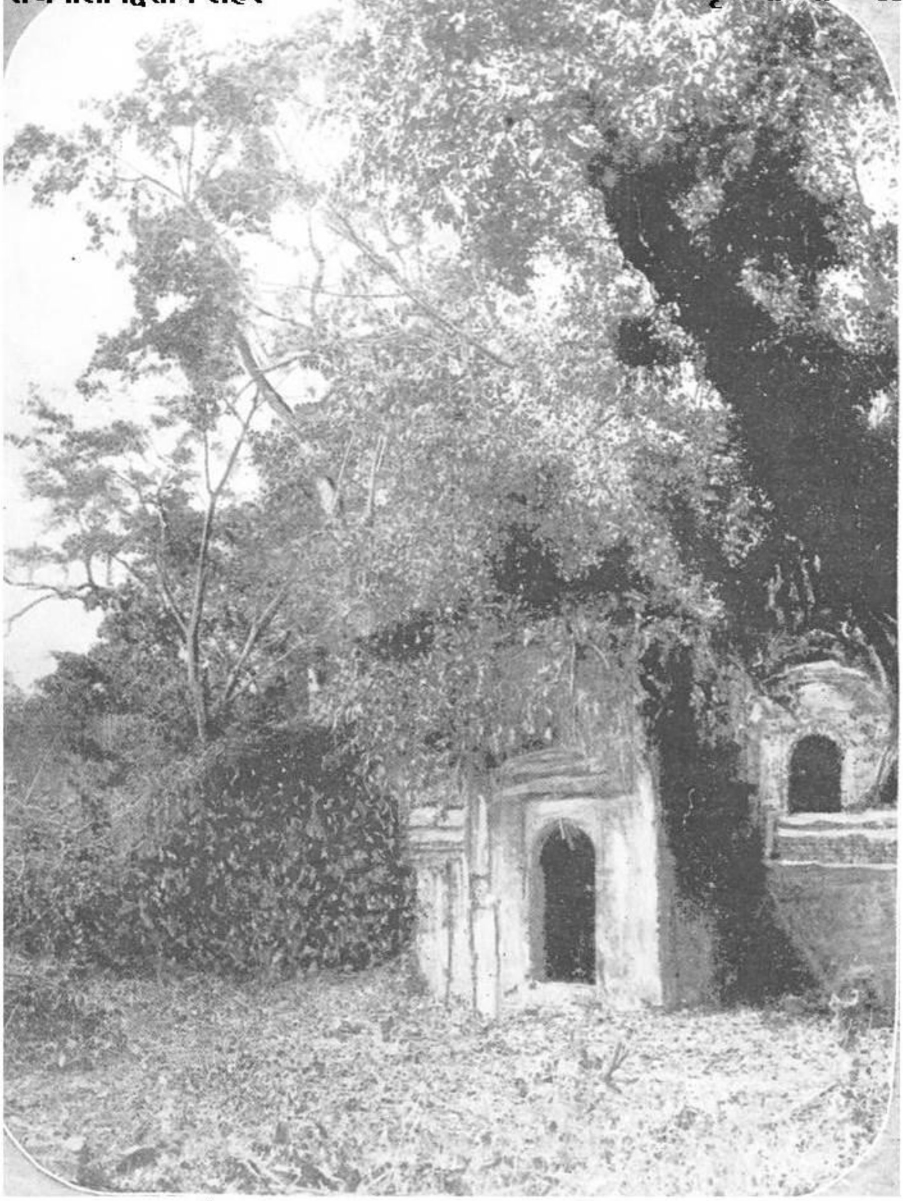
———

---

(1) चतुर्दोल – उच्च अंगों का दोला विशेष, चहुदल, पालकी।
(2) ऐकेश्वर – अकेला ही।
(3) उत्तरिलो – उपस्थित हुए।

द्विल –39

2nd Leher-Page-39



दैत्यनारायण का जगन्नाथ मन्दिर, उदयपुर

द्विल –39

विजयमाणिक्य खण्ड	विजयमाणिक्य खण्ड
परे दैत्य नारायण हिरापुरे गैलो।	बाद में दैत्यनारायण हीरापुर गया।
ससैन्ये गिया विजय देवके आनिलो।।	ससैन्य जाकर विजय देव को लाया।।
शुभ क्षणे विजय देव बोसाये सिंहासने ।	शुभमुहूर्त विजय देव को सिंहासन पर बैठाया।
प्रणाम करिलो सबे जतो सैन्यगणें।।	सभी सैनिकों ने प्रणाम किया।।
विजयमाणिक्य नाम होइलो नरपति।	विजयमाणिक्य नाम से नृपति हुआ।
ताहान महादेवी(1) नाम छिलो पुण्यवति।।	उनकी महादेवी(1) का नाम पुण्यवती था।।
त्रिपुर कुलेते से जे शुभजन्मा कन्या।	त्रिपुर कुल में वे शुभजन्मा कन्या थीं।
पुण्यवती नामे होइलो पृथ्वीते धन्या।।	पुण्यवती नाम से पृथ्वी धन्य हुई।।
होमनाबादे द्विजे दिलो बहुतर ग्राम।	होमनाबाद के द्विज को बहुत सारे गाँव दिये।
तिषीनाते दिलो ग्राम ब्राह्मण अनुपाम।।	अनुपम ब्राह्मण को ''तिषिना'' में गाँव दिया।।
ताम्रपत्रे लिखी दिलो पुण्यवती नामे।	पुण्यवती का नाम ताम्रपत्र में लिखा गया।
पुण्यवती मती सती श्लोके अनुक्रमे।।	पुण्यवती मती सती बाद में वर्णित।।
विधिमते भूमि कतो उत्सर्गिया दिलो।	विधि के अनुसार बहुत भूमि उत्सर्ग किया।
येनो मत नाम देवी तेनो धर्म्म कोइलो।।	जैसा देवी का नाम है वैसा ही धर्म किया।।
दैत्य नारायण सेनापति अति पुण्यवान।	दैत्यनारायण सेनापति, अति पुण्यवान थे।
जगन्नाथ स्थापे मठ करिया निर्म्मान।।	मठ बनवा कर जगन्नाथ को स्थापित किया।।
शुभ क्षणे मठ दिलो देवे उत्सर्गिया।	शुभमुहूर्त में मठ को देवों को उत्सर्ग किया।
उत्कल होइते जगन्नाथ ब्रह्म स्पर्शाईया।।	ब्राह्मण से उत्कल से जगन्नाथ मंगवाया।।
जगन्नाथ बलभद्र सुभद्रा आनिलो।	जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा को लाया।
बारो मासे बारो यात्रा क्रमे आरम्भिलो।।	बारह महीने में बारह यात्रा आरंभ किया।।
बहुतरो भक्ति करि पूजन करिलो।	बहुत भक्ति के साथ पूजन किया।
बहु भाग्य सेनापतिर पूर्व जन्मे छिलो।।	पूर्व जन्म में सेनापति का भाग्य अच्छा था।।
सेई देव नृपतिये सेवा करे गिया।	वहीं देव नृपति की जाकर सेवा किया।
संध्याकाले जगन्नाथ आयसे प्रणमिया।।	संध्या काल में जगन्नाथ को प्रणाम किया।।
कतो दिने सेई मठ भूमिकम्पे फाटे।	कुछ दिन के बाद वह मठ भूकम्प से फटा।
होइलो अनिष्ठ एक देबेर कपटे।।	देवता के भाग्य मे एक अनिष्ट हुआ।।

---

(1) त्रिपुर राज्य में राज महिषि गण 'महादेवी' तथा 'ईश्वरी' आख्या में अभिहित होते है। साधारण भाषा में इन लोगों को 'माई देवता' बतलाया जाता है। बिहार का इतिवृत्त 'राजावली' ग्रन्थ में रानीगणों को 'आई देवेत्ती' उपाधि का उल्लेख मिलता है।

द्विल –40

युवक होइलो राजा षोडश वत्सरे।	सोलह वर्ष में युवक राजा हुआ।
राजनीति कर्म्म दैत्य नारायणेर घरे।।	दैत्यनारायण के घर मे राजनीति का कर्म हुआ।।
हस्ति घोड़ा वाद्य–भान्ड यतेक राजार।	हाथी, घोड़ा, वाद्य, भांड जितना राजा का था।
सेनापतिर बिना आज्ञा ना पारे आनिवार।।	सेनापति की आज्ञा बिना नहीं ला सका।।
हस्ति घोड़ा वाद्य आदि राज कार्य तरे।	हाथी, घोड़ा, वाद्य इत्यादि राज्य का लिया।
सेनापति ना दिले ता के आनिते पारे।।	जो चाहिये, सेनापति नहीं देता।।
सेनापति बोले राज द्रव्य आमा घरे।	सेनापति बोला राज्य द्रव्य मेरे घर में हैं।
आमा मृत्यु परे निवा के राखिते पारे।।	मेरी मृत्यु के बाद जो रख सकता है, लेगा।।
हेनो शुनी नरपति भावे मने मन।	यह सुन कर राजा ने मन में सोचा।
चाहीले ना देय द्रव्य की करि एखन।।	मांगने पर भी नहीं देता है, अब क्या करूँ।।
दैत्य नारायण भाई दुर्लभ नारायण।	दैत्यनारायण का भाई दुर्लभ नारायण।
दुष्ट होए से जे कुकर्म आचरण।।	जो दुष्ट और कुकर्म आचरण करता है।।
अन्येर सुन्दरी कन्या काढ़िया आनय।	दूसरे की सुन्दर कन्या उठाकर लाया।
आत्म इच्छाय कर्म्म करे भाइ सर्ब्बमय।।	अपनी इच्छा से वह कर्म करता है।।
माधव तलार हाटे एक जे सुन्दरी।	माधवतला में एक सुन्दरी थी।
नानाविध शाक बेचे दरिद्रेर नारी।।	गरीब नारी नानाविध शाक बेचती है।।
दोलाते चढिया जाये दुर्लभ नारायण।	डोली में बैठकर दुर्लभ नारायण जा रहे थे।
देखिया धरिया निल सुन्दरी तखन।।	तो सुन्दरी को देखकर पकड़ लिया।।
तार स्वामी निबेदिल राजार साक्षाते।	उसके स्वामी ने राजा के समक्ष निवेदन किया।
तथाच ना दिल छाड़ि निर्भय विख्याते।।	फिर भी उसे निर्भीक ने नहीं छोड़ा।।
मनोदुःख होइया राजा किछु ना बलिलो।	दुःखी होकर राजा ने कुछ नहीं कहा।
आत्म मने क्रोध जन्मे मने सम्बरिल।।	आत्मा के अन्दर क्रोध जन्मा फिर भी संभाला।।
माधव नामेते छिलो बृहत् जामाता(1)।	माधव नाम का बड़ा जमाई था।(1)
तार पासे राजा बोले एई सब कथा।।	उसके पास राजा ने सारी बात कही।।
शुनो शुनो माधव तुमि आमार वचन।	सुनो, सुनो माधव मेरा वचन।
आमार नहे ए राज्य दैत्य नारायण(2)।।	यह राज्य मेरा नहीं, दैत्य नारायण का है।।(2)

(1) बृहत् जामाता – बडे दामाद। सेनापति दैत्य नारायण की ज्येष्ठ कन्या से माधव ने विवाह किया था। उससे बड़ी कन्या पुण्यवती, महाराज विजयमाणिक्य की महिषि थे।

(2) ये राज्य अमार नहे – दैत्य नारायणेर।
पाठान्तर – (बंग्ला)
"शुनो शुनो माधव ये आमार वचन।
आमार ना हये राज्य लूटे अन्य जन।।"

द्विल –41

दैत्य नारायण बधिते राजार इन्गित।
कहिते लागीलो माधव जेमत उचित।।
तोमार होइबो राज्य माधव मरिबो।
तबे से तोमार राज्य निरुद्वेग होइबो।।
दैत्य नारायणेर कन्या तोमार महारानी।
ऐ कथा शुनिले आमा बधिबो परानी।।
तुमि दया करो राजा आमा अतिशय।
दैत्य नारायण दया आमा प्रति रय।।
आमी दिले करे से जे नियत भोजन।
आमा हस्ते राखे से जे जत उपार्जन।।
प्रधान जामाता आमि प्रतीत आमाते।
विश्वास आमार प्रति धर्म शास्त्र मते।।

अथ श्लोक

मित्र द्रोही कृतघ्नश्च ये ये विश्वास घातकाः।
ते नरा नरके जान्ति यावच्चन्द्र दिवाकरौ।।

अथ पयार

नरके उद्धार नहे विश्वासघातक।
चन्द्र सूर्य जतो काल थाके से नरक।।
ता होइते अधिक पाप धर्म्म शास्त्रे नहे।
विश्वासघातकी पाप जेई मत ताहे।।
माधव सहिते राजा सत्य निर्बन्धिल।
भूषणा(1) जाइया ताके थाकिते बलिलो।।
आमार फरमान चिठी तोमा नामे जाय।
ताहा ना मानिबा तुमि आमार आज्ञाय।।
आमार अंगूरी हिरा जखोने देखीबा।
तबे से आसिवा तुमि प्रत्यय करीबा।।
माधवेरे ना बधिते सत्य कोइलो राजा।
माधव चलीया गेलो जथा निज भार्या।।

दैत्यनारायण का वध राजा के इशारे से होगा।
माधव बोलने लगा कि जैसा उचित है।।
राज्य तुम्हारा होगा और माधव मरेगा।
तभी तुम्हारा राज्य निश्चिंत होगा।।
दैत्यनारायण की कन्या जो तुम्हारी महारानी है।
ये बात सुनने से मुझे मार देगी।।
मैं विनती कर रहा हूँ मुझे माफ करो।
मेरे प्रति दैत्य नारायण की दया भावना रहती है।।
मेरे देने से वह प्रतिदिन भोजन करता है।
मेरे हाथों वह अपना उपार्जित धन रखता है।।
मैं प्रधान जामाता हूँ इसलिये विश्वास रखता है।
धर्मशास्त्र के अनुसार मेरे प्रति विश्वास है।।

अथ श्लोक

मित्र द्रोही कृतघ्नश्च ये ये विश्वास घातकाः।
ते नरा नरके जान्ति यावच्चन्द्र दिवाकरौ।।

अथ पयार

विश्वास घातक नर का उद्धार नहीं।
चन्द्र सूर्य जब तक है, नरक में रहेगा।।
उससे ज्यादा पाप धर्म शास्त्र में नहीं।
विश्वासघात का पाप उसी तरह है।।
माधव के साथ राजा की बात बनी।
भूषणा(1) जाकर रहने के लिये कहा।।
मेरा फरमान पत्र जब तुम्हारे नाम से जायगा।
उसको यह नहीं मानना कि मेरी आज्ञा है।।
मेरी उंगली का जब हीरा देखोगे।
तभी तुम सही मानकर आओगे।।
राजा ने वादा किया माधव को नहीं मारेगा।
माधव अपनी पत्नी के पास चला गया।।

---

(1) भूषणा का विवरण – परिशिष्ट में दिये गया है। इस प्रदेश के त्रिपुरेश्वर के हस्तगत होने पर माधव को वहां के लश्कर पद में नियुक्त किया गया थे।

द्विल –42

निशब्दे आछिलो माधव घरे विमर्षिया(1)।	विमर्श कर माधव चुपचाप अपने घर आया।(1)
दैत्येर भृत्य माधव आनिलो डाकिया।।	दैत्यनारायण ने नौकर से माधव को बुलाया।।
दैत्य नारायणे बले कोथाय गियाछिला।	दैत्यनारायण बोला कहाँ गया था।
समये ना दिला अन्न बहु बेला कोइला।।	समय पर अन्न न देकर देर किया।।
परे नाना–विध अन्न दिलेक माधवे।	बाद में माधव ने नानाविध अन्न दिया।
दैत्य नारायण अन्न खाइलेक तबे।।	तभी दैत्यनारायण ने भोजन लिया।।
स्वभाबे त्रिपुरा जाति मद्य मांसे रतो।	स्वभावतः त्रिपुरा जाति मद्य मांस के शौकीन है।
अन्नो खाइया मद्य पान कोरिलो बहुत।।	भोजन के साथ मद्य भी बहुत पिया।।
आर मद्‌य न खाइबो कहे सेनापति।	सेनापति ने कहा और मद्य नहीं पियेगा।
पिए बलि माधवे पियाए मद्य अति।।	पियो बोलकर माधव ने खूब पिलाया।।
मद्यो पाने सेनापति पडिलेक खाटे।	मद्य पीकर सेनापति खाट पर गिर पड़ा।
खड्ग लइया तखोने माधवे माथा काटे।।	तभी माधव ने खड्ग लेकर सिर काट दिया।।
काटिया दिलेक अग्नि सेई महा गृहे।	सिर काटकर महागृह में आग लगा दिया।
घर पुडी मइलो हैनो माधवे ये कहे।।	माधव ने कहा कि घर में जलकर मर गया।।
अति बड़ो अग्नि देखी हा हा करे लोके।	भयंकर आग देखकर लोगों ने हाहाकार मचाया।
गृह दाहे दैत्य नारायण मरिलेक देखे।।	गृहदाह में दैत्यनारायण को मरा देख कर।।
अश्व आरोहण करि राजा शीघ्र गेलो।	घोड़े पर चढ़ कर राजा तुरंत गया।
सकल दहिछे अग्नि राजाये देखीलो।।	राजा ने आकर देखा सब जल रहा है।।
हस्ति घोडा सैन्य सेना राजनीति जतो।	हाथी, धोड़ा, सेना धनधान्य जो भी था।
सकल आनिलो राजा आपना पुरीत।।	सब को राजा अपनी पुरी मे लाया।।
दैत्य नारायणेर कन्या लक्ष्मी आर रानी।	दैत्यनारायण की कन्या लक्ष्मी और रानी।
माधवे राजार चक्र शुनियाछे तिनी।।	माधव और राजा का कुचक्र सुना।।
माधव कुतर्क रानी राजाते कहिलो।	माधव का कुतर्क और रानी राजा से कहा।
रानीर कुतर्क राजा किछु ना सुनीलो।।	लेकिन रानी का कुतर्क राजा ने नहीं सुना।।
राजा गेलो शिकारेते अंगूरी राखिया।	अंगूठी रखकर राजा शिकार के लिये गया।
सेईरुप अंगूरी रानी घटाए आनिया।।	उसी तरह की अंगूठी रानी बनाकर लाई।।
सेई तो अंगूरी रानी माधवके पाठाय।	वही अंगूठी देकर माधव को बुलाने भेजा।
अंगूरी देखिया माधव आसिलो त्वराय।।	अंगूठी देख कर माधव जल्दी आया।।
रानी आज्ञा माधवके बधिलो तखोने।	तभी रानी के आदेश से माधव का वध किया।
ऐई वार्ता नृपतिये सुनीलो तीन दिने।।	यह खबर राजा को तीन दिन बाद में मिली।।

(1) विमर्शीया – विमर्श होकर।

द्विल –43

क्रोध होइलो नृपति अग्निर समाने।	आग की तरह राजा क्रोधित हुआ।
जे लोके माधव वधे ताके धरी आने।।	जिन्होंने माधव का वध किया, पकड़ कर लाए।।
जिज्ञासिल राजा तोके केवा नियोजिलो।	तुम्हें किसने नियुक्त किया, राजा ने पूछा।
भये कम्पमान होइया सभाते कहिलो।।	डर से काँपते हुए सभा में कहा।।
महादेवी आज्ञा दिलो माधव वधिते।	माधव वध हेतु महादेवी ने आज्ञा दी।
ऐई अपराध आमार बलिलो राजाते।।	राजा से बोला यही अपराध है मेरा।।
ऐ कथा सुनिया राजा बड़ो उष्मा(1) होइलो।	यह बात सुनकर राजा बड़ा क्रोधित(1) हुआ।
तखोने प्रान्तरे निया ताहाके बधिलो।।	उसी समय दूर ले जाकर उसका वध किया।।
सेई क्षणे महादेवी दिलो बनवास।	साथ साथ महादेवी को वनवास दिया।
हिरापुरे राखे रानी जीवन नैईरास।।	रानी ने हीरापुर मे निराश जीवन काटा।।
हिरापुर नाम पुर्वे लक्ष्मीपुर छिलो।	हीरापुर का नाम पहले लक्ष्मीपुर था।
उदय माणिक्य रानी हिरापुर कोइलो।।	उदय माणिक्य की रानी हीरापुर की थी।।
हिरापुरे लक्ष्मी रानी बनवास सेवी।	हीरापुर मे लक्ष्मी रानी वनवास में रहीं।
परे राजा विभा करे आर महादेवी।।	पश्चात राजा ने दूसरी महादेवी से विवाह किया।।
प्रधानस्थ पात्र मित्र राजाते कहिलो।(2)	प्रधान पात्र मित्र ने राजा से कहा।(2)
कतो दिन परे राजा लक्ष्मी रानी निलो।।	कुछ दिन पश्चात राजा लक्ष्मीरानी को लाया।।
विजय माणिक्य राजा प्रथम यौवन।	विजयमाणिक्य राजा का पहला यौवन।
उत्तर दक्षिण राज्य लइते करे मन।।	उत्तर व दक्षिण का राज्य लेने का मन किया।।
दक्षिण बाजू(3) बाम बाजू(4) राज सेनागण।	दक्षिण बाजू(3) बांया बाजू(4)राज सेना गण।
दक्षिण बाजू उत्तर राज्य नृपे लइते मन।।	दक्षिण बाजू का उत्तर राज्य लेना चाहा।।
कालानाजिर आदि जतो दक्षिण सैन्य गण।	कालानाजिर आदि जितनी दक्षिण सेना थी।
उत्तर राज्य पाठाइलो कोरिवारे रण।।	उत्तर राज्य में युद्ध करने के लिए भेजा।।
आत्माराम आदि जतो खासीया नृप थाना।	आत्माराम आदि जितने खासिया राज्य थाना थे।
त्रिपुरे जिनिया करे आपन सीमाना।।	त्रिपुर ने जीत कर अपना सीमान्त बनाया।।
श्री हट्‌ट देशे तो जतो छिलो जमीदार।	श्रीहट्‌ट देश के जितने जमींदार थे।
मिलीलो सकल लोक त्रिपुर भेटीवार।।	सभी मिल त्रिपुर भेंट देने के लिये आए।।

(1) उष्मा – क्रोधातिर।

(2) प्रधान पात्रमित्रगण ने रानी को राजभवन में लाने के निमित राजा को अनुरोध किया।

(3) दक्षिण बाजू – (दाहिना बाजू)। उदयपुर राजधानी का उत्तर दिकस्थित प्रदेश समूह 'दक्षिण बाजू' नाम से अभिहित थे।

(4) बाम बाजू – राजधानी का दक्षिण दिकस्थित प्रदेश समूह।

द्विल –44

खासियार राजा आइसे आपने मिलिया।	खसिया का राजा आकर मिला।
त्रिपुर राजाते मिले बहु आश्वाशिया।।	बहुत आशा के साथ त्रिपुर राजा से मिले।।
पंच हस्ति दश घोडा ताके दिलो नृपे।	राजा को पाँच हाथी और दस घोड़े दिये।
सवत्सा हस्तिनी चाहे खासियार भूपे।।	खासिया राजा ने सवत्सा हथिनी मांगा।।
विजयमाणिक्य राजा हस्ति ईनाम दिलो।	राजा विजयमाणिक्य ने हथिनी इनाम में दिया।
हस्तिनी पाइया राजा जयन्ता देशे गेलो।।	हथिनी पाकर राजा जयन्तिया देश में गया।।
निज देशे गिया राजा कहे उच्च स्वरे।	अपने देश मे पहुँचकर राजा चीत्कार करके बोला।
हस्ति भेंट दिछे आमा त्रिपुर इश्वरे।।	त्रिपुरेश्वर ने मुझे हथिनी भेंट किया है।।
सवत्सा हस्ति घोटक आमी से पाइलो।	सवत्सा हाथी, घोड़ा मुझे मिला है।
जयन्ता राजाए बार्त्ता देशेते कहिलो।।	जयन्तिया राजा ने यह बात अपने देश में कही।।
भिक्षुक ब्राह्मण शुनि आसे जयन्ता हने(1)।	भिक्षुक ब्राह्मण यह सुन कर जयन्तिया(1) से आया।
सेसबे सुनीया कहे त्रिपुरेर स्थाने।।	यह सब त्रिपुर को बताया।।
ये कथा सुनीया राजा बहु क्रुद्ध होइलो।	बात सुनकर राजा बहुत क्रोधित हुआ।
हाडी सैन्य(2) जयन्ताते युद्धे आज्ञा दिलो।।	हाडी सेना(2) को जयन्ता से युद्ध आज्ञा दी।।
राजार राज्येते आछे जतो हाडीगण।	राजा के राज्य में जितने हाडी गण थे।
चट्टले सुवर्ण ग्रामें श्री हट्टे जतो जन।।	चट्ट, सुवर्ण और श्रीहट्ट में जितने हाडी थे।।
द्वादश हाजार हाडी तालिक करिलो	बारह हजार हाडी एकत्रित किया।
जार जेई राज्येर हाडी सेनापति होइलो।।	जिस राज्य का जो हाडी वही सेनापति हुआ।।
द्वादश हाजार हाडी हाते कुदाल लोइया।	बारह हजार हाडी हाथ में कुदाल लेकर।
हाडीये डगर बाद्य चले बाजाईया।।	हाडी डगर वाद्य बजा कर चले।।
चारि मास हाडी सैन्य पाइया वेतन।	हाडी सेना चार महीने का वेतन पाकर।
मद्य सुकर खाइया चलीलेक रन।।	मद्य व सुअर खाकर रण में चले।।
घुर घुरी शब्द करी डगर बाजाय।	घूम घूम कर आवाज के साथ डगर बजाया।
साजनी साजीया सब हाड़ी सैन्य जाय।।	सज धज कर हाडी सेना चली।।
उत्तरेर हाडी चले आगे लोइया बाना(3)।	उत्तर में हाडी, हाथ में झंडा(3) लेकर आगे चले।
बंगो देशी हाडी सब मध्ये थाके थाना।।	बंग देश के हाडी बीच में चले।।

---

(1) होने – होकर।

(2) हाडी – हीन जाति विशेष। इनके अन्दर सम्प्रदाय विभक्त है। मल मूत्र परिस्कार, शुकर पोषण, वाद्य वादन, डोली वहन तथा ताडी (मद्य विशेष –एक किस्म के पेड मिश्रित रसों से प्रस्तुत किया जाता है) प्रस्तुतकरण इत्यादि कार्य से सम्प्रदाय विभेद किया जाता है। चौकीदारी करना भी इनका मुख्य कार्य है।

(3) बाना – पताका, झण्डे।

द्विल –45

दक्षिण दिगेर हाडी चाटीग्राम आदि।	दक्षिण दिशा के हाडी चट्टग्राम आदि।
तार सेना पाछे चले महा शब्द वादि।।	उस सेना के पीछे महाशब्द वाद्य वाले चले।।
ढेमस डगर बाजे नाचे उर्ध हाते।	ढेमस डगर बजाते नाचे हाथ उठाकर।
सुकर खेदान लाठी पाकाइया(1) माथे।।	सुअर भगाने की लाठी(1) सिर पर घुमा रहे थे।।
ऐमतो साजिया सबे थानाते गेलेन्त।	इस तरह सजकर थाने में गये।
सुनिलो खासिया राजा ऐ सब वृत्तान्त।।	खासिया राजा ने सब वृत्तान्त सुना।।
शीघ्र गिया मिलीलेक हेड़म्ब राजाते।	हिड़म्ब राजा से मिलने तुरंत गया।
दूत एक पाठाइलो त्रिपुरेश्वरेते।।	एक दूत त्रिपुरेश्वर के पास भेजा।।
हेडम्बेर नरपति निर्भय नारायण।	हेड़म्ब का नृपति निर्भयनारायण।
पत्र एक लिखिलेक त्रिपुर सदन।।	त्रिपुर सदन को एक पत्र लिखा।।
निर्भय नारायणे पत्र हांसिया लिखाय।	निर्भयनारायण ने परिहास पत्र लिखवाया।
राजा नाम धरे से जे उचित ना होय।।	राजा नाम लिखना उचित नहीं।।
हाडिये जयन्ता यूझे सर्व लोके कोय।	हाडी जयन्तिया जूझे सभी ने कहा।
आमाके देखीते भाई(2) क्षम महाशय।।	मुझे देख कर राजा को माफ़ करें।।(2)
एई पत्र लिखिलो निर्भय नारायण	यह पत्र निर्भय नारायण ने लिखा।
पत्र पाइया हाडी सैन्य फिराए राजन।।	पत्र पाकर राजा ने हाड़ी सेना वापस की।।
त्रिपुर राजार थाना श्रीहट्टे बोसाइलो।	त्रिपुर राजा का थाना, श्रीहट्ट में बैठा।
काला नाजिर त्रिपुर थानाते रहिल	काला नाजिर त्रिपुर थाना में रहा।।
चाटीग्रामे चलिलो विजय महाराजा।	विजय महाराज चट्टग्राम चले।
दुई सहस्र चलीलेक सैन्य महातेजा।।	दो हजार महातेज सेना चली।।
चाटीग्राम राजा संगे सहस्र पाठान।	चट्टग्राम राजा के साथ हजार पठान।
प्रचण्ड उजिर संगे सहस्त्र बंग यान।।	प्रचण्ड वजीर के साथ सहस्त्र बंग यान।।
दुई मास पाठानेर बाकी जे वेतन।	दो मास का वेतन पठानो का बाकी।
उजिरे पाठान वेतन ना दिलो तखन।।	वजीर ने पठानो का वेतन नही दिया।।
आजी दिवो काली दिवो कथाय टालन।	आज देगा कल देगा कह कर टाला।
पाठाने मारीलो उजिर एई से कारण।।	इसलिए पठानों ने वजीर वध किया।।
प्रचण्ड उजिर मेहारकुले मारा गेलो।	प्रचण्ड वजीर मेहारकुल में मारा गया।
तान पुत्र प्रताप नारायण पलाइलो।।	उसका पुत्र प्रतापनारायण भाग गया।।

---

(1) पाकाइया – घुमाइया।

(2) हेडम्ब नृपति ने परिहास करके लिखा था। जयन्ता में हाडी युद्ध कर रहे है। सभी ये रुप बतला रहे है। राजा होकर तुम्हारा इस रुप करना अकर्तव्य है। मेरे लिए (मेरे अनुरोध से) जयन्ता राजा को क्षमा कर दीजिये।

द्विल –46

राखिलो आपना प्राण बने प्रवेशीया।	वन में भाग कर जान बचायी।
जतेक पठान रहे वेगणा(1) होइया।।	जो पठान बचे विद्रोही(1) हो गये।।
रांगामाटी राजवाटी लूटिते चाहे पाठान।	पठानों ने रंगामाटी राजबाड़ी लूटना चाहा।
राजवाटी प्रहरी गढ़ धरे सावधान।।	राजबाड़ी के प्रहरी हुए सावधान ।।
तथा चाटीग्रामे सेई पाठान बर्ब्बर।	चट्टग्राम में वही बर्बर पठान रहे।
राजाके मारिते युक्ति करेन अपर।।	जिसने राजा वध की युक्ति की।।
मद्य पाने पाठानेर कलह जन्मिल।	शराब पीकर पठानों में कलह जन्मा।।
पाठानेर कुमन्त्रणा ताते व्यक्त होइलो।।	पठानो की कुमन्त्रणा वहीं व्यक्त हुई।
पाठानेर तरे राजा जिज्ञासील पुनि।	पठान से राजा ने फिर पूछा।।
बंगे चाटीग्रामें पाठान युक्ति होइछे शुनि।।	बंग के चट्टग्राम में युक्ति हुई है, सुना।
पुनरपि ऐई कथा राजाते कहिलो।	पुनः यही बात राजा से कहा।।
निश्चय जानिया राजा पाठान धरिलो।।	निश्चित जान कर राजा ने पठानों को घेरा।
सहस्र शोयार कर्त्ता पाठान विस्तर।	सहस्र शोयार कर्त्ता पठान विस्तृत।।
चतुर्दश देवतारे दिलो नरेश्वर।।	नरेश्वर ने चतुर्दश देवता को बलि दिया।
शीघ्र गति नरपति रांगामाटी आइसे।	नृपति तेज गति से रंगामाटी आया।।
पथेत सुनिलो राजा उजिर मरिछे।।	रास्ते मे राजा ने सुना वजीर मारा गया।
फिरीया नृपति परे बंगेते चलिलो।	नृपति वापस बंग की ओर चला।।
ऐई सब वृत्तान्त ताते पाठाने सुनिलो।।	यह सब वृतान्त वहां पठान ने सुना।
भंग दिया गेलो पाठान गौडेश्वर स्थाने।	पठान टूट कर गौड़ेश्वर के पास गये।।
क्रोधे गौडेश्वर सैन्य बहु दिलो रने।।	क्रोधित गौड़ेश्वर ने युद्ध हेतु बड़ी सेना दी।
चाटीग्रामे चलिलेक सैन्य सेनागण।	सैन्य सेनापति चट्टग्राम को चले।।
चली आईसे बहु सैन्य करिया गर्जन।।	चलती हुई सेना ने बहुत गर्जन किया।
मोमारक खॉ(2) नामेत गौडेश्वर(3) शाला।	गौड़ेश्वर(3) का साला था ममारक खां(2)।।
महावीर पराक्रम युद्धे अति भाला।।	महावीर पराक्रमी और युद्ध निपुण था।
तीन सहस्र अश्व चले ताहार संगति।	तीन हजार अश्व उनके साथ चले।।
दश सहस्र ढाली चले धानुकी पदाति।।	दस हजार चले ढाली धनुषधारी और सैनिक।
दुरन्त पाठान जाति क्रोधे अहंकारी।	दुर्दान्त पठान जाति क्रोधी व अहंकारी थी।।
चलीयाछे चट्टग्रामे पाठान संगे करी।।	पठान साथ लेकर चट्टग्राम चला।

---

(1) वेगणा – सम्पर्क विहीन, इस स्थान पर विद्रोही।

(2) मतान्तर में मौहम्मद खॉ।

(3) गौडेश्वर – उड़ीसा विजयी सुल्तान सुलेमान।

द्विल –47

ममारक खॉं सैन्य समे चाटीग्रामे गेलो।	ममारक खां सेना के साथ चट्टग्राम गया।।
भंग दिलो त्रिपुर सैन्य मगले जिनिलो।।	मुगलों ने त्रिपुर सेना को भंग कर दिया।
एई वार्ता सुनि राजा महाक्रोध होइलो।	यह बात सुन कर राजा महा क्रोधित हुआ।।
सेनापति सकलेरे अनेक भर्तशीलो।।	सेनापति ने सभी की भर्त्सना की।
कालानाजिर दक्षिण बाजू(1) श्रीहट्ट विजय।	कालानाजिर दक्षिण बाजु(1)श्रीहट्ट विजय।।
बाम बाजू(2) सैन्य पलाय पाठानेर भय।।	बांया बाजु(2) सेना पठान के डर से भागी।
शोयार नाहिक देखि त्रिपुरेर सेना।	त्रिपुर सेना शोयार नही देख पायी।।
पाठाने लोइलो आसि चट्टग्राम थाना।।	पठानो ने चट्टग्राम थाना ले लिया।
पाठान शोयार राजार होइलो वेगणा।	पठान शोयार राजा का विद्रोही हुआ।।
अश्वहीन राज्य सैन्य देखे सर्वजना।।	सभी ने राज्य सैन्य को अश्वहीन देखा।
त्रिपुरार सेना जतो अश्व आरोहिया।	त्रिपुरा का जितना अश्वारोही सेना थी।।
युद्ध हेतू नरपति दिलो पाठाइया।।	युद्ध के लिये नृपति ने भेजा।
आठ मास युद्ध करे पाठानेर सने।	आठ मास तक पठान संग युद्ध किया।।
लोइते ना पारे गढ़ चाटीग्राम स्थाने।।	चट्टग्राम को अपने कब्जे में नही ले सका।
हेनो शुनी विजय माणिक्य क्रोध होइलो।	यह सुनकर विजयमाणिक्य क्रोधित हुआ।।
सेनापति सकोलेरे चरखा पाठाइलो(3)।।	सभी सेनापति के लिये चरखा(3) भेजा।
श्रीहट्ट हने काला नाजिर आनिलो त्वराय।	श्रीहट्ट से कालानाजिर तुरन्त सेना लाया।।
दक्षिण बाजूर सैन्य लोइया त्रिपुराय।।	दक्षिण बाजु की सेना त्रिपुरा लाया।
पुत्रवत् मान्य दिया पाठाय नाजिर।	पुत्रवत मर्यादा देकर नाजिर को भेजा।।
सैन्य समे चाटीग्रामे गेलो महावीर।।	महावीर सेना लेकर चट्टग्राम में गया।
प्रातः काले काला नाजिर युद्ध आरम्भिल।	प्रातःकाल से कालानाजिर ने युद्ध शुरू किया।।
पूर्व प्रेरित बाम बाजू पश्चाते रहिलो।।	पहले भेजा बाम बाजू पीछे रहा।
दुई सैन्य आगु होइया संग्राम माझार।	दोनो सेना में संग्राम शुरू हुआ।।
तीर बन्दूकेर युद्ध पाछे खड़ग धार।।	तीर, बन्दूक खड्ग के साथ युद्ध हुआ।
खड्गा घाते महाशब्द झनरब होईलो।	खड्ग के आघात से महाझंकार उत्पन्न हुआ।।
त्रिपुर पाठान महा संग्राम बाजिलो।।	त्रिपुर और पठान का महा संग्राम हुआ।
रक्तमय होइलो सब अश्व नर देहे।	अश्व और नर देह रक्तमय हुए।।
पृथ्बीते दन्त दिया हस्ती सब रहे।।	सभी हाथी पृथ्वी मे दांत लगा कर रहे।
स्थाने स्थाने मत्त गज दन्ते दन्ते भिडि।	मत्तगज भिड़े जगह–जगह दांत में दांत लगाकर।।
दुई मेघे गरजे जेनो करे जडाजडी।।	जैसे दो बादल गरजे आपस में टकराकर।

(1–2) राजधानी का उत्तर भाग (श्रीहट्ट इत्यादि प्रदेश) दक्षिण बाजू तथा दक्षिण भाग चट्टग्राम इत्यादि बाम बाजू नाम से अभिहित होते थे।

(3) चरखा रणपरान्मुख सेनापति गणों का दण्ड विशेष।

द्विल –48

जार सेई सीमाते थाकिया युद्ध करे।	जो जिसकी सीमा थी, में युद्ध कर रहा था।।
चतुर्थ प्रहर गेलो दुर्जय समरे।।	चौथा प्रहर दुर्जय समर मे खत्म हुआ।
चारि दण्ड बेला आछे सायं समय।	शाम होने मे चार दंड बाकी है।।
आगे युद्धे नाजीरे पश्चाते सैन्य रय।।	युद्ध में आगे नाजिर पीछे उसकी सेना।
युद्धे काला नाजीर नाम सेनापति छिलो।	युद्ध में कालानाजिर नामक सेनापति था।।
नाजीरेर नाम सुनी पाठाने बेडीलो।।	नाजिर नाम सुनकर पठान ने घेरा।
पैशुन्ये(1) ना कोरे युद्ध राज सेनागण।	राज सेनागण ने युद्ध में पयशुन्य(1) की।।
युद्धे पढ़िलो नाजीर एई से कारण।।	इस कारण युद्ध में नाजिर गिर पड़ा।
युद्ध जय होइलो बलि पाठान बर्ब्बर।	युद्ध मे बर्बर पठान जीता।।
श्रान्त होइया गेलो तारा गड़ेर भीतर।।	शान्त होकर गढ़ के अन्दर चला गया।
बहुतर श्रान्त होइछे क्षत होइछे देह।	बहुतों का देह क्षत और क्लान्त हुआ।।
क्षुधाय व्याकुल पाठान खाइते चाहे केहो।।	भूख से व्याकुल पठान ने खाना चाहा।
केहो शान्त होइते आछे केहो जल खाय।	कोई आराम कर रहा था, कोई पानी पी रहा था।।
जल पिया हस्ति घोड़ा सकल शान्ताय।।	पानी पीकर हाथी घोड़ा सभी शान्त हुए।
रन्धोनेते गेछे केहो खाइते लागिछे।	कोई रसोई गया कोई खाने लगा।।
हेनोकाले त्रिपुर सैन्यो मंत्रणा कोरिछे।।	उसी समय त्रिपुर सेना ने मन्त्रणा की।
राजार पालक पुत्र नाजीर पढ़िल।	राजा के पालक–पुत्र नाजिर मृत थे।।
कि उत्तर दिबा सबे गज भीमे कोइलो।।	गजभीम ने कहा कि हम क्या उत्तर देंगे।
युक्ति कोरिया सैन्ये कोरिलो निश्चय।	सेना ने युक्ति करने का निश्चय किया।।
संध्या काले कोठ तले सुरंग निर्म्माय।।	संध्या काल किले नीचे सुरंग निर्माण किया।
हाते हाते सुरंग खनिलो सैन्यगण।	सेनागण हाथों से सुरंग खोदा।।
राज सैन्य कोठे गेलो करिवारे रण।।	राज सेना किले अन्दर युद्ध के लिये गई।
तीन सहस्र त्रिपुरगण खड्ग चर्म्म लइया।	तीन हजार त्रिपुरगण खड़ग ढ़ाल लेकर।।
काटए पाठान सैन्य कोठे प्रवेशिया।।	किले मे प्रवेश कर पठान सेना को काटा।
भंग दिलो पाठान अनेक मारा गेलो।	बहुत पठान सेना मरी और भागे।।
मातृ समे ममारक खॉ गढे लुकाइलो।।	मां के साथ ममारक खां गढ़ अन्दर छुप गया।
लुकाइया रहे गढ़े प्राचीर उपर।	गढ़ के प्राचीर के ऊपर छुपकर रहा।।
चारि पार्शे त्रिपुर सैन्ये बले धर धर।।	चारो ओर त्रिपुर सेना पकड़ो पकड़ो बोली।

(1) पयसुन्य – कपटता, धूर्तता। पूर्व प्रेरित सेनापति गणों के पराजित होने पर, महाराजा ने क्रोधित होकर उनको चर्खा जीविका निर्वाह हेतू उपहार दिया था तथा काला नाजीर को उनका नायक बना कर भेजा था। इस कारण सेनापति गणों ने दुष्टतापूर्वक युद्ध नहीं किया था।

द्विल –49

प्राचीर बेडीलो सबे त्रिपुर सेनागण।	त्रिपुर सेना ने प्राचीर को घेर लिया।।
ममारक बलिया सैन्ये करये तरजन।।	ममारक कह कर सेना चिल्ला रही थी।
ममारक खॉर माता कोहिलो तखन।	ममारक खां की माता ने तब कहा।।
अग्निये पुडीले माटी ना पाइबो कखन(1)।।	आग में जलने से मिट्टी नही मिलेगा।(1)
मातार कथन सुनी कोहिलो डाकिया।	माता का बात सुनकर बोला।।
सत्य करो तोमा सब मिलिबो आसिया।।	वादा करो कि तुम सब आकर मिलोगे।
त्रिपुरा सेनाये बोले ना मारिबो तोके।	उसे नही मारेंगे त्रिपुरा सेना ने कहा।।
राजार साक्षाते निबो बोलीलो ताहाके।।	कहा, राजा के पास ले जायेगें।
ए कथा शुनिया खॉए आपने मिलीलो।।	यह बात सुन कर खां अपने आप मिला।।
लोहार पिंजर मध्ये ताहाके भरीलो।	लोहे के पिंजरे मे उसे बन्द किया।
काफिर(2) बलिया खॉए बहु गाली दिलो।।	खां ने काफिर(2) कहकर बहुत गाली दी।।
त्रिपुरेर सेना ताके लइया चलिलो।	त्रिपुर सेना उसे लेकर चली।
थानादार चट्टग्राम गढ़ेते राखिया।	थानेदार ने चट्टग्राम गढ़ मे उसे रखा।।
पाठानेर जतो द्रव्य सकल लूटिया।।	पठान का सभी सामान लूट लिया।
हस्ति घोड़ा जत द्रव्य सकल राजार।	हाथी घोड़ा जितना सामान, राजा का हुआ।।
अन्य द्रव्य लूटे सबे जेई पाए तार।।	अन्य द्रव्य जिसने लूटा उसी का हुआ।
सुवर्ण कुष्माण्ड छिलो सेर परिमान।	सोने का कुष्माण्ड सेर बराबर था।।
सकल पाठाइया दिछे राजा विद्यमान।।	सब राजा के लिये भेजा गया।
दैवे कुष्माण्ड एक पाइके(3) लुकाइया।	एक सैनिक(3) ने कुष्मांड को छिपा लिया।।
मद्यपान कोरिछिलो सुडी घरे निया।।	मदशाला में जाकर शराब पी।
पितोलेर जानिया कुष्माण्ड नियाछिलो।	कुष्मांड पीतल जानकर लिया।।
ऐक आना मूल्य करी मद्यपान कोइलो।।	एक आना का शराब पिया।
अबशिष्ट लइया गेलो राजार साक्षात।	बचा हुआ राजा के पास ले गया।।
सुवर्ण कुष्माण्ड हेनो जानीलो पश्चात।।	सोने का कुष्मांड है बाद में पता चला।
दूत मुखे सुनि राजा तदन्त कोरिलो।	राजा ने दूत से सुनकर जांच किया।।
सुडी घरे दिया पाइके मद्यपान कोइलो।।	मदशाला मे देकर सैनिक ने शराब पिया।
आष्ट सेर मद्य ताते कोरिआछे पान।	वहां पर आठ सेर की शराब पी।।
ए सब वृतान्त कोहे राजा विद्यमान।।	यह सब कहानी राजा को बताया।

---

(1) ममारक खॉ की माता ने उन्हें बतलाया, त्रिपुर सैन्य गण यदि अग्नि द्वारा दग्ध करते है तो मुसलमान धर्मानुदित कब्र नहीं मिलेगी।

(2) काफिर –धर्म विवर्जित व्यक्ति, अधार्मिक।

(3) पाइक – सैन्य।

द्विल –50

ऐही तो सुनिया राजा चर नियोजिल।	यह सुन राजा ने गुप्तचर नियुक्त किया।
कुष्माण्ड सहिते सुडी धरीया आनिलो।।	कुष्माण्ड के साथ सुरी पकड़ लाया।।
हेनो मते पंचशत कुषमाण्ड पाइलो।	पांच सौ कुष्माण्ड राजा को कुल मिले।
राजाय कुष्माण्ड निया मूल्य यतो दिलो(1)।।	राजा ने कुष्माण्ड लेकर कीमत दिया(1)।।
पोरे ममारक खॉके पिंजरे राखिया।	बाद में ममारक खां को पिजरें में बन्द रखा।
सुवर्ण द्वारेर(2) बाहिर राखिलेक निया।।	सुवर्ण द्वार (2) के बाहर इसको रखा।।
नृपतिर स्थाने सब वृत्तान्त कोहिलो।	राजा के पास सारी बात बताई।
ममारक खॉके सुवर्ण द्वारेते आनिलो।।	ममारक खां को सिंह द्वार में लाया गया।।
पिंजर होते खसाइते नृपे आज्ञा दिलो।	राजा ने पिजरें से निकालने का आदेश दिया।
विचित्र भूषण कतो खॉके राजा दिलो।।	विचित्र भूषण राजा ने खां को दिया।।
राजा देखी ममारक खॉ सेलाम ना कोरे।	राजा देखा, ममारक खां सलाम नहीं करता।
किछु ना बोलीलो राजा क्रोध नाही तारे।।	न राजा क्रोधित हुआ न कुछ बोला।।
राजाज्ञाते खॉके आनिलो महल द्वारे(3)।	राजाज्ञा से खां को महलद्वार(3) में लाया।
गौरेश्वर साला सेजे मने गर्व करे।।	गौरेश्वर का साला हूं मन में गर्व करे।।
नृपतिर इच्छा आछे ना बोधिते ताके।	उसका वध हो राजा की इच्छा नहीं।
दैबेर निर्बन्ध जार जे मत जे थाके।।	भाग्य में जो लिखा है वही होता है।।
दुर्लभ चन्ताई नाम राजाते जे कहे।	दुर्लभ चन्ताई ने राजा को कहा।
चतुर्दश देब बली खॉके दिबो ताहे।।	चतुर्दश देव को खां की बलि देगा।।
नृपतिये बोले चन्ताई उचित ना होय।	राजा बोला ये अनुचित है चन्ताई ।
ममारक खॉ बडो लोक सर्व लोके कय।।	ममारक खां बड़ा आदमी है सब जानते है।।
चन्ताई बले खॉके बलि दिबार तरे।	चन्ताई बोला खां बलि देने के लिये है।
देवतार आज्ञा होइछे बलिलो राजारे।।	देवता की आज्ञा है राजा से बोला।।
निःशब्दे रोहिलो राजा, अनुमति ज्ञाने।	निःशब्द राजा रहा, अनुमति दी।
चन्ताई जे खॉके निलो रत्नपुर(4) स्थाने।।	चन्ताई ने खां को रत्नपुर रखा (4)।।
रजनी वन्चिलो खॉए रत्नपुर ग्रामे।	खां की रात रत्नापुर गांव में बीती।
रात्री अबाशाने चन्ताई देउड़ाइ समे।।	भोर में देउड़ाइ चन्ताई ने खां को उठाया।।

---

(1) पाठान्तर – (बंग्ला)'' हेनोमते पंचशत कुष्माण्ड लोइलो।
राजघर हने कडि सुडीरे देवाइलो।।''

(2) सुवर्ण द्वार – सदर दरवाजा, सिंहद्वार।

(3) महल द्वार – प्रासाद का सदर दरवाजा।

(4) रत्नपुर – इस स्थान में चतुर्दश देवता का मन्दिर थे।

द्विल –51

पृष्ठे हस्ते बान्धि तारे स्नान कराइलो।	पीठ पर हाथ बांध कर नहलाया।
हरिद्रा वर्णेर वस्त्र खॉके पैराइलो।।	खां को पीले वस्त्र पहनाये।।
चतुर्दश देव अग्रे खॉके वैसाय।	चतुर्दश देव के सामने खां को बैठाया।
पश्चिम मुखी होय से जे आपना इच्छाय।।	अपनी इच्छा से पश्चिम में बैठा।।
बलात्कारे(1) पूर्वमुख खॉके करे परे।	खां का मुंह बल पूर्वक(1) पूर्व में किया।
पश्चिमेत मुख से जे होइलो पुर्नबारे।।	पुनः पश्चिम की ओर मुड़ गया।।
बारम्बार खॉए स्कन्ध दिया जे फिराये।	उसे पुनः पूर्व में मोड़ दिया।
सेइ काले खॉएर भृत्य छिलो से जागाये।।	वहां खां का एक नौकर था।।
खॉर भृत्ये सेई काले खॉके बलियाछे।	उसी समय नौकर खां से बोला।
हजरत आनि(2) भ्राता तुमि जाना आछे।।	तुम हजरत अनि(2) के भाई हो जानते हो।।
ममारक खॉ तोमा नाम गौड़ सेनापति।	ममारक खां तुम्हारा नाम, गौड़ सेनापति हो।
हेनो जन पडियाछो काफिर संगति।।	काफिर की संगति में कैसे पड़ गये।।
पश्चिमेत खोदा आछे पूर्वे कीवा नहे(3)।	पश्चिम में खुदा(3) है पूर्व में नहीं।
ऐमत समय तोमार की विचार ताहे।।	इस समय तुम क्या सोच रहे हो।।
काफिरे(4) मारिले तोमा पोरे भालो होइवा।	काफिर(4) तुम्हे मार डाले तो भला है।
अनाआसे तुमि जेनो भेष्तेते(5) जाइबा।।	तुम अनायास स्वर्ग(5) पहुंच जाओगे।।
स्कन्ध मेलिया देउ पूर्ब्ब मुख होइया।	ऐसे ही पूर्व दिशा में हो जावे।
ऐई देह छाड़ो तुमि शीघ्र जे करिया।।	तुम देह को त्याग दो शीध्र करो।।
ऐ कथा शुनिया खॉए कलीमा(6) पडिलो।	ये सुन खां ने कलमा(6) पढ़ा।
पूर्ब्ब मुखि होइया खॉए स्कन्ध पाती दिलो।।	पूर्व मुख होकर खां ने गर्दन झुकाई।।
चन्ताइ खितुन्ग नामे(7) दिलो उत्सर्गीया।	खितुन्ग चन्ताई (7) ने जोर से पुकारा ।
लिका देउड़ाइ छेदे बारना(8) लइया।।	और खड्ग से गर्दन(8) काट दी।।
काटिलो ममारक खॉ त्रिपुरार बैरी।	त्रिपुराशत्रु ममारक खां को काट दिया।
कलिजा(9) मस्तक रक्त एकत्रता करी।।	कलेजा,(9) मस्तक और खून एकत्र किया।।

....र...

(1) बलात्कार – बल पूर्वक।
(2) हजरत अनी – प्रभुत्व, प्रधान्य।
(3) खुदा केवल पश्चिम में ही है। पूर्वादिक में नहीं, ऐसा नहीं है। खुदा – ईश्वर
(4 काफिर – बिना धर्म ज्ञान का व्यक्ति।
(5) भेष्त – पुण्यमय स्थान, स्वर्ग।
(6) कलीमा – कलमा मुसलमान धर्म का मूल मन्त्र, उच्चारण करने पर, धर्म में प्रविष्ट होते है।
(7) खितुंग – चन्ताय का दूसरा नाम।
(8) बारना – खर्ग/खड्ग ।
(9) कलिजा – हृदपिण्ड।

द्विल –52

देवता साक्षाते निया उत्सर्गिया दिलो।	देवता को अर्पण कर दिया।
जे मत विधान छिलो ते मतो करिलो।।	जैसा विधान मत, सारा काम किया।।
ह्रदय फाडिते तार देखे गुरुतर।	ह्रदय फाड़कर उसे अच्छे से देखा।
सोनार पुतुल एक ह्रदय भीतर।।	सोने का पुतला हृदय में था।।
अपूर्व देखी चन्ताई देखाए राजारे।	अपूर्व देख चन्ताई ने राजा को दिखाया।
लक्ष्मी चिन्ह बली नृप राखिलो अन्तरे।।	लक्ष्मी चिन्ह मान, राजा ने अपने पास रखा।।
सप्त दिन पोरे आईसे गौडेश्वर लिखा।	सात दिन के बाद गौडेश्वर ने लिखा।
ममारक खॉ छाड़ी देउ तुमि आमार सखा।।	ममारक खां छोडो तुम हमारा दोस्त हो।।
पद्मा अवधि करी यात्रापुर(1) देश।	पद्मा से यात्रापुर(1) में गया।
सिमाना कोरि दिबो राज्य तोमाके विशेष।।	तुम्हारा राज्य की सीमा को निश्चित कर देगे।।
पत्र सुनिया राजा होइया विस्मित।	पत्र सुनकर राजा चिन्ता में पड़ गया।
चन्ताई गंजिल राजा सभार विदित।।	सभा में चन्ताई को राजा ने डांटा।।
ममारक खॉके दितो जदि होइतो गौड वश।	ममारक खां को देते तो गौड़ वश में होता।
तुमि चन्ताई कोरिला जे आमा अपयश।।	चन्ताई तुमने मेरा अपमान करा दिया।।
नृपे बले चिन्तिया जे नहे किछु काज।	चिन्तित राजा बोला अब कोई चारा नहीं।
खायेर मरण बार्ता लिखे महाराज।।	खां मरणवार्ता को राजा ने खुद लिखा।।
कनक रचित पत्र(2) विश्वासे लिखिलो(3)।	विश्वास(3) से सुवर्णपत्र(2) राजा ने लिखाया।
नृप पत्र सुनी गौड़ उत्थित होइलो।।	राजा का पत्र सुनकर गौड़ उत्तेजित हुआ।।
पुर्नबार बादशाहे दूतके पाठाए।	बादशाह ने दूत को पुनः भेजा।
दिल्ली सैन्य संगे कोरि आसीबो त्वराये।।	दिल्ली के साथ युद्ध में जल्दी आए।।
परिवार समे साहा आसे त्रिपुराते।	परिवार सहित त्रिपुरा में आना है।
दूते कहे बादशाय बलिलो जे मते।।	बादशाह का यह मत, दूत ने बोला।।

(1) यात्रापुर – इच्छामति के तट स्थित स्थान विशेष।

(2) पुराकाल में पत्र रंजित करने के नियम थे। सुवर्ण द्वारा रंजित पत्र उत्तम, रोप्य द्वारा रंजित पत्र मध्यम तथा रंग आदि द्वारा इंगित होने पर वे अधम पत्र रुप से गण्य किये जाते थे।

"सुवर्ण रुप्य रंगाद्योरंजयेत् पत्रमुत्तमं।
सामान्योत्तम मध्यानां पत्ररंजनमिरितम्।।" वररुचि कृत पत्र कौमुदि।

(3) राजा के पत्र लेखक निर्दिष्ट कर्मचारी होते थे। यह पत्र कौमुदी आलोचना से ज्ञात होता है। त्रिपुरा राज्य में भी यह नियम प्रचलित था। राज दरबार पत्र लेखक 'विश्वास' तथा 'पत्रनवीस' इत्यादि उपाधि प्राप्त करते थे।

त्रिल –53

तुष्ट होइया नृपति करिलो अंगीकार(1)।	संतुष्ट होकर राजा ने अंगीकार(1) किया।
आर दिन दूतेते जिज्ञासे पुर्नबार।।	अगले दिन दूत को पुनः पूछा।।
एकाब्बर(2) पश्चिमेते आमी पूर्वदिग।	अकबर(2) पश्चिम में है और मैं पूर्व में हूँ।
मध्यते पाठान जाति राज्य करे भोग।।	बीच में पठान जाति शासन कर रही है।।
ऐ कथा सुनिया दूत दिलेक उत्तर।	यह बात सुन दूत ने उत्तर दिया।
दाउद बादसा(3) होए बडो महत्तर।।	दाउद बादशाह(3) बड़ा महान है।।
दुई पत्नी दुई दिगे सुखे निद्रा जाय।	दोनों पत्नी को लेकर चैन से सोते हैं।
ऐई मते सुखे बन्चे दाउद बादसाय।।	ऐसे ही सुख में दाउद बादशाह रहते है।।
दूत वाक्ये क्रोध होइलो नृपति विस्तर।	दूत वाक्य सुन राजा बहुत गुस्सा हुआ।
दूतेरे काटीते आज्ञा करीलो सत्वर।।	तुरंत दूत को काटने का आदेश दिया।।
बाछार(4) सकले दूत निलो सेई क्षणे।	बाछालों(4) ने दूत को तुरन्त पकड़ा।
गज भीम नारायणे कहिलो कथने।।	गज भीम नारायण ने बोला।।
दूत मारिवार नहे उचित राजन।	दूत को मारना उचित नहीं है राजन्।
पाठान बर्ब्बर जाति गुमान(5) कथन।।	पठान बहुत बर्बर व अहंकारी(5) जाति है।।

(1) पाठन्तर – (बंग्ला)

"पुनरपि गौरपति दूत पाठाइलो।
दिल्लीर सैन्येर संगे युद्ध आरम्भिलो।।
परिवार राखिवारे राजार आवासे।
दूत आसि बलिलेक ऐ कथा राजाते।।
तुष्ट होइया नरपति कोइलो अंगीकार। इत्यादि।

गौडेश्वर दाउदशाह के दिल्ली सम्राट के साथ युद्ध आरम्भ करने पर परिवार वर्गो की निरापद रक्षा अभिप्राय से त्रिपुरा में प्रेरण करने की इच्छा जताई व महाराज विजयमाणिक्य के दरबार में दूत प्रेरण किया था। महाराज ने भी हृष्टचित्त से इस प्रस्ताव को स्वीकारा। परन्तु दूत के अशिष्ट व्यवहार से महाराज द्वारा उसे राज्य से बाहर करने पर गौरेश्वर का प्रस्ताव कार्य में परिणत नहीं हो पाया।

(2) एकाब्बर – अकबर बादशाह। धार्मिक तथा सकल जाति के प्रति समदर्शता के कारण वे साधारण में विशेष श्रृद्धा के पात्र बने थे।
एकाब्बरी तथा अकबरी मोहर (स्वर्णमुद्रा) आज भी लक्ष्मी युक्त बोल कर हिन्दू समाज में आदरणीय है, हिन्दू गण उन्हे "जगदीश्वरो बा" बतलाया है व उनके प्रति आन्तरिक भक्ति प्रदर्शन का प्रकृष्ट निर्दशन व पंच गौरेश्वर बोल कर घोषित होते थे। यह बात माधवाचार्यो के 'दुर्गामंगल' ग्रन्थ में भी मिलता है यथा–

(बंग्ला) "पंच गौड नामे देश पृथ्वीर सार।
एकाब्बर नामे राजा अर्जुन अवतार।।"

(3) दाउद बादशाह – यह बंगेश्वर था। 1574 ई में विद्रोही होने पर सम्राट अकबर ने इन्हे परास्त करने के पश्चात सलीम को बंगाल का मसनद में स्थापित किया था।

(4) बाछार – बाछाल। युद्ध विजित कुकी गण जो सकल रमणी पकड कर लाये थे, उनके गर्भजात सन्तान गणों को बाछाल आख्या प्राप्त हुई।

(5) गुमान – अहंकार।

द्विल –54

राजधानी पार करी दूतके दिवार।	राजधानी पार कर दूत को छोड़ें।
राजाज्ञाते सेई क्षणे दूत करे पार।।	उसी क्षण राजाज्ञा से दूत को पार कर दिया।।
गौडेश्वर स्थाने दूते कोहिलो वृत्तान्त।	गौडेश्वर के पास दूत ने वृत्तान्त कहा।
बहुल भर्तशील ताके पाठान दुरन्त।।	पठानों ने दूत की बहुत भर्त्सना की।।
प्रीति कोरीवार तोके पाठाये बादशाये।	दोस्ती के लिये तुम्हें बादशाह ने भेजा।
कलह करिया आइले खोदार इच्छाये।।	तुम कलह कर आये अपनी इच्छा से।।
दूते कहेतो पाठान ऐबे ना रहीबो।	दूत ने कहा पठान अब नहीं रहेगा।
मगले पाइबे राज्य पाठान भागीबो।।(1)	मुगल राज्य पायेगा और पठान भागेगा।।(1)
एई अबकासेते विजयमाणिक्य राजा।	इस बीच में विजयमाणिक्य राजा।
बंगदेशे चलीलेक लोइया सैन्य प्रजा।।	बंग देश चला लेकर सेना प्रजा।।
पंच सहस्र नौकार कोरीलो साजन।	पांच हजार नावों को सजाया।
एक सहस्र अश्व राखे नौकाते आपन।।	एक हजार घोड़े भी नाव में अपने साथ रखा।।
नौका प्रति पंच बन्दूक पंच तीरन्दाज।	प्रति नौका पांच बन्दूक व पांच तीरन्दाज।
आर नौकाय राखिलेक पदाति समाज।।	शेष नौकाओं में पैदल रखा।।
डिन्गी आदि नौकाए राखे जतो सैन्यगण।	नाव में सेना के साथ डिन्गी(छोटी नाव) रखी।
विजय माणिक्य चले अनेक साजन।।	विजयमाणिक्य चले सामान के साथ।।
प्रथमे करिलो राजा ब्रह्मपुत्र स्नान।	राजा ने पहले ब्रह्मपुत्र में किया स्नान।
ध्वज आरोपिया(2) घाटे करे विधि दान।।	पताका(2) गाड़ कर विधिवत् दान किया।।
तीर्थराज लोहित्य(3) देखीलो नरेश्वर।	नरेश्वर ने तीर्थराज लौहित्य(3) को देखा।
स्नान दान कोरिलेक पुण्य कलेवर।।	स्नान दान कर पुण्य कमाया।।
भृगुरामे(4) यथा ध्वज करिछे आरोपण।	भृगुराम(4) ने जहां ध्वज अर्पण किया।
सेई स्थाने करे नृप ध्वजेर स्थापन।।	उसी स्थान पर राजा ने ध्वजरोपण किया।।
सहस्र सुवर्ण ध्वज आरोपिलो भूपे।	हजारों स्वर्ण ध्वज राजा ने धरती में गाड़े।
उत्सर्गिया दिलो स्वर्ण ब्राह्मण समीपे।।	ब्राह्मणों को सोना दान किया।।

....ग...

(1) यह पठान राजत्वों का शेष अवस्थान समय, मुगल तथा पठानों के अन्दर संघर्ष शुरु हुआ था।

(2) ध्वजारोपण – यह पुण्यजनक कार्य, तीर्थ स्थान, देवालय तथा प्रासादातियो में ध्वज उत्तोलन न करने पर उनकी विशुद्धता रक्षित नहीं होती है। शास्त्र में ध्वजारोपण के बारे में मिलता है–

''चुलके ध्वजदण्डे च ध्वजे देवकुले तथा।
प्रतिष्ठा च यथोद्दिष्टा तथा स्कन्द बदामी ते।।''

अग्निपुराण 103 अ।

(3) लोहीत्य – ब्रह्मपुत्र/लौहित।

(4) भृगुराम – परशुराम।

द्विल –55

उत्सर्ग सुवर्ण यतो ब्राह्मणे लूटे।	चढ़ाया हुआ सोना ब्राह्मणों ने लूटा।
विजयमाणिक्य कीर्ति होइलो ध्वज घाटे।।	ध्वजघाट में विजय माणिक्य की कीर्ति हुई।।
सेई राज्य जमीदार आनये राजन।	उस राज्य के जमींदार को राजा लाया।
पंच द्रोण भूमि क्रय कोरिलो तखन।।	उससे पांच द्रोण भूमि खरीदी।।
सेई पंच द्रोण भूमि ब्राह्मणके दिलो।	वही पांच द्रोण भूमि ब्राह्मण को दान दिया।
सेई होने पंचद्रोणा ग्राम नाम होइलो।।	इसलिए पंचद्रोण गांव नाम हुआ।।
ध्वजधाट समीपेते पंचद्रोण ग्राम।	ध्वजघाट के समीप पंचद्रोण गांव।
विजयमाणिक्य राजा पुण्यतर धाम।।	विजयमाणिक्य राजा का पुण्य धाम है।।
लोहित्य पश्चिम भागे बसती जाह्नवी।	ब्रह्मपुत्र के पश्चिम में जाह्नवी नदी है।
पूर्व भागे यमुना जे सरस्वती देवी।।	पूर्व भाग में यमुना व देवी सरस्वती है।।
ब्रह्मपुत्र स्नान करी जरप(1) मारिलो(2)।	ब्रह्मपुत्र में नहाकर स्वर्ण(1) मुद्रा(2) जारी की।
ध्वजधाट विजयी बलि मोहोरे लिखीलो।।	स्वर्ण मुद्रा में ध्वजघाट विजय लिखा है।।
तीर्थ राज स्नान परे लक्ष्याते गमन।	तीर्थराज स्नान कर लक्ष्या की ओर प्रस्थान।
लक्ष्या स्नान बलि जरप मारिलो राजन।।	लक्ष्या स्नान पर मुद्रा प्रस्तुत की।।
इछामती पथे पद्मावती गेलो परे।	इछामती होते हुये पद्मावती गये।
यात्रापुरे गिया राजा स्नान तरपण करे।।	यात्रापुर में राजा ने स्नान तर्पण किया।।
पद्मावति स्नान परे मोहोर मारीछे।	पद्मावती स्नान बाद मोहर छपवाया।
पद्मावतिर जलपान ससैन्ये करी।।	पद्मावती तीर में ससैन्य जलपान किया।।
कतो दिन नरपति रोहिलो तथाते।	कुछ दिन राजा वहां रहे।
अव्यक्त गौडेर दूत(3) आसीलो देखीते।।	गौर के गुप्तचर(3) ने आकर देखा।।
महा एक वृक्षे चडि दुई जन भाट(4)।	एक बड़े वृक्ष पर चढ़कर दो भाटों(4) ने देखा।
देखिलेक पद्मातीरे राजा करे पाट(5)।।	देखा पद्मातीर, राजा का आवास स्थान(5)।।
हेनो काले राजदूते देखिलो ताहाके।	उसी समय राजदूतों ने उनको देख लिया।
धरिया आनिलो भाट राजार सम्मुखे।।	गुप्तचरों को पकड़ कर राजा सम्मुख लाया।।
जिज्ञासील नरपति सत्य करी कह।	राजा ने कहा सच बताओ।
काहार प्रेरक(6) तुमि की हेतू आइसह।।	तुम्हारा कौन है प्रेरक(6) क्यों आये हो।।

---

(1) जरप – स्वर्ण मुद्रा।
(2) मारीलो – छापना, स्वर्ण मुद्रा प्रस्तुत करना।
(3) अव्यक्त दूत – गुप्तचर।
(4) भाट – अवस्था वर्णनकारी दूत व वार्तावह।
(5) पाट – राजा का आवास स्थान।
(6) प्रेरक – भेजे गये या प्रेरित।

द्विल –56

राजार वचन सुनि से भट्टे कहीलो।	राजा की बात सुन गुप्तचरों ने कहा।
तोमाके देखीते गौडेश्वरे पाठाइलो।।	आपको देखने गोडेश्वर ने भेजा।।
त्रिपुरार सैन्यगण किमत आकार।	त्रिपुरा सेना का आकार क्या है।
किबा क्रमे घोडा चढे, खड्ग ढाल तार(1)।	घोड़े पर कैसे चढ़ते व कितने खड्ग ढ़ाल।।(1)
एई तो स्वरुप कथा आमि निवेदिलो।।	यही सच बात मैंने बता दिया।
तोमा चरे आमा पाइया धरिया आनिलो।	आपके आदमी मुझे पकड़ लाये।।
एकथा सुनिया राजा भट्ट विदाय कोइलो।।	यह सुन राजा ने गुप्तचरों को छोड़ दिया।
ए सब कहितो(2) गिया प्राणे ना मारिलो।	यह सब बोलने(2) से उसे प्राण से नहीं मारा।।
सुवर्ण ग्रामेते कत आछिलो सुन्दरी।	सुवर्णग्राम में एक बहुत सुन्दरी थी।
बलेते धरिया आने ताहार जे पुरी।।	बलपूर्वक निवास स्थान ले आया।।
बिक्रम पुरेते जाइया आसिलो फिरिया।	विक्रमपुर जाकर फिर यहां आया।
निन्दा करे सुवर्ण ग्रामे त्रिपुर देखिया।।	त्रिपुर देख सुवर्णग्राम ने निन्दा की।।
एसब देखिया नृप मने क्रोध होईलो।	यह सब देख राजा मन में क्रोधित हुआ।
सुवर्ण ग्रामेते नृप कतो दिन छिलो।।	सुवर्णग्राम में राजा कुछ दिन था।।
कुलीन चौधुरी सबेर सुन्दरी जार कन्या।	सबसे सुन्दर कन्या कुलीन चौधुरी की है।
सेई घरे नृपतिर पालंक राखे धन्या।।	उसी घर में राजा का पलंग रखा है।।
सहस्त्रेक तनका पाय पालंक सहित।	पलंग का एक हजार रूपये मिलता है।
ऐई रुपे सुवर्णग्रामे कोरिलो परिमित।।	इस तरह सुवर्णग्राम को कब्जे में लिया।।
ऐई दोष नृपतिर शरीरेते छिलो।	यही दोष राजा के शरीर में था।
सुन्दरी निकृष्ट जाति ताके न दूसिलो(3)।।	नीची जाति की सुन्दरी को भी न छोड़े।।(3)
शरीर सुन्दर राजार चन्द्र समान ख्यान।	चन्द्र समान सुन्दर शरीर राजा का था।
गौर वर्ण पंडित राजा पुरुष प्रधान।।	गौर वर्ण पंडित राजा पुरूष प्रधान था।।
कन्दर्प समान रुप अति मनोहर।	कन्दर्प समान रुप अतिमनोहर था।
राजसिक भाव नित्य थाकये अन्तर।।	मन में राजसी भाव भी था।।
ऐक दिने ब्रह्मपुत्रे पोल निर्माइलो।	एक दिन ब्रह्मपुत्र में पुल निर्माण किया।
ससैन्य सहिते राजा पोल पार होइलो।।	सेना के साथ राजा ने पुल पार किया।।

---

(1) उनके खड्ग, ढाल इत्यादि अस्त्र किस रुप के है, देखने के लिए भेजे गये।

(2) कोहित – बोलने का निमित।

(3) पाठान्तर–(बंग्ला)

"ऐक दोष नृपतिर शरीरे आछिलो।

भौमिक–सुन्दरी सुनी ताके ना वाछिलो।।"

इस स्थान पर भूमि मालिक को भौमिक बतलाया है।

द्विल –57

सरणिर पथ क्रमे कैलागढे(1) आसि।	सरणिर के रास्ते में कैलागढ़(1) आये।
खनाइलो ऐक नदी तथा नृपे बसि।।	एक नदी खुदवाई और राजा वहां रुके।।
विजय नन्दिनी(2) नाम राखिलो नदीर।	नदी का नाम विजय नन्दिनी(2) रखा।
श्रीहट्टे चलीलो राजा विजय महावीर।।	श्रीहट्ट चला राजा विजय महावीर।।
तार परे जांगाल राजा बान्धाये आज्ञाते।	राजाज्ञा से तपर जंगल में घेरा डाला।
त्रिपुरार जांगाल बलि ख्याति होय ताते(3)।।	त्रिपुरा जंगल तपर(3) नाम से ख्यात हुआ।।
जिनार पुरेत(4) राजा खाल काटि दिलो।	जिनारपुर(4) में राजा ने एक नाला बनवाया।
त्रिपुरार खाल बलि नाम तार होइलो।।	त्रिपुरा खाल उसका नाम पड़ा।।
पंच खण्ड देश होइया इटाते आसिलो।	पंचखंड देश होकर इटा आया।
भानू नारायण ताते तालुकदार छिलो।।	भानूनारायण वहां का तालुकदार था।।
चारिदिगे जमीदारे हिन्से जे ताहारे।	चारों दिशा के जमींदार उससे ईर्ष्या करते।
सीमा करिलो नृपे ताके दिते इच्छा करे।।	राजा ने उसे सीमा बनाने का मन किया।।
नृप स्थाने प्रतिग्रह द्विजे भूमि चाहे।	राजा से द्विज ने जमीन मांगा।
उत्सर्गिया दिलो भूमि ताम्र पत्रे ताहे।।	ताम्र पात्र में जमीन को उत्सर्गित किया।।
सेई हने चौधुरी ख्याति होइलो द्विजबर।	उसी समय द्विजवर "चौधरी" ख्यात हुआ।
पुनि नृपति स्थाने चाहिलो अपर।।	पुनः राजा ने कुछ और भी देना चाहा।।
समस्त पाइलो कहे सेइ द्विजबर।	सब कुछ पा लिया द्विजवर ने कहा।
चतुर्थांश राज भूमि दिते चाहे कर।।	भूमि का एक चौथाई कर, राजा ने लेना चाहा।।
तबेत रहिबो आमा पुरुषानुक्रम।	तभी तो हमारा वंश चलता रहेगा।
ताहा नाहि होइले आमा बृथा होइलो श्रम।।	यह न होने से हमारा श्रम बेकार होगा।।

---

(1) कैलागढ – कस्बा।

(2) विजय नन्दिनी – विजय नदी। तितास नदी से, नयानपुर सन्निहित बुडीमा नदी तक एक क्षुद्र स्त्रोतस्विनि/नदी है। विजय माणिक्य ने इस नदी का किनारा काटने पर इस नदी का नाम 'विजय नदी' हुआ है। इसको विजना नदी भी बतलाया जाता है।

(3) पाठन्तर – (बंग्ला)

"श्रीहट्टे तो गेलेन विजय महावीर।।
तरपे जांगाल बांधे राजार आज्ञाये।
त्रिपुरार जांगाल बलि अद्यापि कहये।।"

'तरपे' स्थान पर यहां पर "तार परे" लिखित हुआ है। तरप श्रीहट्ट जिला का एक परगना का नाम है। इस परगना के अन्दर जो प्राचीन सड़क है। वह विजय माणिक्य की कृति है।

(4) जिनारपुर – यह श्रीहट्ट जिला का अन्तरभूत स्थान है।

द्विल –58

परे नृपति बले तोमा इच्छा मते।	बाद में राजा ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा।
कर दिते कहे नृपे ब्राह्मण इच्छाते।।	राजा बोला ब्राह्मण इच्छा से कर देगा।।
तथा हने नृपति चैवालीस देशे।	नृप चवालिस देशों के राजा बने।
शिकार करिलो नृप हरिष विशेषे।।	राजा ने विशेष हिरण का शिकार किया।।
बहु दिन ससैन्येते नृप सेई स्थान।	राजा ससैन्य वहां बहुत दिनों तक रहा।
राज सैन्य लूटीते राजा करिलो पयान।।	राज सेना को लूटने की राजा ने योजना बनाई।।
महा खाड़ाइत(1) तारा दुई सहस्र पाइक।	महा खाड़ाइत(1) उपाधिधारी दो सहस्त्र सैनिक।
खड्ग चर्म जाठि हाते देखि भयानक।।	खड्ग चर्म लौह दण्ड हाथों मे, भयानक दैहिक।
सातबार धन्य सागर फिरिते जे पारे।	सात बार धन्य सागर जो पार कर सके।
सेई जना तार नाम खाड़ाताइया धरे।	खाड़ाताइया वही होता था सही विदित संसार।।
दिवा रात्र थाके राज द्वारेते प्रहरी।	दिन –रात के थे वे राजद्वार के प्रहरी।
बड़ो बड़ो अंग तारार(2) विक्रमे केशरी।	बड़े बड़े अंगों उनके(2) और विक्रम में केशरी।
एक खाड़ाइत गेलो देश लुटि बार	एक खाड़ाताइत हुआ देश को लुटने को तत्पर।
भंग दिलो बंगदेशी(3) देखि व्यवहार।	भाग गया बंगदेशी(3) देख उसका व्यवहार।
एक नारिये ताहार चरणे पड़िलो।	नारी एक उसके पैरों में आ पड़ी।
केश दिया खाड़ाइत पाएते बान्धिलो।।	केशों से खाड़ाइत के चरणों को बांधा।
पदे बान्धिलो नारी नड़िते ना पारे।	पैरों को बांधा नारी ने, जैसे चल न सके।
हेनो काले तार पति आसिलो सत्वरे।।	इसी समय पति उसके वहां पर आ धमके।।
प्रहार कोरिलो स्वामी पाइकेर माथे।	प्रहार किया पति ने सैनिक के सिर।
सूर्य खाड़ाइत मरे प्रहारेर घाते।।	सूर्य खाड़ाइत मरे आघात बड़ा गंभीर।।
राजार साक्षाते बार्त्ता गेलो तत्क्षण।	राजा के यहां बात पहुंच गई तत्क्षण।
अग्नि सम क्रोध होइलो शुनिया राजन।	आग बबूला हो गया राजा का मन।।
ग्राम समे(4) धोरिया आनिते आज्ञा दिलो।	ग्राम सहित(4) सब को पकड़ कर लाने को हुई राजाज्ञा।
धरिलेक कतो जना कतो पलाइलो।।	पकड़ा कितनो को भागी बहुत प्रजा।।
जमिदारे धोरि दिलो जे जना मारिछे।	जमींदार ने पकड़ा दिया जिसने था मारा।
सूर्य खाड़ाइत जेई प्राणेते बधिछ	सूर्य खाड़ाइत का जो था हत्यारा।।

---

(1) खाड़ाइत उपाधि बहुत प्राचीन है। इस लहर की टीका में खाड़ाइत विवरण मिलेगा। खड्ग धारी महाबलशाली लोगों को ही खाड़ाइत या खड्गधारी कहा जाता था।

(2) तारार– बंगला में ''उनके'' लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है।

(3) इन दिनों श्रीहट्ट अंचल बंगाल के शासनाधीन था।

(4) ग्राम समे –अर्थात गांव सहित ग्राम के सभी के लोग।

द्विल –59

तथा होने नरपति बालिशिरा गेलो।	वहां से नरपति बालिशिरा गया।
विजयपुर नाम ग्राम तथाते बैसाईलो(5)।।	विजयपुर(5)नाम ग्राम वहां पर बसाया।
कोतो दिन पोरे राजा उनकोटि(6) गेलो	कुछ दिन पश्चात राजा उनकोटि(6) जा रूके।
एक उनकोटी लिंग तथाते देखिलो।।	एक उनकोटि शिव लिंग वहां पर देखे।।
लंगला देश होइते धर्मनगर आइसे।	लंगला देश से हुआ धर्मनगर आगमन।
हर गौरी पूजिछिलो कामना विशेषे।।	कामना विशेष से किया हर –गौरी पूजन।।
डांगर फार पूरी मध्ये छिलो कोतो दिन।	डांगर फा की पुरी में वे थे और कुछ दिन।
नारेंगि कमला बाग देखिलो प्रवीण।	नारंगी कमला बाग तब देखे प्रवीण।।
डांगर फार आर बाडी तमकान(7) स्थान।	डांगर फा का और घर था तमकान(7) स्थान।
तथाते आछिलो राजा बीरदर्प ज्ञान।।	वहां रहे राजा वीरदर्प ज्ञान।।
रांगामाटि आसिलो राजा यशपुर पथे।	रांगामाटी आये राजा यशपुर के पथ से।
राजधानी गिया राजा बहु दान ताते।।	राजधानी जाकर राजा ने दान किया बहुत से।।
तुलापुरूष(8) आदि करि कल्पतरू(9) दान।	तुलापुरूष(8) आदि और कल्पतरू(9) दान।
एमत करिलो दान पुण्य अनुष्ठान।।	इस तरह किया दान और पुण्य अनुष्ठान।।

---

(5) "त्रिपुर वंशावली" नामक हस्तलिखित पुस्तिका में है –

सोनाई नदी उजाइया, नौका सब चले धाइया,
देखे भूमि पतित रहिलो।
महाराजा भावि मने, आपनार निज नामे,
विजयपुर ग्राम बोसाइलो।।

अर्थात, सोनाई नदी की ऊपर की ओर, सारी नौकायें दौड़ रही है। देखा भूमि पतित पड़ी हुई है। महाराज ने अपने मन में सोचा अपने नाम से विजयपुर गांव को बसाया।

(6) उनकोटि –एक तीर्थ स्थान। इसका विवरण अगली टीका में देखिए। यह स्थान कैलासहर विभाग के अधीन है।

(7) तमकान –यह बाल्लाघाट अर्थात खोवाई का प्राचीन नाम है। त्रिपुर वंशावली पुस्तिका में है :–

श्रीहट्टेर गड़े गिया, बान्याचंग परगना होइया,
बाल्लाघाटे उपस्थित होइलो।
हेरिया कमला बन, आनन्दित राजा होन,
परिपक्क कमला आनिलो।

अर्थात, श्रीहट्ट के गढ़ जाकर, बानियाचंग परगना से होते हुए बाल्लाघाट(इस समय खोवाई) आकर उपस्थित हुए। कमला वन को देख कर राजा बहुत खुश हुए। पका हुआ कमला (संतरा) उन्हें लाकर दिया।

(8) तुलापुरूष –दाता तुला दण्ड के एक ओर बैठकर दूसरी ओर के तराजू में स्वर्ण और रजत आदि देकर वजन करते थे। इन वस्तुओं को दान दिया जाता है और इस दान को तुलापुरूष दान कहते हैं। एक एक धातु द्वारा तुलापुरूष दान करने का अलग अलग फल शास्त्रों में लिखा गया है। दान सागर ग्रंथ में इसका विस्तृत विवरण मिलेगा।

(9) कल्पतरू –देवालोक का वृक्ष। इस वृक्ष के नीचे किसी भी वस्तु की प्रार्थना करने पर मनुष्य को वही मिलता है। मनुष्य के पूजा अर्चना के लिए कल्पतरू होने का विधान शास्त्रों में है। दान के समय मनुष्य उनसे जिस वस्तु के लिए प्रार्थना करेगा कल्पतरू उसे वह प्रदान करता है। किसी की प्रार्थना अपूर्ण नहीं जाएगी।

द्विल –60

हीरापुरे एक मठ दुई दीघी तान।	हीरापुर में एक मठ और दो सरोवर खनन।।
भूमि उत्सर्गिल ताम्र पत्रेते प्रमाण।।	भूमि उत्सर्ग किया ताम्र पात्र प्रमाण।।
हीरा गोपीनाथ नामे श्रीमूर्ति स्थापिया।	हीरा गोपीनाथ नाम से मूर्ति का स्थापन किया।
ताम्र पत्र कोरि ताते श्लोक जे लिखिया।।	ताम्रपत्र कर उसमें श्लोक एक लिखाया
अथ श्लोक	अथ श्लोक
धन्यमाणिक्य भूपालो बहुभिर्भूवि दुर्लभः।	धन्यमाणिक्य भूपालो बहुभिर्भूवि दुर्लभः।
तत् सुतो देव माणिक्यस्तत् सुतोविजय स्मृतः।।	तत् सुतो देव माणिक्यस्तत् सुतोविजय स्मृतः।।
राजा राजशिरोरत्ननिघृष्ट चरणाम्बुजः(1)।	राजा राजशिरोरत्ननिघृष्ट चरणाम्बुजः(1)।
श्रीश्रीविजय माणिक्यो राजा राजभिराजते।।	श्रीश्रीविजय माणिक्यो राजा राजभिराजते।।
पयार	छन्द
इत्यादि कथन श्लोक लिखे ताम्र पत्रे।	लिखा ताम्रपत्र में एक श्लोक का कथन
पयार करिया लिखे बुझिवार तत्रे।।	छन्द लिखा जैसे समझें सर्व जन।।
श्रीधन्य माणिक्य राजा पृथ्वी दुर्लभ।	श्रीधन्य माणिक्य राजा पृथिवी दुर्लभ।
तार पुत्र देव माणिक्य रत्नेर सम्भव।।	उनके पुत्र देव माणिक्य रत्न वास्तव।।
ताहार पुत्र विजय माणिक्य राजन।	उनके पुत्र विजय माणिक्य थे एक राजन।
राजा सबेर शिरोरत्न चरणे घर्षण।।	राजाओं में शिरोरत्न श्री चरण स्पर्शन।।
श्रीश्रीविजय माणिक्य देब महाराजा।	श्रीश्रीविजय माणिक्य देव महाराजा।
राजा मध्ये विराजित बले महातेजा।।	राजाओं में विराजित थे महातेजा।।
ध्वज घाट हने जतो बानिया कांसारि।	ध्वजरोहण में जितने थे बनिया कंसारी।
आनिया बोसाइलो नाम ध्वज जे नगरी।	लाकर बसाया नाम हुआ ध्वजनगरी।।

---

(1) ताम्रशासन में इस तरह कि गर्वित वाक्य उत्कीर्ण करने का दृष्टांत यही प्रथम नहीं हैं। महाराज विजयमाणिक्य के प्रायः तीन सदी पहले (1165 शक में) सम्पादित दामोदर देव के ताम्रलिपि में इस तरह के वाक्य मिलते हैं –

"यद्वंश प्रभवेन्दु सुन्दर वशो निर्धौत लोकत्रयी बन्धोः।
श्रीपुरूषोत्तमस्य तनयः प्रौढ़ प्रतापोऽभवत्।।
देवः श्रीमधुसूदनाक्ष्य नृपतिर्येनापि सेवानमत्।
भूमीपाल ललाटघृष्टचरणः श्री वासुदेवोऽजनि।।
तस्यात्मजः पुण्यराजशिरोमालश्चाकिंचनवितायिनखचन्द्रमयुखमालः
प्रज्ञा प्रसारित महीदयित पुत्रः श्रीदामोदरः सकल नृपति चक्रवर्ती"।।

इस ताम्रलिपि में ''दामोदर'' ''त्रिपुर जयिनं'' विशेषण से भूषित हुए है। इस विषय पर स्थानान्तर में आलोचना होगी।



हीरा गोपी नाथ विग्रह का भग्न मन्दिर, जमीन पर पड़ा तोरण
हीरापुर, उदयपुर

द्विल –61

सेई काले पुरातन चंताई मरिलो।	उस समय पुराना चंताई मर गए।
नवीन चंताई नृपे करिते चाहिलो।।	नृप ने करना चाहा नया चंताई।।
प्रातःकाल होइलो तबे देबता पूजन।	प्रातःकाल हुआ तब देवता पूजन।
सेई रा़त्रे नृपतिये देखिलो स्वपन।।	उसी रात नृपति ने देखा एक सपन।
बिजय दुर्लभनारायण चंताई बिने।	विजय दुर्लभ नारायण चंताई बने।
अन्य हस्ते पूजा ना लोइबो कदाचने।।	अन्य हस्त पूजा न लूंगा कदाचन।।
एई स्वप्न नरपति रात्रेते देखिलो।	यह स्वप्न नरपति ने रात्रि को देखा।
सेई से कारणे दुर्लभ चंताई होइलो।।	इसी कारण दुर्लभ चंताई हुआ।।
सेई दिने दुर्लभ करे देबता पूजन।	उस दिन दुर्लभ ने किया देव पूजन।
हेन मते राज्यपद करेन राजन।।	जैसे राज्यपद सदा सम्भाले राजन।।
नरपतिर दुई पुत्र जन्मे क्रमे क्रम।	नरपति के क्रम से दो पुत्रों का हुआ जन्म।
डुंगु तीर्थे(1) जन्म ज्येष्ठ डुंगुर नाम उत्तम।।	डुंगु तीर्थ(1) में जन्में ज्येष्ठ डुंगुर नाम उत्तम।।
अनंत होइलो नाम ताहार कनिष्ठ।	अनंत हुआ नाम उसका जो था कनिष्ठ।
कुचरित्र दुई पुत्र प्रकृति अनिष्ट।।	कुचरित्र हुए दोनों पुत्र प्रकृति भी अनिष्ट।।
ताहा देखि नरपति मनेते विस्मय।	यह देख नरपति के मन में हुआ विस्मय।
दैवज्ञेते जिज्ञासिल कुष्ठीर निर्णय।।	दैवज्ञ से पूछा इनकी कुन्डली का निर्णय।।
डुंगुरेर कुष्ठी माझे च्छेदयोग(2) होय।	डुंगुर की कुन्डली में च्छेद योग(2) आया।
अनंतेर राजयोग(3) दैवज्ञे कहय।।	अनंत का राजयोग(3) दैवज्ञ ने बताया।।
ताहा सुनि नरपति विवेचना करे।	यह सुन नरपति ने किया विवेचन।
डुंगुर फाके उड़िष्याते पाठाइते सत्वरे।।	डुंगुर फा को उड़िष्या में किया सत्वर प्रेरण।।
मुकुन्द नामे छिलो उडिष्या भूपति।	मुकुन्द नाम के उड़िष्या में भूपति।
ताहान स्थाने पत्र लिखे बिजय नृपति।।	पत्र लिखा उनके प्रति विजय नृपति।।

....

(1) गोमती नदी के उत्पत्ति स्थल को डुंगु या डुंम्बुर कहते हैं। इस लहर की टीका में देखिये।

(2) च्छेद योग –ग्रहनक्षत्रों के अशुभ संयोग के समय जन्म ग्रहण करने पर भूमि शिशु का अस्त्रादि द्वारा अंगच्छेद होने की सम्भावना रहती है –उसी को ''च्छेद'' योग कहते है।

(3) राजयोग –ग्रह नक्षत्रों के शुभ संयोग में शिशु जन्म ग्रहण करने पर वह राजा होता है –ऐसा इस योग से सूचित होता है। इसे ''राजयोग'' कहते हैं। श्रीचन्द्रदेव की ताम्रलिपि में ''स राजयोगेन शुभे मुहूर्ते'' वाक्य का उल्लेख है। ''आप्तेर अभिधाने'' में राजयोग शब्द का निम्न व्याख्या मिलती है –

"a configuration of planets, asterisms etc. at the birth of a man, which indicates that he is destined to be a king".

द्विल –62

अष्ट ग्राम जमि कतो दिया उड़ष्याते।	अष्ट ग्राम भूमि आदि उड़िष्या में देकर।
डुंगुर फा पुत्रके दिया राखिबा जे प्रीते।।	डुंगुर फा पुत्र को रखना संभालकर।।
डुंगुर पुत्रेर संगे राज–पत्र जाय।	डुंगुर फा पुत्र के साथ राजपत्र देकर।
अनेक सुवर्ण दिलो जन्माबधि खाय।।	अनेक स्वर्ण दिया जन्मावधि रहे खाकर।।
जगन्नाथ सेबिबारे शिखाये ताहारे।	जगन्नाथ सेवा विधि सिखाये भरपूर।
पुत्र स्नेह छाड़ि राजा पाठाइलो दूरे।।	पुत्र स्नेह त्याग राजा ने भेजा बहु दूर।।
जगन्नाथ सेबा कोरि होइबा अमर।	जगन्नाथ सेवा से हो जाओगे अमर।
उड़ष्याते डुंगुर पुत्र पाठाय सत्वर।।	उड़िष्या को डुंगुर पुत्र भेज दिया सत्वर।।
अनंत पुत्रके राज्य दिबेक नृपति।	अनंत पुत्र को राज्य देंगे नृपति।
सर्बक्षण खेले से जे कुत्सित प्रकृति।।	हमेशा खेलता रहता था कुत्सित प्रकृति।।
लुकालुकि खेले से जे शिशुगण संगे।	चोरी चोरी खेल खेलता शिशु संग।
पण राखि खेला करे कौतूहल रंगे।।	पण/पैसा रख खेलता कौतुहल भरे रंग।।
शुइया शय्याते से जे कापड़ बेड़ाय।	सोकर शय्या पर वह लपेटता वस्त्र।
मृत मनुष्य मत दाहिते लोइया जाए।।	दाह करने जैसे ले जाता कोई मृत।।
कदलीर गाछ कान्धे संगे जतो जन।	केला वृक्ष कंधे पर ले, जाता साथ लोगों के।
आगे पाछे कतो जन पथेते गमन।।	आगे पीछे बहुत से लोग रहते संग उसके।।
धाबमान गिया ताके जेबा कोरे माना।	दौड़ कर उसे यदि कोई करता मना।
बहु गालि दिया ताके करये तर्जना।।	गालियां देता था उसे करके भर्त्सना।।
एई मत कुचरित्र कतेक कोहिबो।	इस तरह के कुचरित्र का कितना करू वर्णन।
भय नाहि मने तार राजाय शुनिबो।।	भय नहीं मन में कि सुनेगें राजन।।
कुप्रकृति राजपुत्र देखिया राजाय।	कुप्रवृति राजपुत्र की देखकर नृपवर।
गोपीप्रसादेर कन्या विवाह कराय।	गोपी प्रसाद की कन्या से किया विवाह।।
राजा बोले गोपीप्रसाद तोमार होइलो भाला।	कहा राजा ने गोपी यह बात हुई अच्छी।
आजि होते तुमि आमार बेयाई होइला।।	आज से तुम हो गए मेरे प्रिय संबंधी।।
प्रथमे आछिला तुमि बाछार दफाते।	पहले थे बाछार के दफा में तुम।
धर्मपुरे गियाछिला राजार कर्म्मेते।।	धर्मपुर गए थे अपने राजा के काम।।
एक द्विज बदरी वृक्षे लोभे उठिछिला।	एक द्विज बदरी वृक्ष पर लोभवश चढ़ा था।
बॉश खुचि दिया तोके भूमिते फेलिला।।	बांस से खोचकर तुझे गिराया भूमि पर।।
दाव दिया बलि विप्रे तोके गालि दिलो।(1)	दाव से बलि दूंगा(1) विप्र ने दी गालियां तुझ पर।
वाशेर बाड़िये तोमा शरीर क्षत होइलो।।	बॉस के प्रहार से शरीर रहा क्षत–विक्षत हो दूर।।

---

(1) दाव से बलि दूंगा कह कर विप्र ने गालियां दी थी।

द्विल –63

परे आमि तोके दिलो बड़ुया(1) पदबी।	बाद में तुम्हें मैंने दी बड़ुया(1) उपाधि।
आमार रन्धन धरे महामुन्सुबि(2)।।	मुझे भोजन घर में दिया महामुन्सुबी(2)।।
आमा अन्न दिते तोर हस्तेते देखिलो।	मुझे खिलाते वक्त तेरे हाथों को देखा।
ध्वज बज्रांकुश चिन्ह(3) तोर हस्ते छिलो।।	ध्वज बज्रांकुश(3) चिन्ह तेरे हाथों में लिखा।।
तार परे महल द्वारे राखिलो समुखे।	इसके पश्चात महल द्वार के सामने मैंने रखवाया।
परे गोपीप्रसादनारायण(4) कोरिलाम तोके।।	पश्चात् गोपीप्रसाद नारायण(4) करवाया।।
शालग्राम हरिवंश नृपति साक्षात।	शालग्राम हरिवंश या नृपति के सम्मुख।
परसाये गोपीप्रसाद सेनापति तात।।	गोपीप्रसाद सेनापति ने दिया हाथ रख।।
नृपे कहिलो तुमि एमत सेनापति।	नृप ने कहा तुम इस तरह अब हो गए सेनापति।
पुत्र तोमा समर्पिलाम तोमा कन्या पति।।	सौंप दिया पुत्र तुम्हें तुम्हारी कन्या का पति।।
सेनापति दण्डबते कहिलो कथन।	सेनापति ने कर दण्डवत कहा उस क्षण
सेबकेरे एत दया करिछो राजन।।	सेवक पर इतनी दया किए हो राजन।।
सेई काले नृपे पात्रे पुत्र समर्पिलो।(5)	नृप ने पात्र के हाथ पुत्र सौंपा उस काल।(5)
सातचल्लिस वर्ष नृपेर बयस होइया छिल।।	राजा का सैतालिस साल उम्र हुआ था।।
सातचल्लिस वर्ष राजा राज्य भोग कोरे।(6)	सैतालिस साल राजा ने किया राजभोग।(6)
दैवगति बसन्त नृपेर होइलो शरीरे।।	दैवगति नृपदेह हुआ बसन्त रोग।।
महाकष्ट पाए राजा यंत्रणा बिस्तर।	महाकष्ट पाये राजा यंत्रणा अपार।
ताहार आघाते देह होइलो बहु ज्वर।।	रोगाघात से देह में हुआ तीव्र ज्वर।।
धन्वन्तरि नारायण पिता यादु बैद्य।	धन्वन्तरि नारायण पिता यादु वैद्य।
प्रयोग कराये बहु काले नहे साध्य।	प्रयोग किए बहुत पर नहीं है साध्य।

---

(1) बड़ुया –सेनापतिओ की उपाधि।

(2) महामुन्सबि –महामुंशी, महाराज के रसोइया को "महामुंसी" उपाधि दी जाती थी।

(3) ध्वज बज्रांकुश चिन्ह –ध्वजाकार, बज्राकार और अंकुशाकार चिन्ह भगवान विष्णु के चरणों में चिन्ह अंकित है। मनुष्य के हाथ में या पैर के तलुए में यह चिन्ह रहने से उसे राजयोग कहा जाता है।

(4) नारायण –राजदत्त उपाधि इसका विवरण अगली टीका में देखिये।

(5) उस समय नृप के पात्र (मंत्री सेनापति के लिए प्रयुक्त शब्द) उस समय मंत्री ही पात्र थे(मंत्री का काम करते थे)। राजा ने पुत्र को पात्र के हाथ समर्पण किया।

(6) पाठांतर – वेयाल्लिश बत्सर राजा राज्य भोग कोइलो।
सातचल्लिस वत्सर बयस होइलो यबे।
दैवगति राजार शीतला होइलो तबे।।

यही पाठ विशुद्ध है। नकल करने के भ्रम से पाठ में विकृति हो गई हैं।

द्विल –64

काले धरिलो जबे औषधे किबा काज।	काल ने जब है पकड़ा, औषध का क्या काज।
तथापि जीबार इच्छा मने महाराज।	फिर भी जीने की प्रबल इच्छा रखते महाराज।
राजा बोले यादुराय आमा साह्य(1) करो।	राजा बाले यादुराय कर दो आरोग्य(1) मुझको।
सर्वांगे सुवर्ण जड़ित करिबो तोमार।	सर्वांग सुवर्ण से जड़ दूंगा मैं तुझको।।
इच्छाये ना होय किछु काल बलबान।	इच्छा से न होता कुछ, सदा काल बलवान।
शालग्राम क्षेत्रे राजा स्वर्गे गेलो प्राण।।	शालिग्राम के क्षेत्र में राजा गए स्वर्गधाम।।
बड़ गृहे अग्नि लागि निर्व्वापण पाय।(2)	बड़े गृह में लगे आग बुझे नहीं जिस तरह।(2)
तेमत विजय नृपेर राज्य भोग ताय।।	विजय नृप का राज्य भोग हुआ उसी तरह।।
महा कोलाहल होइल राज अंतःपुरे।	महाकोलाहल हुआ राज अंतःपुर में।
राज पुत्र अनंतमाणिक्य नाम परे।।	राज पुत्र अनंतमाणिक्य नाम हुआ अंत में।।
राज श्वशुर गोपीप्रसाद नारायण।	राजश्वशुर गोपीप्रसाद नारायण।
जामाताके बोसाइलो राज सिहांसन।।	जामाता को बैठाया राज सिहांसन।।
विजयमाणिक्य मृत स्नान कराइया।	विजयमाणिक्य शव को स्नान कराकर।
राज आभरण वस्त्र सब पराइया।।	राज आवरण वस्त्र सब पहनाकर।।
वाद्य भाण्ड दुन्दुभि कर्णाल मृदंग।	वाद्य भाण्ड दुन्दुभि कर्णाल मृदंग।
हस्ती घोड़ा सैन्य चले चतुर्दोल संग।।	हस्ती घोड़ा सैन्य चले चतुर्दोल संग।।
महादेवी आगे कोरि यत नृप–भार्या।	महादेवी आगे सामने सभी नृप भार्या।
श्मशाने गमन कोरे स्वामी कोरि पूजा।।	श्मशान में चल करी स्वामी पूजा।।
बैकुन्ठपुर स्थाने नृप दाह होइलो।	नृप का दाहकर्म किया बैकुंठपुर।
अन्य मन्वंतर(3) येनो तेमत घटिलो।।	घर गया वैसा ही जैसे आता है अन्य मन्वंतर।।(3)
श्राद्ध सांग परे मठ श्मशानेते दिलो।	श्राद्ध पश्चात मठ बनाया श्मशान।
मुक्तिशिला(4) प्रस्तरेते निर्माइया छिलो।।	मुक्तिशिला(4) पत्थर पर कर दिया निर्माण।।

———

(1) साह्य अर्थात आरोग्य

(2) इन दो पंक्तियों का भाव दुर्बोध्य है। केवल इतना सा अनुमान किया जा सकता है कि बड़े बड़े घर जब भस्म हो जाते हैं तो जिस तरह अंशाति और अभाव आता है, उसी तरह विजयमाणिक्य की तरह सुयोग राजा के अभाव में राज्य की वैसी ही अवस्था हुई होगी।

(3) मन्वन्तर –एक एक राजा के शासन काल को एक एक मन्वन्तर कहा गया है।

(4) मुक्तिशिला – श्मशान क्षेत्र का मठ।

द्विल –65

अनंतमाणिक्य खण्ड

विजयमाणिक्य राजार परलोक होइलो।
अनन्तमाणिक्य राजा मगदे(5) शुनिलो।।
गोपीप्रसाद नारायण कार्येर प्रधान।
भोजन करये राजा श्वशुरेर स्थान।।
जेई दिने तार घरे राजा नाहि आइसे।
डाकिया आनिया राजा खावयाये विशेषे।
नित्य गिया राजाय श्वशुर गृहे खाय।
सदाकाल महारानी राजाके बुझाय।।
राजा होइया श्वशुर गृहे नित्य केने खाउ।
भालो मंद नाहि बूझो मरिबारे चाउ।।
ए कथा सुनिया राजा कहन्त(6) आपने।
श्वशुरे डाकिया निते रहिबो केमने।।
पिता समर्पिया गिछे ताहार निकट।
तार आज्ञा लंधि आमि रहिते संकट।।
हेनो सुनि महादेवी निःशब्दे रहिलो।
राजारे धरिलो काले माना ना शुनिलो।।
सप्त बत्सरेर रानी होइलो बुद्धिमती।
ना धरे काहार वाक्य अबोध नृपति।।
हेनो रूपे कोतो काल गेलो एई मते।
बिधि नियोजित राजा ना पारे बुझिते।।
गोपीप्रसाद महामंत्री से जे राज्यलोभी होइलो।
जामाता बधिते मंत्री मंत्रणा करिलो।।
गदाभीम स्थाने मल्ल शिखये राजाये।
गोपने मल्लेर स्थाने मंत्रीये शिखाये।।
जेई काले मल्ल विद्या राजारे शिखाइबा।
नृप गले बद्ध करि पराणे मारिबा।

अनंतमाणिक्य खण्ड

विजयमाणिक्य राजा हो गया परलोक।
मघो(5)ने सुना राजा हुए अनन्तमाणिक्य।।
गोपीप्रसाद नारायण राजकार्यप्रधान।
भोजन करते राजा ससुर के वास स्थान।।
जिस दिन राजा नहीं जाते उनके घर।
राजा को विशेष यत्न से खिलाते बुलाकर।
राजा ससुर गृह खाते थे नित्य।
सदा महारानी उन्हें समझाती औचित्य।।
राजा होकर ससुर गृह खाते क्यों नित्य।
समझते नहीं हैं, चाहते क्या मृत्यु।।
यह बात सुन राजा कहने(6) लगे स्वयम्।
ससुर के बुलाने पर न जांउ किस कारण।।
पिता सौंप गए उन्हीं के शरण।
संकट रहित हेतु करूं आज्ञा उल्लंघन।।
ऐसा सुन महारानी हो गई मौन।
राजा काल कवलित रानी का न सुना वचन।।
हुई सात वर्ष की रानी बुद्धिमती।
न सुने किसी की बात अबोध नृपति।।
इस तरह कितने काल बीते इस तरह।
विधिवश राजा न समझे किसी तरह।।
गोपीप्रसाद महामंत्री राज्य लोभी हुआ।
जामाता वधहित मंत्री ने मंत्रणा किया।।
मल्ल सीखे राजा, गदाभीम से।
गोपनीय सबसे, मंत्री ने उसे बताया।।
जिस समय मल्ल विद्या राजा को सिखाना।
गला घोंट उसे प्राणों से मार देना।।

---

(5) मगद –मघ।

(6) कहन्त –कहते है।

द्विल –66

ताहा शुनि गदा भीमे कहिलो सत्वर।	यह सुन गदाभीम ने कहा सत्वर।
पुरूषानुक्रमे आमि ताहार चाकर।।	पुरूषानुक्रम से मैं हूं उनका चाकर।।
शताधिक पुरूषाबधि विजय नृपति।	शताधिक पुरूषाबधि से विजय नृपति तक।
तार बंश मारि आमा नाहि अव्याहति।।	उनके वंश को मार मेरी अव्याहति कब।।
दश द्विज सम येनो एक राजा होय।	दस द्विज सम राजा होता एक।
राजबंश बधे होय नरक निश्चय।।	राजवंश वध से होता है अनंत नरक।।
छत्रधारी सिंहासन जेई राजा होय।	छत्रधारी सिंहासन पर जो करता राज।
तार बधे महापाप धर्मशास्त्रे कोय।।	शास्त्र कहता उसके वध से होता महापाप।।
बिशेष आमार बंश पालिले नृप बरे।	मेरे वंश को विशेष सबसे पाला नृप वर ने।
किबा धर्म होये आमि ताके मारिबारे।।	कौन सा है वह धर्म हम जाएं उसे मारने।।
एकथा शुनिया मंत्री निःशब्दे रहिलो।	यह बात सुन मंत्री रह गये मौन।
पान दिया गदाभीम विदाय करिलो।।	पान देकर विदा किया गदाभीम को।।
ताहार भागिना बीर मर्दन नारायण।	उसका भानजा वीर मर्दन नारायण।
ताहाके शिखाये मंत्री वधिते राजन।।	उसे सिखाया मंत्री ने वध करने राजन।।
अंगीकार(1) कोइलो मंत्री राजा के बधिते।	अंगीकार(1) कराया उसे राजा को करने वध।
गोपने रहिलो से जे कोठार मध्येते।।	छिपा रहा वह कोठे मध्य।।
जे पथे नृपति जाइबो कोरिते भोजन।	जिस राह नृपति जाऐ करने भोजन।
सेई पथे लुकि दिया(2) रहिछे से जन।।	उसी राह रहा छिपा(2) वह दुर्जन।।
श्वशुर बाड़िते राजा आइसे अन्न खाइते।	ससुर गृह राजा आएं करने भोजन।
कोठा घर पथे राजा तखने जाइते।।	कोठा घर से दूर, जब गुजरे राजा।।
गले त बान्धिया वस्त्र फांसी लागइलो।	गला बांध कपड़े से फांसी उसने लगाया।
अनंतमाणिक्य राजा फांसीते मरिलो।।	अनंतमाणिक्य राजा फांसी से मर गया।।
बत्सर देड़ेक राजा राज्येर शासन।	डेढ़ साल राजा का था चलता शासन।
परलोक गेलो राजा श्वशुर कारण।।	परलोक सिधारे राजा ससुर के कारण।

———　　　　———

---

(1) पाठान्तर –''अंगीकार कैलो सेई राजाके मारिते'' अर्थात ''उससे अंगीकार कराया राजा को मारने के लिए'' यही विशुद्ध पाठ है। मंत्री अर्थात सेनापतियों ने अंगीकार नहीं किया बल्कि अंगीकार कराया था।

(2) लुकि दिया – गुप्त भाव से।

द्विल –67

उदयमाणिक्य खण्ड	उदयमाणिक्य खण्ड
राजार श्वशुर गोपीप्रसाद तुष्ट होइया।	राजा का ससुर गोपी प्रसाद तुष्ट हो कर।
उदयमाणिक्य नाम धरे प्रकाशिया।।	उदयमाणिक्य नाम अपना किया उजागर।।
राजार बाड़ीते गिया सिहांसने बसे।	राजा के घर जाकर बैठा सिहांसन पर।
ताहार कन्याय ताके गालि दिते आइसे।।	उनकी कन्या ने आकर दी गालियां उसे।।
राजवंश नाश कइले अति पापमति।	राजवंश का नाश किया तुम अति पापमति।
क्षुरधार नरकेते तोमार बसति।।	घोर नरक में अब होगी तुम्हारी अधोगति।।
वृद्ध काले कलंक नरके बास कैइला।	वृद्ध काल तुम हुए कुल के नाशी।
नृप बध कोरि तुमि पातकी होइला।।	नृपवध कर तुम हुए पातकी।।
एई मते गालि ताके बलिलेक यतो।	इस तरह गालियां दी थी जितनी।
पुस्तक बाड़्ये देखी ना लिखिलो ततो।।	ग्रथं कलेवर वृद्धि डर से रूकी लेखनी।।
अष्टम बत्सर आमि जाइबो राज संगे।	अष्टम वर्ष की मैं जाउंगी राजा संग।
निर्वंश होइवे तुमि देखो लोके रंगे।।	निर्वंश होगे तुम, देखेंगे लोग तुम्हारा रंग।
ताहा शुनि उदयमाणिक्य क्रोध होइलो।	यह सुन उदयमाणिक्य को हुआ बड़ा क्रोध।।
सहगामी जाइते कन्या धरिया राखिलो।।(2)	सहगामी न होने दिया रखा उसे रोक(2)।
महल द्वारेते राजा मरा पड़ियाछे।	महल द्वार पर मृत राजा हैं पड़े हुए।
धूलाय धूसर राजा जेनो शुइयाछे।।	धूल सने राजा जैसे हों नींद में सोए।।
राज आज्ञा मृत राजा चारि पाइके निलो।	राजाज्ञा से मृतराजा को उठाए सिपाही चार।
विजयमाणिक्य निकट अनंत दहिलो।।	विजयमाणिक्य के पास किया दाह संस्कार।।
अनंतमाणिक्य–रानी जया महादेवी।	अनंतमाणिक्य की रानी जया महादेवी।
कहिते लागिलो पुनः मने उष्मा भाबि।।	कहने लगी पुनः मन में उष्मा हावी।।
राजा संगे जाइबारे ना दिला पापिष्ठ।	राजा साथ जाने नहीं दिया पापिष्ठ।
अनंतमाणिक्य बधि तुमि होइला तुष्ट।।	अनंतमाणिक्य वध कर तुम हो गए तुष्ट।।
स्वामी मारि राज्य निला स्त्री मात्र सार(3)।	स्वामी हत्या कर राज्य लिया, उसकी मैं स्त्री मात्र।(3)
ए बोलिया रानी जाय पाटे उठिबार।।	यह कह रानी गई बैठने सिहांसर पर।।

---

(2) कन्या को सहगामिनी होने नहीं दिया –उसे रोक रखा।

(3) महारानी जया महादेवी ने पिता से कहा, ''तुमने मेरे स्वामी की हत्या करके राज्य लिया है। स्त्री मात्र रह गई हूं। इसे भी ग्रहण करो'' यह कहकर क्रोध से पिता के साथ सिंहासन पर बैठने के लिए गई।''

द्विल –68

राम नाम लोइया राजा पाट हने लामे।	राम नाम लेकर उतारा सिंहासन।।
सिंहासन तुलि निलो चन्द्रपुर ग्रामे।।	सिंहासन ले गया चन्द्रपुर ग्राम।।
राजा बले तोमा स्वामी पाटे तुमि थाको।	राजा ने कहा तुम्हारे स्वामी के सिंहासन पर रहो तुम।
चन्द्रपुर ग्रामे आमि पाट करिबेक।।	मैं सिहांसन पर बैठुंगा चन्द्रपुर ग्राम।।
उदयमाणिक्य नामे होइलो नरपति।	उदयमाणिक्य नाम से वह हुआ नरपति।
राजवंश मारिया से करिलो अख्याति।।	राजवंश की हत्या कर उसने किया अख्याति।
रांगामाटि नाम राज्य पूर्वाबधि छिलो।	रांगामाटी नाम इसका पहले से मशहूर।।
उदयमाणिक्याबधि उदयपुर होइलो।	अब उदयमाणिक्य के नाम से हुआ उदयपुर।।
बहुल करिया यत्न एक मठ दिलो।	बहुत यत्न करके बनाया एक मठ।
चन्द्र गोपीनाथ नाम श्रीमूर्ती स्थापिलो।।	चन्द्र गोपीनाम नाम से मूर्ति किया स्थापित।।
उदयमाणिक्य पुरी चन्द्रपुर ग्राम।	उदयमाणिक्य पुरी चन्द्रपुर ग्राम।
ताते दीधी दिलो राजा चन्द्रसागर नाम(4)।।	वहां खनाया सरोवर 'चन्द्रसागर'(4) नाम।।
दुई श चल्लिस नारी महले ताहार।	दो सौ चालीस नारी रहती थी महल पर।
योग्यायोग्य तदन्तर ना करे विचार।।	योग्यायोग्य का उसने कभी न किया विचार।।
गृहस्थेर कन्या ताके आने बलात्कारे।	गृहस्थ की कन्याओं को ले आता बलपूर्वक।
भुगिया अन्येरे देय मने धरे जारे।।	भोग कर दूसरे को देता जिसे मनचाहा उसको।।
सेई सब नारी कोतो युवती होइलो।	वे सभी हुई युवती एक समय।
उदयमाणिक्य पुत्रे सतीत्व ना राखिलो।।	उदयमाणिक्य पुत्रों ने किया सतीत्व का क्षय।।
अरिभीमेर पुत्र गरूड़ध्वज छिलो।	अरिभीम का पुत्र था गरूड़ ध्वज नाम।
सेई सब स्त्री संगे व्यभिचार कोइलो।।	किया व्यभिचार उन स्त्रियों के संग।।
सेई सब स्त्री रक्षक जतो सेनागण।	उन सभी स्त्रियों के ये रक्षक सेनागण।
भयातुर होइया करे राजाय निवेदन।।	भयातुर होकर किया राजा से निवेदन।।
उदयमाणिक्य राजा अति उग्रमति।	उदयमाणिक्य राजा था अति उग्र मति।
कर पद नाशा कर्ण काटे शीघ्रगति।	कर, पद, नासा, कर्ण काटे शीघ्र गति।।
लोकेरे बान्धिया राखि कुकुरे खावयाये।	कुत्तों को खिलाता लोगों को बांध कर।
हस्ती दिया बधे कतो स्व हस्ते खाड़ाये।।	हाथी से पिसवाता सामने खड़ा होकर।।
अल्प अपराधे प्राणी बधे से दुरन्त।	अल्प अपराध प्राणी हत्या में दुर्दांत।
प्रति संक्रमणे से जे होय मतिमंत।।	हर संक्रमण से हो जाता मतिमन्द।।

(4) उदयपुर में चन्द्रपुर गांव में अब भी 'चन्द्रसागर' सरोवर हैं। यह सरोवर लम्बाई में 505 गज और चौड़ाई में 261 गज है। इसके गर्भ में चार द्रोण और चार कानी भूमि लगी थी।



महाराज उदयमाणिक्य का भग्न प्रासाद
चन्द्रपुर – उदयपुर

द्विल –69

ग्राम्य शूकर खाये कुत्सित व्यवहार।	ग्राम्य शूकर खाता कुत्सित व्यवहार।
सेविते ना पारे सबे बड़ो दुराचार(1)।।	सेवा न करे कभी, था बड़ा दुराचार।।(1)
ए सब भाबिया रक्षक मने भय पाय।	मन में भय पाते रक्षक यह सोचकर।
गरूड़ ध्वज पलाइया पिता स्थाने जाय।।	गया पिता के पास गरूड़ध्वज भागकर।।
गौड़ सैन्य संगे तार बहु छिलो रण।	गौड़ सैन्य साथ किया था बहुरण।
गरूड़ ध्वज ख्याति तार होइलो तखन।।	गरूड़ध्वज ख्याति हुई उस क्षण।।
अमरमारिणक्य राजा पुनः जिज्ञासिलो।	अमरमाणिक्य राजा ने पुनः पूछ लिया।
परे उदयमाणिक्य कि कर्म करिलो।।	पश्चात उदयमाणिक्य ने क्या क्या कर्म किया।।
रणचतुर नारायण कहे शुनह राजन।	रणचतुर नारायण ने कहा सुनो हे राजन।
निर्बंश होइलो उदयमाण्क्यि येमन।।	निर्वंश हुआ उदयमाणिक्य कैसे किस छल।।
गौड़ेश्वरे शुने विजयमाणिक्य मरण।	गौड़ेश्वर ने सुना विजयमाणिक्य मरण।
चौद्द श चौरानब्बई शके उदय राजन।।	चौदह सौ चौरानबे शक में उदय राजन।।
राजबंश नाहि केह अन्य होइलो राजा।	राजवंश नहीं रहा हुआ और कोई राजा।
चाटिग्रामे पाठाइलो सैन्य महातेजा।।	चटगांव में भेजा सैन्य महातेजा।।
डरा नाम(2) पथ होइया गौड़ सेन्या जाइते।	डरा नाम(2) पथ से चली गौड़ सैन्य।
रणागण नारायण पाठाइलो त्वरिते।।	शीध्र भेजा रणागण नारायण।।
राज भगिनीपति रणागण नारायण।	राजा भगिनीपति रणागण नारायण।
सेनापति करे ताके सैन्येर रक्षण।।	सेनापति ने किया उसे सैन्य के रक्षण।।
बायान्न हाजार सैन्य तार संगे दिलो।	बावन हजार सेना उसके साथ दिया।
तीन हाजार सेनापति तार संगे छिलो।	तीन हजार सेनापति उसके साथ दिया।।
चन्द्रदर्प नाम चन्द्र सिंह नारायण।	चन्द्रदर्प नाम चन्द्र सिंह नारायण।
उड़िया नारायण छिलो अरि भीम तखन।।	उड़िया नारायण था अरिभीम उस क्षण।।
आगुयान नारायण आर गज भीम।	आगुयान नारायण और गजभीम।
चलिलो ए सब सैन्य पराक्रमे सीम।।	चली ये सारी सेना पराक्रम में असीम।।

---

(1) दुर्वृत राजा की सेवा करता सेवक सदा भयभीत रहता है। शास्त्रकारों ने भी यही कहा है। मत्स्य पुराण में

शौन्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रित्त चेतसः।
जना विरागमायान्ति सदा दुःसेव्य भावतः।।

मत्स्य पुराण 220 अध्याय 26 –27 श्लोकार्द्ध।

(2) पाठांतर –''दांड़रार पथ दिया गौड़ सैन्य जाइते।'' दांड़रार के पथ से होकर गौड़ सेना को जाते देखा गया''। दांड़रार शब्द को विकृत कर के 'डड़ा नाम' किया गया है। ''डरा'' नाम की कोई जगह का नाम था, ऐसा समझ में नहीं आता।

द्विल –70

खण्डले त गिया तारा गड़ करि रोइलो।	खण्डल पहुंच कर एक गढ़ रचा रहे।
पाठान आइसे बलि साबहिते छिलो।।	पठान आए हैं जान सचेत सभी थे।।
घाटलार पथ दिया पाठान गमन।	घाटला के पथ से पठानों का गमन।
चाटिग्राम जाइबो हेनो बुझिया लक्षण।।	चटगांव जाएंगे ऐसा सोचकर लक्षण।।
हेन युक्ति सबे करे रणागण बुड़ा।	ऐसी युक्ति किए रणागण बूढ़ा।
चट्टलेर पथे राखे सैन्य हस्ती घोड़ा।।	चटगांव की राह पर रखे हाथी और घोड़ा।।
पूर्व काले रणागणे जिनिया पाठान।	पहले रणागण ने जीता था पठान।
सेई हेतु बुड़ियार बड़हि गुमान(3)।।	इस लिए बूढ़े के मन में था बड़ा गुमान।।(3)
मारिबो पाठान सैन्य कुकुरेर प्राय।	कुत्ते की मौत मारूंगा पठान सेना को।
अहंकारे रणागण रात्रे युद्धे जाय।।	अहंकार वश रात में रणागण गए युद्ध को।
श्रृगाल सकले चारिदिगे डाक(4) छाड़े।	सियार लगे बोलने रात को चारों ओर।(4)
गृधिनीये बृक्षे बोसि पथे पाखा झाड़े।।	गीधनी बैठी डाल पर पंखो को रही झकझोर।
आकाशे त उल्कापात(5) साचान भ्रमे माथे।	आकाश में तो उल्कापात(5) बाज उड़े सिर पर।
एईरूप अमंगल देखिलेक पथे।।	इस तरह अमंगल देखा सबने चलते पथ पर।।

---

(3) गुमान –अहंकार।

(4) सियार के बोलने के बहुत सी शुभ अशुभ बातें हमारे शास्त्रों में मिलती हैं। यहां केवल एक उदाहरण हम दे रहे हैं :–

सर्वदिक्ष्व शुभादीप्ता विशेषेणान्हय शोभना।।
पुरे सैन्येऽपशैव्या च कष्टा सुर्योमुखी शिवा।। बृहत संहिता 89 अध्याय 4 श्लोक

इस वाक्य में सैन्य विषयक अशुभ संकेत की बात कही गई है। सियार के दीप्तस्वर को अमंगल जनक कहा गया है। दीप्तस्वर किसे कहते हैं इसे भी शास्त्रकार ने बताया है –

''श्वभि शृगालाः सदृशाः फलेन विशेष एषां शिशिरे मदाप्तिः।
हू हूरूतान्ते परतश्च टा टा पूर्णः स्वरोऽर्न्यकथिताः प्रदीप्ताः।।
लोमाशिकायाः खलु कक्क शब्दः पूर्णः स्वभाव प्रभवः स तस्याः।
येऽन्येस्वरान्ते प्रकृतेरपेताः सर्वे च दीप्ता इति सम्प्रदिष्टाः।।
पूर्वोदीच्योः शिवा शन्ता शान्ता सर्वत्र पूजिता।
धूमिताभिमुखी हन्ती स्वर दीप्ता दिगीश्वरान्''।।

बृहत संहिता 90 अध्याय 1–3 श्लोक

(5) उल्कापात के बारे में शास्त्रों में बहुत सी बातें है। उनमें से एक मत है –

''अम्बरमध्याद्वह्न निपतन्त्यो राजराष्ट्र नाशाय।
बंभ्रमती गगनोपरि बिभ्रममाख्याति लोकस्य।।
संस्पृती चन्द्रार्को तद्विसृभावा स भूप्रकम्पा च।
परचक्रागमनृपवध दुर्भिक्षा वृष्टि भय जननी'' आदि।

बृहत संहिता 33 अध्याय 11–12 श्लोक।

द्विल –70

2nd Leher-Page-70

पृष्ठ संख्या – 70

राजमाला द्वितीय लहर



कर्णफुली बांस का अस्थाई सेनानिवास

द्विल –71

सेनापति सबे बले ना हय उचित।	सेनापति सभी बोले कुछ न करना है उचित।
पृष्ठे राखिया शत्रु रण अविहित(6)।।	पीछे रखकर शत्रु को मरण है निश्चित(6)।।
एमत कोहिलो सब सेनापतिगण।	ऐसा कहा उस समय सभी सेनापतियों ने।
सेई काले त्रिपुर गड़े पाठान आगमन।।	उसी समय त्रिपुर गढ़ में प्रवेश किया पठानों ने।।
गड़ लोइलो पाठाने त्रिपुर होइलो दूर।	गढ़ जीता पठानों ने त्रिपुर हुए दूर।
रणागण नारायणेर गर्व होइलो चूर।।	रणागण नारायण का गर्व हुआ चूर।।
भंग दिलो त्रिपुर सैन्य आपना बांचाय।	भागी त्रिपुर सेना स्वयम् को बचाने।।
हस्तिनी शोयार बृद्ध रणागण पलाय।।	हस्तिनी पर बैठ भगा वृद्ध रणागण।
दूरेते थाकिया बले पाठान सकल।	बोलती थी पठान सेना दूर खड़ी होकर।।
पृष्ठ भंग दिया जाय त्रिपुरार बल।।	भाग रही त्रिपुर सेना पीठ दिखाकर।
हर्षित पाठान सैन्य पाछे पाछे जाय।	हर्षित पठान सेना पीछे पीछे दौड़ती।।
त्रिपुरार सैन्य जतो पाठाने खेदाय।।	त्रिपुरा की सेना को वह रही खदेड़ती।
महा योद्धा बलबान त्रिपुरार सेना।	महायोद्धा बलवान थे त्रिपुरा सेनानी।।
पाठान त्रिपुर युद्धे पड़े बहु जना।।	पठान त्रिपुर युद्ध में हुई अवर्जनीय हानि।
पंच सहस्र पाठान पड़िलो सेई रणे।	पांच हजार पठान खेत रहे इस रण में।।
चल्लिस हाजार पड़े त्रिपुरार गणे।।	चालीस हजार त्रिपुरा मरे भयावह समरागंण में।।
पदाति धरिया अन्य पदातिके हाने(7)।	पदातिक को पकड़ अन्य पदातिक को मारें(3)।
एमत विक्रमी योद्धा सब छिलो रणे।।	ऐसे योद्धा मरे थे सभी रण में।।
रणे भंग त्रिपुर सेना राज्येत तत्पर।	रण भंग कर त्रिपुर सेना राज्य जाने को तत्पर।
चट्टलेर गड़े गेल पाठान सत्वर।।	चटगांव गढ़ गए सभी पठान सत्वर।।
गौड़ेश्वरे शुनिलेक एसब बृत्तान्त।	गौड़ेश्वर ने सुना यह सब वृतांत।
हरषिते बहु सैन्य पाठाय सामंत।।	हर्षित हो भारी सेना भेजी पठान सामंत के साथ।।
पीरोज खाँ आन्नि आर जामाल खाँ पन्नि।	पीरोज खाँ आन्नी तथा जामाल खाँ पन्नि।
चट्टले पाठाइलो गौड़े तारा योद्धा जानि।।	चटगांव भेजा गौड़ ने योद्धा इन्हे जानकर।।
द्वादश बांगला दिलो ताहार सहित।	द्वादश बंगला को भेजा उनके साथ।
मेहारकुल गड़े युद्ध हये विपरीत।।	मेहारकुल गढ़ का युद्ध कुछ हुआ विपरीत।।
भालिंग फा नामेते उड़िया नारायण।	भालिंग फा नाम के थे उड़िया नारायण।
कामानेर गोलाघाते ताहार मरण।।	कमान के गोला से हुई उनकी मरण।।

---

(6) पाठान्तर सेनापति सबे बोले ना हये उचित।
पृष्ठे शत्रुकरि मारण अबिहित।।

(7) पदातिके हाने – मनुष्य को पकड़ कर उनके द्वारा आघात करना।

द्विल –72

तार परे सेई युद्धे तुमि सेनापति	उसके बाद इस युद्ध तुम हो सेनसपति
तुमि परे अरि भीम पाठाय नृपति।	उसके बाद अरिभीम भेजा युद्ध में नृपति ने।
सेई युद्धे तथाते करिला बहु दिने।	यह युद्ध वहां किया बहुत दिन।।
पंच बत्सर युद्ध छिलो जामाल पन्नि सने।	पांच साल युद्ध चला जामाल पन्नि संग।
चौद्द श आटानम्बइ शकेते तखन।	चौदह सौ अठानबे शक उस दिन।
पारार गुटिका राजा करिलो भक्षण।।	पारे की गुटिका का राजा ने किया भक्षण।।
स्त्री लोभे(8) गुटिका राजा भक्षे अकस्मात्।	स्त्रीलोभ(8) में गुटिका खाया राजा ने अकस्मात।
अंडकोष फाटि राजा मरिलो पश्चात।।	अंडकोष फूटा राजा मरा पश्चात।।
पंचबत्सर राजत्व करिया शासन।	पांच सालों तक किया राज्य को शासन।
एई मते मरिलो उदयमाणिक्य राजन।।	इस तरह मर गया उदयमाणिक्य राजन।।
सेई काले अंधकार दिबा ज्ञान हय।	उस समय दिवाभाग में अंधकार दर्शन।
रात्रि हेन ज्ञान दिबा त्रिपुर लोके कय(9)।	रात जैसा ज्ञान दिया कहते सभी जन(9)।।
सेइ बत्सरेते राज्ये होइलो महामारी।	उसी साल राज्य में हुई महामारी।
अस्थि पूर्ण होइलो सब देखि सारि सारि।।	अस्थि पूर्ण हुआ सब चारों ओर सारी सारी।।
अन्न कष्टे प्राण गेलो बहुतर नर।	अन्न कष्ट से प्राण त्यागे बहु नर।
तार पर सने शस्य होइलो बहुतर।।	अगले वर्ष फसल हुई बहुतर।।
———	———
जयमाणिक्य खण्ड	जयमाणिक्य खण्ड
उदयमाणिक्य पुत्र लोकतर फा परे।	उदयमाणिक्य पुत्र लोकतर फा नाम।
जयमाणिक्य राजा नाम धरे अभ्यन्तरे।।	जयमाणिक्य राजा नाम किया धारण।।
नृपतिर पिसा नाम रणागणनारायण।	नृपति के फूफा, नाम रणागण नारायण।
गौड़ युद्ध होइते तोमा आनाय सेई क्षण।।	गौड़ युद्ध से तुम्हे बुला लाया उसी क्षण।।
तोमार जे राज योग आछिलो कारण।	तुम्हारा राज योग था मूलकारण।
रणागण युद्धे तुमि बधिछ तखन।।	रणागण का युद्ध में तुमने किया वध।।

....

(8) उदयमाणिक्य बहुत कामुक थे। बाजीकरण के लिए पारद भक्षण कर वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

(9) दिवा भाग में अधंकार दर्शन कुलक्षण माना जाता है। शास्त्र में है

"रजसा वाथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः।
आदित्य चन्द्र ताराश्च विवर्णा भय बृद्धये।।
मत्स्य पुराण 238 अ, 2सरा श्लोक

द्विल –73

ए कथा शुनिया अमरमाणिक्य राजन।	यह बात सुन अमरमाणिक्य राजन।
कहिते लागिलो राजा ताहार कारण।	कहने लगे राजा तब उसका कारण।।
आमि किछु नाहि जानि कहिलो तोमाते।	मैं कुछ नहीं जानता कह दिया तुम्हे।
रणागणे चक्र करे आमाके बधिते।।	रणागण ने कुचक्र किया मारने को मुझे।।
मेहारकुलेर गड़ छाड़िछि तत्पर।	मेहार कुल का गढ़ छोड दिया तत्पर।
कलमि गड़े सैन्य समे छिलाम तदन्तर।	कलमी गढ़ आया सेना साथ तदन्तर।
राजार आदेश पाइया आसि राजधानी।।	राजा का आदेश पाकर आया राजधानी।।
रणागणे कुमंत्रणा करिलो तखनि।	रणागण ने कुमंत्रणा करने की ठानी।
हरिवंश शालग्राम परशि दुई जन।	हरिवंश शालग्राम स्पर्श किया दोनो नें।।
रणागणे आमा सने शपथ तखन।।	रणागण ने मेरे साथ शपथ किया मानो।।
रणागण नारायण नृपतिर पिशा।	रणागण नारायण नृपति का फूफा।
जयमाणिक्य नाम धरे सबे मात्र मिछा।।	जयमाणिक्य नाम धारण करके मिथ्या।।
राजत्वेर सुख भोग रणागणे करे।	राजत्व का सुख रणागण सदा थे करते।
तार मते करे कार्य जेबा मने धरे।।	अपने मन की जैसी इच्छा से वे करते।।
सैन्य सेनापति सब ताहार योगान।	सैन्य सेनापति सब उन्हीं के सहारे।
चतुर्दोल शोयार चले बड़ई गुमान।।(1)	चतुर्दोल चढ़ते ये रहते गुमान भरे।।(1)
अग्र पश्चात ना जानिया कुकर्म सदाय।	अग्रपश्चात सोचे बिना कुकर्म सदा वे करते।
तुला पुरूष करे से जे राजा होइते चाय।।	तुला पुरूषदान करके नृप सम बनना चाहते।।
एक दीधि विजयमाणिक्य खने अर्द्धेक।	एक तालाब विजयमाणिक्य ने खनाया आधा।
बकचर खनि राजा स्वर्गेते गेलेक।।	इसके बाद विजयमाणिक्य गए परलोक।।
रणागणे परे ताके खनाये कतेक।	रणागण ने पश्चात खनाया बाकी सब।
उत्सर्गिया बूड़ादीघि(2) नाम राखिलेक।।	उत्सर्ग किया, बूड़ा दीघि(2) नाम रखा तब।।
राजा होइते रणागणेर इच्छा अतिशय।	राजा होने की इच्छा रणागण की अति।
तार पत्नी माना करे एई मात्र भय।।	भय अपनी पत्नी का, जो सदा उन्हे रोकती।।
आर नारी संग्रह करिलो रणागण।	दूसरी पत्नी लाया रणागण।
से नारी पठये पुस्तक शुनिया पागल।।	जान इसे पागल वह सुनाती धर्मग्रंथ।।

---

(1) गुमान –अहंकार

(2) यह सरोवर उदयपुर में त्रिपुरा सुन्दरी देवी के मन्दिर के उत्तर की ओर स्थित है। इसकी लम्बाई 550 गज और चौड़ाई 200 गज है। यह बुड़ार दीघि अर्थात बुढ़े का तालाब के नाम से ख्यात है। रणागण के प्राचीनत्व के कारण बुड़ा अर्थात बूढ़ा कहा जाता था। कहा गया है :–

''पूर्वकाले रणागण जिनिया पाठान।
सेई हेतु बुड़ियार बड़हि गुमान।।

अर्थात पहले एक समय रणागण ने पठानों को जीता था और तभी से इस बूढ़े को अपने ऊपर बड़ा गुमान था।

द्विल –74

पांचाली पठये स्त्रीये अर्थ करे आपन।	धर्मग्रंथ सुनाती और अर्थ करती अपने मन।
दुई प्रहर राजा होइले बसे इन्द्रासन।।	दो प्रहर राजा होने पर मिलता है इन्द्रासन।।
एमत शुनिया बूड़ा लोभ होइलो ताय।	इस तरह सुन बूढ़े का लोभी हुआ मन।
आमा मारि रणागण राजा होइते चाय।।	मुझे मार रणागण होना चाहता राजन।।
आमा डाके रणागण भोजन करिते।	मुझे बुलाया रणागण ने, भोजन वहां करने।
मद्य पान कराइया चाहिलो मारिते।।	मद्यपान कराकर चाहा मुझे मारने।।
ताहा ना जानिया आमि गेलाम तखने।	यह सब जाने बिना मैं गया वंहा तत्क्षण।
पान बटु छेदि आमा देखाय अन्य जने(1)।।	पानपात्र में छेद कर इशारा किया एक जन(1)।।
उदरेत ब्याम होइछे फाकि दिलो ताके।	उदर पीडा का बहाना कर धोखा उसे दिया।
बाह्य भूमि जाइबार इच्छा होइलो मोके।।	पाखाना उल्टी का बहाना बना लिया।।
रणागणे कहे तार बाह्य स्थाने जाइते।	रणागण ने इशारा किया पखाने का स्थान।
आमि कहि न जाइब सेई त स्थानेते।।	मैंने कहा, नहीं जाना मुझे वहां इस क्षण।।
सेई स्थान हते आमि चलिलो त्वरित।	वहां से मैं चला त्वरित तीव्र गति घर।
आमा अश्व तार द्वारे ना देखि बिदित।।	नहीं देखा अपना अश्व इसके द्वार उधर।।
एक कायेस्थेर घोड़ा सेई स्थाने छिलो।	एक कायस्थ का अश्व खड़ा था वंहा पर।
ताहाते चड़िते चाहि से जन ना दिलो।।	चढ़ना चाहा, नहीं दिया उसने अनुनय पर।।
ताहा हते अश्व काड़ि लोइलाम बले।	उससे छीन लिया मैंने अपने बल से।
गृहे आसि इष्ट मित्र डाकिछि सकले।।	आकर गृह, मंत्रणा किया इष्टमित्र सभी से।।
हस्ती घोड़ा साजाइया सेना लोकगण।	हस्ती घोड़ो और सेना से सजकर
रणागण संगे युद्ध करिते कारण।।	रणागण से युद्ध करने पर हो गए तत्पर।।
राज पक्षे रणागण युद्धे साजियाछे।	राजपक्ष से रणागण सजा युद्ध के हित।
छय छय हाथ वस्त्र सेना प्रति दिछे।।	छह हाथ वस्त्र बांटा प्रति सैनिक ।।
आमाके पाइले से जे गेलो फांसी दिते।	मुझे पाने पर वह जाएगा फांसी देने।
रणागण साजि रहे राजार द्वारेते।।	रणागण तैनात रहा राजद्वार के सामने।।
आमा पुत्र तारा सब ससैन्ये साजिया।	मेरे पुत्रादि ससैन्य सब सजधज कर।
अश्वारोहे शीध्र गति आसिलो चलिया।।	अश्व चढ़ शीध्र गति खड़े हुए आकर।।
चौहाटिया ग्रामें जाइते गेलो दिवाकर।	चौहाटिया गॉव में चला गया दिवाकर।
तार सैन्य आमा पुत्रे काटिलो बिस्तर।।	उसकी सेना को मेरे पुत्र ने काट डाला वहीं पर।

(1) अमर देव को वध करने के निमित्त षड्यंत्र हो रहा है, इस आशय को समझाने के लिए एक व्यक्ति ने पान के बटुए में छेद करके इशारे से समझा दिया कि तुम्हे भी इसी तरह छेद दिया जाएगा।

द्विल –75

चौहाटा आमार गड़ नदीर सहित।	चौहाटा मेरा गढ़ था नदी सहित।
रणागण गड़ कचुया छड़ाते बिहित।	रणागण का गढ़ था छड़ा कचुया के।।
थुनाई लामपाड़ा पथे तार सैन्य छिलो।	थुनाई लामपाड़ा के बीच थी उसकी सैन्य।
सेई क्षणे आमा बुद्धि त्वरिते जन्मिलो।।	मेरे मन में एक बुद्धि उपजी उसी क्षण तुरन्त।।
रणागण भाई समरजित नारायण।	रणागण का भाई वहां था समरजित नारायण।
शीध्र एक दूत पाठाई ताहार सदन।।	शीध्र एक दूत भेजा मैंने उसके सदन।।
रणागण नामे एक पत्र लिखाइया।	रणागण के नाम से एक पत्र लिखवाया।
समरजित निकट पत्र दिलाम पाठाइया।।	समरजित के पास उसको तुरंत भिजवाया।।
भाईर पत्र पाइया पठये समरजित।	भाई का पाकर पत्र पढ़ता रहा समरजित।
रणागण भाईयेर पत्र जानिलो निश्चित।।	रणागण भाई का पत्र है यह जाना निश्चित।।
पत्र पाइया समरजित प्रणाम करिलो(1)।	पत्र पाकर प्रणाम किया समरजित(1)।
आमा दूते तखन तार मस्तक छेदिलो।	मेरा दूत ने उस क्षण मस्तक दिया काट।।
परे रणागण दूत समर निकट।	पश्चात रणागण दूत आया समरजित के पास।
समरेर बधे दूते बुझिल प्रकट(2)।।	समर के वध को दूत से समझा स्पष्ट(2)।।
गड़े थाकि रणागणे बले बारे बारे।	गढ़ में रहकर रणागण कहता था बार बार।
समरजित भाई आसे मारिबा समरे।।	समरजित भाई आकर देगा सब को मार।।
सेई क्षणे समर मुंड गड़ेते फेलिलो।	उसी क्षण समर मुण्ड गढ़ में आ गिरा।
भाईयेर मस्तक देखि मने भय पाइलो।।	भाई की मृत्यु देख कर वह भीतर ही भीतर डरा।।
गड़ छाड़ि रणागण भंग दिया जाय।	गढ़ छोड़ रणागण रण भंग कर लगा जाने।
खाटि पुष्करिणीर(3) जले रणागण पलाय।।	गढ़हे(3) से होकर छिपकर लगा भागने।।

---

(1) ज्येष्ठ भ्राता का पत्र समझ अमरदेव का पत्र हाथ में लेकर समरजित ने –जैसे नतमस्तक किया, दूत ने तुरंत उसका मस्तक धड़ से अलग कर दिया था।

पत्र ग्रहण करने का नियम यह है – राजपत्रं नयेनन्मुद्धिण ब्राह्मणानां तथैवच।
यति सन्यासिनांचैव स्वामिनश्च तथैवच।।
सादरे नैव यत्नेन तथा मुर्द्धानि धारयेत्।
भार्या पुत्रस्य मित्रस्य ह्रदये धारयेत् सुधीः।
प्रवीणानां कन्ठदेशे पत्र धारणमीरितम्।।
एतेषांचैव पत्राणामुक्तं धारण लक्षणम्।
पत्रकौमुदी

(2) प्रकट –(यहां पर) स्पष्ट अर्थ होगा।

(3) खाटि पुष्करिणी –(बंगला में) मछलियों को एक जगह इकठ्ठा करने के लिए जो गर्त्त/ गढ़हा किया जाएगा उसे खाटि कहते थे।

द्विल –76

माथाय पातिल दिया रणागण जले।	सिर पर हांड़ि रखकर रणागण पानी में।
तारपुत्र हिरापुर ग्रामे धरा गेले।।	उसका पुत्र पकड़ा गया हीरापुर गॉव में।।
ढँकि घरे लुकाइछे बान्धिया आनिलो।।	ढेंकी घर में छिपा था बान्ध कर उसे लाया।
आमार निकटे तार मस्तक छेदिलो।।	मेरे निकट ही उसका मस्तक छेदन हुआ।।
तिन दिन गड़ मध्ये छिल रणागणे।	तीन दिन गढ़े में छिपा था रणागण।
दुई दिन लुकाइलो पुष्करिणीर जले।।	तालाब में छिपा रहा और दो दिन।।
जले थाकि कम्पमान शरीर ताहार।	जल में रहकर उसका शरीर हुआ कम्पमान
कुले थाकि देखि लोके करिलो प्रचार।।	किया प्रचार देख उसे खड़ा एक जन।।
सेई जने कहे गिया आमा दूत स्थाने।	कहा उसने मेरे दूत के यहां।
जल मध्ये मनुष्य एक देखिल एखाने।।	पानी मध्य मनुष्य एक खड़ा है वहां।।
आमार निकटे दूते तखने जानाइलो।	मेरे दूत ने तभी आकर मुझे बताया।
ससैन्ये साजिया तारे धरिबारे गेलो।।	ससैन्य जाकर उसे पकड़ लाया।।
जल हते धरि आने आमा विद्यमान।	पानी से निकाल मेरे पास ले आया।
रणागण मस्तक काटिलाम सेई स्थान।।	रणागण का सिर उसी क्षण अलग किया।।
रणागण मस्तक काटिलो जे पाइके।	रणागण का सिर जिस सिपाही ने अलग किया।।
साहस नारायण ख्याति करिलाम ताके।।	साहस नारायण नाम उसे मैने दिया।
परे आमि एई वार्त्ता राजाते कहिलो।	पश्चात मैंने यह वार्ता राजा से कहा।।
तोमा शत्रु रणागणके काटिया फेलिलो।।	तुम्हारे शत्रु रणागण को काट दिया गया।
आमा वाक्य शुनि राजा निःशब्दे रहिलो।	मेरी बातें सुन वह निःशब्द रह गया।
आमार कुटुम्ब राजा से हेतु बधिलो।।	मेरा कुटुम्ब राज्य इस हेतु वध किया।।
सैन्य समे गेलो आमि राजा प्रबोधिते।	सैन्य साथ गया मैं राजा को प्रबोधने।
कोन अपराधे आमा बन्धु बध ताते।।	किस अपराध पर मेरे बन्धु का किया वध आपने।।
आमा सैन्य देखि राजा मने भय पाय।	मेरी सेना देख राजा के मन में उपजा भय।
हस्तिनी चड़िया राजा दक्षिण दिके धाय।।	हस्तिनी चढ़कर चला दक्षिण दिशा की ओर।।
तबे बुझिलाम राजार चित्ते कुमंत्रण।	तब समझा मैं है राजा के मन में कुमंत्रण।
आमा पुत्र सब राजार पश्चाते गमन।।	मेरे पुत्रों ने किया राजा के पीछे गमन।।
कालिका देवीर जे मन्दिर सन्निहित।	कालिका देवी के मन्दिर सन्निहित।
सेई स्थाने जयमाणिक्य धरिलो त्वरित।।	वहीं पर जयमणिक्य को पकड़ा त्वरित।।
आमा ज्येष्ठ पुत्र राजबल्लभ नारायण।	मेरा ज्येष्ठ पुत्र राजबल्लभ नारायण।
नृपतिके मल्ल युद्ध शिखाइछे आपन।।	नृपति को मल्लयुद्ध सिखाते थे स्वयम्।।
राजबल्लभे त राजा बलिलो तखन।	राजबल्लभ से राजा ने कहा उस क्षण।
तुमि मल्ल विद्या गुरू राखह जीवन।।	तुम मल्ल विद्या गुरू रखो मेरा जीवन।।

त्रिल –77

राजबल्लभे कहे आमि राखिबारे नारि।	कहा राजबल्लम ने मैं नहीं रख सकता।
सैन्य सबे मारे तोमा कि करिते पारि।।	सेना तुम्हे मार रही मैं क्या कर सकता।।
राजा गले धनुर्गुण दिया लामाइलो।	राजा के गले में धनुर्गुण देकर उतारा।
सेई स्थाने जयमाणिक्य प्राणेते बधिलो।	वहीं जयमाणिक्य प्राणों से वध किया।।
अमरमाणिक्य रणचतुर नारायण।	अमरमाणिक्य रणचतुर नारायण।
दुयेते ये सब कथा छिल आलापन।।	दोनों में ये सब बातें हो रही कुछ।।
अमरमाणिक्य राजा पुनः जिज्ञासिलो।	अमरमाणिक्य राजा ने पुनः पूछ लिया।
राज ऊरसे आमा जन्म कि मते हइलो।।	राजा औरस से मेरा जन्म कैसे हुआ।।
रणचतुरे बलेन शुन महाराज।	कहा रणचतुर ने सुनो महाराज।
तोमा जन्म जेई मते बलि सभा माझ।।	तुम्हारा जन्म कैसे हुआ कहूं सभा मध्य।।
एक दिन देवमाणिक्य नौका आरोहणे।	एक दिन देवमाणिक्य ने किया नौका आरोहण।
कलुया छड़ा(1) पूर्वभागे गियाछे तखने।।	कलुया छड़ा(1) पूर्वभाग में गए तत्क्षण।।
सेई दिन आमि छिलाम नृपतिर संगे।	उस दिन मैं था नृपति के संग।
कलुया छड़ा उजाइया चले राजा रंगे।।	कलुया छड़ा छोड़ राजा चले मन में रंग।।
कलुया छड़ाते एक माचांग तथाय।।	कलुया छड़ा में मचान एक था वहां।
मुक्तकेशे तोमा माता केश जे सुखाय।	मुक्त केशी तुम्हारी मां बालों को सुखाती वहां।।
सेई काले तोमा माके देखिलो राजाय।।	उस समय तुम्हारी मां को देखा राजा ने।
सेई दिन ऋतु स्नान करे तोमा माय।	उसी दिन ऋतुस्नान किया था तुम्हारी मां ने।।
तोमा माता देखि राजा कामेते पीड़ित।	तुम्हारी माता को देख राजा हुए काम पीड़ित।
एई कार घर बलि जिज्ञासे त्वरित।।	यह किसका घर है पूछा राजा ने त्वरित।।
तथा गिया जिज्ञासिल अनुचर जन।	वहां जाकर पूछे अनुचर गण।
हाजरार घर कहे सब स्थानिगण।।	हाजरा का घर कहें सभी स्थानीय जन।।
राजार साक्षाते आसि कहे सेई जन।	राजा के सन्मुख आकर कहा उस क्षण।
हाजरार घर एई शुनह राजन।।	हाजरा का घर है सुनो हे राजन।।
फौजेर हाजरार घर चाटिग्रामे गिछे।	फौज के हाजरा का घर, चटगॉव गया।
रसांग मर्दन नारायणेर संगेते रहिछे।।	रसांग मर्दन नारायण के संग वहीं रह रहा।।
कामेते पीड़ित राजा देखिया सुन्दरी।	काम से पीड़ित राजा देख सुन्दरी।
कि मते हाजरार गृहे जाइब शीघ्र करि।।	कैसे हाजरा के घर जाएं सोच मन में भारी।।
जतेक संगेर नौका आद्ये(2) चालाइलो।	साथ की सभी नावों को आगे चलाया।(2)
गुप्तभाबे नृपति हाजरार गृहे गेलो।।	गुप्तभाव से नृपति हाजरा के गृह गया।।

(1) इसका दूसरा नाम है कचुया छड़ा।
(2) आद्ये –आगे

द्विल –78

से ऊरसे दश मासे जन्म जे तोमार।	उसी औरस से दस महीने में है जन्म तुम्हारा।
शकुंतला गर्भे जेन भरतकुमार(1)।	शकुन्तला गर्भ से जैसे भरत कुमार(1)न्यारा।।
पचंबर्ष अन्ते गृहे हाजरा आसिल।	पंचवर्ष पश्चात हाजरा घर आया।
राज ऊरसे पुत्र देखि हरिष होइल।।	राज औरस जात पुत्र देख हर्ष हुआ।।
बीर दर्पे खेला करे अति सुलक्षण।	वीरदर्प से खेलते अति सुलक्षण।
रामदास नाम तोमार आछिलो तखन।।	रामदास नाम था उस क्षण।।
देबमाणिक्य पुत्र विजयदेब राजा।	देवमाणिक्य पुत्र विजयदेव राजा।
सम्पर्केते भाई बलि डाके महातेजा।।	साथी भाई कह बुलाते महातेजा।।
षोड़श बत्सर जखन बयस तोमार।	सोलह वर्ष जब उम्र तुम्हारा।
ध्वज हस्ते बने गिछ पक्षी धरिबार।।	ध्वज हस्त बन में गया पक्षी पकडने।।
सेई अरण्य माझे अपूर्व देखिला।	इसी अरण्य में अपूर्व एक देखा।
मनुष्येर मुंडमत पिष्टक पाइला।।	मनुष्य मुंड की तरह पिष्ट्क एक देखा।।
क्षुधाते पीड़ित ताहा खाइछ तखन।	क्षुधा पीड़ित हो उसे खाया उस क्षण।
तोमार जन्मेर कथा कहिल जेमन।।	तुम्हारे जन्म की कथा कहा।।
राजवंशावली अमरमाणिक्य जिज्ञासन।	राजवंशावली अमरमाणिक्य से कथन।
रणचतुर नारायण कहे समापन।	रणचतुर नारायण ने किया समापन।।
इति अमरमाणिक्य नृपति जिज्ञासायां रणचतुर नारायण कथनं द्वितीय कान्डं समाप्तं।	इति अमरमाणिक्य नृपति की जिज्ञासा से रणचतुरनारायण कथन का द्वितीय काण्ड समाप्त

―――

(1) महाराज दुष्यंत मृग का अनुसरण करते हुए कण्व मुनि के आश्रम में उपस्थित हुए। उस समय मुनिवर तपोवन में नहीं थे। मुनि की पालिता कन्या शकुन्तला के अपूर्व रूप लावण्य पर मुग्ध होकर दुष्यंत ने उससे गांधर्व विवाह किया और नवविवाहिता पत्नी को आश्रम में रखकर राजधानी लौट आया। राजा के सहयोग से शकुन्तला गर्भवती हुई। बाद में राजा द्वारा स्वीकार न होने पर तपोवन में ही एक सर्व सुलक्षण गुणयुक्त संतान को जन्म दिया, इस महान पुत्र का नाम भरत रखा गया। इन्हीं के नामानुसार भारतवर्ष नामाकरण हुआ।

श्रीराजमाला

द्वितीय लहर की मध्य –मणि
टीका

द्विल –81

द्वितीय लहर की मध्य मणि
टीका

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते।।

ग्रंथ भाग में लिखित अनेक विषयों की विस्तृत पादटीका में नहीं दी जा सकी। आगे लिखे सभी विवरणों को अविस्मरणीय समझकर उन्हें इस टीका में सन्निविष्ट किया गया है।

राजमाला द्वितीय लहर और उसके रचयिता

राजमाला प्रथम लहर राजमाला प्रथम लहर महाराज धर्ममाणिक्य के शासन काल में पण्डित बाणेश्वर और शुक्रेश्वर द्वारा रचित हुई थी। यह बात हम पहले ही बता चुके हैं। इस लहर में महाराज दैत्य से लेकर धर्ममाणिक्य के पहले महाराज महामाणिक्य के शासन काल तक का विवरण विधिवत दिया गया है।

राजमाला द्वितीय लहर के रचयिता इसके बाद महाराज अमरमाणिक्य के शासन काल में, उनके आदेशानुसार राजमाला के द्वितीय लहर की रचना की गई। इस लहर में धर्ममाणिक्य से जयमाणिक्य तक दस राजाओं के विवरण लिपिबद्ध किए गए हैं। वृद्ध सेनापति रणचतुर नारायण इसके वक्ता व राजमाला द्वितीय लहर के रचयिता हैं

द्वितीय लहर के प्रस्तावना में लिखा गया है –

अमरमाणिक्य छिलो धर्म महाराज।	अमरमाणिक्य थे धर्म महाराज।
सिंहासन बोसिलेक मंत्रीर समाज।।	सिंहासन बैठे ले मंत्री समाज।।
सेई तो सभाते छिलो बृद्ध सेनापति।	उसी सभा में थे प्रबुद्ध सेनापति।
रण चतुर नारायण छिलो तार ख्याति।।	रण चतुर नारायण थी उनकी ख्याति।।
अमरमानिक्य राजा ताके जिज्ञासिलो।	अमरमाणिक्य राजा ने उनसे पूछा।
महामणिक्येर पोरे जतो राजा होइलो।।	महामाणिक्य के पश्चात हुए जितने राजा।।

द्विल –82

श्रेणीक्रमें कह तुमि से सब कथन।	श्रेणी क्रम से कहो तुम उनका कथन।
जे मते शासिलो राज्य प्रजार पालन।।	जिस तरह किया शासन और प्रजा पालन।।

अमरमाणिक्य धर्म महाराज थे। मंत्रियों को साथ लेकर वे राज सिहांसन पर बैठे। उस सभा में सबसे प्रतिभामान वृद्ध सेनापति रणचतुर नाराणयण भी थे। अमरमाणिक्य राजा ने उनसे पूछा कि महामाणिक्य के बाद जितने राजा हुए उनका सिलसिलेवार विवरण कहो। किस तरह उन्होने राज्य शासन और प्रजा का पालन किया।

राजा बाबू के घर में(1) जो राजमाला है उसमें और भी विशद रूप से सब कुछ लिखा गया है, देखिए।

अमरमाणिक्य नाम नृपति आछिलो।
त्रिपुर बंशेर कथा तत्पर सुनिलो।।
श्री धर्ममाणिक्य छिलो त्रिपुर संतति।
राजवंश विस्तारिछे राजमाला पुथि।।(2)
पुस्तक लिखाइछे तिनि पूर्वराजार कथा।
तार पोरे राजा सब ना होईछे गॉथा।।
अमरमाणिक्य राजा स्थिर करि मन।
जिज्ञासा उचित रणचतुर नारायण।।
एकशोतो पंच वर्ष बयस उहार। स्थिर
मति गुणबंत धैर्यता अपार।
सुनो सुनो बोलि रणचतुर नारायण।
राजबंश कथा किछु कहतो आपन।
बयसे विशिष्ट बट त्रिपुर संतति। तुमि
जान भाल पूर्व राजगण रीति।।
श्री धर्ममाणिक्याबधि जतो राजा होइलो।
जेरूपे से राजा सबे प्रजाके पालिलो।।
कोन राजा किबा कर्म कोरिलो तखन।
कहतो से सब कथा सुनिबो एखन।।
नृपतिर बचने कहेन्त सेनापति।
पूर्वेर प्रसंग बोलि सुनो महामति।।
श्री धर्ममाणिक्याबधि जतो राजा होइलो।।
अनुक्रमे सेनापति सकल कहिल।

अर्थात –अमरमाणिक्य नाम के एक राजा थे। त्रिपुर वंश की बात को उन्होने सुना था। धर्ममाणिक्य त्रिपुर संतति थे। उस राजमाला ग्रंथ में राजवंश का विस्तार से वर्णन किया गया है। पूर्व राजाओं के बारे में उन्होने लिखवाया था। इसके पश्चात होने वाले राजाओं का वर्णन नहीं लिखा गया। इसके पश्चात अमरमाणिक्य राजा ने मन स्थिर करके रणचतुर नाम के वृद्ध सेनापति से जिनकी उम्र उस समय एक सौ पांच साल की हो गई थी, जो अपार धीरज वाले तथा स्थिर मति वाले थे, से पूछा, तुम राजवंश का विस्तार से वर्णन करो। राजाओं की रीति और उसके स्वभाव को तुम अच्छी तरह जानते हो। श्री धर्ममाणिक्य तक जितने भी राजा हुए, उन्होने किस तरह राज्य शासन और प्रजा पालन किया था। किस राजा ने क्या क्या कर्म उस समय किया है। उन सभी घटनाओं का वर्णन करो। मै सब सुनना चाहता हूँ राजा की बातें सुनकर सेनापति ने कहा ''श्री धर्ममाणिक्य अवधि तक जितने राजा हुए उन सबका मैं पूर्व प्रसंग का वर्णन करता हूँ इसके अनुक्रमानुसार अर्थात सिलसिलेवार कहा''।

सेनापति ने कहा, यह बात पाई जाती है, किन्तु इस लहर के रचयिता कौन है, यह बात पाई नहीं जाती। सेनापति ने स्वयं रचना की थी यह भी राजमाला में स्पष्ट नहीं होता है। सौ साल से अधिक उम्र वाले स्थबिर, सैनिक विभाग के कर्मचारी द्वारा ग्रंथ रचित होने की संभावना भी नहीं है। रणचतुर के वर्णनानुसार निश्चय ही किसी सभा पंण्डित द्वारा राजमाला का यह अंश रचित हुआ था। उस पण्डित के नामोद्धार में कोई कार्य न होने के कारण बहुत ही दुखी हूँ

---

(1) इस घर के राजा भृगुराम राय और राजा मुकुन्दराम राय कुछ दिन पहले ही परलोक सिधारे। उनके वंशधर राजा अब भी है। ये लोग कल्याणमाणिक्य के वंशज हैं। इनकी एक शाखा ढाका में राजा की देउड़ी में भी है।

(2) यह महाराज धर्ममाणिक्य के शासन काल में रचित राजमाला की प्रथम लहर है।

द्विल –83

राजमाला द्वितीय लहर की प्राचीनत्व और अमरमाणिक्य का शासनकाल

राजमाला द्वितीय लहर की उम्र का निर्धारण करने में, महाराज अमरमाणिक्य के शासन काल का निर्णय करना आवश्यक है। राजमाला में समय को लेकर स्पष्ट युक्ति कहने पर भी मतांतर देखा जाता है। स्व. कैलाशचन्द्र सिंह महाशय ने कहा है –''1007 त्रिपुराब्द में {1597 ई सन} **(1519** शक **)** में अमरमाणिक्य सिंहासन पर बैठे थे''(1)। ''मिस्टर सेंडिस साहब **(E.F. Sandy's)** द्वारा रचित **"History of Tripura"** नामक ग्रंथ ने कैलासबाबू के मत का ही समर्थन किया है (2)। चाकला रोशनाबाद के सेटेलमेंट अफसर मि0 कामिंग साहब भी (**J G Comming (ICS)** इस मत के ही समर्थक है। रेवरेण्ड जेम्स लांग साहब **(Rev James Long)** ने अमरमाणिक्य के बारे में बहुत सारी बातें की है, किन्तु उनके सिंहासनरोहण का कालनिर्णय नहीं किया(3)। कैलास बाबू आदि ने किस सूत्र के आधार पर अमरमाणिक्य के राज्यारोहण का काल ई सन 1597ई **(1519** शक **)** निर्धारण किया है, उन्होने यह नहीं बताया। यह निर्धारण राजमाला के मत विरूद्ध है। अत एव यह समर्थन योग्य नहीं कहा जा सकता। राजमाला में है –

चौद्द श उनशत शके अमरदेब राजा।	चौदह सौ निन्यानवे शक अमरदेव राजा।
पनर श शके भुलूया आमल कोरे महातेजा।।	पंद्रह सौ शक भुलूया राजा महातेजा।।
राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 11पृ	राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 11पृ

अर्थात –1499 शक में अमरदेव राजा हुए और 1500 शक में उन्होने भुलुया राज्य पर अधिकार कर लिया।

प्राचीन राजमाला में लिखा है –

चौदद्शत उनशत शके अमरदेव होइलो।
पनरंशत पूरा बर्षे भुलुया लुटिल।

अर्थात –चौदह सौ निन्नानवे शक में अमरदेव राजा हुए और पन्द्रह सौ वर्ष में उन्होने भुलुआ को लूटा।।

राजा बाबू के घर में जो राजमाला रखी है के मतानुसार

'' चौदद्शत उनशत शके अमरदेव होइलो।
पोनरंश पूरा शके भुलुया लुटिल।''

अर्थात –चौदह सौ निन्नानवे शक में अमरदेव राजा हुए और पन्द्रह सौ शक में उन्होने भुलुआ को लूटा।।

उद्धृत लिपि में परस्पर भाषागत सामान्य परिवर्तन रहने पर भी सभी राजमालाओं में अमरमाणिक्य के राज्याभिषेक का काल 1499 शक(1577 ई सन) एक वाक्य में घोषित किया है। इस अवस्था में इस प्रामाणिक वाक्यों की उपेक्षा करके, पूर्वोक्त व्यक्तियों का मत समर्थन नहीं किया जा सकता। नीचे लिखी घटना के द्वारा भी इनका मत अमूलक कहकर स्थिरीकृत हो रहा है।

महाराज अमरमाणिक्य ने, अमर सागर के खनन कार्य के समय उनके मातहत जमीदारों दाड़ि (कुली) ग्रहण किये थे। श्रीहट्ट के अन्तर्गत तरप के जमींदार

....

(1) कैलाश बाबू की राजमाला– द्वितीय भाग, छठवा अध्याय, 68 पृ।

(2) **History of Tripura- Mohammadan period, page 18**

(3) **J.A.S.B. -Vol . XIX**

द्विल –84

द्वारा कुली प्रदान न करने पर उस जमीदार के विरूद्ध विपुल संख्या में त्रिपुर वाहिनी भेजी गई है। उस जमीदार ने आत्म रक्षा का कोई उपाय न देखकर श्रीहट्ट के मुसलमान शासक का आश्रय ग्रहण किया। मुसलमानों के साथ त्रिपुरा का भयानक युद्ध हुआ। 1504 शक में यह युद्ध हुआ था। युद्धावसान पर प्रधान सेनापति राजधर देव (अमरमाणिक्य का पुत्र) ने जिस पथ से होकर जिस तरह तब प्रत्यावर्तन किया था, उसके वर्णन के प्रसंग में राजमाला में है –

पनर श चारि शाक पौष मास शेषे।	पन्द्रह सौ चार शक पौष माह अंत।
माधेर पनर दिने फते खाँ लोइया आसे।।	माध के पन्द्रह दिन लाया फते खाँ को संग।।
राजधर चलिलो दुलाली ग्राम पथे।	राजधर चले दुलाली गाँव की राह।
इटा ग्राम होइया ऊनकोटि तीर्थे।।	इटा गाँव होकर चले तीर्थ उनकोटि की चाह।।
राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 10पृ	राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 10पृ

अर्थात –1504 शक के पौष महीने के अंत में माघ के पन्द्रह दिन फते खॉ को ले आए। इधर राजधर दुलाली गॉव से चले। इटा ग्राम होत हुए उनकोटी तीर्थ की ओर चल पड़े।''

राजा बाबू के घर में संरक्षित राजमाला में उद्धृत वाक्य के साथ भाषागत कुछ पार्थक्य रहने पर भी समय निर्धारण के बारे में दोनों ग्रंथ ही एकमत हैं। उस ग्रंथ में लिखा है –

पनरश चारि शके पौष शेषे रहिया।
माघेर पनर दिने फते खॉ के लोइया।।
राजघर नारायण दुलालीर पथे।
इटालि होइया गेलो उनकोटी तीर्थे।। आदि

अर्थात, 1504 शक में पौष के अंत तक रहकर, माघ के पन्द्रहवें दिन फते खॉ को लेकर राजधर नारायण दुलाली के पथ से इटा होकर उनकोटी तीर्थ आए।''

रेवरण्ड लांग साहब के अनुसार 1582 ई सन में यह युद्ध हुआ था।(1) 1582 ई सन और 1504 शक में कोई पार्थक्य नहीं है। अतएव लॉग साहब राजमाला के साथ एकमत है। कैलास बाबू कहते है –''संभवतः 1009 त्रिपुराब्द में यह घटना घटी थी।''(2) सेण्डिज साहब द्वारा तरप के युद्ध की बातों का उल्लेख करने पर भी,

....

(1) **Amar Manik resolved on virtuous deeds by digging tanks; he ordered all the landlords of his kingdom to send coolies for this purpose, accordingly nine Zemindars sent 7300 coolies. The Zemindar of Taraf in Sylhet refused, an army of 22,000 men was sent against him, his son was taken prisoner, put into a cage, and brought to Udaypur. The Raja, next (A.D. 1582) marched an army against the Mohammadan Commander of Sylhet whom he defeated. The order of the troops in battle resembled in figure the sacred bird *Gaduda*, the two generals in the van represented the beak, the troops on the flanks the wing, and the main army the body; during the fight both parties became fatigued when a suspension of arms took place by mutual agreement; they afterwards resumed the battle, when the Musalmans were defeated.** **J.A.S.B. -Vol . XIX**

(2) कैलाश बाबू की राजमाला –द्वितीय भाग, छठवा अध्याय, 70 पृष्ठ।

द्विल –85

इस युद्ध के समय निर्णय के बारे में चुप रहे हैं। कैलास बाबू कथित 1009 त्रिपुराब्द 1521 शक आता है। अतएव उनका यह निर्धारण विशुद्ध नहीं कहा जा सकता।

उद्धृत वाक्य द्वारा प्रतीत होता है, जिन्होंने राजा होने के पश्चात् 1504 शक (1582 ई सन) में तरप के युद्ध में विजय प्राप्त किया था, उनका अभिषेक काल 1519 शक में (1597 ई सन) में हो नहीं सकता। अतएव अमरमाणिक्य ने पूर्व कथित 1499 शक अर्थात 1577 ई सन में राज्य लाभ किया था। इसे ही प्रकृत निर्धारण कहकर अतर्कित रूप से स्वीकार किया जा सकता है। इन्होंने चौदह साल तक राज्य शासन कर 1513 शक में तदनुसार 1591 ई सन में परलोक गमन किया था।

उस 1577 ई सन से 1591 ई सन के बीच किसी एक समय राजमाला की द्वितीय लहर रचित हुई थी। अतएव यह साढ़े तीन सौ साल प्राचीन ग्रंथ है

राजमाला की भाषा विषयक आलोचना इस लहर के रचयिता का नाम या परिचय नहीं मिल रहा है, यह पहले ही बताया गया है। परिचय न मिलने पर भी लेखक त्रिपुरा अथवा नोयाखाली जिला के रहने वाले थे। राजमाला की भाषा से इस तरह का अनुमान किया जा सकता है। यथा

1 सर्प पट धरियाछे सन्यासिर माथे। सर्प ने उठाया फण सन्यासी के सिर।
राजमाला द्विल ग्रंथारभ 3पृ राजमाला द्विल ग्रंथारभ 3पृ
(सन्यासी के सिर पर सांप ने फन फैलाया।)

2 माचांगेर नीचे होइते धन्यके आनिछे। मचान के नीचे से धन्य को ले आये।
राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्य खण्ड 7पृ राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्य खण्ड 7पृ
(मचान के नीचे से धन्य को ले आए।)

3 आद्ये बोासइबो ताके मान्ये मित्राधिक।। आगे बैठाउंगा उसे मान्य दे मित्राधिक सा।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 15पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 15पृ
(मित्र से भी अधिक मान्य करके उसे आगे बैठाऊंगा।)

4 दुई दुई बुन्दा दिलो पुतलार हाते। दो दो मशाल जलाकर दिया पुतलों के हाथ।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 27पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 27पृ
(दो दो मशाल पुतलों के हाथों में दिया।)

5 महावीर पराक्रम युद्धे अति भाला।। महावीर पराक्रमी और युद्ध निपुण था।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ
(महावीर पराक्रमी और युद्ध में अच्छे थे।)

6 राजा बोले यादुराय आमा साह्य करो। राजा बाले यादुराय कर दो आरोग्य मुझको।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 64पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 64पृ
(राजा ने कहा यादुराय मेरी सहायता करो।)

राजमाला रचयिता – त्रिपुरा अधिवासी इस प्रकार के और भी अनेक शब्द हैं। पट (फण) मांचाग (बांस का मंच) आद्ए –आगे, बुन्दा –(मशाल), भाला –अच्छा, साह्य (आरोग्य) इत्यादि दिए शब्द –त्रिपुरा और नोयाखाली अंचल में प्रयोग होते है। इस लिए रचयिता को त्रिपुरा या नोयाखाली का आदमी होना चाहिए। पहले श्रीहट्ट की राजधानी का परित्याग करने के पश्चात नोवाखाली के अलावा त्रिपुरा के पण्डितों का राजदरबार में अधिक प्रतिपत्ति थी। अतएव लेखक के त्रिपुरा के अधिवासी होने के संभावना ही अधिक जान पड़ती है।

राजमाला का ऐतिहासिक मूल्य राजमाला प्रथम लहर की तरह द्वितीय लहर में भी जगह जगह पर भाषा अतिरंजित और दृढ़ विश्वासमूलक है। उसको छोड़ देने पर, ऐतिहासिक उपादान की हैसियत से यह एक अमूल्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ से ऐतिहासिक तथ्य संग्रह करने में विशेष सतर्कता के अवलम्बन करने की आवश्यकता है। प्रथम लहर की तरह इस लहर में भी राजाओं की राज्य प्राप्ति, राज्यच्युति, समर–कहानी, शासन–विवरणी और राजपरिवार संसृष्ट प्रधान प्रधान घटनाएं संक्षेप में दी गई हैं। इनकी आलोचना से त्रिपुरा का प्राचीन अनेक विवरण आदि पाया जायेगा। ऐतिहासिक, साहित्यिक

द्विल –86

आदि सभी श्रेणी के लोगों को राजमाला का यह अंश फलदायक होगा, यह हमारा विश्वास है।

पहले ही कहा गया है, राजमाला की द्वितीय लहर सोलहवीं सदी की रचना है। इस समय बंगभाषा और साहित्य के क्रमोत्थान का युग था। इस लहर रचना के समकालीन एवं इसके कुछ पहले और बाद में जो सभी प्रसिद्ध, धर्मानुरागी असाधारण व्यक्तियों ने साहित्यसेवा में आत्मनियोग किया था, उनमें प्रातः स्मरणीय गोविन्ददास, ज्ञानदास और यदुनन्दनदास का नाम आदि उल्लेख योग्य है। वृन्दावनदास का चैतन्य, भागवत, लोचनदास का चैतन्य मंगल, कविराज गोस्वामी का चैतन्यचरितामृत, यदुनन्दनदास का कृष्णकर्णामृत, द्विजवंशीवदन आदि का मनसा मंगल, कविकंकण और माधवाचार्य आदि का चण्डी काव्य, काशीराम दास का महाभारत इत्यादि ग्रंथ इस युग के समुज्जवल रत्न हैं। इसके अलावा उस समय माणिक्य गांगुली, द्विज हरिराम आदि बहुत से कृति व्यक्तियों ने बंग साहित्य भण्डार में जो अतुल सम्पद दान किया हैं उसकी कोई तुलना नहीं है। उस समय का बंग काल स्रोत जो बंग साहित्य है, विशेष अनुकूल था, इसमें कोई अन्तर नहीं। इस अनुकूल स्रोत के सहारे ही राजमाला की द्वितीय लहर रचित हुई है।

———————————————————————————

पारिवारिक कथा

राजमाला में पारिवारिक कथा बहुत ही कम मिलती है। द्वितीय लहर में इसके अतिरिक्त इस विषय में जिन सभी विषयों का विवरण सन्निविष्ट हुआ है, उसका स्थूल मर्म प्रदान किया जा रहा है।

वैवाहिक विवरण

राजाओं के विवाह विषयक प्रसंग इस लहर के संसृष्ट महाराज धर्ममाणिक्य और प्रतापमाणिक्य ने कहां विवाह किया या नहीं किया, किसी ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है, इस समय उसे खोज निकालना असंभव है। प्रताप के भ्राता महाराज धन्यमाणिक्य ने प्रधान सेनापति दैत्यनारायण की कन्या से विवाह किया था। उनका नाम कमला महादेवी था। यह बात राजमाला में मिलती है –

बडो सेनापति दिलो आपनार कन्या।	बडे सेनापति ने उन्हें दी अपनी कन्या।
महारानी कमला नाम पृथिबीते धन्या।।	महारानी कमला विश्व में हुई धन्य।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8पृ

अर्थात बड़े अर्थात प्रधान सेनापति ने अपनी कन्या उन्हें सौंपी जिनका नाम था कमला महादेवी जो पृथ्वी में विख्यात हुई।

द्विल –87

श्रेणीमाला ग्रंथ में लिखा है

कमला नामेते होइलो तान महारानी
नाना स्थाने दिलो दीधि आर पुष्करिणी। इत्यादि

कमला नाम से उसकी महारानी ने नाना स्थानों पर सरोवर और सागर खनाये।

धन्यमाणिक्य के पुत्र देवमाणिक्य की दो महिषीयों में प्रधान महिषी चतुर्दश देवता के प्रधान पुरोहित चन्ताई की कन्या थी। दूसरी महिषी का परिचय इस समय नहीं मिल रहा है। देवमाणिक्य के पुत्र इन्द्रमाणिक्य एकदम बाल्यावस्था में सिंहासन पर बैठकर कुछ ही दिनों में अपने ही सेनापतियों द्वारा मार दिए गए। सभवतः उन्होने विवाह नहीं किया था। इन्द्र के सौतेले भाई विजयमाणिक्य की महिषी का नाम राजमाला में ''पूण्यवती'' लिखा है।

विजयमाणिक्य नाम होइलो नरपति।	विजयमाणिक्य नाम से नृपति हुआ।
ताहान महादेवी नाम छिलो पुण्यवति।।	उनकी महादेवी का नाम पुण्यवती था।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ

इस पूण्यवती का नाम विशुद्ध है, नहीं लगता। संभवतः यह महादेवी का विशेषण है। यह धारणा गलत नहीं है।

राजमाला में अन्य एक जगह पर लिखा है –

हिरापुरे लक्ष्मी रानी बनवास सेवी।	हीरापुर मे लक्ष्मी रानी वनवास में रहीं।
परे राजा विभा करे आर महादेवी।।	पश्चात राजा ने दूसरी महादेवी से विवाह किया।।
प्रधानस्थ पात्र मित्र राजाते कहिलो।	प्रधान पात्र मित्र ने राजा से कहा।
कतो दिन परे राजा लक्ष्मी रानी निलो।।	कुछ दिन पश्चात राजा लक्ष्मीरानी को लाया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ

हीरापुर में लक्ष्मीरानी वनवास कर रही थी। बाद में राजा और एक विवाह किया। प्रधान पात्र मित्र ने राजा से उन्हें पुनः लौटा लाने के लिए कहा था। कुछ दिनों के पश्चात राजा लक्ष्मी रानी को ले आया था।

इससे जाना जाता है कि महारानी का नाम लक्ष्मी देवी था। श्रेणीमाला में रानी का नाम और भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। यथा

विजयमाणिक्य पत्नी नाम लक्ष्मीबाला।
पुण्यबती महारानी छिलेन अबला।। श्रेणीमाला

अर्थात –विजयमाणिक्य की पत्नी का नाम लक्ष्मीबाला नाम था जो पुण्यवती महारानी थी। यहीं पर महारानी का नाम ''लक्ष्मीबाला'' पाया जाता है। ''पुण्यवती'' महारानी विशेषण न होकर नामांतर होना भी विचित्र नहीं है। पहले कहा गया है ''ताहान महादेवी नाम छिलो पुण्यवती'' अर्थात –उन महादेवी का नाम पुण्यवती था''। इस वाक्य के अलावा राजमाला में नीचे दी गई उक्ति से भी यह सन्देह पैदा होता है

त्रिपुर कुलेते से जे शुभजन्मा कन्या।	त्रिपुर कुल में वे शुभजन्मा कन्या थीं।
पुण्यवती नामे होइलो पृथ्वीते धन्या।।	पुण्यवती नाम से पृथ्वी धन्य हुई।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ

* * *

अर्थात –''त्रिपुर कुल में वह एक शुभ कन्या होकर जन्मी थी और पुण्यवती नाम से पृथिवी में धन्य हो गई।''

ताम्रपत्रे लिखी दिलो पुण्यवती नामे।	पुण्यवती का नाम ताम्रपत्र में लिखा गया।
पुण्यवती मती सती श्लोके अनुक्रमे।।	पुण्यवती मती सती बाद में वर्णित।।
विधिमते भूमि कतो उत्सर्गिया दिलो।	विधि के अनुसार बहुत भूमि उत्सर्ग किया।
येनो मत नाम देवी तेनो धर्म्म कोइलो।।	जैसा देवी का नाम है वैसा ही धर्म किया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ

अर्थात –ताम्रलिपि पुण्यवती नाम से लिख दिया। पुण्यमती वाली सती ने श्लोकानुसार विधि पूर्वक भूमि उत्सर्ग किया। जैसा देवी का नाम था वैसा ही किया।''

द्विल –88

महारानी लक्ष्मीबाला या पुण्यवती, प्रधान सेनापति दैत्यनारायण की कन्या थी। इन्हे वनवास देकर विजयमाणिक्य ने दूसरा विवाह किया था। उस महारानी का परिचय जाना नहीं जा सका।

विजयमाणिक्य के पुत्र अनंतमाणिक्य ने प्रधान सेनापति गोपी प्रसाद की कन्या से विवाह किया था। उसका नाम था जयावती महादेवी(1)। इस महारानी ने आठ साल की उम्र में जिस प्रतिभा का परिचय प्रदान किया था उसकी चर्चा 'महिला महात्म्य' में की जाएगी।

अनंतमाणिक्य ससुर गोपीप्रसाद, जामाता को वध करके स्वयं उदयमाणिक्य नाम ग्रहण करके सिहांसन पर बैठे। 240(दो सौ चालीस) स्त्रियों को इन्होंने अपनी महिषी बनाया था। उनमें से अधिकांश ही व्यभिचारिणी थीं। इनकी प्रधान महिषी का नाम था 'हीरावती'। इनके नामानुसार लक्ष्मीपुर ग्राम का नाम हीरापुर किया गया। विजयमाणिक्य खण्डमें मिलता है।

हिरापुर नाम पुर्वे लक्ष्मीपुर छिलो।	हीरापुर का नाम पहले लक्ष्मीपुर था।
उदय माणिक्य रानी हिरापुर कोइलो।।	उदय माणिक्य की रानी हीरापुर की थी।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ

अर्थात –हीरापुर गांव का पहले नाम लक्ष्मीपुर था। उदयमाणिक्य की रानी ने इसका नाम हीरापुर रखा।

उदयमाणिक्य की अन्य महिषियों के नाम क्या थे, उनका परिचय क्या था, कुछ भी पता नहीं चलता।

उदयमाणिक्य की पुत्र लोकतर फा, जो जयमाणिक्य नाम धारण कर सिंहासन पर बैठा। इन्होंने कहां विवाह किया था, जाना नहीं जा सका। उदयमाणिक्य और जयमाणिक्य भिन्न वंशीय होकर भी असत्य उपाय की सहायता से त्रिपुर सिंहासन पर बैठे थे। जयमाणिक्य का वध करके राजवंशीय महाराज अमरमाणिक्य ने पैतृक सिंहासन का उद्धार किया था।

बहुविवाह बहुविवाह प्रायः सभी राजाओं ने ही किया था। किन्तु उदयमाणिक्य की विवाह संख्या ही सबसे अधिक है। महाराज त्रिलोचन ने भी उदयमाणिक्य की तरह 240 महिषी की थी, किन्तु उनके इन विवाहों के उद्देश्य को लेकर कहा गया है कि एक सद्इच्छा की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होने शादियां की थी। राज्य में शिल्पकला ही उन्नति और उसका विस्तार करना ही उनके बहु विवाह का उद्देश्य था। इस विषय में प्रथम लहर की टीका में कहा गया है।

....

(1)

अनंतमाणिक्य–रानी जया महादेवी।	अनंतमाणिक्य की रानी जया महादेवी।
कहिते लागिलो पुनः मने उष्मा भाबि।।	कहने लगी पुनः मन में उष्मा हावी।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 67पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 67पृ

अनंतमाणिक्य की रानी जया महादवी मन में उष्मावश कहने लगी।

ख अनंत ताहान पुत्र होइलो नृपति।
जया नाम्नी ताहार रानीर छिलो ख्याति।। –श्रेणीमाला।

अर्थात –अनंत उनका पुत्र था जो राजा बना। उसकी जया नाम की रानी की ख्यााति थी।

द्विल –89

शिक्षा

राजाओं की शिक्षा और साहित्य पोषकता का विवरण बहुत ही दुःख के साथ आज कहना पड़ा कि राजमाला की द्वितीय लहर में राजा या राजपरिवार की शिक्षा के बारे में किसी तरह का उल्लेख नहीं है। राजमाला में दिए गए विवरणों से जाना जाता है कि महाराज धर्ममाणिक्य सभी विषयों में सुशिक्षित, धार्मिक और उदारचेता थे। साहित्य चर्चा में भी इनका विशेष प्रकाश दिखाई देता है। इन्होंने अपने पूर्व पुरूषों के पुरावृत पर राजमाला लिखने का सूत्रपात करके चिरस्मरणीय कीर्ति की रक्षा कर गए हैं। दूसरे भूपति बृदों ने भी इन्हीं के पदांक अनुसरण कर राजमाला की कलेवर वृद्धि की है।

धर्ममाणिक्य उनके कनिष्ठ पुत्र प्रतापमाणिक्य ने शैशव काल में ही राजा होकर अल्पकाल राजत्व करने का सुयोग पाया था। बाल्यकाल में उनकी मृत्यु होने पर शिक्षा प्राप्त करने का उन्हें कोई सुअवसर नहीं मिला। प्रताप के परलोक सिधारने के पश्चात उनके ज्येष्ठ बैमात्रेय(सौतेला) भ्राता धन्यमाणिक्य सिंहासन पद पर बैठे। ये सुशिक्षित, राजनीति कुशल, प्रबल पराक्रमी, साहित्यानुरागी एवं संगीत कला में कुशल थे। इनके शासन काल में कई संस्कृत धर्मशास्त्र बंगभाषा में अनुवादित हुए थे। इसका विवरण स्थानांतर पर प्रदान किया जाएगा। उन्होने त्रिहुत (मिथिला) से नृत्य तथा संगीत पारंगत लोगों को लाकर अपने देशीय लोगों की शिक्षा की व्यवस्था की थी।

महाराज देवमाणिक्य के प्रतिभा का किसी तरह का परिचय नहीं मिलता। वे बड़े ही सरल विश्वासी थे। उपास्य देवी के दर्शन के लिए लक्ष्मीनारायण नाम के धूर्त विप्र के षड्यन्त्र से क्रमानुसार आठ सेनापतियों का वध करना ही इसका जाज्वल्य मान प्रमाण है। अंत में वे भी उस धूर्त ब्राह्मण के हाथों मारे गए।

महाराज इन्द्रमाणिक्य के बाल्य अवस्था में ही राज्य लाभ करने के उपरान्त व थोड़े समय बाद ही मृत्यु हो जाने पर उन्हें शिक्षा लाभ हुआ, यह पता नहीं चलता।

महाराज विजयमाणिक्य शिक्षित एवं राजनीतिज्ञ थे।(1) उनकी वीरता भी अतुलनीय थी। शिल्पकला की उन्नति के लिए इन्होने विशेष यत्न लिया था।

अनंतमाणिक्य बाल्य काल में बड़े दुष्ट और अशिक्षित थे। राजा होकर भी वे अपने ससुर गोपीप्रसाद के हाथों का खिलौना हो गए थे। जिस ससुर के प्रति वे इतने आत्मनिर्भर हो गए थे, वही ससुर उनके मृत्यु का कारण हो गया। गोपीप्रसाद राज्य लोभवश जामाता को वध कर सिंहासनारूढ़ हुआ था।

---

(1)

गौर वर्ण पंडित राजा पुरुष प्रधान।।	गौर वर्ण पंडित राजा पुरूष प्रधान था।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 56पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 56पृ
* * *	* * *
राजसिक भाव नित्य थाकये अन्तर।।	मन में राजसी भाव भी था।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 56पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 56पृ

द्विल –90

सेनापति गोपीप्रसाद, उदयमाणिक्य नाम ग्रहणकर सिंहासनारूढ़ हुए। ये सैनिक विभाग के कर्मचारी थे। उदय अशिक्षित, गंवार स्वभाव युक्त, विश्वासघातक एंव अत्यंत व्यभिचारि थे। अविचार, अत्याचार, दुर्भिक्ष, महामारी एवं मुसलमानों के आक्रमण आदि नाना तरह के विपत्तियों से इनका शासन काल कलंकित हो उठा था। युद्ध विद्या के अलावा और किसी तरह की योग्यता का परिचय इनमें दिखाई नहीं देता।

उदयमाणिक्य के पुत्र जयमाणिक्य की शिक्षा आदि का कोई परिचय नहीं मिलता। उस समय जयमाणिक्य के फूफा सेनापति रणागण नारायण (रंग नारायण) का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। जयमाणिक्य उसके हाथ के खिलौने मात्र रह गए थे। लोग परतंत्र थे व रणागण राज्य प्राप्ति के प्रत्याशी थे। अमरमाणिक्य के द्वारा उनका वध करने से वृद्ध की यह उच्च अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई।

मल्ल विद्या की चर्चा मल्ल विद्या की शिक्षा लेना पूर्वकाल की तरह इस काल में भी राजाओं में प्रचलित थी। धन्यमाणिक्य ने दुष्ट धूर्त सैन्याध्यक्षों का ध्वंस करने के अभिप्राय से पीड़ा का अभिनय कर अंतःपुर में रहकर मल्लविद्या का अभ्यास कर रहे थे। गदाभीम नामक व्यक्ति महाराज अनंतमाणिक्य के मल्लविद्या के शिक्षक थे। अमरमाणिक्य के पुत्र राजबल्लभ के यहां जयमाणिक्य के मल्लविद्या की शिक्षा प्राप्त करने का निदर्शन हमें राजमाला में मिलता है। खास तौर से दूसरी विद्याओं के साथ मल्ल विद्या की शिक्षा उन दिनों त्रिपुर राज्य में विशेष रूप से प्रचलित थी।

स्त्री शिक्षा इस समय स्त्री शिक्षा प्रचलन के प्रमाण यहां मिलते हैं। उदयमाणिक्य और जयमाणिक्य के प्रधान सेनापति रणागण नारायण की पत्नी उन्हें चालीसा की तरह जिसे यहां 'पांचाली' कहा जाता है, पढ़कर सुनाती थी। किसी किसी राजमहिषि की प्रतिभा के विषय में आलोचना करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि वे सभी सुशिक्षित थीं। इस बारे में राजमाला का वर्णन नितांत ही संक्षिप्त है। इसके द्वारा स्त्री शिक्षा का इंगित मात्र मिलता हैं

नृत्य गीत के विषयक चर्चा धन्यमाणिक्य ने त्रिहुत (मिथिला) से सुशिक्षित लोग लाकर राज्य में नृत्य गीत के विषय की शिक्षा प्रचलन की व्यवस्था करने की आलोचना का उल्लेख हम पहले ही करके आये हैं। तबसे त्रिपुरा वासी नृत्यगीत में विशारद होते रहे हैं। महाराज के इस अनुष्ठान का सूत्र अब भी त्रिपुरा में है।

साहित्य सेवा

बंगभाषा और बंग साहित्य का पुष्टि विधान बंग साहित्य के उन्नति के लिए त्रिपुरेश्वर गण प्राचीन काल से ही नाना तरह के यत्न करते आये हैं। उनके प्रयत्न से रचित राजमाला ही इस विषय का प्रधान बंगभाषा और बंग साहित्य का पुष्टि विधान प्रमाण है। महाराज धर्ममाणिक्य ने राजमाला रचना का प्रथम सूत्रपात किया। इस मूल्यवान ग्रंथ की प्रथम लहर उनके शासन काल में ही रचित हुई है। इसके अलावा उनके द्वारा सारा महाभारत अनुवाद कराने की

द्विल –91

बात भी प्रचलित है। दुख की बात तो यह है कि उस ग्रंथ का अस्तित्व अब नहीं रहा। महाराज धन्यमाणिक्य ने बंग भाषा में ''उत्कल खण्ड पांचाली'' एवं ''यात्रा रत्नाकर निधि'' नाम के ज्योतिष ग्रंथ की रचना कराई थी। ''प्रेत चतुर्दशी गीत'' (प्रेतचतुर्दशी के गीत) उनके समय रचित हुई है। इसके अलावा बंगला भाषा में राज कार्य परिचालना से इस भाषा की बहुत उन्नति हुई थी।

परिवारिक विशेष नियम

मृत राजाओं के अन्त्येष्टि क्रिया के नियम किसी राजा की मृत्यु होने पर उनके उत्तराधिकारी उसी क्षण राज्य का दायित्व लेकर मृत राजा की अन्त्येष्टि क्रिया का सम्वाद अनुमति प्रदान करते थे। इस तरह मृत राजा के अन्त्येष्टि क्रिया के नियमानुसार अनुमति पाकर राजा के शव को श्मशान में ले जाने का नियम था।

सहमरण प्रथा इस समय राजपरिवार के सहमरण की प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। राजमाला के द्वितीय लहर में इसके बहुत से प्रमाण मिलते हैं। महाराज धन्यमाणिक्य की महिषी कमला महादेवी, महाराज देवमाणिक्य की प्रधान महिषी (विजयमाणिक्य की माता) एवं विजयमाणिक्य की सभी महिषियों ने आग्रह के साथ पति के चिता पर आरोहण किया था। अनंतमाणिक्य की आठ वर्ष की महिषी पति के साथ सहमृता होने के निमित व्याकुल हो गई थी। उनके पिता के बाधा प्रदान के फलस्वरूप वह संकल्प पूरा नहीं हुआ। प्रजा में भी सहमरण की प्रथा प्रचलित थी।

राजमहिषियों का वनवास दण्ड राजमहिषियों के दण्ड के लिए उन्हें वनवास में प्रेरण करने की व्यवस्था थी। महाराज विजयमाणिक्य ने अपनी प्रधान महिषी को वनवास दिया था।

गुप्त बाते समझाने के लिए इंगित देखने से छिपाकर बात समझाने के लिए नाना तरह के इंगित प्रयोग में लाए जाते थे। सेनापति रणागण ने अमरमाणिक्य को वध करने के अभिप्राय से भोजन पर निमंत्रित किया था। अमरमाणिक्य के एक हिताकांक्षी ने तलवार से पान के बटुए को छेद कर उन्हें दिखाया। इस इंगित अवस्था को परख कर अमरमाणिक्य अपनी आत्म रक्षा करने में समर्थ हुए थे।

धर्म्ममत

धर्म्मानुराग धर्मरक्षण एवं धर्म पालन त्रिपुर भूपति वृन्दो का वंशानुगत विशेष उल्लेख योग्य शुभकर्म थे। देवता स्थापन, देवालय गठन, धर्मोद्देश्य से भूमि और अर्थदान, जलाशय खनन धर्म में अटलविश्वास इत्यादि सद्गुण में त्रिपुरा राजवंश बहुत प्रसिद्ध थे। प्रथम लहर में उनके बहुत से विवरण प्रदान किए गए हैं। द्वितीय लहर में संसृष्ट संक्षिप्त विवरण नीचे दिये जा रहे हैं।

द्विल –92

राजकुमार का सन्यासाश्रम ग्रहण महामाणिक्य के ज्येष्ठ पुत्र धर्मपारायण महाराज धर्ममाणिक्य ने राज्य प्राप्ति के पहले सन्यासी वेश में दीर्घ दिनों तक नाना तीर्थो का पर्यटन कर बहुत पुण्य और ज्ञानार्जन किया था। महामाणिक्य के परलोकगमन के पश्चात आकर सिंहासनारूढ़ होकर धर्म कार्य में मनोनिवेश किया। कौतुकादि
आठ ब्राह्मणों को वाराणसी धाम से ये साथ लाये थे। समागत आठ ब्राह्मणों में से कौतुक कान्यकुब्ज देश के थे। ऊपरोक्त आठों ब्राह्मणों का परिचय इस समय दुष्प्राय हो गया है।

जलाशय खनन और भूमिदान धर्ममाणिक्य धर्मभाव से प्रणोदित होकर कुमिल्ला, कैलार गढ़, (कसबा) एवं उदयपुर में "धर्मसागर" नाम के तीन सरोवरों का खनन कराया था। उनमें कुमिल्ला नगरी में अवस्थित सुविशाल वापी ही विशेष विख्यात है। इस सरोवर के प्रतिष्ठा के समय महाराज ने ब्राह्मणों को शस्यपूर्ण उनतीस द्रोण(1) भूमि ताम्रशासन द्वारा दान किया था। इस दान के बारे राजमाला में लिखा है –

परोकाल चिंति राजा चित्त शांताइलो।	हुआ मन शांत कर परलोक का चिंतन।
भूमिदान कोरिबारे ब्राह्मण आनिलो।।	भूमिदान करने हेतु ले आये ब्राह्मण।।
धर्म सागर नामेते जलाशय दिया।	धर्म सागर नाम से खनाया जलाशय।
तार चारि पारे सब द्विज बोसाइया।।	उनके चारों किनारे दिया द्विजों को आश्रम।।
महाविषुवेते दिलो भूमि उत्सर्गिया।	महाविषु में किया भूमि उत्सर्गण।
कौतुकादि बाणेश्वर ब्राह्मण अर्चिया।।	कौतुकादि बाणेश्वर ब्राह्मणों का करके अर्चन।।
कौतुकादि ब्राह्मणेते कोरे भूमिदान।	कौतुकादि ब्राह्मणों को करके भूमिदान।
ताम्र पत्रे लिखि दिलो वचन प्रमाण।।	ताम्र पत्र में लिखा अपना वचन प्रमाण।।
राजमाला द्विल धर्ममाणिक्य खण्ड 5पृ	राजमाला द्विल माणिक्य खण्ड 56पृ

अर्थात –परलोक की भावना की चिंता से राजा ने अपने मन को शान्त करने के लिए ब्राह्मण को भूमिदान किया। धर्मसागर नाम से जलाशय खनवाया। उसके चारों ओर ब्राह्मणों को बसाया। महाविषुण में भूमि उत्सर्ग किया। कौतुक और बाणेश्वर आदि को भूमि दान किया। इस दान के वचन के प्रमाण स्वरूप ताम्रपत्र लिख दिया

धर्ममाणिक्य का ताम्रशासन संस्कृत राजमाला में लिखित है, आठ ब्राह्मणों को भूमिदान किया गया था। कौतुक और बाणेश्वर का नाम राजमाला में मिलता है "कौतुक कान्यकुब्ज निवासी थे, ये वाराणसी धाम से धर्ममाणिक्य के साथ आए थे, यह कथा पहले ही बताई जा चुकी है। बाणेश्वर राजमाला प्रथम लहर के रचयिता है। ये त्रिपुर दरबार में राजपण्डित और राजपुरोहित थे। राजमाला प्रथम लहर की टीका में इनका पूर्ण विवरण दिया गया है। दान प्रतिग्राही छह ब्राह्मणों का नाम नहीं मिल रहा हैं। ताम्रफलक में भी सभी

---

(1) आठ हाथ बराबर एक नल को चार पण के हिसाब से त्रिपुरा राज्य में जमीन नापी जाती है। भूमि का विवरण इस तरह निर्धारण किया जाता है –20 धूर में एक क्रांति। तीन क्रांति से एक कड़ा। चार कड़ा से एक गंडा। 20 गंडा से एक कानी। 16 कानी में एक द्रोण होता है। (वर्तमान 2006 ई के हिसाब से 40 डेसिमेल से एक कानी जमीन होती है। एक गंडा माने 2 डेसिमेल। इस तरह 20 गंडा माने 20 गुणा 2 बराबर 40 डेसिमल अर्थात एक कानी। एक द्रोण माने 40 गुणा 16 बराबर 640 डेसिमल होता है।)

त्रिपुरेश्वर के जमींदारी विभाग का यही परिमापन पद्धति थी। इस प्रणाली से परिमित की गई कानी को 'तिपराई कानी' कहते हैं।

द्विल –93

विप्रों का नामोल्लेख नहीं है। 'कौतुकादि' शब्द मात्र मिलता है। ताम्रलिपि की प्रतिलिपि नीचे दी जा रही है

'चन्द्रवंशोद्‌भवः स्वाप महामाणिक्यज्यः सुधीः।
श्रीश्रीमद्धर्ममाणिक्य भूपश्चन्द्र कलोद्‌भवः।।
शाके शुन्याष्ट विश्वाव्दे वर्षे सोमदिने तिथौ।
त्रयोदश्यां सितेपक्षे मेषे सूर्यस्य संक्रमे।।
कौतुकादि द्विजाग्ग्रेषु पूजितेषु च चाष्टसू।
भूमिंददौ शस्यपूर्णां द्रोण विंश नबाधिकां।।
जलाशयं द्विजाये मं धर्मसागरमाख्यया।
सभूमि फल वृक्षादि भूमितं दत्तबानहं।।
ममवंश परिक्षीणे यः कश्चिद्‌भूपतिभवेत्।
तस्य दासस्यदासोऽं ब्रह्मवृत्तिं न लोपयत्।।

मर्म – चन्द्रवंशोद्‌भव महामाणिक्य के सुधी पुत्र, शशधर सदृश श्रीश्रीमद्धर्ममाणिक्य, 1380 शकाब्द मेष संक्रमण में (चैत्र महीना की शेष तारीख) सोमवार शुक्ल त्रयोदशी तिथि में कौतुकादि अष्ट विप्र को शस्य समन्वित एवं फल और वृक्षादि परिपूर्ण उनतीस द्रोण भूमिदान किया। मेरे वंश के विलुप्त होने पर यदि यह राज्य अन्य किसी भूपति के हस्तगत हुआ और यदि इस ब्रह्म वृत्ति का विलोप न करें तो मैं उनका दासानुदास होकर रहूंगा।।

एक के दिये हुए दान को दूसरा के द्वारा विलोप न करने के अनुरोध अनेक प्राचीन ताम्रशासनों में हैं। श्रीचन्द्र देव के ताम्रशासन के शेषभाग में उत्कीर्ण हुआ है।

भूमिं यः प्रतिगृन्हाति यश्छ भूमिं प्रयच्छति।
उभौ तौ पुण्य कर्म्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ।।
षष्टिन्वर्ष सहस्राणि स्वगर्गेमोदति भूमिदः।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकं बसेत्।।
स्वदत्तां परदत्तान्बा यो हरेत वसुन्धराम्।
स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्यते।।
बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः।
यस्य यस्य सदा भूमिस्तस्य तस्य तदाफलम्।
इति कमलदलाम्बु बिन्दुलोलां श्रीमनुचिन्त्य मनुष्य जीवितंच
सकलमिद्‌मुदाहृतंच बुद्धा न हि पुरूषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः।''(2)

---

(2) साहित्य पत्रिका –भाद्र 1320 सन

द्विल –94

परकीर्ति लोप (प्रदत्त भूमि के प्रति हस्तक्षेप) न करने के लिए भावी नृपतियों के प्रति निषेध सूचक धर्मानुशासन सम्मत ऊपर दिए गए श्लोक की तरह मर्मस्पर्शी श्लोक बहुत से प्राचीन ताम्रलिपि में मिलते हैं। यह अवशेष महत्व का परिचायक है। ताम्रशासन सम्बधित प्राचीन विवरण इसके बाद दिये जाएगें।

कुमिल्ला नगर स्थित धर्मसागर का प्रचीनत्व 1380 शकाब्द में भूमिदान किया गया था। यह साढ़े चार सौ से कुछ अधिक साल पहले की घटना है। कुमिल्ला नगर स्थित धर्मसागर उत्सर्ग के उपलक्ष्य में यह दान दिया गया था। अतएव इस जलाशय का प्रचीनत्व साढ़े चार सदी निर्णीत होता है। खनन के बाद कभी भी इस सरोवर का संस्कार नहीं हुआ। शीध्र ही इसके संस्कार की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा भी नहीं लगता। अब भी इसका जल स्वच्छ और उत्कृष्ट रूप में विख्यात है।

देवता प्रतिष्ठा महाराज धन्यमाणिक्य जैसे वीर थे उसी तरह धार्मिक भी थे। राजमाला में लिखा है उन्होने एक मन सुवर्ण द्वारा भुवनेश्वरी मूर्ति की स्थापना किया था। राजमाला की उक्ति यह है –

श्रीधन्य माणिक्य राजा धर्मे चित्त दिलो।	श्रीधन्य माणिक्य राजा ने धर्म में दिया मन।
प्रतिमा भुवनेश्वरी सुवर्णे निर्माइलो।।	भुवनेश्वरी प्रतिमा का किया स्वर्ण से निर्माण।।
एक मन सुवर्णेर प्रतिमा निर्माइया।	एक मन सुवर्ण से प्रतिमा को बनाकर।
जीबन्यास(1) कोराइलो साधक आनिया।।	जीवन्यास(1) किया तब साधक को बुलाकर।।
प्रतिमा नासाय तुला लगाइया राखे।	प्रतिमा के नासिका में रूई लगाकर रखा।
श्वासे तुला उड़ि जाय(2) पूजा काले देखे।।	सांसो से उड़ गई रूई(2) पूजा समय देखा।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29 पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29 पृ

---

(1) विग्रह स्थापना के समय उसका जीवन्यास या प्राण प्रतिष्ठा किया जाता है। प्राण प्रतिष्ठा के बिना किसी भी देवता की पूजा नहीं हो सकती। शास्त्र में है –

अकृतायाम प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च।
यथा पूर्बं तथा भावः स्वर्णादीनां न विष्णुता।।
अन्येषामपि देवानां प्रतिमासु च पार्थिव।
प्राणप्रतिष्ठा कर्त्तव्या तस्मात् देवत्व सिद्धये।। –देव प्रतिष्ठा तत्व

पूजा पद्धति के अनुसार देवता के अंग पूजादि के समापन के पश्चात में निम्नलिखित मंत्र द्वारा प्राण प्रतिष्ठा किया जाता है।

"आं ह्रीं क्रों यं रं लं बं शं षं सं ह्रों हं सः अमुष्य प्राणा इह प्राणाः आमित्यादि अमुष्य जीव इह स्थित, आमित्यादि अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि, आमित्यादि अमुष्य वांमनश्चक्षु श्रोत्र घ्राण प्राणा ईहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणा क्षरन्तु च । अस्यै देवत्व संख्यायै स्वाहा ते यजुरीरयन्।।"

यही प्राण प्रतिष्ठा का मंत्र है। जिस देवता की प्राण प्रतिष्ठा करनी होगी उस देवता के नाम के साथ षष्ठी विभक्ति लगाकर उच्चारण करना आवश्यक होता है। देवता के वक्ष स्थल पर हस्त स्थापना कर प्राण प्रतिष्ठा की जाती है और मंत्र में जिन जिन अंगों का नाम लिया गया है वहां हस्त द्वारा स्पर्श कर प्रत्यंगादि उज्जीवन किया जाता है। इस नियम से प्राण प्रतिष्ठा करने के बाद देवता में देवत्व हो जाता है

(2) प्रतिमा के नासारन्ध्र से रखी हुई रूई उड़ जाने के बारे में **Rev James Long** साहब ने एक अद्‌भुत बात की अवधारणा की है, वे कहते हैं –**He made**

द्विल –95

2nd Leher-Page-95



"छोटी मां" विग्रह

यह मूर्ती पीठदेवी त्रिपुरासुन्दरी के साथ ही पूजी जाती है। प्रवादानुसार यह मूर्ती देवालय के निकट तालाब के गर्भ से प्राप्त हुई है। बहुत से लोगों के कथनानुसार चट्टग्राम से त्रिपुरासुन्दरी मूर्ती लाकर महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा स्थापित करने से पहले यही मूर्ती पीठस्थान पर प्रतिष्ठिता थी।

द्विल –95

भुवनेश्वरी विग्रह की अवस्था यह विग्रह इतनी गोपनीयता से रखा जाता था ताकि ''राजार पुत्रे मूर्ति देखिते ना पारे'' अर्थात राजा का पुत्र भी इसे नहीं देख सके।

इतने आदर और यत्न का विग्रह आज नहीं है। किस समय किस अवस्था में इस विग्रह का अस्तित्व लोप हो गया इसे अब जानने का भी कोई उपाय नहीं है। उदयपुर की राजधानी मग एवं मुसलमानों के द्वारा आक्रांत ओर लुठिंत हुआ था। संभवतः इनमें ही किसी ने उस विग्रह को भी लूटा होगा। इसके अलावा इस विग्रह के विलोप योग्य अन्य किसी घटना की या अन्य किसी घटना के संघटित हाने की जानकारी नहीं मिली।

धन्यमाणिक्य के धर्म कर्मानुष्ठान के और भी अनेक निदर्शन पाए जाते हैं। इन्होंने पीठ देवी त्रिपुरा सुन्दरी की मूर्ति चटगॉव से लाकर प्रतिष्ठित की थी। इस विषय का पूर्ण विवरण प्रथम लहर में टीका में दिया गया है। त्रिपुरा सुन्दरी का वर्तमान मन्दिर भी उन्हीं के द्वारा निर्मित है। यह मन्दिर विष्णु विग्रह स्थापनार्थ निर्माण का संकल्प था, दैव घटनावश विष्णु के बदले शक्ति मूर्ति स्थापित करनी पड़ी। इस विषय में राजमाला में लिखा है –

आर एक मठ निते आरम्भ कोरिलो।	और एक मठ आरम्भ किया।
वास्तु पूजा संकल्प विष्णु प्रीते कोइलो।।	वास्तु पूजा का संकल्प विष्णु को किया।।
भगवती राजाते स्वप्न देखाय रात्रिते।	भगवती ने राजा को रात में दिया सपन।
एई मठे आमा स्थापो राजा महा सत्वे।।	इस मठ में राजा तुम करो मेरा स्थापन।।
चाटिग्रामे चट्टेश्वरी ताहार निकट।	चट्ट गांव में चट्टेश्वरी के निकट।
प्रस्तरेते आमि आछि आमार प्रकट।।	पत्थरों में मैं हूँ करो मुझे प्रगट।।
तथा होइते आनि आमा एई मठे पूजो।	वहां से लाकर तुम इस मठ में पूजो।
पाइबा बहुल बर जेई मते भजो।।	पाओगे बहुत वर जब जिस मत से भेजो।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 30पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 30पृ

अर्थात ''और एक मठ बनाने का निर्णय किया। विष्णु प्रीत्यर्थ राजा ने वास्तु पूजा का संकल्प लिया। राजा को रात्रि में देवी ने स्वप्न दिखाया कि राजा इस मठ में तुम मेरी स्थापना करो। चटगांव चट्टेश्वरी के करीब पत्थरों में, मैं प्रकट हूँ वहां से मुझे तुम लाकर इस मठ में स्थापित कर पूजा करो। तुम्हें बहुत वर मिलेंगे यदि तुम ठीक से भजन करोगे।''

यह स्वप्न देखकर जिस तरह से पाषाण मूर्ति चट्टगॉव से लाई गई थी उसका विवरण प्रथम लहर के टीका में देखा जा सकता है।

त्रिपुरा सुन्दरी देवी का मंदिर महाराज धन्यमाणिक्य ने स्वप्नादिष्ट होकर, विष्णु के लिए निर्मित इस मठ में ही देवी की स्थापना की। इस मठ के सामने एक खण्ड शिलालिपि थी, बहुत पहले ही वह विनष्ट हो चुकी है। हमारे त्रिपुरा सुंदरी देवी के मन्दिर के प्रथम दर्शन के समय(1302 त्रिपुराब्द) मन्दिर द्वार के ऊपर एक

....

an image of Bhubaneswari of Small gold, weighing a maund, he placed a cotton in her nostrils so that at the Puja time when the Prana Pratista, the ceremony is performed, her breath might blow it away, the people all cried out that a miracle had been performed, though a pipe perforating the body and in contact with the mouth of a priest accounts for the whole, we have many instances of similar tricks in Europe in the Middle ages **J.A.S.B. -Vol . XIX**

भारतीय साधकों के द्वारा देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा यूरोपीय इन्द्रजाल नहीं है। लांग साहब यह जानते तो शायद इस तरह की बात नहीं कहते।

द्विल –96

गहरे दाग को देखकर समझा था कि वहीं पर शिलालिपि रही होगी। बाद में मन्दिर संस्कार के समय शायद उस दाग को भी मिटा दिया गया है। राजमाला की आलोचना से जाता है, सम्मुख भाग की शिलालिपि में निम्नलिखित वाक्य उत्कीर्ण थे :–

"माया मुरारेरियमम्बिका या।
मुंचत्य मूष्या निकटं न कुत्र।।
प्रान्ते भवान्या ध्रुवमास केशव।
श्रीधन्यमाणिक्य बिनिश्चतिस्तियम्।"

मर्म – यह जो अम्बिका हैं, नारायण की माया हैं। केशव सदा इनके निकट रहते हैं। कभी भी दूर नहीं जाते। श्रीधन्य माणिक्य आपके विस्मित होने का कारण क्या है।"?

उक्त शिलालिपि द्वारा यह घोषित किया गया है कि अम्बिका और विष्णु में प्रभेद नहीं है। अम्बिका विष्णु की ही माया हैं। अतएव विष्णु के प्रीत्यर्थ जो यह मठ निर्मित हो रहा या उस मठ में विष्णु के बदले अम्बिका को स्थापित करने से विस्मित होने का कोई कारण नहीं है।

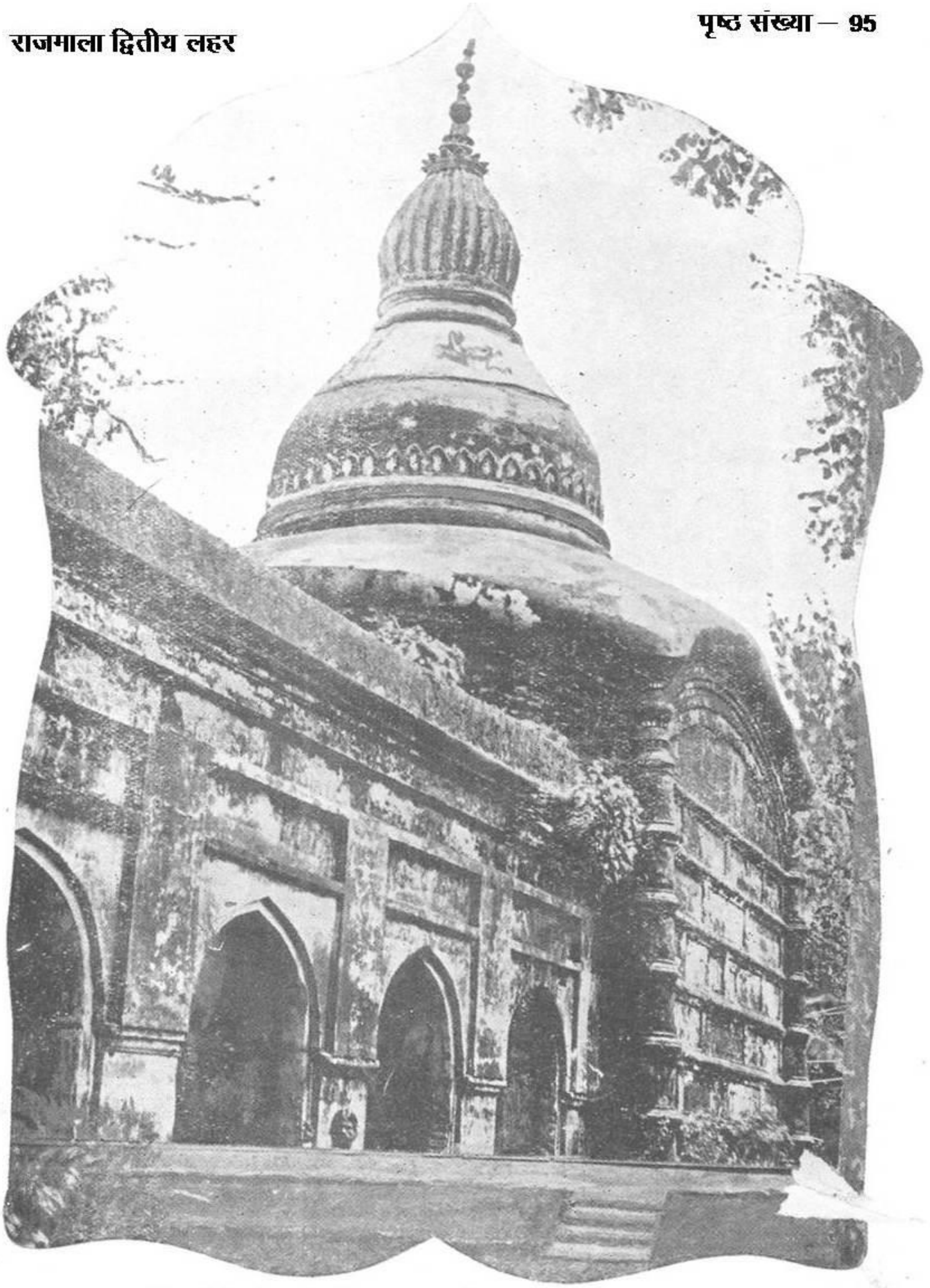
मन्दिर के गात्रस्थ में शिलालिपि समूह उक्त शिलापट्ट के अलावा इस समय मन्दिर की दीवारों पर और पांच शिलालेख संयोजित थे। मन्दिर की दीवारों पर शिलालिपि समूहों में से दो पूर्व की ओर, दो दक्षिण की ओर और एक उत्तर की ओर है। पूर्व की ओर के शिलाखण्डों पर एक ही विवरण उत्कीर्ण है। एक खण्ड पत्थर पर समग्र –विषयों का समावेश न होने पर दो खण्ड पत्थरों को उपयोग किया गया है। इन दोनों शिलालेखों का अध्ययन करने पर मन्दिर का धारावाहिक इतिहास प्राप्त होता है। वे विवरण इस तरह है –

।।प्रथम खण्ड में उत्कीर्ण श्लोक।।
"आसीत् पूर्वं नरेन्द्रः सकलगुणयुतो धन्यमाणिक्य देवो।
यागे यस्याम्बरेशः क्षितितलमगमत् कर्ण तुल्यस्य दानैः।।
शाके वहन्यक्षिवेधोमुखघरणीयुते लोकमात्रेऽस्विकायै।
प्रादात् प्रासाद राजं गगनपरिगतं सेवितायै स देवैः।
तत्पश्चाद् भूमिपालस्त्रिपुर नरपतिर्धीर कल्याणदेवः
खिन्नां(1) पृथ्वीं शशास प्रवलरिपुगनैः केवलं स्वीय शक्त्या
तत्पुत्रो भूपमसिंहः समरपतिवरो धीर गोविन्ददेवो
दानैर्भूदेव योयित् कनकमयकृतः साम्बराज्ये(2) बिरेजे।।

---

(1) शिलालिपि में "क्षिन्नां" उत्कीर्ण हुआ है

(2) साम्बराज्ये –त्रिपुरा राज्य में यह स्थान कहीं नहीं है। किसी किसी प्राचीन ग्रंथ में त्रिपुरा को "सुक्ष्मदेश" भी कहा गया है। शिलालिपि में प्रमादवश "सुक्ष्म" के स्थल पर "साम्ब" खोदित होना कोई असंभव बात नहीं है।



पीठदेवी श्री श्री त्रिपुरासुन्दरी का मन्दिर, उदयपुर



श्री श्री त्रिपुरासुन्दरी देवी मन्दिर के अन्दर की शिलालिपि
प्रथम व द्वितीय अंश

द्विल –97

।।द्वितीय खण्ड में उत्कीर्ण श्लोक।।

तत्पुत्रो धर्म्मचेताः क्षितिपतितिलकः कान्तदान्तो बदान्यः।
श्रीश्रीमान् सत्यवादी निखिलगुणयुतो राममाणिक्य देवः।।
चक्रे प्रासादराजं बिटपिबिदलितं वीर धीरो मनोज्ञं।
पूर्वन्मादम्बिकायै विविध रूचिचयं धन्यमाणिक्य दत्तं।।
वीर श्रीयुत रामदेव नृपतिर्विप्रोहब्ज भानुः कृतिः।
कालीपादसरोजलुब्धमधूपः पृथ्वीपतीनां वरः।।
बातोद्घातविभिन्न देवसदनं चक्रे मनोज्ञं वरं।
शाके नेत्रबियद्रसेन्दुमिलिते पीठे भवान्याः पुनः।

शकाब्दाः 1603

(प्रथम खण्ड का अनुवाद)

''पूर्वकाल में समग्र गुण सम्पन्न धन्यमाणिक्य नाम के एक नरपति थे। वे दान में कर्णतुल्य थे। उनके भाग्य से स्वर्गाधिपति पृथ्वी में आए थे। उन्होने 1423 शकाब्द में गगनभेद प्रासाद देवगण सेविता लोक–जननी अम्बिका को दान किया था। उनके बाद त्रिपुराधिश्वर महाराज कल्याण देव ने प्रबल रिपुगण द्वारा पीड़िता पृथ्वी को एकमात्र अपनी शक्ति द्वारा शासन किया था। उनके पुत्र वीर श्रेष्ठ, धीर प्रकृति गोविन्द देव राजाओं में प्रधान थे। उनके दानों से ब्राह्मण रमणियां स्वर्णमय हो उठी थी। उन्होने साम्ब राज्य में विराज किया था''(1)

(द्वितीय खण्ड का अनुवाद)

उनके पुत्र महाराज राममाणिक्य धार्मिक, सत्यवादी, निखिल–गुण सम्पन्न, कमनीय मूर्ति, जितेन्द्रिय एवं बदान्य थे। महाराज धन्यमाणिक्य ने अम्बिका के उद्देश्य से इस मन्दिर को दान किया था। उसके ऊपर वृक्षादि उत्पन्न होने से मन्दिर फूट गया था। वीरवर और धीर प्रकृति महाराज रामदेव ने इस मन्दिर को मनोज(संस्कार) किया। द्विज पंकज सेविता कालीपद–पद्म लुब्ध–मधुप भूपति श्रीयुत राममाणिक्य ने 1603 शकाब्द में वाताघात विदारित देवमन्दिर को मनोज(संस्कार) किया। शकाब्द –1603''

इन दोनों शिला लेखों से जाना जाता है कि 1423 शक में महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा मन्दिर के निर्माण के पश्चात्, 1603 शक में महाराज राममाणिक्य द्वारा उसका संस्कार किया गया था। मन्दिर निर्माण के किंचित दो सदी के पश्चात यह संस्कार कार्य सम्पन्न हुआ था। इसके पहले और दो बार इसके संस्कार होने के प्रमाण मिलते हैं। किन्तु ऊपर दिए गए शिला लेखों में इसका उल्लेख नहीं है।

---

1 यह अनुवाद (बंगला मे) पण्डित श्रीयुक्त चन्द्रोदय विद्याविनोद महाशय द्वारा सम्पादित ''शिलालिपि संग्रह'' पत्रिका से ग्रहण किया गया है

द्विल –98

राममाणिक्य के समय और उसके पहले संस्कार के विवरण नीचे दिए जा रहे हैं।

मन्दिर के उत्तर की ओर एक खण्ड शिला लेख संयोजित रहने की बात पहले कही जा चुकी है। यह बंगला भाषा में लिखी गई है। इस प्रस्तर खण्ड की भाषा एकदम असम्पूर्ण और अस्पष्ट है। बीच बीच में अक्षर नष्ट हो गए हैं। श्रीयुक्त विद्याविनोद महाशय ने विलुप्त अक्षरों को यथा शक्ति उद्धार किया और उसके बन्धनी में सन्निवेश करके निम्नलिखित रूप से पाठ निर्धारण किया है –

एएतु	माम	
श्रीबलिभिम		ना
रा (य) ण	त्रिपुरा	
श्री(हरि) ब (ल्लभ)		ना
राय (ण)	विश्वा (स)	
	शक 16 3	

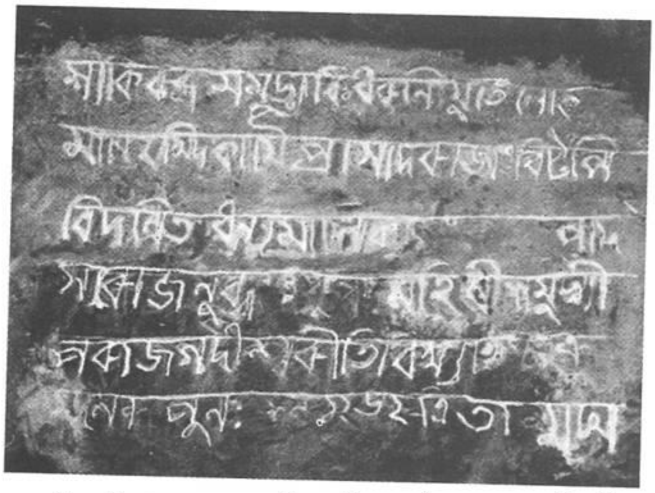
बलिभीमनारायण

यहां पर अंकित शकांक विशुद्ध नहीं है। 1423 शक में निर्मित मन्दिर की दीवार पर अंकित 16 3 शक में शिलालिपि का संयोजित होना नितांत ही असंभव सा लगता है। इस प्रस्तर फलक में बलिभीम नारायणेर नामोल्लेख है। ये महाराज राममाणिक्य के श्यालक और उनके सम सामयिक थे। राममाणिक्य ने इन्हें युवराज उपाधि प्रदान कर श्यालक–प्रीति की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया था। इस समय बलिभीम का प्रभाव, जो अत्याधिक बढ़ गया था, युवराज उपाधि ही इसका जाज्वल्य प्रमाण है। राममाणिक्य का शासन काल 1592 से 1604 शक तक था। उनकी अनुज्ञा से बलिभीम के तत्वावधान में मन्दिर का संस्कार कार्य सम्पन्न हुआ था। इसी के निदर्शन स्वरूप यह शिलापट्ट संयोजित हुआ है –यह अनुमान होता है। शिलालेख में अंकित ''16 3'' की जगह 1603 होगा। इस तरह निर्धारण करना ही संगत होगा।

अंकपात की प्राचीन प्रणाली

ऊपर लिखा गया अंक निर्धारण करना गलत नहीं हो रहा है। उन दिनों एकाधिक अंक के बीच अंक लिखने की प्राचीन प्रणाली शून्य (0) न लिखकर बीच जगह छोड़ दी जाती थी। ऐसे दृष्टान्त यहां विरल नहीं है। अगरतला वजीर साहब के घर में ग्रंथागार में त्रिपुराश्वरों के शासनकाल की एक अति जीर्ण –शीर्ण का कागज है। उसमें ''1502'' के बदले ''15 2''(15 2) –1607 के बदले ''16 7''(16 7), 1705 के बदले ''(16 5)'' लिखा गया है। प्रथम लहर के पूर्वाभाष में इसका विवरण दिया गया है। त्रिपुर राज्य क भूतपूर्व सुपरिटेनडेन्ट परलोकगत चन्द्रकांत वसु महोदय ने धर्मनगर से एक प्राचीन ईंट संग्रह किया था उसमें शकांक के मध्य का शुन्य (0) लिखा नहीं गया था। शून्य स्थल पर हासिया रखा गया था। कछाड़ जिले में





श्री श्री त्रिपुरासुन्दरी मन्दिर के अन्दर की शिलालिपि

द्विल –99
हालियाकान्दि(हैला कांडि) के करीब जो ईंट मिली है उसमें ''शुभमस्तु शकाब्दा 14 9'' अंकित है। यह त्रैपुर नृपति की कीर्ति के रूप में जन साधारण में एक धारणा है। इस ईंट में 1409 के स्थल पर शून्य की जगह खाली रखा गया है।(1) इन सभी अवस्थाओं में पूर्वोक्ति विवरण को लेकर आलोचना करने से शक संख्या ''16 3''(16 3) की जगह ''1603'' होगी। यह निःसंदेह कहा जा सकता है। मन्दिर के दक्षिण–किनारे की शिलालिपि की आलोचना से भी इस वाक्य की दृढ़ता प्रमाणित होगी। पूर्व किनारे के द्वितीय में राममाणिक्य द्वारा 1603 शक में मन्दिर के संस्कार होने का उल्लेख है। इस लिपि का विवरण पहले ही प्रदान किया गया है। मन्दिर के दक्षिण किनारे से सटे हुए एक खण्ड शिलालिपि का विवरण यह है –

श्रीधन्यमाणिक्य स्थिते
कृति।। शकाब्द 1423।।
तत अभ्यान्तरे श्रीरणागण
राममाणिक्य धर्म्मराज
पति। शकाब्दा 1603

मन्दिर का प्रथम संस्कारक रणागण नारायण

इस तरह के असम्पूर्ण और अस्पष्ट भाषा द्वारा किसी तरह के स्थिर सिद्धांत पर उपनीत होना नितांत ही कठिन विषय है। शिला खण्ड में धन्यमाणिक्य, रणागण, राममाणिक्य इन तीन नामों के साथ श्रीधन्यमाणिक्य द्वारा मन्दिर निर्माण काल–1423 शकाब्द उत्कीर्ण हुआ है, एवं राममाणिक्य द्वारा संस्कार काल 1603 शकांक उत्कीर्ण हुआ है। यह प्रस्तर फलक किस समय संस्थापित हुआ है, यह निर्णय करना संभव नहीं है। इस लिपि में लिखित रणागण नारायण (रंग नारायण) मन्दिर निर्माता धन्यमाणिक्य के बाद में और उसके संस्कारक राममाणिक्य के पहले किसी समय के है। ये पहले उदयमाणिक्य के (सूबेदार गोपी प्रसाद के) भगिनी पति और सेनापति थे। उदयमाणिक्य ने 1498 शक में लोकलीला समाप्त की। इसके पश्चात जयमाणिक्य के समय में भी रणागण कुछ दिनों तक जीवित एवं सेनापति पद पर प्रतिष्ठित थे। बाद में अमरमाणिक्य के हाथों इसकी मृत्यु हुई। शिलालेख में रणागण का नाम संयोजित होने से ऐसा प्रतीत होगा कि उदयमाणिक्य के शासन काल में, रणागण द्वारा इस मन्दिर का संस्कार कार्य सम्पन्न हुआ है। इसके अलावा प्रस्तर फलक में इनका नाम अंकित होने का ओर कोई कारण नहीं हो सकता। मन्दिर निर्माण के 70/75 सालों के पश्चात एक बार संस्कार होना कोई अंसभव नहीं लगता है। यही मन्दिर के प्रथम संस्कार के रूप में जाना जाता है।

1 श्रीहट्ट का इतिवृन्त –पूर्वांश, उपसंहार पृष्ठ 99

द्विल –100

द्वितीय बार का संस्कार विवरण महाराज कल्याणमाणिक्य द्वारा दूसरी बार इस मन्दिर का संस्कार किया गया है।

राजमाला में कल्याण माणिक्य खण्ड में लिखा गया है –

कालिकार मठ चूड़ा मघे भांगिछिलो।	कालिका का मठ चूड़ा भंग मघो ने किया।
पुनर्बार महाराजा निर्माण कोरिलो।।	पुनः उसका महाराजा ने किया निर्माण।।
राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड 68पृ	राजमाला तृल कल्याणमाणिक्य खण्ड 68पृ

अर्थात –कालिका मठ का चूड़ा मगों ने तोड़ दिया। महाराज ने पुनः इसका निर्माण किया।

तीसरी बार के संस्कार का विवरण इस संस्कार की परिचायक कोई शिलालेख मन्दिर की दीवारों पर नहीं है। कल्याणमाणिक्य ने 1547 शक में राज्य भार में तीसरी बार के संस्कार का विवरण ग्रहण करने के पश्चात 34 सालों तक राज्य शासन किया। इसी काल में किसी एक समय मन्दिर का संस्कार कराया गया था। पूर्व वर्णित रणागण के संस्कार के अर्द्ध सदी के बाद कल्याणमाणिक्य द्वारा पुनः संस्कार कराया गया होगा। ऐसा होना स्वाभाविक है। इसके अर्द्धसदी के पश्चात 1603 शक में राममाणिक्य ने पुनः इसका संस्कार कराया था। इसका विवरण पहले ही प्रदान किया गया हैं। यह तृतीय दफे का संस्कार समझा जाता है

महारानी सुमित्रा महादेवी द्वारा पुनः संस्कार 1603 शक के पश्चात 1778 शक तक कमोबेश डेढ़ सौ साल के अंतराल में मन्दिर के किसी का भी हस्तक्षेप नहीं हुआ। इस तरह के कोई निदर्शन नहीं मिल रहे हैं। 1267 त्रिपुराब्द को (1779 शक में) महारानी सुमित्रा जगदीश्वरी(1) द्वारा इस मन्दिर के पुनः संस्कार होने के उदाहरण मिलते हैं। यह प्रमाण मन्दिर के दक्षिण किनारे के दूसरी शिलालिपि की आलोचना से जाना जाता है। वह लिपि नीचे दी जा रही है –

> शाके र x समुद्रारि धरणियुते लोक
> मात्रेऽम्बिकायै प्रासादराजं बिटपि
> बिदलितं धन्यमाणिक्य पाद
> सरोदज लुब्ध मधुपा महिषीन्दुमुखी
> परा जगदीश्वरीति विख्यात चक्रे
> मनोज्ञं पुनः सन 1267 त्रि ता माघ(2)

मर्म – "16 7" (?) शक, वृक्ष द्वारा बिदारित धन्यमाणिक्य (दत्त?) यह उत्कृष्ट प्रासाद (काली?) पादपद्म में लुब्ध मधुप स्वरूपा अन्य इन्दुमती तुल्या जगदीश्वरी उपाधि भूषिता राजमहिषी ने लोक माता अम्बिका के प्रीति के लिए पुनर्वार संस्कार किया गया।

इस लिपि का शकांक समझ में नहीं आता। 1267 त्रिपुराब्द का स्पष्ट उल्लेख रहने से शकांक 1779 निर्धारण करने की सुविधा हो गई है।

---

(1) सुमित्रा महाराज दुर्गामाणिक्य की महिषी थी। त्रिपुरा के महाराजों की ओर से साधारणतः महारानी और ईश्वरी उपाधि दी जाती थी। इन्हें जगदीश्वरी उपाधि प्राप्त थी।

(2) यह लिपि विशुद्ध नहीं है। रचयिता संस्कृत भाषा में दक्ष नहीं थे।

द्विल –101

महाराज राधाकिशोरमाणिक्य द्वारा पुनः संस्कार इसके बाद 1314 त्रिपुराब्द में (1826 शक में) महाराज राधाकिशोरमाणिक्य द्वारा पुनः संस्कार गया। इस संस्कार के निदर्शन रूवरुप कोई शिलालिपि रक्षित नहीं है। अतएव भविष्य में इसके संस्कार साधन की बात विस्मृति की अतल गहराई में ही विभाजित हो जाने की संभावना ही अधिक है।

मन्दिर प्राचीनत्व यह मन्दिर 1423 शक में निर्मित हुआ है। अतएवः यह चार सौ साल से कुछ अधिक काल की प्राचीन कीर्ति है।

भैरव का मन्दिर धन्यमाणिक्य ने इस महापीठ के भैरव लिंग एवं उसके मन्दिर की प्रतिष्ठा की थी। कालक्रम में वह मन्दिर भी विनष्ट हो जाने पर कल्याणमाणिक्य ने पुनः नये मन्दिर का निर्माण कराया। इसका विवरण यथास्थान दिया जाएगा।

धन्यमाणिक्य की अन्यान्य कीर्ति उदयपुर का सुविशाल धन्य सागर महाराज धन्यमाणिक्य के दानशीलता की अन्यतम परिचायक है। धन्यमाणिक्य की अन्यान्य कीर्तियों का यह विशाल सरोवर लम्बाई में 1000 गज और चौड़ाई में 270 गज है। इसे खुदवाने में पौने नौ कानी भूमि की जरूरत पड़ी है अर्थात 353 डेसिमल जमीन इसमें समाई हुई है। पहले के मठ के अलावा उदयपुर में धन्यमाणिक्य के निर्मित और कई मठ और मन्दिर हैं। अपने पिता और भाई के श्मशान में भी मठ निर्माण कराने के भी कई प्रमाण मिलते हैं।(3) बरदाखात परगने में इनकी एक दीर्घिका है।

महारानी कमला महादेवी की कीर्ति धन्यमाणिक्य की महिषी महारानी कमला महादेवी पूण्यवती दानशीला थी। महारानी कमला महादेवी द्वारा खनायें गए कमला सागर, कसबा के करीब कालिका देवी के मन्दिर के सामने विराजमान रहकर आज तक महारानी की कीर्ति घोषणा कर रहे हैं। इस सरोवर का पानी सुनिर्मल एवं स्वास्थ्यकर के रूप में विख्यात हैं। इसके अलावा उदयपुर में भी दूसरे कमला सागर का आस्तिव विद्यमान है।

देवमाणिक्य का धर्म विश्वास और विग्रह प्रतिष्ठा महाराज देवमाणिक्य, लक्ष्मीनारायण नाम के किसी तांत्रिक ब्राह्मण से दीक्षित होकर तंत्र सम्मत श्मशान–साधन में विश्वास और विग्रह प्रतिष्ठा साधना में लिप्त थे। देवमाणिक्य का धर्म के प्रति अविचलित विश्वास था और अंध विश्वास ही उनके मृत्यु का कारण हुआ था। उन्होने अपने गुरू के नामानुसार लक्ष्मीनारायण चक्र स्थापित किया था। यह विग्रह अब तक त्रिपुर राजवंश के कुल देवता के रूप में सयत्न पूजित हो रहा है। इस विग्रह के बारे में त्रिपुर राजवंशावली में लिखा है –

लक्ष्मीनारायण चक्र स्थापन करिलो।
आपनार इष्टसाधन महाराज करिलो।'' आदि

---

3 आर एक मठ दिलो अति मनोहर।
ज्येष्ठ भ्राता श्री धर्ममाणिक्य ऊपर।।
आर एक मठ दिलो पितार ऊपर।
लिखिलेक श्लोक ताथे दिया श्वेत पाथर।। त्रिपुर वंशावली।

अर्थात और एक अति मनोहर मठ स्थापित किया। अपने ज्येष्ठ भ्राता धर्ममाणिक्य के नाम पर। इसके अलावा अपने पिता के नाम पर और एक मठ का निर्माण किया और श्वेत पत्थर पर एक श्लोक लिखा।

द्विल –102

इन्होंने पुरीधाम जाकर श्रीमूर्ति दर्शन और जगन्नाथ को बहु मूल्यवान एक मुकुट दान किया था।

महाराज विजयमाणिक्य का धर्मानुष्ठान और पंचद्रोणा विजयमाणिक्य ने पूण्य संचय के लिए ब्रह्मपुत्र तीर्थ में स्नान, दान और वहां ध्वजारोपण किया था। इन्होंने वर्तमान ढाका जिले के अंतर्गत महेश्वरदी परगना में ब्राह्मणों को पंचद्रोण भूमिदान किया था। इस दान से उन जगहों का नाम पंचद्रोणा या पांचदोना हुआ है। इसके अलावा उन्होने भूमि दान, तुलापुरूष, कल्पतरू, जलाशय खनन, देवता स्थापन आदि बहुत दिनों तक धर्म कार्य किया था। उदयपुर का विजय सागर इनकी एक उज्जवल कीर्ति है। इस दीर्घिका की लम्बाई/दीर्घ 382 गज और चौड़ाई/प्रस्थ 237 गज है। सब मिलाकर 100 डेसिमल (ढाई कानी) से कुछ अधिक जमीन लेकर यह जलाशय खनाया गया है। इन्होंने हीरापुर (उदयपुर के करीब) एक मन्दिर का निर्माण कराकर हीरा गोपीनाथ नाम की श्री मूर्ति का स्थापन किया था।

विजयमाणिक्य का ताम्रशासन विजयमाणिक्य विशेष धार्मिक और ततोधिक वीर थे। धर्म साधना के समय भी शूरत्व के गौरव को उन्होने नहीं त्यागा। इस महापुरूष ने पूर्वोक्त विग्रह प्रतिष्ठा के उपलक्ष में ताम्र फलक द्वारा ब्राह्मण को भूमिदान किया था उस ताम्र शासन की भाषा ही उनके वीर–दर्प का प्रकृष्ट प्रमाण है। उस ताम्र शासन के कुछ अंश यहां दिए जा रहे हैं। –

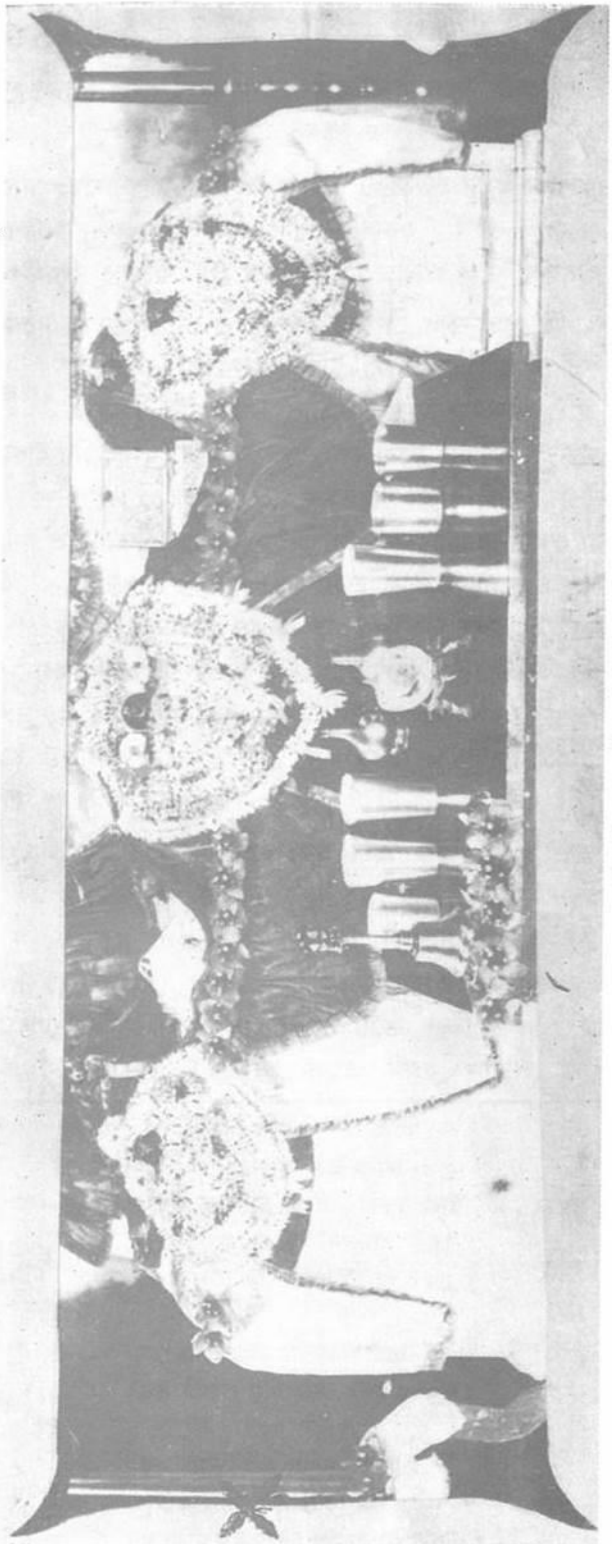
धन्यमाणिक्य भूपालो बहुभिर्भूवि दुर्ल्लभः।
तत्सुतो देवमाणिक्यस्तत्सुतो विजयस्मृतः।।
राजा राज शिरोरत्न निघृष्ट चरणाम्बूजः।
श्रीश्रीविजयमाणिक्योराजा राजभि राजते।।''

इस श्लोक की आलोचना करने से देखा जाएगा कि धर्म उद्देश्य से भूमि दान के समय श्री महाराज विजय, नृपति शिरोरत्न चरण घर्षण करने का गर्वत्याग करने में समर्थ नहीं हो सके। यहां पर शूरत्व के छाया में धर्मभाव किंचित मान कम होने पर भी उन दिनों धर्म साधन से अधिक क्षात्र–वीर्य की मर्यादा कम नहीं थी। ताम्र पत्र की आलोचना से यही प्रतीयमान होता है। इस तरह के और दृष्टांत है जो बाद में कहे जाएगें।

उदयमाणिक्य का धर्मकार्यानुष्ठान विजयमाणिक्य के पुत्र अनंतमाणिक्य का धर्म कार्य सम्पादन का उल्लेख योग्य कोई निदर्शन नहीं मिलता। इनके ससुर और सेनापति विश्वासघातक गोपीप्रसाद ने राज्यलोभ वश जामाता को वध करके उदयमाणिक्य नाम ग्रहण कर, सिंहासन अधिकार किया था। इन्होंने एक मठ का निर्माण कर उस मठ में ''चन्द्र गोपीनाथ'' मूर्ति की स्थापना की थी। उदयपुर में ''चन्द्र सागर'' नाम के सुविशाल सरोवर में इन्हीं की मूर्ति है। यह सरोवर लम्बाई में 505 गज और चौड़ाई में 261 का है। सवा चार कानि (अर्थात 170 डेसिमल) भूमि पर यह सरोवर बनाया गया है। इन्होंने धर्मोद्देश्य से बहुत सा कार्य किया पर ये धार्मिक नहीं थे

द्विल –103
2nd Leher-Page-103

पृष्ठ संख्या – 103



श्री श्री लक्ष्मीनारायण

राजमाला द्वितीय लहर

द्विल –103

बल्कि अधार्मिक कदाचारी एवं विश्वास घातक थे। राजमाला में इन्हें यही कहा गया है।

उदयमाणिक्य के परलोक सिधारने के बाद, उनके पुत्र लोकतर फा ने जयमाणिक्य नाम धारण कर कुछ ही दिनों तक राज्य शासन करके अमरमाणिक्य के हाथों मौत के घाट उतार दिए गए। किसी तरह के धर्म कर्मानुष्ठान करने का अवसर ही इन्हें नहीं मिला।

धर्ममत का सारतत्व राजमाला द्वितीय लहर में वर्णित भूपति वृन्दः वंशागत प्रथानुसार शिव, शक्ति, विष्णुभक्त थे। कोई काई नृपति तांत्रिक मत में आस्थावान थे।धन्यमाणिक्य ने पठान विजय की कामना से अपने गुरू द्वारा तांत्रिक अभिचार कार्य कराया था। इन्होंने भक्ति–प्रणोदित चित्त से सुवर्ण युक्त भुवनेश्वरी मूर्ति प्रतिष्ठा एवं पीठ स्थान में त्रिपुरा सुन्दरी विग्रह और भैरव लिंग स्थापना कर शाक्त एवं शैव मत से अपनी आस्तिकता का परिचय प्रदान किया था। देवमाणिक्य का लक्ष्मीनारायण नामक मिथिलावासी किसी सिद्धपुरूष से शक्ति मंत्र से दीक्षित होकर वीर भाव से चक्र–साधन और श्मशान–साधन आदि योगानुष्ठान करने का प्रसंग राजमाला में हमें मिलते हैं। पहले ही कहा गया है कि इन्होंने अपने गरू के नामानुसार लक्ष्मीनारायण चक्र की स्थापना की थी। कुल विग्रह का स्थान त्रिपुर राजवंश के कुल देवता के रूप में है(1)। मूलतः इस समय त्रिपुरा के त्रिपुर भूपति वृन्द शिव, शक्ति एवं विष्णु के उपासक तो थे, पर शैव मत की प्रबलता अधिक देखी जाती थी। राजमाला की आलोचना से प्रमाणित होता है

बलिदान प्रथा देवार्चना में बलिदान त्रिपुरा राजवंश की चिरपरिचित प्रथा रही है। शास्त्रानुसार से देवता के नाम से जो कुछ भी उत्सर्ग किया जाता है वही बलि पदवाच्य है। इसके अलावा मनुष्य पशु यक्ष, प्रेत, पिशाच, पिपीलिका, कीट पतिंगे आदि उद्देश्य से जो आहार्य प्रदान किया जाता है वह भी बलि में शामिल है। जीव बलि की व्यवस्था भी शास्त्र में है। कालिकापुराण के मतानुसार पक्षी, कच्छप, मत्स्य, मृग, छाग, महिष, भेड़, शूकर (सुअर), कृष्णसार, गोधिका, शरब, सिंह, बाघ, मनुष्य आदि प्राणी

....

(1) ''त्रिपुर वंशावली'' पुस्तिका के देवमाणिक्य प्रसंग में लिखा है –

मिथिला नगरवासी द्विज एकजन।
त्रिपुर राज्येते आसि उपस्थित हन।।
लक्ष्मीनारायण द्विजेर नामकरण छिलो।
देवमाणिक्य स्थाने उपस्थित होइलो।।

* * * *

महाज्ञान शिखिबारे राजार इच्छा होइलो।
गुरू स्वीकार करि राजा दीक्षित होइलो।।

* * * *

गुरू नामें विग्रह स्थापन करिया।
लक्ष्मीनारायण चक्रस्थापन करिलो।।
आपनार इष्ट साधन राजाय करिलो।।

द्विल –104

और अपने शरीर का रक्त बलिदान में प्रशस्त माना गया है। इसके अलावा कुष्माण्ड, इक्षु एवं मद्य भी बलि में शामिल है। इस पुराण का मत नीचे दिया जाता है –

पक्षिणः कच्छपग्राहा बराहाश्छागलास्तथा।
महिषो गोधिका शाल्लस्तथा नवविधा मृगाः।।
चामरः कृष्णसारश्च यमः पंचानन स्तथा।
मत्स्याः स्वगात्र रूधिरं चोष्ट्रका बलयो मताः।।
अभावे च तथै वैषां कदाचिद्धयऽस्तिनौ।
छागलः शरभश्चैव नरश्चैव यथाक्रमात्।।
बलिर्महाबलिरतिबलयः परिकीर्त्तिताः आदि कालिका पुराण 56 अः

नरबलि त्रिपुर राज्य में साधारणतः छाग, भेड़ महिष, गबय, कच्छप, हंस, पाराबत(कबूतर), हंसडिम्ब की बलि प्रदान की जाती है। इस राज्य में जितनी नरबलि हुई, इतनी अधिक संख्या में नरबलि भारत के और किसी स्थान पर नहीं हुई(2)। इस राज्य में नरबलि के विषय में शास्त्र का विधान हर स्थल पर प्रतिपालित हुआ है। मुझे ऐसा नहीं लगता। किस तरह के मनुष्य बलि के योग्य हैं शास्त्र में यह निर्दिष्ट हुआ है –यथा

''पितृ मातृ विहीनंच युवकं ब्याधि वर्ज्जितम्।
विवाहितं दीक्षितंच परदार विहीनकम्।।
अजारिकं विशुद्धंच सच्छूद्रं मूलकं बरम्।
तद्बन्धुभ्यो धनं दत्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः।।

दुर्गोत्सव तत्व।

बलि के लिए मनुष्य संग्रह और मेछिली संप्रदाय इस स्थल पर पितृमातृहीन, व्याधि वर्जित है, दीक्षित और विवाहित शुद्र–युवक बलि के योग्य माना गया है। इसे अर्थ द्वारा क्रय करना होगा। त्रिपुरा में मनुष्य क्रय करके बलि देने की प्रथा नहीं थी, ऐसी बात नहीं है। किन्तु जाति विचार किया जाता था, ऐसा नहीं लगता। महाराज धन्यमाणिक्य ने चंडाल बलि द्वारा अभिचार कार्य सम्पादन किया था। एक सम्प्रदाय विशेष के लोग मनुष्य बलि के लिए तैनात किए गए थे। स्थानीय भाषा में इन्हें ''मैछिली या मछलु'' नाम से परिचित थे। इस उपाय में संगृहीत लोगों के अलावा भी युद्ध में पकड़े गए प्रतिपक्ष के लोग एवं स्वपक्ष के विद्रोही सेनाओं के लोगों की देवी के सन्मुख बलि प्रदान की व्यवस्था थी। यहां पर जाति विचार की कोई जरूरत नहीं होती थी। महाराज विजयमाणिक्य

---

(2) त्रिपुर राज्य में नरबलि के विषय में **Rev James Long** साहब ने लिखा है।

Human Sacrifices prevailed at an early period in Tripura and even of the late years strong suspicions have been entertained of the practice being occasionally observed at the shrine of Kamakhya in Assam and at Kalighat in Calcutta. But in no part of India were more human victims offered than in Tripura which appears to have been one of the strongest holds of Hinduism.

J.A.S.B. -Vol . XIX

द्विल –105

ने अपने ही सैनिक दल के एक हजार विद्रोही पठान अश्वारोहियों को चतुर्दश देवता के सामने बलि दी थी(1) एवं गौड़ के पराजित पठान सेनापति ममारक खॉ लौह पिजरें में आबद्धावस्था में राजदरबार में लाए गए और उन्हें भी चतुर्दश देवता के सामने बलि दी गई थी। विजित शत्रु को पकड़ने पर इसके गरम खून से चतुर्दश देवता एवं त्रिपुरा सुन्दरी का मन्दिर–प्रांगण रंजित होता था।

शत्रु बलि   शास्त्र में शत्रु बलि का विधान है पर जीवित शत्रु का नहीं। क्षीर द्वारा निर्मित पुत्तलिका की प्राण प्रतिष्ठा करके उस पुत्तलिका को बलि दिया जाता था(2)। त्रिपुरेश्वर गणो ने जीवित शत्रु बलि द्वारा शास्त्र की मर्यादा रक्षा की है। समर क्षेत्र में पकड़े कए प्रबल पराक्रांत शत्रु हस्तगत होने पर क्षीर के बनाए पुतले को छेदन करके शत्रुबलि का क्षोभ भला क्यों मिटायेंगे। शव विद्यमान रहने पर कोई कुश के बनाए पुतले की दाह की व्यवस्था नहीं करता।

नरबलि की संख्या निर्धारण   त्रिपुर राज्य में नर बलि की कोई सीमा संख्या नहीं थी। महाराज धन्यमाणिक्य ने उनकी संख्या निर्धारण कर लोक समाज का बहुत हित सुधार किया है। इस विषय में राजमाला में लिखा है –

पूर्बेते त्रिपुर राजा नरबलि दितो।	पहले त्रिपुर राजा नरबलि देते।
सहस्रे सहस्रे बंग बर्षे काटा जाइतो।।	सहस्र सहस्र बंगवासी हर वर्ष काटे जाते।।
श्रीधन्य माणिक्ये माना ताहाके कोरिलो।	श्रीधन्य माणिक्य ने इसे मना किया।
तद्बधि नरबलि निषेध होइलो।।	तब से नरबलि कर्म बन्द हो गया।।
तिन बत्सरे एक नर चतुर्दश देबे।	एक नर चतुर्दश को तीन साल बाद।
कालिकाते एक नर पाइबेक जबे।।	कालिका एक नर पायेंगी तब।।
दौचा पाथरे दुई नर शत्रु पाइले होय।	दौचा पाथर दो नर यदि शत्रु मिल जाये।
गोमती ते दुई बलि घटे जे समय।	गोमती में दो बलि तब हो जाये।।
इहाते अधिक बलि माना कोरे राजा।	इससे अधिक बलि मना किये राजा।
तद्बधि निश्चिंते रहिलो राज्य प्रजा।।	तबसे निश्चिंत होकर रहने लगी प्रजा।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29 पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29 पृ

अर्थात पूर्व में त्रिपुरा राजा नर बलि देते थे। हर वर्ष हजारों हजार बंग देश के लोगों को काटा जाता था। श्रीधन्य माणिक्य ने इसे मना कर दिया। तब से नरबलि निषिद्ध हो गई। हर तीन साल में एक नर चतुर्दश देवता को, महाकाल को एक नर मिलेगा। दोयापाथर में और गोमती में दो बलि जो शत्रु मिल जाएं दी जाएगी। इसके अलावा अब बलि प्रथा बंद कर दिया गया।

---

(1)

सहस्र शोयार कर्त्ता पाठान विस्तर।	सहस्र सवार कर्ता पठान विस्तृत।।
चतुर्दश देवतारे दिलो नरेश्वर।।	नरेश्वर ने चतुर्दश देवता को बलि दिया।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ

अर्थात एक हजार अश्वारोही पठानों को चतुर्दश देवता के सामने बलि दी गई

(2) शत्रु बलि के बारे में शास्त्र की व्यवस्था नीचे प्रदान की जाती है

ततः शत्रु बलिं राजा दद्यात् क्षीरेण निर्म्मितम्।
स्वयं बिन्दयात् क्रोध दृष्टा प्रहार जनकेन च।।
कोपेन वधकृद्देवि सत्यं सत्यं महेश्वरि।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा वै शत्रुनाम्ना महेश्वरि।।
शत्रुक्षयो महेशानि भवत्येव न संशयः। बृहन्नील तंत्र

द्विल –106

धर्म में अन्धविश्वास धर्म के सम्बन्ध में अनेक राजाओं का अन्धविश्वास था। महाराज देवमाणिक्य ने अपने गुरु लक्ष्मी नारायण की प्ररोचना से देवता दर्शन लाभ की आशा में एक–एक करके आठ सेनापतियों को श्मशान में ले जाकर बलिदान कर दिया था। बाद में यह अन्धविश्वास ही उनकी मृत्यु का कारण बना था, यह बात पहले ही कही जा चुकी है।

राजानुशासन में धर्म की पुष्टि विधान त्रिपुरेश्वर गणों के धर्ममत, धर्माचरण के सम्बन्ध में अनेक बात हैं, उसकी सम्यक आलोचना यहाँ पर असम्भव है। एक ही वाक्य में बोला जा सकता है कि राजगण, परम्परा से ही हिन्दू धर्म के पोषक और संरक्षक थे। राज–महिषी गण धर्म के उद्देश्य से जीवन दान करने में पीछे नहीं थीं। सहमरण का आधिक्य ही इसका ज्वलन्त प्रमाण है। राजा ही प्रकृति पुंज का आदर्श था। पूरे देश, पूरे समय में सम्पूर्ण प्रजा ने राजा के आचार व्यवहार का अनुकरण किया है एवं वर्तमान काल में यही कर रहा है। उस समय त्रिपुर राज्य में राजानुशासन के कारण धार्मिकों की संख्या अधिक थी एवं धर्म साधना उनके जीवन का एक प्रधान व्रत जाना जाता था, राजमाला में इस बात के बहुत दृष्टान्त मिलते हैं।

इस तरह की अवस्था में भी उस समय में अधार्मिक लोग नहीं थे ऐसी बात नहीं है। राजमाला में मिलता है कि उस समय किसी विषय के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होते समय हरिवंश ग्रंथ एवं शालिग्राम शिला को स्पर्श किया जाता था, यह धर्म के प्रति अटल विश्वास का प्रमाण है कोई–कोई पापाशय व्यक्ति इसके प्रभाव से प्रतिज्ञाबद्ध होकर भी इस प्रतिज्ञा को लंधन करने में कुंठित नहीं होते थे। सेनापति गोपी प्रसाद ही इस श्रेणी के लोगों में सर्व प्रधान हैं। वे जामाता के मंगल साधनार्थ शालग्राम स्पर्श करके प्रतिज्ञा होने के बावजूद राज्य के लोभ में जामाता का वध साधन एवं स्वयं सिंहासन अधिकार करके प्रतिज्ञा भंग का पाप अर्जन एवं धर्म की ग्लानि की थी।

तीर्थस्थान का विवरण

त्रिपुरा राज्य के तीर्थस्थान त्रिपुर राज्य में कुछ तीर्थ स्थान हैं। उनमें से उदयपुर की महापीठ, उनकोटी तीर्थ, डम्बुर या डूंगू तीर्थ एवं ब्रह्मकुंड तीर्थ का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध है। महापीठ का विवरण प्रथम लहर की टीका में वर्णित किया गया है। राजमाला द्वितीय लहर में जिन समस्त तीर्थों का नामोल्लेख है, उसका विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है।

द्विल –107

उनकोटी तीर्थ

उनकोटी तीर्थ का पथ यह स्थान कैलाशहर विभाग के अन्तर्गत कैलाशहर विभागीय आफिस से लगभग तीन कोस दूर पूर्व दिशा में पर्वत सानुदेश में अवस्थित है यह पर्वत उनकोटी शैल का एक श्रृंग है। इस स्थान में जाने के पथ दुर्गम होने पर भी अति मनोरम हैं। अधिकांश स्थानों पर क्षीण–सलिला, पर्वत की घाटियों के बीच झरनों से चलना पड़ता है। बीच–बीच में पर्वत के चढ़ाई और उतराई का भी प्रयोजन होता है। धाटी के उपरिभाग में वृक्ष एवं पर्वत जाति के बांस की पत्तों द्वारा ढका हुआ होने के कारण समग्र पथ प्रकृति निर्मित सुन्दर बाग में परिणत हुआ है। यह रास्ता हमें परिचित है। कैलाशहर के भूतपूर्व मजिस्ट्रेट और कलेक्टर स्वर्गीय हेम कुमार चौधरी महाशय द्वारा अपेक्षाकृत सहज एवं सुगम और एक रास्ता निर्मित होने की बात सुनी है। वह पथ आज तक हमें दृष्टिगोचर नही हुआ है।

उनकोटी तीर्थ का प्राचीनत्व उनकोटी एक प्राचीन तीर्थ स्थान है। कब से यह यह स्थान पवित्र क्षेत्र के रूप में उभरा है, यह निर्णय करना कठिन है। राजमाला आलोचना करने से पता चलता है अति प्राचीन काल में बिमार के पुत्र महाराज कुमार ने इस तीर्थ में जाकर शिव आराधना की थी। उसके बाद प्रायः चार सौ साल पहले महाराज विजयमाणिक्य उनकोटी तीर्थ में गये थे।(1) उसके बाद महाराज अमरमाणिक्य के पुत्र राजधर के उनकोटी जाने का प्रमाण मिलता है। यह भी लगभग तीन सौ साल पहले की बात है।(2) ''उनकोटी माहात्म'' नामक हस्तलिखित पुस्तक की आलोचना करने से इस तीर्थ के प्राचीनत्व का आभास मिलेगा। उक्त ग्रन्थ में लिखा है,–

विन्ध्याद्रेः पादसम्भूतो बरबक्रः सुपुण्यदः।
दक्षिणस्यां नदस्यास्य पुण्या मनुनदीस्मृता।।

---

(1)

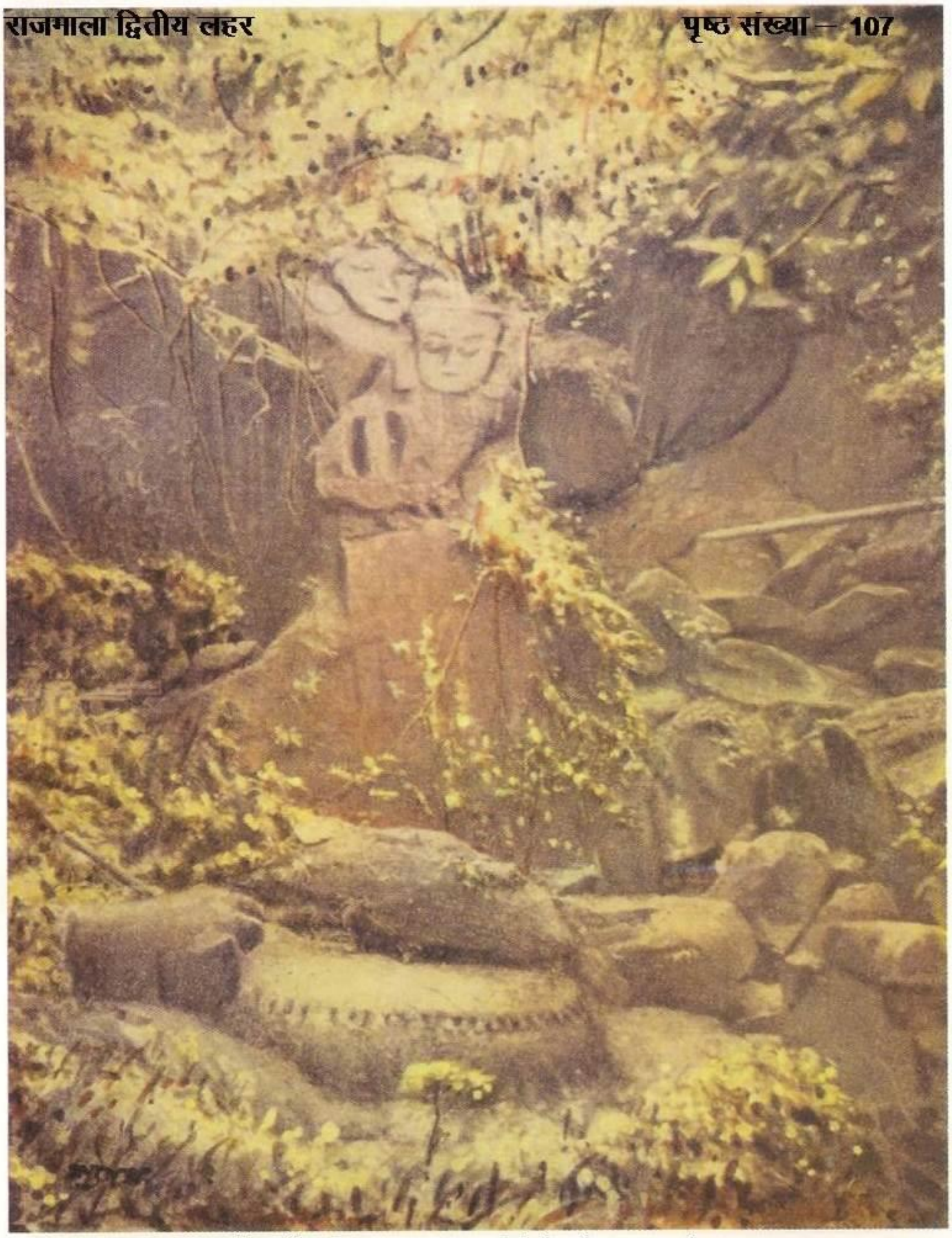
कोतो दिन पोरे राजा उनकोटि गेलो	कुछ दिन पश्चात राजा उनकोटि जा रूके।
एक उनकोटी लिंग तथाते देखिलो।।	एक उनकोटि शिव लिंग वहां पर देखे।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 59पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 59पृ

(2)

राजधर चलिलो दुलाली ग्राम पथे।	राजधर चले दुलाली गाँव की राह।
इटा ग्राम होइया ऊनकोटि तीर्थे।।	इटा गाँव होकर गए तीर्थ उनकोटि राह।।
स्नान दान कोरे तथा राजधर नारायण।	स्नान दान किए वहाँ राजधर नारायण।
उदयपुर चलिलेक कोरि शुभक्षण।।	उदयपुर चले फिर देखि शुभक्षण।।
राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 10पृ	राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 10पृ

इसके बाद राधाकिशोरमाणिक्य 1313 त्रिपुराब्द में इस तीर्थ में गए थे, यह 20 साल पूर्व की कथा है। कुछ समय पूर्व पंचश्रीयुक्त महाराज वीरविक्रमकिशोरमाणिक्य बहादुर ने भी इस तीर्थ के दर्शन किए थे।

द्विल –107
2nd Leher-Page-107



पर्वत के भीतर खुदी मूर्तियों के भग्नाशेष
उनकोटि तीर्थ – कैलाशहर

द्विल –108

अनयोरन्तरा राजन् उनकोटिगिरिर्महान्।
यत्र तेपे तपः पूर्ब्बं सुमहत् कपिलोमुनिः।।
तत्र वै कपिलं तीर्थं कपिलेन प्रकाशितम्।
लिंगन्च कपिलं तत्र सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्।।

उनकोटि तीर्थ माहात्म्य

उद्धृत वाक्यों से पता चलता है, विन्ध्यशैल के पद से उत्पन्न पुण्यप्रद बरबक्र(बराक) नदी के दक्षिण में पुण्य–सलिला मनु नदी बह रही है। यह बरबक्र और मनु नदी के बीच के स्थान में उनकोटी पर्वत अवस्थित है। पुराकाल में महर्षि कपिल ने उक्त पर्वत पर तपस्या की थी। कपिल तीर्थ उससे प्रकाशित हुआ है एवं मानवगणों का सर्वसिद्धि प्रदायक कपिल स्थापित शिव लिंग उस स्थान में विराजमान है। कथित उनकोटी तीर्थ बरबक्र(बराक) एवं मनु नदी के बीच के उनकोटी पर्वत का ही अंश विशेष है। यह स्थान मनु नदी के अति निकट था, कालान्तर में यह नदी पथ छोड़ कर वर्तमान समय में कुछ दूर हो गई है।

कपिल मुनि का विवरण इस तीर्थ का प्रकाशक या संस्थापक महर्षि कपिल अति प्राचीन काल के योग पुरूष हैं। उपनिषद में इनका नाम मिलता है, यथा–

ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैबिभर्त्ति। श्वेताश्वतर 5।2।

मर्म– प्रसूत कपिल ऋषि को जिन्होंने ज्ञान द्वारा पोषण किया है।

श्री मद्भगवद्गीता में भी इनका नाम है, स्वयं भगवान ने कहा है– आमि
गन्धर्ब्बानां चित्ररथः सिद्धानां कपिलोमुनिः।

गीता–10।26।

मर्म– "आमि गन्धर्वगणों में चित्ररथ, सिद्धगणों में कपिलमुनि"

श्री मद्भागवत के अनुसार कपिल भगवान के पंचम अवतार महामुनि कद्दर्म के औरस से देवहुति के गर्भ से जन्म ग्रहण किया है। ये सांख्य दर्शन प्रणेता एवं इनके ही कोप से सगर वंश ध्वंस हुआ था। इनके द्वारा संस्थापित उनकोटी तीर्थ, जो अति प्राचीन है, के विषय में कोई बात बोलने की जरूरत नहीं दिखती है फिर भी यह मात्र बताया जा सकता है कि स्थान, अवस्था, प्रस्तरमय पर्वत के गात्र में अंकित नाना असंख्य देव–देवी की प्रतिमूर्ति, एवं पर्वत के सानुदेश में अवस्थित प्रस्तर मूर्तिसमूह के विषय में आलोचना करने से इस तीर्थ के प्राचीनत्व के सम्बन्ध में संदेह नहीं रह सकता है।

कपिलाश्रम कपिल मुनि ने एक ही स्थान पर बैठ कर तपस्या नहीं की है। हरिद्वार में, गंगा सागर–संगम स्थान के निकट एवं आसाम में बदरपुर के नजदीक बरबक्र नदी के किनारे कपिलाश्रम रहने का प्रमाण मिलता है। वर्तमान काल में भी आसाम के कपिलाश्रम में सिद्धेश्वर शिव विराजमान है।

द्विल –109

यह स्थान भी उनकोटी पर्वत के अन्तर्भुक्त एवं कपिल तीर्थ के नाम से परिचित है(1)। शास्त्र ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख मिलता है।

यत्र तेपे तपः पूर्वं सुमहत कपिल मुनिः।
यत्र बै कपिल तीर्थं तत्र सिद्धेश्वरो हरिः।।

वायु पुराण।

महर्षि मनु — इसके बाद यहां पर और एक महर्षि का अविर्भाव हुआ था। संस्कृत राजमाला में लिखा है–

पुराकृत युगे राजन् मनुना पूजित शिवः।
तत्रैव बिरले स्थाने मनू नाम नदीतटे।।

संस्कृत राजमालाधृत योगीनीतंत्र वचनं।

राजमाला में मिलता है,–

गुप्त भाबे आछे तथा अखिलेर पति।	गुप्त भाव से है वहाँ सदा अखिल पति।
मनुराज सत्य युगे पूजिछिलो अति।।	मनुराज ने सत्ययुग में तप किया वहाँ अति।।
मनुनदी तीरे मनु बहु तप कोइलो।	मनु नदी पर मनु ने किया घोर तप।
तद्विधि मनु नदी पुण्य नाम होइलो।।	तब से मनु नदी का हुआ महा पुण्य नाम।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 43पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 43पृ

महर्षि मनु के मनु नदी के किनारे शिव की आराधना में नियुक्त रहने की बात उद्धृत वचन द्वारा मालूम हो रही है। उक्त नदी के किनारे उनकोटी तीर्थ छोड़ कर दूसरे किसी स्थान में शिवलिंग प्रतिष्ठित नहीं है एवं प्राचीन काल में रहने की बात भी मालूम नहीं होती है। अतः इस उनकोटी में ही कपिल मुनि द्वारा स्थापित शिवलिंग की महर्षि मनु द्वारा अर्चना की गई थी, यही प्रमाणित हो रहा है। 'मनु' नाम के साथ 'राजन' या 'राज' शब्द संयोजित होने का कोई–कोई अनुमान करते है; ये महर्षि नही है; मनु नाम के कोई राजा थे। चतुर्दश मनु के प्रत्येक ही प्रजापति एवं

---

(1) इससे पहले यह वचन उद्धृत किया है और इस स्थान पर पुनः उल्लेख किया जा रहा है।

विन्ध्याद्रेः पादसम्भूतो बरबक्रः सुपुण्यदः।
दक्षिणस्यां नदस्यास्य पुण्या मनु नदीस्मृता।।
अनयोरन्तरा राजन् उनकोटि गिरिमहान्।
यत्र तेपे तपः पूर्ब्बं सुमहत् कपिलोमुनिः।।
तत्र वै कपिलं तीर्थं कपिलेन प्रकाशितम्।
लिंगन्च कपिलं तत्र सर्व्वसिद्धिप्रदं नृणाम्।। — उनकोटी तीर्थ माहात्म्य

इसके द्वारा जाना जा रहा है कि कैलाशहर से कछाड़ के पश्चिम भाग में पर्वतमाला तक उनकोटी शैल के अन्तर्गत है एवं यह समग्र पार्वत्य प्रदेश कपिल तीर्थ के नाम से जाना जाता है। हमारे कथित उनकोटी तीर्थ एवं आसाम का कपिलाश्रम, यह उभय(दोनों) स्थान इसी सीमा के बीच स्थित हैं।

द्विल –110

एवं मन्वन्तर में प्रथम राजा, यह बात उन लोगों ने नहीं सोचा था। मनु एक तरफ राजा थे एवं दूसरी ओर महर्षि भी इसीलिये मनुनाम के साथ 'राजन' विशेषण युक्त हुआ है।

बरबक्र और मनु नदी की माहात्म्य शास्त्रालोचना से जाना जाता है, कपिल एवं मनु ने उनकोटी शैल को पवित्र स्थान जानकर ही उस जगह आश्रम बनाया था। इस शैल के पास बरबक्र नदी और उसके दक्षिण में प्रवाहित मनुनदी पुण्यप्रद जानकर शास्त्रग्रन्थों में वर्णित हुई है, बरबक्र नदी के सम्बन्ध में मिलता है,–

बिन्ध्यपाद समुद्भूतो बरबक्र सुपुण्यदः।
यत्र स्नात्वा जलं पित्वा नरः सदगतिमाप्नुयात।।
यज्जले मनुजव्याध्र मनुजो मृत ए बहि।
तत्क्षणादेव स स्वर्गं याति सूर्यपथेन च।।
प्राच्यदेशे मृतोजन्तु नरकं प्रतिपद्यते।
यावद्वर्ष सहस्रानि यज्जलेत्वमृतो भवेत्।।
यस्यैवं नदराजस्य बक्रे बक्रे च पुण्यदः।
तीर्थः प्रशस्तः विख्यातः बरबक्रस्ततः स्मृतः।। वायु पुराण।

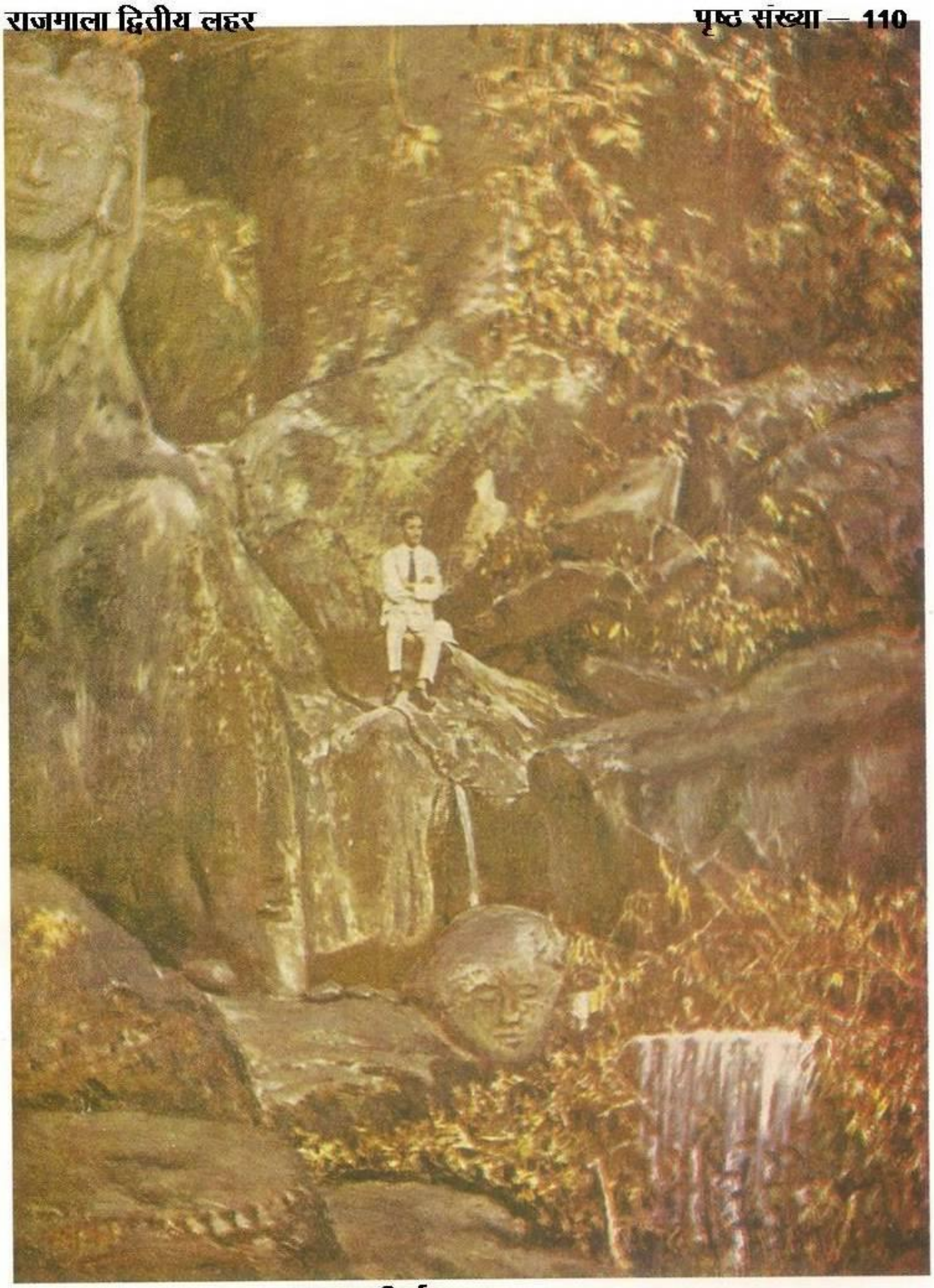
मनु नदी के सम्बन्ध में शास्त्र में वर्णित हुआ हैः–

समुद्रस्योत्तरे देशे ततो मनू नदी स्मृतः।
यं गत्वापि महाराजन् पित्वा पानीयमुत्तमं।।
मनु नद्यां महाराज बरबक्रेन संगमं।
तत्र स्नात्वा नरोयाति चन्द्रलोकं मनुत्तमं।। वायु पुराण।

मनु नदी एवं मनु और बरबक्र का संगम स्थान विशेष पुण्यप्रद कहकर, शास्त्रकारों ने उद्धृत वाक्यों द्वारा घोषणा की है।

उनकोटी तीर्थ माहात्म्य यहां पर उनकोटी माहात्म्य विषयक दो एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। बाराहीतंत्र में पीठ निर्णय प्रसंग में वर्णित हुआ है;–

उनकोटी पीठ मध्ये प्रधानं तानि शंकर।
एकान्त देवताः सर्व्वाः एवान्त दश भैरवाः।।
मनोरमोत्तर भागे उच्च भूमिं प्रदृश्यते।
तत्र कोटीश्वरं लिंग एकोनं स्वर्गमाप्नूयात्।।
तत्रा मृतन्च कुण्डन्च निर्मितं विश्वकर्मणा।
स्नात्वा पित्वा च यो भक्त्या तुल्यं बै मणिकर्णिका।।
श्राद्धन्च तर्पणन्चैव दर्शनं स्पर्शमेव च।
तत्राधिष्ठातृ देवानां सर्वतीर्थ फलं लभेत्।।
*   *   *   *
तत्रोनकोटी संलिगं लिंग काशीं विराजते।।



तीर्थ मुख
उनकोटि तीर्थ–कैलाशहर

द्विल –111

माधादि मासषट्केषु अक्षया यदि लभ्यते।
तद्दिने च महादेव सर्वतीर्थं फलं लभेत्।।   बाराही तंत्र

वायु पुराण में है –

चैत्र मासि सिताष्टम्यां अक्षया यदि लभ्यते।
तद्दिने च महापुण्यं पूण्यात्पुण्यतरौ स्मृतौ।।
अमृतस्य प्रुतिर्यत्र साक्षात् देव जनार्दन।
सर्व्वपाप हरेत् स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।   आदि

इस तीर्थ के माहात्म्य के बारे में और बहुत सी बातें हैं। यहां पर उनकी विस्तृत आलोचना की सुविधा उपलब्ध नहीं हुई। हर साल फाल्गुन महीने की कृष्णा त्रयोदसी तिथि में एवं अशोकाष्टमी में इस तीर्थ में महामेला लगता है। नाना जगहों से आए हुए यात्री लोग इस मेले में शामिल होकर स्नानादि करते हैं। उन दिनों यहां चार पांच हजार की संख्या में लोग होते थे। इसके अलावा बहुत से साधु सन्यासियों का भी समावेश होता है।

उनकोटी तीर्थ दर्शन मेरा चार बार इस तीर्थ के दर्शन का सौभाग्य हुआ है। स्वर्गीय महाराज राधाकिशोरमाणिक्य बहादुर के इस तीर्थ यात्रा के समय उनके साथ रहकर इस तीर्थ के दर्शन का सौभाग्य हुआ। इसके पश्चात् उनकोटि तीर्थ दर्शन को जो और तीन दफे गया तो देखा कि वहां के बहुत सी देवी और देवतायों की मूर्तियां ध्वंस हो चुकी है। सन् 1897 के प्रबल भूकम्प के फलस्वरूप इन मूर्तियों की भयानक क्षति हुई है। पहले ही कहा गया है बहुत सी मूर्तियां पहाड़ की दीवारों पर अंकित हैं। इस भूकल्प से इन मूर्तियों को बड़ी क्षति पहुंचती है। त्रिपुर राज्य के भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. धनंजय ठाकुर महोदय ने 1302 त्रिपुराब्द में (1892 ई सन) में इस स्थान पर उनकोटिश्वर शिव हरगौरी, विष्णुपद, काल भैरव, वासुदेव, राक्षस ओर राक्षिसिनों की मूर्तियां, हनुमान, पंचमुख शिव, गणपति, लक्ष्मी, रावण, राम–लक्ष्मण, शिवलिंग, चन्द्र एवं सूर्य का दर्शन किया था। अस्पष्ट अंकन देख अधिकांश मूर्तियां का परिचय संग्रह नहीं कर सके।

उनकोटी तीर्थ के प्रतिष्ठित विग्रह समूह हमारे प्रथम दर्शन के समय इन मूर्तियों में अधिकांश ही अक्षत थे। बाद में देखा गया कि उनमें बहुत सी मूर्तियां ध्वंस हो गई है। पर्वत श्रृंग पर स्थित पत्थर की मूर्तियां कुछ टूट गई हैं, कुछ तो सम्पूर्ण उनकोटि तीर्थ में प्रतिष्ठित विग्रह कुछ पूरी और कुछ आंशिक रूप से ध्वस्त हुई हैं, जो रह गई हैं वे भी बहुंत दिनों तक अक्षत रह पाएगी? ऐसा नहीं लगता। क्रमशः विनष्ट हो जाएंगी। सभी मूर्तियों में शिल्प पूज्य न रहने पर भी प्राचीनत्व का निदर्शन तो इनमें हैं। सुदीर्घ कालों तक अनावृत रहने की वजह से नाना तरह के प्राकृतिक विपदा में खासतौर से बरसात

द्विल –112

में बौछारों से से क्रमशः क्षय को प्राप्त होती रही है और अब भी इनका परिचय नहीं हो पा रहा है। उनकोटि श्रृंग के पश्चिम किनारे में खोदी गई मूर्तियों से अस्पष्ट और भग्नावस्था से अब भी किसी तरह दस महाविद्या, राम –रावण युद्ध और पूतना वध आदि की कुछ मूर्तियों को पहचाना जा रहा है। मूर्तियां केवल प्राकृतिक नियमों की वजह से ही नष्ट हुई हैं, ऐसी बात नहीं, ईस्वी सोलहवीं सदी के मध्य भाग में काला पहाड़ के द्वारा भी इस तीर्थ की बहुत क्षति हुई थी। इस तरह की एक जनश्रुति है। इसके करीब भुवनेश्वर तीर्थ और तुंगेश्वर शिव को उनके ध्वस्त किया था। इस अवस्था में इतनी अधिक संख्या में देव –देवियों की मूर्ति से भरे इस उनकोटि तीर्थ में उसके आने की संभावना ही अधिक लगती है।

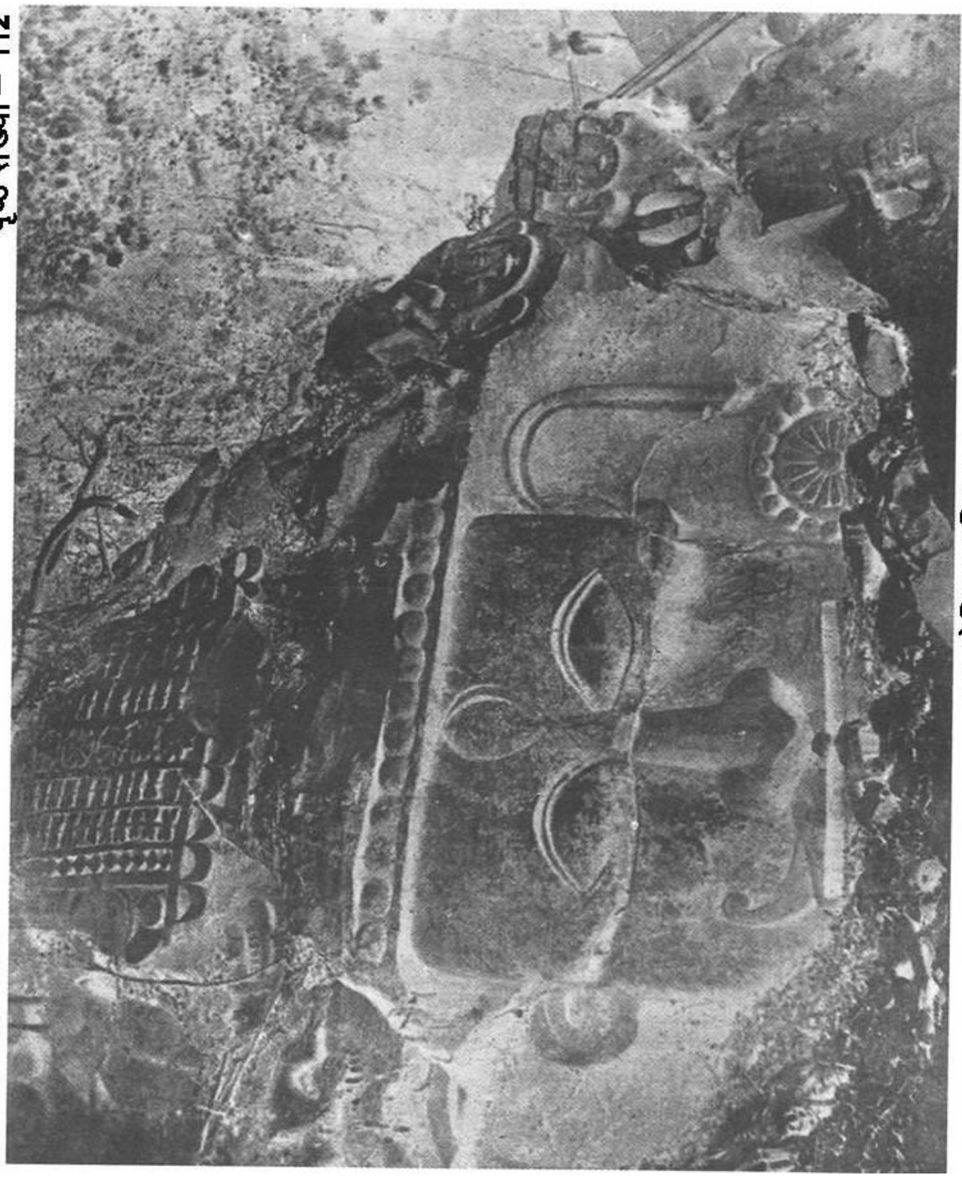
उनकोटिश्वर शिव विग्रह एक जगह पर इतने अधिक विग्रह केवल ही दो एक प्रसिद्ध जगह को छोड़कर और कहीं हैं या नही, पता नहीं है। इनमें पर्वत पर सटे पत्थरों में उनकोटिश्वर शिव की बात विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इस विशाल मूर्ति के नीचे का अंश नष्ट हो गया है। ऊपर का अंश अभी भी पहाड़ से सटा हुआ है। इस मूर्ति के एक कान से दूसरे कान तक की चौड़ाई चौदह हाथ है। दरवाजे की तरह दोनों कान में विशाल ढाल की तरह दो कुण्डल शोभित हैं। एक और की मूंछ टूट गई है। दूसरी ओर की मूंछ डेढ़ हाथ लम्बी है। हाथ में त्रिशूल और पैरों के यहां पर दो विशाल वृष विराजमान हैं। दोनों वृष पहाड़ी से खिसककर नीचे समतल भूमि पर गिर पड़े हैं। इस तरह की विशाल मूर्ति पहले हमने कभी नहीं देखी। कई लोगों का सोचना है कि ये सभी मूर्तियां त्रिपुरेश्वरों से प्राचीन हैं। यह धारणा भी समर्थन योग्य नहीं है। इसका कोई प्रमाण भी नहीं है। बल्कि इसके विपरीत सिद्धांत में पहुंचने के सूत्र विद्यमान है जिन की आलोचना नीचे की जा रही है।

प्राचीन मन्दिर के लुप्तप्राय निदर्शन इस तीर्थ स्थान पर एक मन्दिर था। उसके विलुप्त होने के चिन्ह एवं ईंट पत्थरों के अंश अब भी पर्वत श्रृंग पर मौजूद हैं। यह मन्दिर किसका बनाया हुआ था इसे कोई भी निर्णय करने में सक्षम नहीं। प्राचीन मन्दिर के लुप्तप्राय निदर्शन नहीं हो सका। इस विषय में पूज्यवाद श्रीयुक्त पण्डित चन्द्रोदय विद्याविनोद जी ने कहा हैः–

"श्रृंगाग्र पर पत्थर और इंटे प्रर्कीण अवस्था में इधर उधर फैली हुई है। किस समय वहां पर मन्दिर था, यह अनुमान किया जा सकता है कि यह मन्दिर बहुत कम समय पहले विनष्ट हुआ है यह आसानी से समझा जाता है। इन मन्दिरों को किसने बनाया था उसका कहीं उल्लेख नहीं है। फिर भी अनुमान करने का यथेष्ट कारण है कि उसे त्रिपुर नरपतियों ने बनाया था। क्योंकि त्रिपुराधीश्वरों में अनेक ने पूण्य बुद्धि से प्रेरित होकर उनकोटि तीर्थ की यात्रायें की थी।" इत्यादि

श्रीश्रीयुत की कैलासहर परिभ्रमण पुस्तिका।

द्विल –112
2nd Leher-Page-112



उनकोटिश्वर शिव
उनकोटि तीर्थ – कैलाशहर

द्विल –113

श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता ने इस विषय में विद्याविनोद महाशय की उक्ति को ही उद्धृत किया हैं। अपना अभिमत प्रदान नहीं किया।(1)

अध्यापक श्रीयुत अमूल्यचरण विद्या भूषण महाशय ने कहा है–''जब स्व. राधाकिशोरमाणिक्य बहादुर उनकोटि गए थे तब उन्होने अल्प काल में पहले के एक नष्ट मन्दिर का भग्नावशेष देखा था। यह मन्दिर किसने बनाया था यह जानने का कोई उपाय नहीं है।''

ये लोग अगर थोड़ा अनुसंधान करते तो जानते कि राजमाला में ही मन्दिर निर्माता का नामोल्लेख है व देख पाते –

संस्कृत राजमाला में मिलता है

विमारस्य सुतो जातः कुमारः पृथ्वीपतिः।।
स राजा भुवनख्यातः शिवभक्तिपरायणः।
किरातराज्ये स नृपश्छाम्बुल नगरान्तरे।।
शिवलिंगं समद्राक्षीत् सुबड़ाई–कृत–मठे।
ततः शिवं समभ्यर्चे नित्यं तुष्टाव भूमिपः।।

राजमाला में लिखा है –

बिमार होइलो राजा ताहार तनय।	हुए राजा उनके तनय नाम हुआ बिमार।
तार पुत्र कुमार परेते राजा होय।।	उसके बाद राजा हुए उनके पुत्र कुमार।।
किरात अलये आछे छाम्बुल नगर।	किरात देश में है छाम्बुल एक नगर।
सेई राज्ये गियाछिल शिव भक्ति तर।।	उस राज्य में गया था शिव भक्ति तर।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 42पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 42पृ

सुबड़ाई खुंग नाम महादेव स्थान।	सुबड़ाई खुंग नाम है महादेव स्थान।
करिल प्रनति भक्ति सेई भाग्यबान।।	किया प्रणति भक्ति वह भाग्यवान।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 43पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 43पृ

अर्थात – बीमार पुत्र कुमार बाद में राजा हुए। किरात देश में छाम्बुल नगर है। वहां पर शिवभक्ति परायण सुबडाई ने वहां पर मठ का निर्माण किया।।

गुप्त भाबे आछे तथा अखिलेर पति।	गुप्त भाव से है वहाँ सदा अखिल पति।
मनुराज सत्य युगे पूजिछिलो अति।।	मनुराज ने सत्ययुग में तप किया वहाँ अति।।
मनुनदी तीरे मनु बहु तप कोइलो।	मनु नदी पर मनु ने किया घोर तप।
तद्विधि मनु नदी पुण्य नाम होइलो।।	तब से मनु नदी का हुआ महा पुण्य नाम।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 43पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 43पृ

छाम्बुल नगर का अवस्थान निर्णय

यह ''छाम्बुल नगर'' उनकोटि और इसके आसपास के कैलासहर का प्राचीन नाम छाम्बुल नगर कहा जाता है। विश्वकोष संकलनकार चन्द्रशेखर ने पर्वत को छाम्बुल नगर का अवस्थान निर्णय व अनुमान किया है। यह उनकी भंयकर भूल है। उद्धृत वाक्य से ही जाना जाता है कि यह स्थान मनु नदी के किनारे किरात के देश में अवस्थित है। किनारे की सभी जगहों को कहा जाता था। वहां पर शिवलिंग स्थापित है, राजा सुबड़ाई ने वहां एक मठ निर्माण कराया था। राजा सुबड़ाई महाराज त्रिलोचन का ही दूसरा नाम है। हमारा कथित उनकोटी तीर्थ मनु नदी है व तीर पर पड़ने वाले सभी राज्यों को किरात देश कहा जाता था, वर्तमान काल में भी इसके करीब ही किरातों (कुकि) का निवास है। यहां अब भी उनकोटिश्वर शिव

---

(1) श्रीहट्ट का इतिवृत्त –प्रथम भाग, नवम अध्याय।

द्विल –114

विराज करते हैं एवं प्राचीन मन्दिर का चिन्ह अब भी विद्यमान है। ये सारी परिस्थितियॉ पूर्व उद्धृत राजमाला के वाक्यों के साथ पंक्ति दर पंक्ति मिलती है। मनु नदी के नजदीक इस तरह और कोई स्थान नहीं है। अतएव छाम्बुलनगर उनकोटी का ही नामान्तर है एवं वहां का मन्दिर महाराज त्रिलोचन (सुबड़ाई) द्वारा निर्माण किया गया था। इस विषय में किसी तरह का विरोध रह नहीं सकता। यहां के ईंटो की गढ़न प्रणाली से भी उनकी प्राचीनता का परिचय मिलता है।

विग्रह समूहों का प्राचीनत्व पहले कहा गया है उनकोटि के विग्रह समूहों को त्रिपुरेश्वरों की प्राचीन की कीर्ति कह कर स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऊपर लिखी हुई अवस्था की पर्यालोचना से यह ज्ञात होता है कि महाराज त्रिलोचन द्वारा मन्दिर निर्मित होने के पहले यह स्थान तीर्थ क्षेत्र मात्र था, त्रिलोचन ने मन्दिर का निर्माण मात्र कराया था। किंतु विग्रह स्थापन कथा राजमाला या अन्य किसी ग्रन्थ में इसका वर्णन नहीं है। विग्रह समूहों का प्राचीनत्व व उनके द्वारा किसी विग्रह की स्थापना की बात कहीं नहीं है। त्रिलोचन के पहले कैलासहर अंचल में त्रिपुरेश्वर गण के प्रभुत्व स्थापन का कोई प्रमाण नहीं है, अतएव उनके पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा भी उनकोटि के मूर्तियों की प्रतिष्ठा की कोई भी संभावना दिखाई नहीं देती है। अवस्था की सम्मुख आलोचना से यह महर्षि कपिल तथा महर्षि मनु की कीर्ति ही प्रतीत होती है(1)। मूर्तियां एक ही समय की खोदित या निर्मित नहीं है। उनकी आकृतियों को देखकर अनेक विशेषज्ञों ने यह अभिमत व्यक्त किया है। उन ऋषियों के एक के कार्य के बाद परवर्ती समय में दूसरे के द्वारा सम्पन्न किया गया था, यह सुनिश्चित है। अतएव विशषज्ञों का यह सिद्धांत अमूलक नहीं कहा जा सकता। उन ऋषियों के पश्चात कोई कोई मूर्ति त्रिपुरेश्वरों द्वारा स्थापित होना भी कोई विचित्र बात नहीं होगी।

यह स्थान जैसा निर्जन है, वैसा ही मनोरम भी है। उनकोटि का सोता जहां पर पत्थरों के बीच से प्रवाहित होता है वह स्थान भी अति सुन्दर है।

उनकोटि तीर्थ का प्राचीन और आधुनिक अवस्था प्राचीन काल में उनकोटि विशेष जाग्रत तीर्थ था। इस जगह को देखने पर यह स्पष्ट ही प्रतीयमान होता है। बाद में यहां यात्री समागम कम हो जाने का कोई विशेष कारण था, यह अनुमान करना अस्वाभाविक नहीं है। अभिनिवेश चित्त से आलोचना से यह देखा जाएगा। उन दिनों यह स्थान अति दुर्गम था एवं इसके आसपास विस्तृत

---

(1) भविष्य पुराण के ब्रह्म खण्ड में 19 वीं अध्याय –

मेघनानद्या पूर्व्वकच्छे द्विसहस्र ब्यतीक्रमे।
कपिल लिंग सन्निधौ ग्रामोहि नव पालकः। 42 श्लोक

बहुत से लोग सोचते है कि श्लोक के मेघना नदी के पूर्व तीरवर्ती कपिल लिंग या उनकोटि तीर्थ स्थित शिवलिंग अभिन्न हैं। यह धारणा असंगत नहीं है। आसाम स्थित कपिल मुनि द्वारा स्थापित लिंग का नाम सिद्धेश्वर शिव है। उनकोटि तीर्थ के अलावा उस अंचल में अन्य किसी स्थान पर कपिल मुनि द्वारा स्थापित कोई शिव नहीं है। अतएव इस तीर्थ के शिव ही ''कपिल लिंग'' नाम से अभिहित होता है, संभव है।



डम्बूर जल प्रपात – उर्ध्वस्तर

द्विल –115

नर भक्षी ओर उग्र स्वभाव वाले कुकियों की आवास भूमि थी। अतएव पथ कष्ट एवं कुकि भीति की वजह से इस तीर्थ की अवनति हुई है, ऐसा सोचना गलत नहीं होगा। इस स्थान के अधिष्ठाता महर्षिगणों के तिरोधान के पश्चात् इस तीर्थ की मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिए किसी तरह के प्रयत्न अथवा समागत यात्रियों की सुविधाओं के प्रति किसी की ध्यान देने के कोई प्रमाण नहीं है। इन्हीं कारणों से क्रमशः यह तीर्थश्री नष्ट भ्रष्ट हो गया।

इस समय (उन दिनों अंग्रेजों का जमाना था) आसाम बेंगाल रेलवे के सौजन्य से इस तीर्थ में यात्रियों की संख्या क्रमशः वृद्धि हो रही है पर इसके अतीत की मर्यादा लौट आने की आशा नहीं की जा सकती। भविष्य से यदि पुनः कपिल और मनु की तरह किसी महामानव का आविर्भाव हो तो शायद उनके पवित्र चरण स्पर्श से लुप्त तीर्थ का महात्म्य पुनः जाग्रत हो भी सकता है, किन्तु ऐसा दिन सुदूर ही लगता है।

डम्बुर या डुंगु तीर्थ

विजयमाणिक्य खण्ड में लिखा है –

नरपतिर दुई पुत्र जन्मे क्रमे क्रम।	नरपति के क्रम से दो पुत्रों का हुआ जन्म।
डुंगु तीर्थे जन्म ज्येष्ठ डुंगुर नाम उत्तम।।	डुंगु तीर्थ में जन्मे ज्येष्ठ डुंगुर नाम उत्तम।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 61पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 61पृ

डम्बुर तीर्थ के अवस्थान का निर्णय नरपति के क्रमशः दो पुत्र हुए। डुंगुर तीर्थ में जन्म होने की वजह से ज्येष्ठ पुत्र का नाम ''डुंगुर फा'' रखा गया था। डुंगु तीर्थ साधारणतया ''डम्बुर'' में जन्म के कारण महाराज विजयमाणिक्य ज्येष्ठ का नाम डुंगुर नाम से जाना जाता है। इस डुंगुर तीर्थ को साधारणतः डम्बुर, यूरोपियन इसे डुमरी फाल(**Dumeria-Fall**) कहते हैं कि यह सुदृश्य जल प्रपात है। इसी जल प्रपात से गोमती नदी की उत्पति हुई है। अठारह मुड़ा पर्वत से उत्पन्न छाइमा नदी एवं लंगतराई पर्वत से उत्पन्न राइमा नदी गोमती की आदिमाता है। उसके निचले हिस्सों में और अनेक नदियों एवं सोते के आत्मसमर्पण द्वारा गोमती का पुष्टि विधान हुआ हैं। जिस जल धारा से गोमती नदी निकली है उस जलधारा का नाम डम्बुर है, ऐसा अनेक लोगों का मत है। इस जल प्रपात की आकृति महादेव के हस्तस्थित डमरू के आकार विशिष्ट है और इसलिए इसका नाम डम्बुर हुआ है, डुंगु शब्द डम्बुर शब्द का ही अपभ्रंश लगता है।

डम्बुर तीर्थ का संक्षिप्त विवरण यह स्थान भी अति निर्जन है। इस स्थान का मनोमुग्धाकर दृश्य जिन्होंने देखा है, वही मोहित हो गए है। पत्थरों से घिरा और पत्थरों के ही चारों ओर से आई जल प्रपात की जल धारा से सब से नीचे मण्डलाकार 100 हस्तपरिमित व्यास के एक कुंड की सुष्टि हुई है। इस कुंड की गहराई बीस हाथ होगी। इसके ऊपर और भी बड़े कुंड हैं। प्रत्येक कुण्ड का विशेष विशेष नाम है। साधारणतः प्रथम कुण्ड को रानी कुण्ड कहते हैं, चतुर्थ कुण्ड को काछुआ कुण्ड और एक कुण्ड को कमला कुण्ड कहा जाता है। यह

द्विल –116

सुदृश्य जल प्रपात को पूर्वकाल में तीर्थ कहा जाता था। यहां पर अनेक यात्रियों का समागम होता था। त्रिपुरेश्वर गण अनेक समय सपरिवार वहां जाकर स्नान दानादि करते थे। उस समय महारानियां जहां स्नान करती थी, उसे रानी कुण्ड कहा जाता था और काछुआ रानियों के निमित्त निर्धारित कुण्ड को काछुआ कुण्ड कहा जाता था। संभवतः महाराज धन्यमाणिक्य की महिषी महारानी कमला महादेवी के नाम से कमला कुण्ड नाम हुआ है।

यहां पर क्रमानुसार सात कुण्ड रहने की वजह से कुछ लोग ''सात डम्बुर'' या ''सातताला'' कहते हैं। क्रमानुसार नीचे सात स्तरयुक्त काले पत्थर के ऊपर से रजतनिम जलराशि अनुच्च शब्द करती नीचे की ओर गिरती है इससे इसकी शोभा और भी मनोज हो उठी है।

काल के प्रभाव से यह सुरम्य और निर्जन स्थान तीर्थ की मर्यादा को बहुत मायने में खो देने पर भी मनोहारित्व के निमित्त अब भी सर्वजन समादृत हैं। कवि और चित्रकारों के लिए यह स्थान अवश्य दर्शनीय है।

सामरिक बल और समर इत्यादि विषयक विवरण

सामरिक बल

महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में त्रिपुरा के सैन्यबल की अति वृद्धि हुई थी। उन्होने बारह करोड़ सेना लेकर मुसलमानों के सैनिक विभाग की प्रणाली की तरह अपने सेनाओं का गठन किया था(1)।

विजयमाणिक्य का बंगाभियान महाराज विजयमाणिक्य का सामरिक बल भी विशेष दृढ़ था। बंगाभियान के समय उनके साथ नौवहन में पांच हजार नौकाएं थी। इसके अलावा एक हजार अश्वारोही, बहुसंख्यक गोलन्दाज और तीरन्दाज के साथ छब्बीस हजार पदाति सेना भी थी। उनके अश्वारोही दल

....

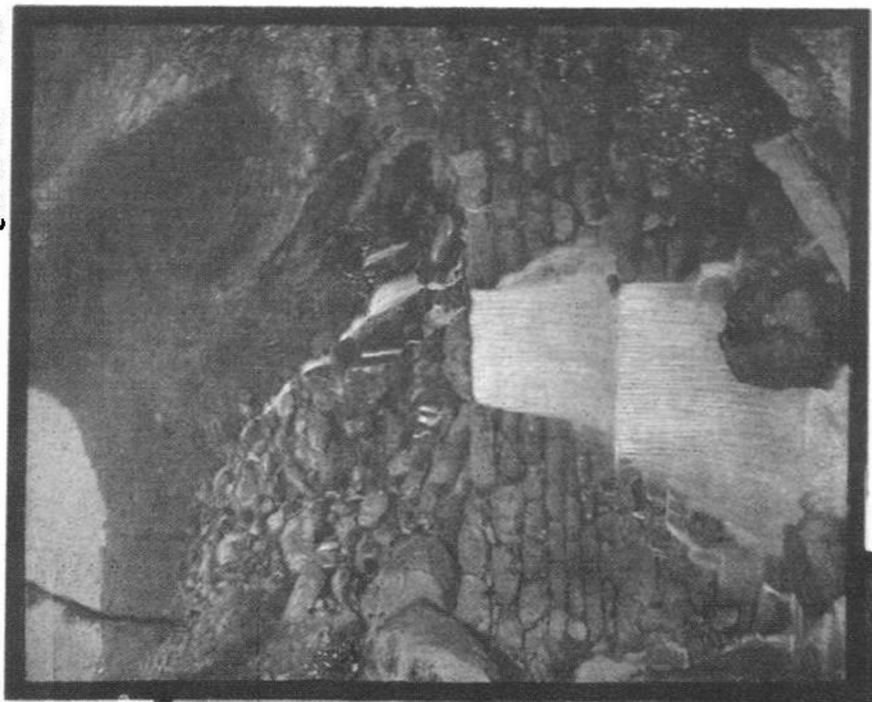
(1)

गौड़ेश्वर सैन्य मतो सैन्य जे राजार।	गौड़ेश्वर की सैन्य जैसी सेना हुई नरपति।
बार कोटि पदाति नृप करये प्रचार।।	किया प्रचार सैन्य संख्या है बारह कोटि।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ

अर्थात गौड़श्वर की सेनाओं की तरह इनकी भी सेना थी। राजा ने बारह करोड़ पदाति सेना का प्रचार किया।

इस समय त्रिपुर राज्य वासी पुरूष मात्र ही योद्धा और सैनिक विभाग के साथ जुड़े हुए थे। उस समय राज्य की सीमा भी बहुत दूर तक विस्तृत थी। सेनाओं में सभी को सदा सैनिक रूप से उपस्थित रहना नहीं पड़ता था, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर युद्ध के लिए जाने पर सभी मजबूर थे।

द्विल –116
2nd Leher-Page-116

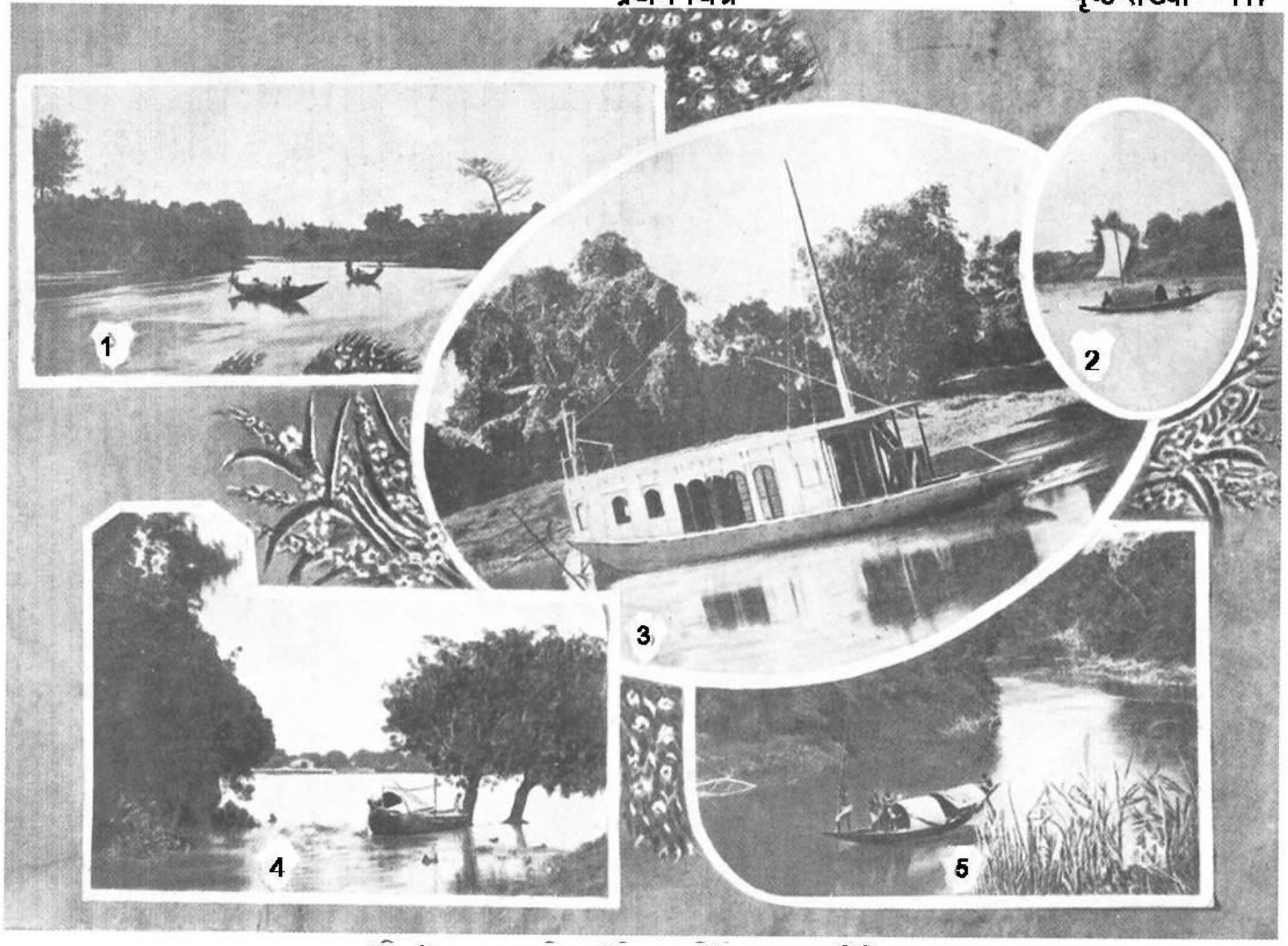


डम्बूर जल प्रपात
निम्नस्तर



डम्बूर जल प्रपात
मध्यस्तर

प्रथम चित्र



त्रिपुरेश्वर महाराज विजयमाणिक्य का नौसेना
(1) सुथार नौका (2) डिन्गी नौका (3) पिनिश (कोष) नौका (4) लाखाई नौका (5) पान्सी नौका

द्विल –117

के साथ एक हजार सेना जल पथ से गई थी। ये राजा के अंग रक्षक थे। इस बारे में राजमाला में है –

एई अबकासेते विजयमाणिक्य राजा।	इस बीच में विजयमाणिक्य राजा।
बंगदेशे चलीलेक लोइया सैन्य प्रजा।।	बंग देश चला लेकर सेना प्रजा।।
पंच सहस्र नौकार कोरीलो साजन।	पांच हजार नावों को सजाया।
एक सहस्र अश्व राखे नौकाते आपन।।	एक हजार घोड़े नाव में अपने साथ रखा।।
नौका प्रति पंच बन्दूक पंच तीरन्दाज।	प्रति नौका पांच बन्दूक व पांच तीरन्दाज।
आर नौकाय राखिलेक पदाति समाज(1)।।	शेष नौकाओं में पैदल रखा(1)।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 54पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 54पृ

अर्थात "इसी अवसर पर विजयमाणिक्य राजा ने अपनी सेनाओं के साथ तथा कुछ प्रजाओं को लेकर बंगदेश की ओर चले। पांच हजार नौकाओं की व्यवस्था की और एक हजार अश्वाराहियों को नौका में रखा। एक एक नौका में पांच बंदुकधारी और पांच तीरन्दाज रखा और दूसरी नौकाओं में पदाति को रखा। मुगल सम्राट अकबर के मंत्री अबुल फजल ने अपनी लिखी 'आइन–इ–अकबरी' ग्रंथ में लिखा है –

"भाटी प्रदेश के(2) साथ संलग्न एक स्वाधीन राज्य है उस राज्य का नाम तिप्रा(त्रिपुरा) है। उसके अधिपति का नाम विजय मानिक (माणिक्य) है। * * * इस राजा के पास दो लाख पदातिक और एक हजार हाथी हैं किन्तु अश्व अति विरल हैं(3)।

त्रिपुरा वंशावली की आलोचना से ज्ञात होता है कि विजयमाणिक्य के साथ जो पांच हजार रणतरियां गई थीं उनमें पिनिश (कोष नौका) पानसी, कोन्दा(4)

....

(1) इस अभियान के बारे में रेवरेण्ड लांग साहब ने कहा है –

At this time Bijoya Raja of Tripura marched to Bengal with an army composed of 26,000 infantry and five thousand horses besides artillery; he went by 5,000 boats along the streams Brahmaputra and Lakhi to the Padma.

J.A.S.B. -Vol . XIX

(2) हुगली नदी के तीर से मेधना नदी तीर तक निम्न भूमि को मुसलमान इतिहास लेखक गणो ने भाटी नाम से परिचित कराया है। जिला चौब्बीस परगना, खुलना, यशोहर, फरिदपुर, बाखरगंज और ढाका जिले के कुछ अंश भाटी प्रदेश के अन्तर्गत थे।

(3) अबुल फजल ने "अश्वअति बिरल" कहा है। विजयमाणिक्य अभियान के समय पांच हजार अश्वारोही साथ रहने की बात कही गई है। त्रिपुर वंशावली की आलोचना से जाना जाता है कि विजयमाणिक्य ने दस हजार पठानों को अपने अश्वरोही सेनाओं में भर्ती किया था। राजमाला में कहा गया है –

"तत्पोरे दस हाजार पाठान आनिया।
अश्वारोही पदे राखे नियुक्त कोरिया।।"

अर्थात – इसके पश्चात् दस हजार पठानों को लाकर अश्वारोही नियुक्त किया।

इस अवस्था में 'अश्व विरल' कहा नहीं जा सकता। इसके अलावा जो एक हजार हाथी समर भूमि में प्रेरण करने के सक्षम हैं वे बंगेश्वर से अधिक पारगंत थे यह बात स्वीकार्य है।

(4) कोन्दा –यह नौका बृहादाकार वृक्ष की खुदाई करके बनाई जाती है। इसमें लकड़ी में कोई जोड़ नहीं है। कही भी लोहे कॉटी इत्यादि नहीं है

द्विल –118

मरकोष(4), लाखाई(5), सरंगा(6), पलोयार(7) एवं उथार(8) आदि नाना जाति की नौका थीं।

उदयमाणिक्य का शासन काल – सैनिक बल

उदयमाणिक्य के शासन काल में त्रिपुरा के सैनिक विभाग कुछ मायने में कमजोर था। उदयमाणिक्य के शासन काल में सैनिक बल में भी कमजोरी या दुर्बलता थी। पठानों के आक्रमण के समय चट्ट ग्राम की रक्षा के लिए बावन हजार सेना और तीन हजार सेनापति समर क्षेत्र में भेजे जाने के प्रमाण मिलते हैं। राजमाला में है –

राज भगिनीपति रणागण नारायण।	राजा भगिनीपति रणागण नारायण।
सेनापति करे ताके सैन्येर रक्षण।।	सेनापति ने किया उसे सैन्य के रक्षण।।
बायान्न हाजार सैन्य तार संगे दिलो।	बावन हजार सेना उसके साथ दिया।
तीन हाजार सेनापति तार संगे छिलो।	तीन हजार सेनापति उसके साथ दिया।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

जिसके बावन हजार सेना और तीन हजार सेनापति समर क्षेत्र में भेजे जाने के प्रमाण मिलते हैं उसका सैन्य बल तुच्छ नहीं है। यह कथा अति सहज से समझने वाली है। प्राचीन काल में त्रिपुर वाहिनी विशेष शक्तिशाली एवं पराक्रान्त थी। यह विशिष्ट प्रमाण आगे मिलेगा।

त्रिपुरा में सैनिक विभाग में कर्मचारी गण विवरण

त्रिपुरा में सैनिक विभाग में नाना देश के और नाना जाति के लोगों के नियुक्त रहने के प्रमाण मिलते हैं। इनमें त्रिपुर एवं कुकि लोग ही राज्य के मेरूदण्ड स्वरूप थे। विजयमाणिक्य के शासन काल पठान जाति के एक विशाल पठान दल को अश्वारोही सेना के रूप में नियुक्त किया गया था। इस समय बहुत से बंगदेशी लोग भी आकर सैन्य विभाग में भर्ती हुए थे(9)। इसके बाद

---

(4) मरकोष –इसकी तलहटी चपटा है और यह सुप्रशस्त नौका है। क्षीण धारा पहाड़ी नदी में चलाने में यह विशेष उपयोगी है।

(5) लाखाई – इसकी भी तलहटी समतल है। इस जाति की नौका में सामने की तरफ कुछ मायने में घोड़े की मुंह की आकृति विशिष्ट प्रचलन है।

(6) सरंगा – यह अतिविशाल आकृति की नौका है। चटगांव अंचल में इस तरह की नौकाओं का अधिक प्रचलन है।

(7) पलोयार – यह अतिविशाल आकार की सुप्रशस्त नौका है। ढाका पलोयार नौका पूर्वबंग में विशेष विख्यात है।

(8) उथार – यह मछुवारों के व्यवहार के लिए बहुत लम्बे आकार की नौका है, लेकिन चौड़ाई कम होती है। ये नौकाएं बहुत तेज चलती हैं।

(9)

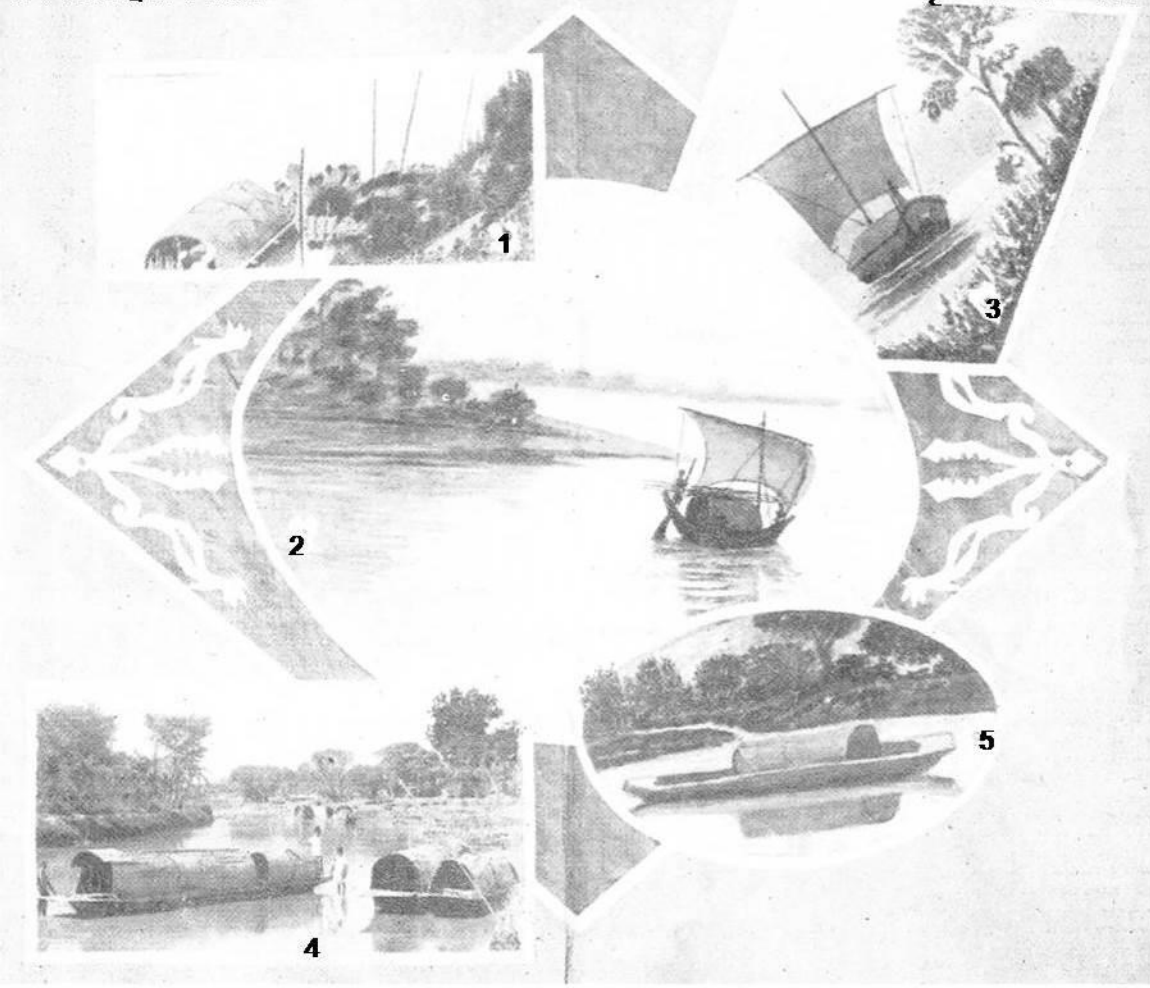
चाटीग्रामे चलिलो विजय महाराजा।	विजय महाराज चट्टग्राम चले।
दुई सहस्र चलीलेक सैन्य महातेजा।।	दो हजार महातेज सेना चली।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ

अर्थात "चटगॉव में महाराज विजयमाणिक्य महातेजस्वी दो हजार सेनाओं को लेकर चले।"

चाटीग्राम राजा संगे सहस्र पाठान।	चट्टग्राम राजा के साथ हजार पठान।
प्रचण्ड उजिर संगे सहस्त्र बंग यान।।	प्रचण्ड वजीर के साथ सहस्त्र बंग यान।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ

उन दिनों के बंगाली जो हीनवीर्य नहीं थे –इतिहास में इसका विस्तृत निदर्शन है।

द्वितीय चित्र



महाराज विजयमाणिक्य का नौ–वहन

(1) मरकोष नौका (2) पाल नौका (3) सरन्गा नौका (4) लं नौका (5) कोन्दा नौका

द्विल –119

मिथिला वासी, ब्राह्मण जातीय लक्ष्मीनारायण नाम के व्यक्ति ने इंद्रमाणिक्य को नाम मात्र का राजा बनाकर स्वयं राज्य शासन करना आरम्भ किया। इस समय उन्होने अढ़ाई सौ मैथिल यौद्धाओं को त्रिपुरा के सैनिक विभाग में प्रवेश कराया था।(1)

जयन्तिया अभियान में हांड़ि सेना महाराज विजय के और एक अद्‌भुत कार्य का निदर्शन मिलता हैं। जयंतियाधिपति के ऊपर रूष्ट होकर जयन्तिया अभियान में हांड़ि सैन्य को उन्हें लांक्षित और अपमानित करने के अभिप्राय से बारह हजार हांड़ि जाति के लोगों के द्वारा एक सैनिक दल का गठन कर जयन्तिया राजा को भेजा था। (2) इसके पश्चात हांड़ि लोग भी सैनिक विभाग में शामिल हो गए। ये लठैत किस्म के लोग थे। इस विषय की विस्तृत आलोचना इसके पश्चात की जाएगी।

सेनानायक

सेनानायक की निर्वाचन की प्रणाली पूर्वकाल की तरह इस समय भ्राता अथवा जामाता को सेनापति बनाने की कोई पक्का नियम न होने पर भी साधारणतः राजा के आत्मीय को ही प्रधान सेनापति बनाया जाता था। धन्यमाणिक्य ने अपने ससुर दैत्यनारायण को प्रधान सेनापति का पद प्रदान किया था। अनंतमाणिक्य के प्रधान सेनापति गोपीप्रसाद नारायण उनके ससुर थे। उदयमाणिक्य ने अपने भगनीपति रणागण नारायण के समय भी वहीं प्रधान नियोग किया था। इसके प्रमाण राजमाला में मिलते है। जयमाणिक्य के समय भी वही प्रधान सेनापति थे। इसके पश्चात् राजपुत्रों में प्रधान सेनापति करने का प्रमाण मिलता है।

---

(1)

ऐई मते वत्सरेक ब्राह्मणे शासय। — इस तरह ब्राह्मण ने एक साल राज्य किया।
आडाई शत योद्धा आनी मिथिला राखोय।। — ढ़ाई सौ योद्धा मिथिला से लाकर रखा।।
राजमाला द्विल इन्द्रमाणिक्य खण्ड 37 पृ — राजमाला द्विल इन्द्रमाणिक्य खण्ड 37 पृ

अर्थात इस तरह एक साल तक उस ब्राह्मण ने शासन किया। मिथिला से अढ़ाई सौ योद्धाओं को लाकर रखा।

(2) हांडियों के युद्धयात्रा का किंचित आभास नीचे दिया जा रहा है –

द्वादश हाजार हाडी हाते कुदाल लोइया। — बारह हजार हाडी हाथ में कुदाल लेकर।
हाडीये डगर बाद्य चले बाजाईया।। — हाडी डगर वाद्य बजा कर चले।।
चारि मास हाडी सैन्य पाइया वेतन। — हाडी सेना चार महीने का वेतन पाकर।
मद्य सुकर खाइया चलीलेक रन।। — मद्य व सुअर खाकर रण में चले।।
घुर घुरी शब्द करी डगर बाजाय। — घूम घूम कर आवाज के साथ डगर बजाया।
साजनी साजीया सब हाड़ी सैन्य जाय।। — सज धज कर हाडी सेना चली।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 44पृ — राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 44पृ

र र र र र र

अर्थात – ''बारह हजार हांड़ि हाथों में कुदाल लेकर वाद्य बजाते हुए चलने लगे। चार महीने का वेतन पाकर शराब और सूअर का मांस खाकर एक विचित्र आवाज करते हुए डगर वाद्य बजाते हुए सज धज कर हांड़ि सेना जाने लगी।''

ढेमस डगर बाजे नाचे उर्ध हाते। — ढेमस डगर बजाते नाचे हाथ उठाकर।
सुकर खेदान लाठी पाकाइया(1) माथे।। — सुअर भगाने की लाठी(1) सिर पर घुमा रहे थे।।
इत्यादि
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ — राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ

ढेमस (चमड़े का वाद्य यंत्र) बजाते हुए दोनों हाथ ऊपर कर नाचते हुए और सूअर चराने वाली लाठी सिर के ऊपर घुमाते हुए चलने लगे''

द्विल –120

दुख की बात तो यह है कि राजा के आत्मीय गणों में कोई कोई सेनापति होकर जिस तरह के प्राधान्य/प्रयासी और विश्वास घातक हुए थे, निःसृष्ट व्यक्ति गणों ने ऐसा नहीं किया। इनके कुकर्म का विवरण यथास्थान विवृत किया जाएगा।

सेनापति गणों की उपाधि सेनापतियों के पद मर्यादा के अनुसार सरदार, हजारी या हाजरा, बडुआ और नारायण इत्यादि उपाधियॉ प्रचलित थी। किसी किसी सेनापति को खॉ उपाधि रहने का प्रमाण भी मिलता है। ये पार्वत्य सेनापतियों की उपाधि जाति के थे। महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में सरदार और हजारी प्रचलन हुआ था।

राजमाला में है –

सरदार कोरिलेक अर्द्ध सैन्य दिया।	सरदार बनाया अर्द्ध सेना देकर।
हाजारी कोरिया छिलो कोतो सैन्य लोइया।।	हजारी बनाया कुछ सेना और लेकर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ

अर्थात "अर्द्ध सेनाओं को लेकर सरदार बनाया और एक हजार सेनाओं को लेकर हजारी बनाया गया था।"

एक हजार सेना जिसके अधीन थी उसे हजारी कहा जाता था।
उपाधि दी जाती थी। इन्हें हाजरा भी कहा जाता था। जयमाणिक्य खण्ड में लिखा है –

फौजेर हाजरार घर चाटिग्रामे गिछे।	फौज के हाजरा का घर, चटगॉव गया।
रसांग मर्दन नारायणेर संगेते रहिछे।।	रसांग मर्दन नारायण के संग वहीं रह रहा।।
राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 77पृ	राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 77पृ

अर्थात – "फौज के हाजरा का घर चटगॉव चला गया और रसांग मर्दन नारायण के साथ रहता है।"

बडुआ उपाधि भी धन्यमाणिक्य के द्वारा प्रवर्तित हुई थी। इस बारे में राजमाला में है –

श्रीधन्य माणिक्य राजा तदवधि सेना।	श्रीधन्य माणिक्य की तब से हुई सेना।
बडुया पदवी ख्याति कोरिलो रचना।।	बडुया पदवी ख्याति की, उन्होनें की रचना।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ

अर्थात – "श्रीधन्य माणिक्य राजा ने तब से अपनी सेना में बडुआ पद की रचना करके ख्याति प्राप्त की।"

पार्वत्य प्रदेश में सैन्य रक्षा प्रणाली पहले ही कहा गया है, प्राचीन काल में राज्य के सभी योद्धा एवं सैनिक विभाग के अन्तर्युक्त थे। उन दिनों पार्वत्य प्रधान, पार्वत्य प्रदेश सेना की रक्षा की प्रणाली के व्यक्तिगण अपने अधीनस्थ प्रजाओं के नायक के रूप में निर्वाचित होते थे एवं उन्हें सरदार हजारी और बडुआ आदि उपाधियों से भूषित किया जाता था। काल क्रमानुसार पार्वत्य जाति समूह सैनिक विभाग से विच्युत होकर रहने पर भी प्रधान व्यक्तियों को सैनिक विभाग के प्रचलित उपाधि प्रदान करने की प्रथा बंद नहीं हुई थी। उन्हें सरदार, हजारी, सेनापति और बडुआ आदि उपाधि राजदत्त सम्मान के निदर्शन स्वरूप व्यवहृत हो रहा है। (आज से पचास साल पहले लिखी गई यह टीका है जब राजतन्त्र मद में था और देश पर अंग्रेजों का शासन था –हिन्दी अनुवादक)। वर्तमान काल में पूर्व स्मृति उद्‌बोधक राजदत्त सम्मान के निदर्शन स्वरुप व्यवहृत हो रहा है।

बिनन्दिया सेना और नाजिर उपाधि

राजधानी के पार्वत्य सिपाहियों के द्वारा संस्थापित गारद के एवं पार्वत्य प्रदेश के सैनिकों की परिचालना का भार जिनके ऊपर अर्पण किया जाता था उन्हें "नाजिर' उपाधि दी जाती थी। महाराज के नजदीकी सगे संबंधी या सम्पर्कित व्यक्तियों के ऊपर ही यह भार अर्पित किया जाता था। इस श्रेणी के सेनाओं

द्विल –121

को ''बिनन्दिया सैन्य'' कहा जाता था। इस समय बिनन्दिया लोग पार्वत्य अंचल में और कुछ पुलिस विभाग में कार्यरत हैं।(1)

नारायण' उपाधि — प्रधान सेनापतियों की ''नारायण'' उपाधि थी, यह बात हम पहले भी बता चुके हैं। यह उपाधि धन्यमाणिक्य के समय से आरम्भ होकर सुदीर्ध काल तक इसके प्रचलित रहने का परिचय मिलता है। मुगल सम्राट अकबर के मंत्री अबुल फजल के आइन–इ–अकबरी ग्रंथ में लिखा है –

''भाटी राज्य के साथ संलग्न एक स्वाधीन राज्य है। उस राज्य का नाम है तिप्रा(त्रिपुरा) X X X X इस राज्य के अमीर उमराह लोगों की 'नारायण' उपाधि थी।''

अबुल फजल की यह उक्ति अभ्रान्त नहीं है। किन्तु उनके मन में भ्रम जन्मने का एक कारण था। उन दिनों नारायण उपाधि प्राप्त विशिष्ट प्रधान सेनापति गण ही राज्य शासन और मंत्रीत्व करते थे। राजपुत्रों में सेनापति पद अलंकृत कर 'नारायण' उपाधि प्राप्त करने के बहुत से दृष्टांत भी हैं। इन हालातों को देखकर कि उक्त उपाधि ''अमीर अमराहों'' को ही प्राप्य थी, ऐसा अबुल फजल विश्वास करते थे। प्रकृत रूप से यह उपाधि प्रधान सेनापतियों को दी जाती थी। राजमाला द्वितीय लहर में रणचतुर नारायण, रसांगमर्दन नारायण, दैत्य नारायण, गजभीम नारायण, विजयदुर्लभ नारायण, गोपीप्रसाद नारायण, रणागण (रंग) नारायण, चन्द्रसिंह नारायण, उड़िया नारायण (इनका नाम था भांगिल फा)(2), आगुयान नारायण, अरिभीम नारायण, गरूड़ध्वज नारायण समरजित नारायण और राजबल्लभ नारायण आदि के नाम मिलते है। ये सभी सेनापति थे और इनके कुछ लोगों के हाथ शासन भार भी था। राजमाला तृतीय लहर की आलोचना से जाना जाता है कि अमरमाणिक्य ने अपने चारों पुत्रों को सेना के नेतृत्व में रखकर उन्हे ''नारायण'' उपाधि प्रदान की थी –यथाः–

अमराबती महादेवी सति पतिमति।	अमरावती महादेवी सती पतिमति
तान गर्भे चारिपुत्र योग्यबान अति।।	गर्भजात उनके चार सुत योग्य अति।।
राजदुर्लभ नारायण, राजधर धीर।	राजदुर्लभ नारायण, राजधर वीर।
अमर दुर्लभ नारायण, युझार सिंह बीर।।	अमर दुर्लभ नारायण, युझार सिंह वीर।।
चारि पुत्र नृपतिर पदबी नारायण।	नृप चार पुत्र यदवी नारायण।
सिंहासने बसे राजा अति सुशोभन।।	सिंहासना रूढ़ राजा अति सुशोभन।।
राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 2पृ	राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 2पृ

अर्थात – आमरावती महादेबी पतिव्रता और सती थी। इनके गर्भ से चार पुत्रों का जन्म हुआ जो अति योग्य थे। राज दुर्लभ नारायण राजधर धीर, अमर दुर्लभ नारायण, जुझार सिंह वीर थे। चारों पुत्रों की उपाधि 'नारायण'' थी।

....

(1) इस बारे में कैलास बाबू ने लिखा है –गवर्नमेन्ट के पुलिस पदातिगणों की तरह ''बिनन्दिया'' उपाधि प्राप्त सेना त्रिपुराधिपति की एक तरह की सेना या प्यादा थी। इनके सरदार नाजिर उपाधि धारण करते थे। महाराज के संपर्कित कुटुम्बियों में ही यह नाजिर पद दिया जाता था। कैलास बाबू की राजमाला, प्रथम भाग चतुर्थ अध्याय पृष्ठ 49।

(2)

भांगिल फा नामेते उड़िया नारायण।	भांगिल फा नाम के थे उड़िया नारायण।
कामानेर गोलाघाते ताहार मरण।।	कमान के गोला से हुई उनकी मरण।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 71पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 71पृ

अर्थात ''भांगिल फा नाम के एक सेनापति थे जिन का नाम था उड़िया नारायण। कमान के गोला से उनकी मृत्यु हुई।''

त्रिल –122

तृतीय लहर में नारायण उपाधिधारी ओर भी अनेक सेनापति का नाम सन्निविष्ट रहा है, उसकी यथा स्थान आलोचना की जाएगी। नारायण उपाधि के बारे में विशेष विवरण इसके पश्चात हम प्रदान करेंगे।

खाड़ाइत उपाधि इसके अलावा और एक श्रेणी सैनिकों की 'खाड़ाइत' उपाधि थी। इनकी संख्या भी नितांत कम नहीं थी। महाराज विजयमाणिक्य के बंगाभियान के समय दो हजार खाड़ाइत उनके साथ रहने की बात राजमाला में उल्लेख है। जो बलशाली व्यक्ति उदयपुर स्थित सुविशाल धन्यसागर(1) का सात बार प्रदक्षिण करने में समर्थ होता था, उसकी उपाधि होती थी ''खाड़ाइत''। नीचे दिए गए विवरण से खाड़ाइत श्रेणी का परिचय मिलेगा।

महा खाड़ाइत तारा दुई सहस्र पाइक।	महा खाड़ाइत उपाधिधारी दो सहस्त्र सैनिक।
खड्ग चर्म जाठि हाते देखि भयानक।।	खड्ग चर्म लौह दण्ड हाथों मे, भयानक दैहिक।
सातबार धन्य सागर फिरिते जे पारे।	सात बार धन्य सागर जो पार कर सके।
सेई जना तार नाम खाड़ाताइया धरे।	खाड़ाताइया वही होता था सही विदित संसार।।
दिवा रात्र थाके राज द्वारेते प्रहरी।	दिन –रात के थे वे राजद्वार के प्रहरी।
बड़ो बड़ो अंग तारार विक्रमे केशरी।	बड़े बड़े अंगों उनके और विक्रम में केशरी।
राजमाला त्रिल विजयमाणिक्य खण्ड 58पृ	राजमाला त्रिल विजयमाणिक्य खण्ड 58पृ

अर्थात – खड़ग चर्मधारी दो हजार खाड़ाइत फौज थी। वे देखने में भयानक थे। धन्यसागर को जो सात बार लगातार पार करता था उसे खड़ताइया या खाड़ाइत कहा जाता था। ये दिन रात राजद्वार पर पहरा देते थे। बड़े बड़े अंगों वाले और विक्रम में सिंह समान थे।

सैनिक विभाग में गौरवसूचक उपाधि उन दिनों सेनापति लोग युद्ध जय करके अथवा कोई साहसी कदम उठाने पर उसे चिरस्मरणीय करने के निमित्त उन्हें एक एक उपाधि प्रदान द्वारा गौरवान्वित किया जाता था। यहां उस तरह की दो एक उपाधियों की बातें उल्लेख की जाती हैं। महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में रसांग(आराकान) प्रदेश के कुछ अंशों के विजेता रसांगमर्दन नारायण उपाधि से सम्मानित हुए थे। इस बारे में राजमाला में है –

राम्बु छत्रसिक राजा आमल कोरिलो।	राम्बू छत्रसिक राजा ने जीत लिया।
रसांग जिनिया किल्ला पुष्कर्णी खोनिलो।।	रसांग को जीत किला, पुष्करिणी खनाया।।
निज रसांग लोइते नारे सेनापति।	अपना रसांग ले न सके सेनापति।
रसांग मर्दन नारायण तार होइलो ख्याति।।	रसांग मर्दन नारायण की हुई ख्याति।।
राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 24पृ	राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 24पृ

अर्थात –राम्बुछत्रशिक को राजा ने अपने कब्जे में लिया। रसांग किले को जीतकर वहां पर एक तालाब बनाया। स्वयं रसांग को सेनापति नहीं ले सके। रसांग मर्दन नारायण के रूप में उनकी ख्याति हुई

और एक सेनापति ने गौड़ के विरुद्ध बार बार संग्राम करने के पश्चात ''गरूड़ध्वज'' उपाधि प्राप्त की थी। यथा –

गौड़ सैन्य संगे तार बहु छिलो रण।	गौड़ सैन्य साथ किया था बहुरण।
गरूड़ ध्वज ख्याति तार होइलो तखन।।	गरूड़ध्वज ख्याति हुई उस क्षण।।
राजमाला त्रिल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ	राजमाला त्रिल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

अर्थात – ''गौड़सेना के साथ उसका बार बार संग्राम हुआ था। इसके पश्चात् गरूड़ध्वज की आख्या उन्हें दी गई''

....

(1) इस सागर की लम्बाई एक हजार गज और चौड़ाई 270 गज थी।

द्विल –123

जिस व्यक्ति ने रणागण नारायण का मस्तक छेदन किया था अर्थात सिर को धड़ से अलग कर दिया था उन्हें 'साहस नारायण' की उपाधि दी गई थी(2)। एक सेनापति ने विशेष दक्षता के साथ हस्ती पकड़ने का कार्य सम्पन्न किया था उन्हें 'गजभीम नारायण' उपाधि दी गई थी। इस तरह की अनेक उपाधि निरर्थक नहीं है। ब्रिटिश सरदार विजयी सेनाध्यक्षों को विजय के निदर्शन स्वरूप नाना तरह की उपाधियॉ देती है, त्रिपुरा राज्य में प्रचलित उपाधि ब्रिटिश शासन के बहुत पहले से ही प्रचलित थी।

युद्धास्त्र

युद्धास्त्र के प्रकार भेद राजमाला द्वितीय लहर की आलोचना से जाना जाता है कि उन दिनों सैनिक विभाग में धनुर्बाण, खड़ग, चर्म(ढाल), जाठा, बन्दूक एवं कामान आदि अस्त्र प्रयोग में लाए जाते थे। इसका किंचित आभास नीचे दिए जा रहे हैं

1 दुई सहस्र पदाति आसिलो धनुःशरे।। साथ पदातिक धनुर्बाण ले आये दो हजार।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 15पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 15पृ

2 दुई सैन्य आगु होइया संग्राम माझार। दोनो सेना में संग्राम शुरू हुआ।।
तीर बन्दूकेर युद्ध पाछे खड़ग धार।। तीर, बन्दूक खड्ग संग युद्ध हुआ।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 47पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 47पृ

अर्थात 1 दो हजार धनुर्बाण वाले पदातिक आए।
2 दोनों सेना आगे बढ़कर संग्राम करने लगी। तीर बन्दूक के पीछे साथ खड़ग की धार भी थी।।

3 तीन सहस्र त्रिपुरगण खड्ग चर्म्म लइया। तीन हजार त्रिपुरगण खड़ग ढ़ाल लेकर।।
काटए पाठान सैन्य कोठे प्रवेशिया।। किले मे प्रवेश कर पठान सेना को काटा।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 48पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 48पृ

अर्थात –''तीन हजार सेना खड्ग और ढाल लेकर कोट में प्रवेश कर पठान सेनाओं को काटने लगे।''

4 नौका प्रति पंच बन्दूक पंच तीरन्दाज। प्रति नौका पांच बन्दूक व पांच तीरन्दाज।
आर नौकाय राखिलेक पदाति समाज।। शेष नौकाओं में पैदल रखा।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 54पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 54पृ

अर्थात ''हर नाव में पाँच बन्दूक धारी और पाँच तीरन्दाजों रखा गया था। दूसरी नौकाओं में पदातियों को रखा गया।।''

5खड्ग चर्म जाठि हाते देखि भयानक।। खड्ग चर्म लौह दण्ड हाथों मे, भयानक दैहिक।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 58प ृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 58पृ

अर्थात खड्ग ढाल, बर्छा या भाला हाथ में लिए हुए थे। जिन्हें देखने में भयानक लगता था।।

6 भांगिल फा नामेते उड़िया नारायण। भांगिल फा नाम के थे उड़िया नारायण।
कामानेर गोलाघाते ताहार मरण।। कमान के गोला से हुई उनकी मरण।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 71पृ राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 71पृ

अर्थात ''भांगिल फा नाम के एक सेनापति थे जिनका नाम था उड़िया नारायण। कमान के गोले से उनकी मृत्यु हुई।''

यह सम्पूर्ण कामान या बन्दूक का युग नहीं था। धनुर्बाण और खड्ग ढाल के साथ कामान का भी व्यवहार होता था। किन्तु इस समय किसी के भी पास आग्नेयास्त्रों की

....

(2) रणागण मस्तक काटिलो जे पाइके। रणागण का सिर जिस सिपाही ने अलग किया।।
साहस नारायण ख्याति करिलाम ताके।। साहस नारायण नाम उसे मैने दिया।
राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 76प ृ राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 76प ृ
अर्थात जिस सिपाही ने रणागण का मस्तक काटा उसे साहस नारायण की ख्याति मैने दी।

त्रिल –124

संख्या अधिक नहीं थी। अगर आग्नयास्त्रों की संख्या अधिक होती तो धनुर्बाण या भाला लेकर या त्रिशुल आदि लेकर रण क्षेत्र में प्रतियोगिता की रक्षा करना या युद्ध जय करना असंभव होता। उन दिनों केवल त्रिपुरा राज्य में ही ऐसी हालत थी, यह नहीं कहा जा सकता। त्रिपुरा के प्रबल प्रतियोगी मुसलमान भी कामान और बन्दूक के साथ धनुर्बाण और खड्ग–ढाल आदि का व्यवहार करते थे। गौड़ेश्वर होसेन शाह ने धन्यमाणिक्य के विरूद्ध 1437 शकाब्द में जिस विशाल वाहिनी को भेजा था उनके साथ ''लक्षैक पदाति चले धानुकी कटक'' (एक लाख पदातिक धनुष बाण वाली फौज चली) लिखा है।(1) महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में पठान वाहिनी ने चट्टग्राम आक्रमण किया था। ममारक खाँ नाम के एक पठान सेनापति इस वाहिनी के अधिनायक थे। इस बारे में राजमाला में लिखा है –

मोमारक खॉ नामेत गौडेश्वर शाला।	गौड़ेश्वर का साला था ममारक खां।।
महावीर पराक्रम युद्धे अति भाला।।	महावीर पराक्रमी और युद्ध निपुण था।
तीन सहस्र अश्व चले ताहार संगति।	तीन हजार अश्व उनके साथ चले।।
दश सहस्र ढाली चले धानुकी पदाति।।	दस हजार चले ढाली धनुषधारी और सैनिक।
राजमाला त्रिल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ	राजमाला त्रिल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ

अर्थात – ममारक खाँ नामक व्यक्ति गौड़ेश्वर का साला था जो महावीर और पराक्रमी था और युद्ध विशारद था। तीन हजार अश्वारोही और दस हजार तीर धनुष ढाल आदि लेकर पदातिक वाहिनी उसके साथ चली।''

इससे यह प्रमाणित होता है कि पठान शासन काल में भी धनुर्बाण का प्रचलन कम नहीं था। मुगल सम्राट शाहजहाँ के पुत्रों में पारस्परिक युद्ध के समय भी तीर का व्यवहार होता था। अंग्रेजों के शासन काल में आग्नेयास्त्रों की संख्या अधिक बढ़ गई थी और उनके ऊपर ही संहार का दायित्व अर्पण कर धनुर्बाण ने चिर विदाई ले ली। उन दिनों के कवच रूपी चर्म और ढाल भी धनुर्बाण का सहगामी हो गया।

युद्ध के यान इस समय हाथी, घोड़े एवं नौका युद्ध कार्य में व्यवहार किए जाते थे। अन्य किसी तरह के प्राणी या अन्य तरीके के यान का कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

अभियान और समर

महाराज धर्ममाणिक्य जैसे धार्मिक थे उनका शासन काल भी उसी तरह शांतिमय था। उनके शासन 32 वर्ष का काल में राज्य में किसी तरह की अशांति या युद्ध इत्यादि नहीं हुए।(2)

धर्ममाणिक्य के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर सेनापतियों ने उनके कनिष्ठ एवं द्वितीय पुत्र प्रतापमाणिक्य को सिंहासन पर बैठाया था। प्रताप

---

(1) राजमाला –धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ

(2 चिरकाल राज्य पालिलेक महाराजा।	चिरकाल तक राज्य पाले महाराजा।
शत्रु नाहि छिलो तार बंचिलेक प्रजा।।	शत्रु था नहीं, पाला पोषा अपनी प्रजा।।
राजमाला त्रिल धर्ममाणिक्य खण्ड 4पृ	राजमाला त्रिल धर्ममाणिक्य खण्ड 4पृ

अर्थात –चिरकाल तक महाराजा ने प्रजाओं का पालन किया। उनका कोई शत्रु नहीं था।

द्विल –125

अधार्मिक एवं अत्याचारी थे इसलिए कुछ दिनों के पश्चात उन्हीं सेनापतियों ने उन्हें रात में मार डाला। अतएव उन्हें युद्धादि करने का समय ही नहीं मिला।

धन्यमाणिक्य का बंग विजय इसके बाद प्रताप के ज्येष्ठ भ्राता धन्यमाणिक्य ग्यारह साल की उम्र में सिंहासन पर बैठे। ये प्रबल पराक्रांत नरपति थे। राज्य प्राप्ति के कुछ दिनों के पश्चात महाराज धन्य, बंगविजय के लिए कृत संकल्प हुए एवं क्रमानुसार बंगाधीश के अधीनस्थ मेहेरकुल(3), पाटिकारा(4), गंगामण्डल(5), बगासारी(6), बेजुरां(7), कैला(8), भानुगाछ(9), विष्णाउड़ि(10), लंगला(11), बरदाखात(12) आदि स्थानों को अपने कब्जे में ले लिया था।

खण्डल वासियों का व्यवहार खण्डल परगना को अधिकार में लेते समय महाराज धन्य को कुछ परेशानी उठानी पड़ी थी। खण्डल में रहने वाले लोगों ने त्रिपुरेश्वर द्वारा नियोजित लस्कर को पकड़ कर गौड़ाधिपति के दरबार में ले जाकर हाजिर किया था। उस लस्कर को गौड़श्वर के आदेश से हाथी के पैरों तले कुचला गया और इस तरह उसकी मौत हो गई। इस कार्य का प्रतिशोध जिस तरह लिया गया था अब यहां उसका वर्णन करेंगे।

थानांछि विजय और श्वेत हस्ती की प्राप्ति इसके कुछ ही दिन पश्चात थानांछि नाम के कुकि प्रदेश में एक श्वेत हस्ती पकड़ा गया था। त्रिपुरेश्वर ने इस हस्ती को पाने के लिए अभिप्राय व्यक्त किया था। लेकिन कुकिराज ने उसे देना अस्वीकार किया। इस सूत्र पर उनके साथ त्रिपुरा का युद्ध हुआ। त्रिपुर सेनापति रायकाचाग के कौशल

---

(3) मेहेरकुल –गोमती नदी के दक्षिण किनारे का विस्तीर्ण परगना। कुमिल्ला नगरी इसी परगना के अधीन है। प्राचीन काल में मेहेरकुल और पाटिकारा स्वतंत्र राज्य था।

(4) पाटिकारा –मेहेरकुल परगना के पश्चिम सीमांतवर्ती मयनामती पहाड़ के पश्चिम किनारे अवस्थित एवं विशाल परगना हैं।

(5) गंगामण्डल –पाटिकारा परगना संलग्न दक्षिण भाग में परगना स्थित है।

(6) बगासारी –मेहेरकुल परगना के दक्षिण दिशा में स्थित यह एक परगना है। कुमिला से चट्टग्राम तक जो राजपथ चला गया है वह इसी परगना के बीच से होकर निकला है।

(7) बेजुरां –श्रीहट्ट जिला के माधवपुर थाना के इलाके का एक परगना है।

(8) कैला –कैलासहर। यह स्थान इस समय उत्तर त्रिपुरा जिला का मुख्यालय है। यह मनु नदी के तीर पर बसा हुआ है।

(9) भानुगाछ –श्रीहट्ट जिला के अन्तर्गत कुलाउड़ा थाना के अधीन एक परगना है।

(10) विष्णाउड़ि –यह एक गाँव है। यह कसबा पूर्व की ओर विशालगढ़ से उत्तर पश्चिम कोने पर बसा हुआ है।

(11) लंगला –यह श्रीहट्ट जिला का एक परगना है। उस जमाने के आसाम बेंगल रेलवे के टिला गाँव स्टेशन इस परगना के अधीन है।

(12) बरदाखात –यह त्रिपुरा जिला का एक परगना है। यह स्थान मेघना और गोमती के मध्यभाग में स्थित है। इस स्थान की अधिष्ठात्री देवी बरदेश्वरी विशेष प्रसिद्ध है

द्विल –126

और वीरत्व के प्रभाव से आठ महीने के लगातार युद्ध से अंत में विजय प्राप्त हुआ। अंत में सारा कुकि प्रदेश त्रिपुरेश्वर के हस्तगत हो गया। इस समय त्रिपुरा राज्य की सीमा पूर्व की ओर ब्रह्म् देश के साथ संलग्न थी।

चट्टग्राम अभियान और विजय महाराज धन्यमाणिक्य ने 1435 शकाब्द अर्थात 1513 ई सन में सेनापति रायकाचाग (चयचाग) के अधिनायकत्व में विशाल वाहिनी लेकर स्वयं चट्टग्राम आक्रमण किया। उन्होने इस युद्ध में जय लाभ किया गौड़ सेनाओं को चट्टग्राम से खदेड़ दिया। इस संबन्ध में राजमाला में लिखा है –

तार पोरे श्रीधन्य माणिक्य नृपवर।	इसके बाद श्रीधन्य माणिक्य नृपवर।
चाटिग्राम जिनिलेक कोरिया समर।।	चट्ट गांव जीत लिया करके समर।।
चौद्शो पांचत्रिश शाके समर जिनिलो।	चौदह सौ पैंतीस शक में जीता समर।
चाटि ग्राम जय कोरि मोहर मारिलो।।	चट्ट गांव जीतकर निकाली अपनी मुहर।।
गौड़ेर जतेक सैन्य चट्टलेते छिलो।	गौड़ की जितनी सेना थी चट्ट गांव में।
श्रीधन्य माणिक्य ताके दूर कोरि दिलो।।	उन्हें दूर कर दिया श्रीधन्य माणिक्य ने।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ

अर्थात इसके बाद श्रीधन्य माणिक्य नृपवर ने युद्ध करके चट्टग्राम को जीता। 1435 शक में समर जीतकर चट्टग्राम में अपना सिक्का चलाया। चट्टग्राम में गौड़ की जितनी सेनायें भी सब को श्रीधन्य माणिक्य ने वहाँ से खदेड़ दिया''

धन्यमाणिक्य खण्ड

होसेन शाह का त्रिपुरा आक्रमण ''कामरुप कोपता विजयी'' गौड़श्वर होसेन शाह पराजय वार्ता श्रवण कर क्षुब्ध हो उठे और गौड़ाई मल्लिक नामक सेनापति के अधीन विशाल सेना, हस्ती, घोड़ा के साथ विपुल नौवहन को त्रिपुरेश्वर के विरूद्ध प्रेरण किया। उन्होनें गोमती नदी के रास्ते कुमिल्ला आकर मेहेरकुल दुर्ग आक्रमण कर विजय प्राप्त किया। त्रिपुर सेना ने पीछे हटते हुए चण्डीगढ़ दुर्ग में आश्रय ग्रहण किया। मुगल वाहिनी ने उनका अनुसरण न करके राजधानी आक्रमण के निमित्त कृत संकल्प हुई।

इस समय त्रिपुर सेना ने कौशल क्रम से पठान सेनाओं को जिस तरह नदी के स्रोत में डूबा कर मारा था जिसका विवरण हम बाद में देंगे। उसी तरह ऐसा कौशल अवलम्बन किया कि गौड़ाई मल्लिक अपने बची हुई फौज को लेकर किसी तरह अपने प्राणों की रक्षा हेतु हुए भागने पर मजबूर हो गए थे।

धन्यमाणिक्य का आराकान विजय इस अवसर पर चट्टग्राम में पुनः गौड़ सेना का आगमन होने पर धन्यमाणिक्य ने वहाँ जाकर उस प्रदेश को सम्यक रूप से हस्तगत एवं पठानों को खदेड़ कर एक सेनानिवास की स्थापना की। इसके पश्चात् रसांग(आराकान) राजा पर आक्रमण किया और उसका कुछ अंश अधिकार कर दूर विजित प्रदेश में एक किला स्थापन और तालाब खनन कराया था। इस उपलक्ष्य में विजयी सेनापति को पूर्व कथित ''रसांगमर्दन नारायण'' उपाधि से भूषित किया गया। इस सेनापति रसांग के बाकी अंशो पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ होने पर महाराज धन्यमाणिक्य ने उनके सहायतार्थ रायकाचाग(चयचाग) और रायकछम नाम के प्रबल पराक्रान्त दो सेनापतियों को भेजा। किन्तु इस बीच होसेन शाह ने पुनः त्रिपुरा आक्रमण के निमित विशाल

द्विल –127

सेना वाहिनी प्रेरण किया। त्रिपुरेश्वर को इस बार आराकान विजय का संकल्प त्याग करना पड़ा था। यह 1437 शक (1515 ई सन) की बात है।

होसेन शाह का पुनः आक्रमण — होसेन शाह ने इस बार विपुल वाहिनी के साथ हैतन खाँ और करा खाँ नाम के दो सेनापतियों को त्रिपुरा के विरूद्ध भेजा था। इस आक्रमण में एक सौ हाथी, पाँच हजार घुड़सवार एवं एक लाख पदातिक वाहिनी थी।

इस समय त्रिपुर सेनापति रायकाचाग(चयचाग) चट्टग्राम रक्षा के निमित्त वहाँ के सेना निवास में रह रहे थे। पठान वाहिनी की आगमन वार्ता सुनकर उन्होने थोड़ी सेना चट्टग्राम में रखकर बाकी सेनाओं के साथ हैतन खाँ के विरूद्ध यात्रा किया।

इस बार पठान सेना गोमती के पथ से न आकर सराइल, कैलारगढ़(कसबा) और विशालगढ़ के रास्ते आगे बढ़ती हुई पहले जामिर खाँ गढ़ पर आक्रमण किया। इस गढ़ के अधिनायक खड्ग राय जी जान से लगकर भी दुर्ग की रक्षा नहीं कर सके। हैतन खाँ ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। पराजित त्रिपुर सेनानी ने छयघरिया दुर्ग में आश्रय लिया। हैतन खाँ ने प्रबल पराक्रम से इस दुर्ग पर भी आक्रमण कर दिया। दुर्ग रक्षक सेनापति गगन खाँ ने तीसरे पहर तक भीषण संग्राम किया था, किन्तु अंत में पठानों के प्रबलवेग को सहने में असमर्थ होकर रंगामाटी (उदयपुर) की ओर चल पड़े। इधर विजयी हैतन खाँ राजधानी आक्रमण के लिए तैयार हो गये एवं डोमधाटी के पथ पर छावनी बनाकर आक्रमण की तैयारी करने लगा।

बिना युद्ध पठान वाहिनी का पराजय — इस बार त्रिपुर सेनापति रायकाचाग(चयचाग) ने पूर्व कौशल अवलम्बन कर सम्पूर्ण रूप से कृतकार्य हुए थे। उन्होने पठानों को गोमती के पानी में डूबो कर सम्पूर्ण रूप से पराभूत किया था। इस समय पलायन तत्पर हैतन खाँ की अवस्था बड़ी शोचनीय हो उठी थी। उन्होने कहा था–

छकडियार घाटे गिया सत्य कोरि कोइलो।	छकडिया के घाट पंहुचकर उसने किया प्रतिज्ञा।
एत सैन्य संगे आमि जिनिते ना पाइलो।।	इतनी सेना साथ लेकर भी क्यों नहीं जीत सका।।
एहार अधिक सैन्य जाहार जे होय।	इससे अधिक सेना हो जिसकी सहाय।
से पुनि आसुक एथा परम निर्भय।।	वही पुनः आये यहाँ पर होकर निर्भय।।
ता होते अल्प सैन्य ना आसुक एथा।	इससे कम सेना वाले कभी न आये यहाँ
शपथ कोरिलो आमि एई सत्य कथा।।	शपथ कर कहता हूँ यह है सत्य बयां।
जे सब पाठान होय जेई योद्धा सब।	जो सब पठान हैं वही हैं योद्धा सब।
अल्प सैन्ये जेबा आसे से सब गर्दभ।।	थोड़ी सेना जो ले आये वह है गर्दभ।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 28पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 28पृ

अर्थात :– छकड़िया के घाट पर जाकर हैतन खाँ ने शपथ करके कहा, इतनी सेना साथ लेकर भी मैं जीत नहीं सका। इससे अधिक जिसके पास सेना हो वही यहाँ आए। इससे कम सेना वाले जैसे यहाँ कभी नहीं आए। यह मै शपथ करके सत्य वचन कह रहा हूँ। पठान सभी योद्धा हैं पर फिर भी जो कम सेना लाकर आयेगा वह गधा है''

द्विल –128

होसेन शाह का तीसरा आक्रमण और विजय होसेन शाह के द्वारा तीसरी बार त्रिपुरा आक्रमण के प्रमाण मिलते हैं। इस बार मुसलमान वाहिनी ने कैलारगढ़ (जाजीनगर या कसबा) दुर्ग पर आक्रमण किया था। कैलार गढ़ के पश्चिम दक्षिण की और एक मील की दूरी पर विजय नदी के किनारे पठान शिविर संस्थापित था। इसके निदर्शन आज भी है। किन्तु राजमाला में इसका कोई उल्लेख नहीं है(1)। इस समय कैलाश गढ़ के करीब जहाँ पर युद्ध हुआ था

इस में त्रिपुर वाहिनी पराजित और त्रिपुरा का अंश होसेन शाह के अधीन हो गया था। इस तरह के अनुमान का प्रकृष्ट कारण भी है। सुवर्णग्राम के स्थित मसजिद की शिलालेख से पता चलता है कि सुलतान होसेन शाह के शासन काल में ईक्लाम मुआज्जमाबाद के वजीर एवं त्रिपुरा भूमि के शासनकर्ता खोवास खाँ ने 919 हिजरी (1422 शक) में इस मस्जिद का निर्माण कराया था(2)। इस ''त्रिपुरा भूमि का शासककर्त्ता'' वाक्य के द्वारा त्रिपुरा का कुछ अंश मुसलमानों के हस्तगत होने का प्रमाण मिलते हैं।(3)

तीसरी बार के युद्ध में त्रिपुरेश्वर परास्त होने पर भी इसके द्वारा त्रिपुरा की विशेष कोई क्षति नहीं हुई थी और जो सामान्य क्षति हुई भी उसे उद्धार करने में ज्यादा विलम्ब भी नहीं हुआ था।

श्रीकर नन्दी तोषामद प्रियता पठान सेनापति छुटी खां के आदेश से कवि श्रीकर नन्दी ने 1586 शक में अश्वमेध पर्व की रचना की थी। इस ग्रंथ को ''छुटी खान का महाभारत'' नाम से जाना जाता है। होसेन शाह का पूर्वोक्त अकिंचितकर विजय के सूत्र को अवलम्बन कर, श्रीकर नन्दी ने उनके रचित ग्रंथ के पहले अंश में लिखा है –

तान ए सेनापति लस्कर छुटी खान।
त्रिपुरार ऊपरे कोरिलो सन्निधान।।

....

1 स्व. कैलाश चन्द्र सिंह महाराज ने कहा है –''कैलार गढ़ के सन्निकट होसेन शाह के साथ महाराज धन्यमाणिक्य का युद्ध हुआ था। राजमाला के लेखक ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया हैं। लगता है इसका परिणाम त्रिपुरेश्वर के लिए ज्यादा गौरवपूर्ण नहीं था –शायद इसलिए राजमाला के लेखक ने इसे गोपन रखा है।

कैलाश बाबू की राजमाला द्वितीय भाग तृतीय अध्याय

(2) **This Mosque was built in the reign of the Sultan of the age, the heir of the kingdom of Soloman, Allauddungawaddin Abil Muzaffar Hussain Shah * * * * by the great and noble Khan, namely Khawac Khan, Governor of the Land of Tipperah and Vazir of the District Muazzamabad- May God preserve him in both worlds. Dated 2nd Robi II 919 (7.6. 1513)**

J.A.S.B.- Vol. XII, I,-P.P. 333-334

(लेकिन इसमें ई सन का अंक विशुद्ध नहीं है। 919 हिजरी में ई सन 1513 नहीं हो सकता –1501 होगा। –हिन्दी अनुवादक)

(3) शिलालेख का विवरण में दिया जाएगा।

द्विल –129

त्रिपुर नृपति जार डरे एड़े देश।
पर्वत गहबरे किया कोरिलो प्रवेश।।
गज बाजी कर दिया कोरिलो सम्मान।
महा बन मध्ये तार पुरीर निर्माण।।
अद्यापि भय ना दिलो महामति।
तथापि आतंके बोइसे त्रिपुरनृपति।। इत्यादि

अर्थात इसके सेनापति छुटी खान ने त्रिपुरा के ऊपर अभियान किया। त्रिपुर नृपति जिसके डर से देश जाने से कतराते हैं, उन्होने पर्वत के गहवर में जाकर प्रवेश किया। छुटी खान ने उन्हें हाथी इत्यादि देकर सम्मान किया। महावन के भीतर उनकी पुरी का निर्माण हुआ है। फिर भी महामति (छुटी खान) ने उन्हें भय नहीं दिखाया पर आंतक से त्रिपुर नृपति उनके सामने बैठे।''

यह कवि का आश्रय दाता को वीरेन्द्र समाज के उच्च आसन प्रदान करने का व्यर्थ प्रयास को छोड़ और कुछ नहीं है। होसेन शाह का त्रिपुरेश्वर के हाथों बार बार पराजित होने की बात इसके पहले वर्णित हुई है। उनकी दुर्गति भोगने की और भी बहुत बातें हैं जो बाद में कही जाएगी। आलोचना करने से स्पष्ट ही प्रतीयमान होता है कि पूर्वोक्त वर्णन खुशामद परस्त कवि की एक स्तावकता मात्र है।

देवमाणिक्य का भुलुआ और चटगाँव विजय धन्यमाणिक्य के पुत्र देवमाणिक्य ने भुलुआ प्रदेश से लेकर समुद्र तीर तक जीत कर अपने कब्जे में कर लिया था।

धन्यमाणिक्य के पठानों के साथ युद्ध में लिप्त रहने के समय मघों ने चट्टग्राम पर अपना अधिकार कर लिया था। देवमाणिक्य ने उन्हें खदेड़ कर उसका पुनरूद्धार किया था और वहाँ पर एक थाना(सेनानिवास) संस्थापन किया था।

विजयमाणिक्य का श्रीहट्ट विजय विवरण महाराज विजयमाणिक्य ने उत्तर की ओर श्रीहट्ट और खासिया(जयंता) राज्य के कुछ अंशो पर विजय प्राप्त की थी एवं श्रीहट्ट में सेनानिवास की स्थापना कर सैन्याध्यक्ष काला नाजिर को उस देश की रक्षा के निमित नियुक्त किया था।

सुलतान सुलेमान कररानी का चट्टग्राम आक्रमण और पराजय गौड़ेश्वर सुलतान सुलेमान कररानी(4) ने त्रिपुरा जय करने के निमित्त अपने साला और सेनापति ममारक खाँ के (मतांतर में महम्मद खाँ) तीन हजार अश्वारोही और दस हजार पदाति सेना के साथ प्रेरण किया था। चट्टग्राम में ममारक खाँ के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें पहले त्रिपर सेना परास्त और पलायन को तत्पर हो गई थी, पश्चात् नवीन–बल संचय द्वारा

---

(4) राजमाला के रचयिता ने गौड़ेश्वर का नामोउल्लेख नहीं किया है। कैलास बाबू ने कहा है ''कररानी वंशज उड़िया विजयी सुलतान सुलेमान ने चट्टगांव अधिकार के लिए महम्मद खाँ नाम के एक सेनापति अधीन तीन हजार अश्वारोही और दस हजार पदाति को प्रेरण किया था।

कैलास बाबू की राजमाला– दूसरा भाग तृतीय अध्याय पृष्ठ 57।

इस संबन्ध में त्रिपुर वंशावली पुस्तिका में मिलता है।–
''बंगदेशेर अधिकारी सोलेमान छिलो।
चट्टग्रामेर थाना आसि आक्रमण करिलो।।
महम्मद खां सोलेमानेर सेनापति।
तेरह हाजार सैन्यसह होइलो उपस्थिति।।'' इत्यादि

अर्थात – सोलेमान बंगदेश के अधिपति थे। महम्मद खाँ सोलेमान(सुलेमान) के सेनापति थे। तेरह हजार सेनाओं के साथ वे आकर उपस्थित हुए।

द्विल –130

प्रबल पराक्रम से पुनः मुगलों पर आक्रमण किया। किन्तु लगातार आठ महीना युद्ध करके भी पठानों को पराजित करने के सक्षम न होने पर महाराज विजय ने क्रुद्ध होकर सेनापतियों का दण्ड विधान करते हुए श्रीहट्ट थाना(सेना निवास) से काला नाजिर को लाकर विशाल वाहिनी के साथ चट्टग्राम भेजा। इस सेनापति ने सबेरे ही युद्ध –क्षेत्र में अवतीर्ण होकर विपुल पराक्रम के साथ सारा दिन युद्ध किया। राजा द्वारा अपमानित सेनाध्यक्ष गणों में किसी ने उनकी मदद नहीं की –उनकी सहायता के लिए कोई आगे नहीं बढ़ा। नाजिर अकेले युद्ध में क्रमशः अवसन्न हो गये। चार दण्ड बेला रहते समरांगण में ही उन्होने अपनी जीवन की आहुति दी।

सभी पठान युद्ध विजयी होकर विजयोल्लास के साथ गढ़ में प्रवेश किया। रात में निश्चिंत मन से आहार बनाने में कोई जुट गया, कोई श्रांत–क्लान्त हस्ती और घोड़ो को जलपान कराने लगा, कोई खाने के लिए बैठा, इसी समय त्रिपुर सेनायें गढ़ में अकस्मात प्रवेश कर गई और उन पर आक्रमण किया। वे अप्रस्तुत/आराम में थे, अतएव उनकी अधिकांश सेना निहत हुई एवं अल्प संख्या की पठान सेना अति कष्ट से भागकर जीवन रक्षा करने में समर्थ हुई। सेनापति ममारक खाँ पकड़ा गया और उसे लौह पिंजरे में बंद करके राजदरबार में लाया गया। उसे चतुर्दश देवता के सामने बलि दी गई

विजयमाणिक्य का बंगाभियान

इसके बाद विजयमाणिक्य, मुसलमानों के बारबार आक्रमण का प्रतिशोध लेने के लिए बंगदेश आक्रमण के लिए कृतसंकल्प हुए। इस समय पठान और मुगलों से संघर्ष आरम्भ हुआ। विजयमाणिक्य का बंगाभियान से पठान लोग विशेष विवृत और तुलनात्मक मूल रूप से दुर्बल हो गये थे। सुलेमान कररानी के पुत्र दाउद इस समय बंग के सिंहासन पर अधिष्ठित थे। महाराज विजय ने पाँच हजार रणतरी, पाँच हजार अश्वारोही और चौब्बीस हजार पदातिक और बहु संख्यक गोलन्दाज सेना लेकर युद्ध यात्रा की थी। उन्होने पहले ही सुवर्णग्राम के मुसलमान शासक को पराजित कर उस प्रदेश को लूट लिया। इसके बाद क्रमानुसार लक्ष्या नदी पार करके पद्मा तीर के साथ आगे बढ़े थे। उन्होने जिस जिस पथ का अनुसरण किया जहाँ जहाँ गये थे त्रिपुर वंशावली में यह सुस्पष्ट रूप से लिपिबद्ध हुआ है। उसका यह अंश नीचे दिया जा रहा है–

"विजयमाणिक्य राजा, एमत कोरिया सज्जा,
दिग्विजये गमन कोरिलो।
गोमती नदी दिया, चले नौका भाटि बाइया,
मेघना नदेते उत्तरिलो।।
ताहे स्नानदान कोरि, चलिलेन बराबरि,
ब्रह्मपुत्र कूले उत्तरिलो।
ताहाते कोरिया स्नान, ब्राह्मणे कोरिया दान,
धलेश्वरी उजाइया चलिलो।।

द्विल –131

विक्रमपुरेर मध्ये गिया, कीर्त्तिनाशा(1) पाड़ि दिया,
कलाकोपार गड़े उत्तरिलो।
कोतो दिन सेइखाने, रहिलो आनन्द मने,
यमुना पाड़ होइये शेषे गेलो।
ब्रह्मपुत्र भाटि बाइया, नसिराबाद गड़ होइया,
मेघना नदी उजाइया गमन।
श्रीहट्ट नगर माझे, उत्तरिलो महाराजे।
देखि लोक चमकित मन।। इत्यादि त्रिपुर वंशावली।

अर्थात – विजयमाणिक्य राजा साज करके दिग्विजय के लिए निकले। गोमती नदी होकर नीचे की ओर उनकी नावें चली। नौकायें जाकर मेघना नदी में पहुँची। वहाँ से स्नान दानादि से निवृत्त होकर फिर चले और ब्रह्मपुत्र के किनारे पहुँचे। वहाँ स्नान और ब्राह्मणों को दान करके धलेश्वरी नदी के ऊपर की ओर चल पड़े। विक्रमपुर होते हुए कीर्तिनाशा पहुँच कर कला कोपार गढ़ में पहुँचे। कुछ दिन वहाँ रहकर अंत में यमुना के किनारे पहुँचे। फिर ब्रह्मपुत्र होकर नसिराबाद गढ़ में पहुँचे और पुनः मेघना नदी होकर ऊपर की ओर गए। फिर वे श्रीहट्ट पहुँचे। उन्हें देख सब के मन में आनन्द हुआ।

राजमाला की आलोचना से ज्ञात होता है कि महाराज विजय सुवर्णग्राम विजय के पश्चात लक्ष्या और इछामती नदी पारकर पदमा नदी में गए थे। इछामती के तीर वाले यात्रापुर नाम की जगह पर कुछ दिन रहने की बात भी राजमाला में पाई जाती है। इसके बाद महाराज गंगा के(2) तीर तक जय करके कैलारगढ़ आए। वहां से श्रीहट्ट गए थे। श्रीहट्ट से उसके आसपास के स्थानों का परिभ्रमण कर राजधानी रांगामाटी(उदयपुर) लौट आए। इस यात्रा में जहां जहां गए थे, उन सभी जगहों पर आसानी से उनका अधिकार हो गया था।

मघ जाति के साथ संघर्ष शेष जीवन में विजयमाणिक्य को कुछ दुर्बलता आ गई थी। इस समय वे मघों के हाथ से चटगॉव की रक्षा हेतु मघ जाति के साथ संघर्ष के लिए विशेष चिंतित थे। राक्षियां(आराकान) और राम्बुवासी मघों के समवेत चेष्टा के फलस्वरूप चट्टगांव कभी त्रिपुरेश्वर और कभी मघों के हाथों में चला गया था। विजयलक्ष्मी किस की अंकशायिनी होगी, यह अनिश्चित हो गया था।

महाराज विजय जिस साल परलोकवासी हुए उस साल विख्यात यूरोपीय भ्रमणकारी राल्फ फिच चट्टग्राम आए थे। उन्होने लिखा है –"सातगांव से मैं त्रिपुरेश्वर के राज्य से होकर चट्टग्राम गया था।

---

(1) कीर्तिनाशा –पद्मा तीर के अंश विशेष का नाम है। बंग द्वादश भौमिक अधीन चाँद राय और केदार राय के कीर्ति चिन्ह को भी उदरसात् करने के पश्चात इसका नाम कीर्तिनाशा हुआ। इनकी शेष कीर्ति राजाबाड़ीर मठ अर्थात राजा बाड़ी का मठ 1923 इ सन में इस नदी गर्भ में लीन हो गया। सलारजंग महाराज राजबल्लभ सेन राय राइया बहादुर का वास भवन सह अतुलनीय कीर्ति कलाप भी इस नदी में समा गया है। इसके दोनों किनारे कितनी छोटी बड़ी कीर्तियाँ भी इस सर्वग्रासिनी नदी में विलीन गई है। इसकी कोई सीमा संख्या नहीं है।

(2) लौहित्य के (ब्रह्मपुत्र नदी) पश्चिम भाग के गंगातीर तक महाराज विजय गए थे। राजमाला में इसके प्रमाण मिलते हैं। यथा –

लोहित्य पश्चिम भागे बसती जाह्नवी। ब्रह्मपुत्र के पश्चिम में जाह्नवी नदी है।
पूर्व भागे यमुना जे सरस्वती देवी।। पूर्व भाग में यमुना व देवी सरस्वती है।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ

अर्थात लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के पश्चिम भाग में गंगा है। पूर्व भाग में यमुना और सरस्वती है।

द्विल –132

इस समय राक्षियां और राम्बुवासी मघों के साथ युद्ध में लिप्त हुए थे। त्रिपुरापति की दुर्बलता से चट्टगांव(पोर्टग्रेण्डो) बारबार राक्षियां राजा के हाथों चला जाता था।''(2)

अनंतमाणिक्य की हत्या का विवरण विजयमाणिक्य के परलोक गमन के पश्चात उनका पुत्र अनंतमाणिक्य त्रिपुर सिंहासन पर बैठे। डेढ़ साल राजत्व करने के बाद अनन्त के ससुर और प्रधान सेनापति गोपीप्रसाद नारायण ने उसकी हत्या कर स्वयं सिहांसन पर बैठे। अनंतमाणिक्य के अल्पकाल के राजत्व में कोई संग्राम नहीं हुआ।

उदयमाणिक्य और दाउद साह सेनापति गोपी प्रसाद ''उदयमाणिक्य'' नाम धारण कर सिहांसन रूढ़ हुए। (1494 शक तदनुसार 1572 ई सन) गौड़ेश्वर ने जब सुना कि त्रिपुरा के राजवंश का विनाश कर भिन्नवंशीय व्यक्ति ने सिहांसन अधिकार किया है तो इसे ही चट्टगांव विजय का उत्तम सुयोग देखकर त्रिपुरा के विरूद्ध एक विशाल वाहिनी प्रेरण किया। इस युद्ध का शकांक राजमाला में नहीं है। पहले ही उल्लेख किया गया है कि उदयमाणिक्य ने 1572 ई सन में राज्य प्राप्त किया था। इतिहास की आलोचना से जाना जाता है कि इस समय सुलेमान कररानी का पुत्र शेष पठान शासनकर्त्ता दायुद बंग के सिंहासन पर बैठे थे। इन्होने 1575 ई सन में सम्राट अकबर की प्रभुत्व की उपेक्षा कर बिहार प्रदेश पर आक्रमण किया था एवं इस युद्ध में पराजित होकर दिल्ली का आनुगत्य स्वीकार कर संधि करने पर मजबूर हुए थे। संदेह होता है कि यही दाउद साह चट्टगाँव आक्रमणकारी हैं। परलोक गत कैलाश चन्द्रसिंह महाशय कहते हैं कि उदयमाणिक्य 1585 ई सन में सिंहासनारुढ़ हुए थे, मि जे. जी. कामिं सी–आई–इ एवं मिः इ. एफ. सेंडिज ने कैलास बाबू के मत का ही अनुसरण किया है। किन्तु यह मत अभ्रांत नहीं है। राजमाला में स्पष्ट अक्षरों में उल्लेख है कि महाराज उदय 1494 शक में (1572 ई सन) में राजा हुए थे।(3) कैलास बाबू ने और भी कहा है

''इस समय मुगलों ने चट्टग्राम पर कब्जा करने के लिए आगे कदम बढ़ाया तब यह खबर पाकर महाराज उदयमाणिक्य ने उन्हें पथ में ही रोकने के लिए एक विशाल सेना वाहिनी भेजी थी।''(4)

....

(2) **From Satagam I travelled by the country of the King of Tippera, with whom the Mogen have almost continual wars. The Mogen which be of the Kingdom of Recon and Rame be stronger then the King of Tippera. So that Chatigan or Portogrando is often times under the King of Recon (Rolph Fitch)**

(3) गौड़ेश्वरे शुने विजयमाणिक्य मरण।	गौड़ेश्वर ने सुना विजयमाणिक्य मरण।
चौद्द श चौरानब्बई शके उदय राजन।।	चौदह सौ चौरानबे शक में उदय राजन।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

अर्थात गौड़ेश्वर ने सुना कि विजयमाणिक्य की मृत्यु हो गई और चौदह सौ चौरानबे शक में उदयमाणिक्य राजा हुआ।''

(4) कैलास बाबू की राजमाला द्वितीय भाग पंचम अध्याय 65 पृ

द्विल –133

कैलाश बाबू के कथनानुसार 1585 ई सन में उदयमाणिक्य के राज्य पर अधिकार होने पर, उनके शासन काल के प्रथम भाग में मुगलों द्वारा चट्टग्राम पर आक्रमण हुआ है। उनकी यह उक्ति भी भ्रमपूर्ण है। मुगल द्वारा उदयमाणिक्य आक्रांत नहीं हुए, पाठानों के द्वारा वे आक्रांत हुए थे यह बात राजमाला में ही पाई जाती है।(5) रेवरेण्ड लांग साहब भी यही कहते हैं।(6) अतएव कैलाश बाबू का निर्धारण जो प्रमादपूर्ण है, यह बिना संकोच कहा जा सकता है।

उदयमाणिक्य का पराजय इस युद्ध में उदयमाणिक्य ने अपने भगनिपति और प्रधान सेनापति रणागण नारायण के अधीन तीन हजार सेनापति के साथ बावन हजार सेनाओं को भेजा था।(7) सेनापतियों में चन्द्रदर्प नारायण, चन्द्रसिंह नारायण, उड़िया नारायण, अरिभीम नारायण, आगुयान नारायण, गजभीम नारायण आदि अनेक ख्याति सम्पन्न वीर पुरूष गये थे। हाथी और घोड़े भी बहुत थे। वृद्ध रणागण एक समय पठानों को परास्त कर के गर्वित हुए थे। इसलिए वे गौर्वोन्नत चित्त में, रात में ही पठान शिविर को आक्रमण करने के लिए यात्रा शुरू की। उस समय चारों ओर सियार उच्च स्वर से निस्तब्ध वातावरण को भयावह बना रहे थे। वृक्ष की डालियों पर बैठे गिद्ध अपने पंखों को फड़ाफड़ा रहे थे एवं अनवरत उल्का पात हो रहा था। यह सब अमंगल सूचक घटनाओं को देखकर सारे सेनापति रात को शत्रु से मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं थे और उन्होने प्रधान सेनापति को निषेध किया, लेकिन गर्वित रणागण ने उनकी बातों पर कर्णपात नहीं किया।

पठानों को प्रतिपक्ष के षड्यंत्र का पता चल गया। अनजान त्रिपुर वाहिनी पर उन्होने आक्रमण कर दिया। त्रिपुर सेनायें उनके इस अकस्मात आक्रमण से अपनी आत्मरक्षा नहीं कर पाई। उनमें अधिकांश सेनायें पठानों के हाथों मारी गई और कुछ भाग खड़ी हुई। रणागण हाथी के पीठ पर सवार होकर जंगल की राह भागने पर बाध्य हए। इस युद्ध में त्रिपुरा की चालीस हजार सेना

---

(5)खण्डले त गिया तारा गड़ करि रोइलो।	खण्डल पहुंच कर एक गढ़ रचा रहे।
पाठान आइसे बलि साबहिते छिलो।।	पठान आए हैं जान सचेत सभी थे।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 70पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 70पृ

अर्थात ''खण्डल में जाकर गढ़ बनाकर रहने लगे। पठान आ रहे हैं कहकर पहले से सचेत रहे।''

(6) **As the Pathans were marching on Chittagong.** **J.A.S.B. -Vol . XIX**

(7) राज भगिनीपति रणागण नारायण।	राजा भगिनीपति रणागण नारायण।
सेनापति करे ताके सैन्येर रक्षण।।	सेनापति ने किया उसे सैन्य के रक्षण।।
बायान्न हाजार सैन्य तार संगे दिलो।	बावन हजार सेना उसके साथ दिया।
तीन हाजार सेनापति तार संगे छिलो।	तीन हजार सेनापति उसके साथ दिया।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

द्विल –134

मारी गई थी। पठानों की निहत सेना की संख्या पाँच हजार थी।(8) त्रिपुरा की इस तरह भयानक क्षति इस के पहले कभी नहीं हुई थी।

इस युद्ध के पश्चात् गौड़ेश्वर ने चट्‌टग्राम में अपना अधिकार अक्षुण रखने के लिए पीरोज खाँ आन्नि और जामाल खाँ पन्नि नाम के सेनापतियों के अधीन विशाल सेना वाहिनी भेजा था।

त्रिपुरेश्वर ने चट्‌टग्राम के पुनः उद्धार के लिए आक्रमण कर विपुल विक्रम से पाँच सालों तक मुसलमानों के साथयुद्ध किया था, किन्तु इस बार भी विजयलक्ष्मी पठानों की अंकशायिनी हुई। इस युद्ध में ही उदयमाणिक्य की चट्‌टग्राम पुनरूद्धार की आशा निर्मूल हो गई थी।

राजगणों का शौर्य

राजा का युद्ध गमन पहले की तरह इस समय भी राजाओं को स्वयं युद्ध में जाने का नियम था। पूर्व कथित सारे विवरणों की आलोचना से ज्ञात होगा कि महाराज धन्य बार बार समर क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। धन्यमाणिक्य पुत्र देवमाणिक्य ने स्वयं भुलुआ से समुद्र तीर तक जय किया था। विजयमाणिक्य के समय पठान सेना के विद्रोही होने पर महाराज ने स्वयं युद्ध भूमि में अवतीर्ण होकर विद्रोह दमन किया था। दिग्विजय के लिए निकलकर पद्‌मा तीर तक एवं उत्तर में श्रीहट्‌ट जिला पर विजय प्राप्त की थी। किसी किसी का कहना है महाराज विजय ने इस अभियान में गंगातीर तक सारे भूखण्डो को जीत लिया था। इसके अलावा राजकुमारों के युद्ध यात्रा के भी बहुत से दृष्टांत हैं। असल में उन दिनों राजा राज भोग–विलासी मोम की गुड़िया नहीं थे। वे सभी साहसी एवं बलवीर्यशाली वीरपुरूष थे। दुग्ध शुभ्र सुकोमल शय्या से अधिक समरभूमि शयन उन्हें कहीं ज्यादा शोभा देता था। उन दिनों त्रिपुरा क्षात्रवीर्य के मूर्तरूप से आविर्भूत होने के बहुत से उदाहरण हैं। बार बार घात सहकर भी त्रिपुरेश्वर गणों नें जिस तरह राज्य के स्वार्थ और मर्यादा को अक्षुण्ण रखा है, दूसरी जगह कहीं भी ऐसा दृष्टांत देखने को नहीं मिलेगा।

---

(8) पंच सहस्र पाठान पड़िलो सेई रणे।	पांच हजार पठान खेत रहे इस रण में।।
चल्लिस हाजार पड़े त्रिपुरार गणे।।	चालीस हजार त्रिपुरा मरे भयावह समरागंण में।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 71पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 71पृ

इस क्षति के बारे में रेवरेण्ड लांग साहब ने कहा है –

The Tripura Troops were routed with a loss of 40,000 men while the Pathans lost only 5,000. **J.A.S.B. -Vol . XIX**

रणकौशल

थानांछि दुर्गजय उन दिनों विजित देश को लूटने की प्रथा थी। राजमाला में इस तरह के बहुत से उदाहरण हैं। त्रिपुर वाहिनी ने कहीं कहीं पर अद्भुत रण कौशल का प्रदर्शन किया है। महाराज धन्यमाणिक्य के सेनापति रायकाचाग सबसे अधिक कौशली थे। वे आठ महीने के चेष्टा से भी थानांछि नामक उत्तुंग पर्वत श्रृंग स्थित कुकियों के सुरक्षित दुर्ग पर विजय न पाकर नितांत व्याकुल हो उठे। उस दुर्लंध्य पर्वतारोहण का उपाय उद्भावन असंभव सोचकर तीन दिनों तक हताश होकर पड़े रहे। इस समय एक विशाल गोह(गोधिका) उनकी नजरों में पड़ी। उसे ही अपनी सिद्धि का एक मात्र उपाय स्थिर किया। गोह के कमर में बेंत बाँध कर पर्वत पर चढ़ा दिया। गोह क्रमशः पर्वत पर चढ़ने लगी। इधर बेंत को भी जोड़ जोड़ कर लम्बा किया जा रहा था। वह जब पर्वत के ऊपर चढ़ गई तो बेंत को खींच कर देखा गया और इसे मजबूत पाकर रात को उसी बेंत के सहारे सेनायें एक एक कर ऊपर चढ़ने लगी। सभी ऊपर पहुँच कर अकस्मात कुकियों पर आक्रमण कर आसानी से दुर्ग पर कब्जा कर लिया गया।

होसेन शाह का पराजय विवरण त्रिपुरा आक्रमण के लिए होसेन शाह ने गौर मल्लिक नाम के एक सेनापति को भेजा। उसकी सेनाओं ने गोमती नदी की राह से आकर मेहेरकुल गढ़ पर आक्रमण कर दिया और अब राजधानी पर आक्रमण के लिए विजय उल्लास से यात्रा की। यह बात पहले ही बताई जा चुकी है। उनके नौवाहिनी गोमती वक्ष को ढँक कर रंगामाटी(उदयपुर) की ओर चल पडी। त्रिपुर सेनानायक रायकाचाग ने उपाय न देखकर अपने उद्भावनी(मौलिक) कौशल की सहायता से गोमती नदी के ऊपरी भाग पर सुदृढ़ बाँध बनाया जिसकी वजह से नदी के नीचे का भाग सुख गया और रेत दिखाई दिया। इसका रूका हुआ पानी एक दम जमा हो गया। पठानों की सारी नौकायें वहाँ रूक गई। बालू की रेत पर फौज की छावनी बनी। इस तरह तीन दिन बीत गये। चौथे दिन रात को बाँध को तोड़ा दिया गया। इसके रूका हुआ जल प्रबल–प्रबल प्रवाह से नीचे की ओर बह चला और मुसलमान छावनी पर आ पड़ा। फौजें रात को सो रही थी। आत्मरक्षा का कोई अवसर उन्हें नहीं मिला। उनके सारे नौवाहन, उनकी सेनायें, युद्ध के सरंजाम आदि सभी प्रबल प्रवाह में बह गया। इस घटना से आत्मरक्षा करना गौर मल्लिक के लिए असंभव हो गया। वे बची हुई थोड़ी से सेनाओं को लेकर भागने पर मजबूर हो गए। उनके परित्यक्त हाथी, घोड़ा और नाना तरह की चीजें त्रिपुर सेनाओं के हाथ लगी।

द्विल –136

होसेन शाह का द्वितीय बार पराजय गौड़ेश्वर होसेन शाह के लिए यह पराजय कलंक असहनीय हुआ। उन्होने पुनः हैतन खाँ और करा खाँ नाम के दो सेनापतियों के अधिनायकत्व में एक विशाल वाहिनी त्रिपुरा आक्रमण के लिए भेजा। इस अभियान में एक सौ हाथी, पाँच हजार अश्वारोही और एक लाख पदातिक वाहिनी भेजे। इसके अलावा द्वादश बंगला (बार भूँइयाँ) प्रदत्त सेनाओं ने भी योगदान किया था।(1)।

पठान सेनानियों ने जामीरखाँगढ़ और छयघरियागढ़ जय करके डोम घाटी में जाकर डेरा डाला। इस समय त्रिपुर सेनायों ने पर्वतजात विषलता फेंक कर गोमती का पानी विषाक्त कर दिया था।(2) इस पानी को पीकर मुसलमानों में दो–चार की मृत्यु हो जाने के बाद ही उन्होने त्रिपुर सेनाओं का षडयंत्र समझ लिया और पानी पीने के लिए दो प्रहर के भीतर एक तालाब खनन कर लिया। यह तालाब मुसलमानों का खनाया था इसलिए इसका नाम ''तुरूक दीघि'' हो गया। यह तालाब बाद में देवमाणिक्य द्वारा पुनः संस्कार कराया गया था। इसका अस्तित्व अब भी विद्यमान है।

इस बार भी त्रिपुर सेनापति रायकाचाग ने पूर्वपंथा अनुयायी गोमती नदी के ऊपरी भाग में मजबूत बाँध का निर्माण कर जलधारा को रोक दिया। यह बाँध सात दिवस रखा गया था। पठानों ने पहली घटना को याद कर पहले पहल नदी में उतरने का साहस नहीं किया, पर जब देखा गया कि दीर्घ दिनों तक नदी की अवस्था एक ही तरह है और सूखी नदी पार्वत्य उँच नीच पथ से सुगम और सुविधा जनक है तो वे रात को सूखी नदी पथ से आगे बढ़ने लगे। इस ओर त्रिपुर सेना छिपकर उनकी गतिविधियाँ देख रही थी। पठान सेना आराम के साथ सूखी नदी की राह से ऊपर की ओर जाने लगे। इतने में नदी का बाँध तोड़ देने पर एक सप्ताह का संचित पानी प्रचण्ड वेग से आकर उनके ऊपर गिरा। उस प्रचण्ड वेगवती नदी में हजार हजार भेला (बोंगा) आ रहे थे। प्रत्येक भेला पर मनुष्याकृति तीन तीन पुतले रखे गए थे और प्रत्येक पुतले के हाथ प्रज्वलित मशाल था। मुसलमान वाहिनी नदीवेग से अपनी आत्मरक्षा में ही परेशान थी और मशाल हाथों में लेकर असंख्य

---

(1) एक शत हस्ती पंच सहस्र घोटक।	एक सौ हाथी पांच हजार अश्वारोही।।
लक्षैक पदाति चले धानुकी कटक।।	एक लाख पदातिक चले धनुर्बाणधारी।
द्वादश बांगाला चले होइतन खाँ सहिते।	द्वादश बंगला चले हैतन खाँ के साथ।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ

अर्थात एक सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और एक लाख धनुर्बाण लिए पदातिक सेना हैतन खाँ के साथ चले।

(2) विषलता –विषलता की उत्पत्ति के बारे में जनश्रुति बाद में दी जाएगी।

द्विल –137

सेनायें आ रही हैं, समझकर वे भयभीत और चिंतित हो उठे। इतने में पीछे की ओर के जंगल में आग लगा दी गई और रास्ते रोक दिये गये। दोनों ओर से उन पर आक्रमण किया। सामने पानी और पीछे दावानल और दोनों ओर शत्रु सेना। इस तरह की भयानक संकटापन्न अवस्था में घिरे सेनापति हैतन खाँ और करा खाँ प्राण रक्षार्थ सर्वस्त्र परित्याग कर अश्वारूढ़ होकर भाग गए। सेनाओं में अधिकांश पानी में डूब मरे और त्रिपुर सेनाओं के हाथ असंख्य सेनायें मारी गई।(3) जो पकड़े गये थे उनकी चतुर्दश देवता के सामने बलि प्रदान की गई।

रणक्षेत्र में धृत सेनापतियों की अवस्था प्राचीनकाल में रण क्षेत्र में पराजित सेनापति अथवा विशेष व्यक्ति को बन्दी बनाने पर उन्हें पिंजड़े में बंदकर राजदरबार में लाया जाता था। पठान सेनापति ममारक खाँ भी पिंजराबद्ध हुए थे। इस तरह के और भी दृष्टांत हैं, उन्हें यथास्थान विवृत किया जाएगा।

पुरस्कार और दण्ड

पुरस्कार रणजयी सेनाध्यक्षों को राज दरबार में उपाधि प्रदान कर सम्मानित और स्मरणीय किया जाता था। यह हम पहले ही बता चुके हैं। इसके अलावा परिच्छद, पुष्प, हस्ती एवं भू सम्पत्ति पुरस्कार के रूप में दिये जाने के दृष्टांत भी कम नहीं है। सेनापति रायकाचाग द्वारा कुकियों का थानांछि दुर्ग और कुकि प्रदेश पर विजय प्राप्त कर राजधानी में लौटने के बाद महाराज धन्यमाणिक्य ने उन्हें निम्नोक्त पुरस्कार प्रदान किया था –

हासिया नृपति ताके बहु मान्य कोइलो।	हंसकर नृपति ने उसे बहु मान्य दिया।
वस्त्र पुष्प हस्ती दिया गृहे पाठाइलो।।	वस्त्र पुष्प हस्ती दे घर भेज दिया।।
बहुतर ग्राम पाइलो राज पुत्र सम।	बहुत से ग्राम मिले राजपुत्र सम।
रायकाचाग रायकछम युद्धेते उत्तम।।	रायकाचाग रायकछम युद्ध में उत्तम।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ

अर्थात "हँसकर राजा ने उन्हें बहुत सम्मान दिया। वस्त्र, पुष्प, हस्ती देकर उन्हें उनके गृह भेज दिया। राजपुत्र के समान बहुत से गाँव भी उन्हें मिले। रायकाचाग रायकछम युद्ध में उत्तम अर्थात श्रेष्ठ थे।"

....

(3) स्पेनीय गण लिडन(Leyden) द्वारा आक्रांत होने के पश्चात गोलन्दाजों ने इस तरह का कौशल अवलम्ब किया था। इस बारे में **Rev James Long** साहब ने कहा है –**The Historical basis of this myth is probably that the Tripura troops adopted the same practice as was employed by the Dutch against the Spaniards at the siege of Leyden. Viz. breaking down embankments so that the hemmed in waters might sweep away the enemy .** **J.A.S.B. -Vol . XIX**

द्विल –138

दण्ड सैनिक विभाग में दण्ड की व्यवस्था कुछ अद्भुत तरीके की थी। युद्ध में पराजित सैन्याध्यक्षों की अवमानना के निदर्शन स्वरूप चरखा उपहार दिया जाता था। थानांछि दुर्ग पर अधिकार प्राप्त करने में अक्षम त्रिपुर सैन्यों को सेनापति चायचाग(काचाग) को धमका कर कहा था

कापुरूष होवो तोरा चरखा हस्ते लोबा।	कापुरूष हो तुम, लो हाथों में चरखा।
राजार साक्षाते जाइया कि उत्तर दिबा।।	महाराज के वहां जाकर कैसे दोगे उत्तर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 18पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 18पृ

अर्थात ''कापुरष हो तुम लोग और चरखा हाथ में लो। राजा के सामने जाकर क्या उत्तर दोगे।''

पठान सेनापति ममारक खाँ के चट्टग्राम पर अधिकार होने पर त्रिपुर वाहिनी आठ महीने तक युद्ध करने के बाद भी अपने खोये हुए प्रदेश पर जब कब्जा नहीं कर सकी तो महाराज विजयमाणिक्य ने उस समर में नए सेनापति को भेज कर पहले के प्रेरित सैन्याध्यक्षों के प्रति निम्नलिखित दण्ड विधान किया था।

आठ मास युद्ध करे पाठानेर सने।	आठ मास तक पठान संग युद्ध किया।।
लोइते ना पारे गढ़ चाटीग्राम स्थाने।।	चट्टग्राम को अपने कब्जे में नही ले सका।
हेनो शुनी विजय माणिक्य क्रोध होइलो।	यह सुनकर विजयमाणिक्य क्रोधित हुआ।।
सेनापति सकोलेरे चरखा पाठाइलो।।	सभी सेनापति के लिये चरखा भेजा।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 47पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 47पृ

आठ महीने तक पठानों के साथ युद्ध करके जब चटगांव दुर्ग को अपने कब्जे में नहीं ले सके तब इस खबर को सुनकर विजयमाणिक्य राजा को क्रोध हुआ और उन्होने सभी सेनापतियों के पास चरखा भेजा।।''

युद्ध में असफल होने पर जीविका निर्वाह करने के लिए राजा का इनाम वीर पुरूषों के लिए कैसा अपमानजनक होता है इसे वीर ही हृदयंगम कर सकता है।

सेनापतियों का आधिपत्य और उच्छृखलता

सैनिक बल और शासन भार – एक साथ एक हाथ में अर्पण का कुफल प्राचीन काल में सेनापतियों के ऊपर ही राज्य शासन का भार अर्पित होता था। यह बात बहुत बार हम कह चुके हैं। सैन्यबल और शासन भार एक हाथ में अर्पण होने पर सेनापतिगण राज्य और राजा के ऊपर प्रभाव विस्तार करने का विशेष सुयोग पाते थे, और ये लोग सत्ता के दम से क्रमशः ऐसा दुर्दान्त और उच्छृंखल हो रहे थे कि राज्येश्वर को सिंहासन से हटाकर दूसरे व्यक्ति को सिंहासन प्रदान करना सम्पूर्ण रूप से उनके इच्छाधीन हो उठता था। कोई कोई दुष्ट सेनापति राज्य लोभवश अथवा आक्रोशवश राजा की हत्या करने में भी नहीं चूकते थे। राजमाला में इस तरह के बहुत से उदाहरण हैं। नीचे इसका आभास प्रदान किया जा रहा है।

सेनापतियों का प्रभाव महामाणिक्य के परलोक सिधारने के पश्चात् सिंहासन ले कर भयानक गोलमाल आरम्भ हो गया था। इस समय स्वर्गीय महाराज के ज्येष्ठ कुमार धर्मदेव संसार त्याग कर सन्यासी वेश में वाराणसी धाम में रह रहे थे। उनके चारों अनुजों में सिंहासन पाने के लिए परस्पर विवाद

द्विल –139

आरम्भ हुया। सेनापतिगण भी राजकुमारों की उपेक्षा कर प्रत्येक ही राज्य लाभ के प्रत्याशी हो उठे थे। फिर भी एक दूसरे के भय से सामने अग्रसर होते भी डरते थे। अंत में कुमार धर्म का राज करना ही संगत और निरापद कह कर स्थिर हुआ। इस मीमांसा में भी सेनापतियों का ही प्राधान्य था।

सेनापतियों के प्राधान्य हेतु धन्यमाणिक्य की हालत धर्ममाणिक्य ने धन्य और प्रताप नाम के दो पुत्रों को रखकर मानव लीला से दूर हो गये। इस समय की आलोचना करने पर ज्ञात होता है कि सेनापतियों ने षड़यंत्र से ज्येष्ठ धन्य की उपेक्षा कर राज्य के चिरन्तन विधि का उल्लंघन कर स्वार्थ सिद्धि की वासना से कनिष्ठ पुत्र प्रताप को सिंहासन पर बैठाया। कुछ दिनों के पश्चात् फिर उन्होने ही बालक प्रताप की रात में गुप्त तरीके से हत्या कर एक दूसरे को हरा कर सिंहासन हथियाने की सेनापतियों में होड़ लग गई। इस समय उच्छृंखल सेनापतियों के अत्याचारों से प्रजा संत्रस्त हो गई। प्राणों के डर से प्रजा इधर उधर भागने लगी। कुमार धन्य अपना जीवन संकटापन्न देखकर एक हिताकांक्षी पुरोहित के घर में छिपकर रहने लगे। बहुत मारपीट और हत्याओं के पश्चात् प्रधान सेनापति ने यह अनुभव किया कि राजपुत्र धन्य को सिंहासन सौंप देने के अलावा आगत राष्ट्र –विप्लव निवारण का और कोई रास्ता नहीं है। उनके प्रस्ताव पर सभी सेनापति भी सहमत हुए। वे लोग धन्य के अनुसंधान के लिए धात्री माँ के यहाँ गए। धात्री ने दलबद्ध सभी सेनानियों को देखकर सोचा, धन्य की हत्या कर राज्य प्राप्ति का पथ निष्कंटक करने के लिए ही तत्पर हुए हैं। अतएव पहले उन्होंने कुछ भी नहीं बताया। धात्री के मन के भाव को समझ कर प्रधान सेनापति ने शालिग्राम शिला लाकर उसे स्पर्श कर प्रतिज्ञा पूर्वक जब बताया कि धन्य को किसी तरह अनिष्ट की आशंका नहीं है, उसे सिंहासन पर बैठाने के लिए वे आए हैं तब जाकर आश्वस्त होकर धात्री माँ ने पुरोहित के घर पर उसके रहने की सूचना दी।

सेनापतिगण अश्व गजादि समन्वित विपुल वाहिनी के साथ पुरोहित के घर उपस्थित हुए। इन लोगों को देखकर राजकुमार धन्य के मन में धात्री माँ की तरह ही सन्देह उपस्थित हुआ था। वे भयभीत होकर घर के कोने में एक बाँस के मचान के नीचे जाकर छिपकर बैठे। किन्तु इस तरह वे ज्यादा देर तक छिप कर रह न सके। अनुसंधानरत सेनापतियों ने उन्हें मचान के नीचे से खींच कर बाहर निकाला। इस समय धन्य मात्र ग्यारह साल के थे। बालक ने साक्षात् काल स्वरूप सेनापतियों के हाथों अपने को बड़ा ही असहाय और विपन्न समझा, उन्होने बालकोचित विनय वाक्य कहा, "मैं राज्य प्राप्ति के लिए अभिलाषी नहीं हूँ। पुरोहित के घर

द्विल –140

में भृत्य की तरह रहकर मुठ्ठी भर अन्न से जीवन निर्वाह करूँगा। तुम लोग मेरी हत्या कर अनर्थ का पाप अर्जन मत करो।'' पुरोहित ने उन्हें अभय प्रदान कर कहा, ''ये लोग तुम्हारी हत्या नहीं करेंगे। राजा बनाने के लिए ही लेने आए हैं।'' इस तरह उन्हें ले जाकर सिंहासन पर बैठाया था।

सेनापतियों के उच्छृंखलता का परिणाम धन्यमाणिक्य सेनापतियों के इस तरह के उद्धृत व्यवहार का प्रतिशोध लेने में नहीं चूके, धन्यमाणिक्य ने सिंहासन पर बैठने के बाद कूटनीति का अनुसरण कर सेनापतियों को आनुगत्य मानकर चले। उन्होने देखा सेनापतिगण दिन दिन उनके प्रति अकंठित भाव से असंगत आधिपत्य विस्तार करने में प्रत्याक्षी हैं। उनके इस तरह के व्यवहार से महाराज दिनोंदिन विरक्त एवं क्षुब्ध हो उठे। किन्तु सभी सेनापति सैनिक शक्ति से बलवान है व शासन तंत्र उनके ही हाथों में है और त्रिपुर राज्यलक्ष्मी जैसे उन्हीं के इशारे पर चल रही है। राजा का धन और प्राण सेनापतियों की कृपा–भिखारी है। इस अवस्था में बालक धन्य को उनके विरूद्ध खड़े होने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता था पर उच्छृंखलता निवारण के लिए उन्हें दमन करना जो बहुत जरूरी था इसे वे हृदय से अनुभव कर रहे थे।

इसके पश्चात् पूर्वोक्त पुरोहित के मंत्रणानुसार राजा पीड़ा का बहाना कर तीन महीने तक अंतःपुर में रहे। राज कार्य पहले की तरह सेनापतियों द्वारा चल रहा था। इस समय सभी सेनापति पुरोहित के यहाँ गए और राजदर्शन की आकांक्षा व्यक्त की। उनके द्वारा राजदर्शन की आकांक्षा व्यक्त करने पर उनके दमन का यही उचित समय है सोच कर पुरोहित ने खुश होकर उनके प्रस्ताव पर अपनी सहमति व्यक्त की एवं दूसरे दिन रात को सेनापतियों को राजःअंतपुर में लेकर गए। उनके राजदर्शन के पश्चात् विदायी अभिवादन के समय महाराज के अंगरक्षको ने पुरोहित के इशारे पर उनके सिर धड़ से अलग कर दिये। इस उपाय से दुष्ट सेनापतियों का सफाया कर महाराज धन्य ने अपने विश्वस्त कुछ लोगों को सेनापति पद पर प्रतिष्ठित किया। उनमें सेनापति रायकाचाग का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे इस तरह के पराक्रमी एवं विख्यात पुरूष थे कि मेकेंजी साहब ने उन्हें त्रिपुराधीश्वर चयचाग माणिक्य कहकर भ्रम किया है।(1) इस समय से ही उन्होने सैनिक विभाग के परिचालना का भार अपने ऊपर ले रखा था। उस समय उनकी उम्र केवल बारह साल की थी।

---

(1) **North East Frontier of Bengal P 270**

द्विल –141

लक्ष्मीनारायण नामक विप्र का व्यवहार और परिणाम   महाराज देवमाणिक्य के दीक्षा गुरू लक्ष्मीनारायण नामक कपटाचारी ब्राह्मण ने राजा का वध किया और उनके कनिष्ठ पुत्र इन्द्रमाणिक्य को राजा बनाया। ज्येष्ठ पुत्र विजय को हीरापुर नामक एक जगह अवरूद्ध करके रखा। इन्द्रमाणिक्य शिशु थे व उनकी जननी के सहयोग से दुष्ट ब्राह्मण राज्य शासन में प्रवृत्त हुआ। यह विप्र मिथिला के थे। उनकी जननी के सहयोग से दुष्ट ब्राह्मण ने राज्य के लिए ढ़ाई सौ मैथिलों को सैनिक विभाग में नियुक्त किए। इस ब्राह्मण के अत्याचारों को देखकर थोड़े दिनों के भीतर ही प्रजा बौखला उठी। प्रधान सेनापति दैत्यनारायण ने इस समय और कोई उपाय न देखकर संहारक रुप धारण किया। उन्होने बेला दो प्रहर के समय द्विज लक्ष्मीनारायण के यहाँ चर द्वारा खबर भेजी कि राजमाता अकस्मात वेदना से अत्यंत कातर हो उठी हैं। उन्हें शीध्र आकर न देखने पर पुनः देखने की आशा नहीं रहेगी। ब्राह्मण ने यह संवाद पाकर त्रस्त भाव से चतुर्दोलि पर सवार होकर जब राजभवन की ओर जा रहे थे तभी रास्ते में दैत्यनारायण के द्वारा नियुक्त चरों के हाथों उनकी हत्या करवा दी गई। इसके बाद दैत्यनारायण ने दल बल के साथ राजभवन में प्रवेश किया और जननी सह शिशु इन्द्रमाणिक्य का वध कर दिया और विजयमाणिक्य को सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

सेनापति दैत्यनारायण का दुर्व्यवहार और उसका परिणाम   इस समय महाराज विजय अल्प वयस्क थे। राजा के ससुर और प्रधान सेनापति दैत्यनारायण ने स्वयं शासन भार अपने ऊपर लिया। वे राजा की अवहेलना कर राजभण्डार का सारा सामान अपने घर ले गए। यहाँ तक कि हाथी, घोड़े, वाद्य–भाण्ड सब कुछ अपने घर ले गए। राजा चाहकर भी कोई वस्तु नहीं ले पाते थे। दैत्यनारायण का कहना था "मेरी मृत्यु के बाद राजा अपनी सारी चीजें प्राप्त करेंगे। इस पर कोई आपत्ति नहीं करेगा।" दैत्यनारायण के भ्राता दुर्लभ नारायण, अग्रज के असीम प्रभाव से बलवान होकर राज्य में नाना तरह के अत्याचारों में लिप्त रहा। उसके विरूद्ध उत्पीड़न, परस्त्री हरण आदि अभियोग राजदरबार में आने लगे, लेकिन दैत्यनारायण के प्रभाव से उसका किसी तरह प्रतिकार न हो सका। इसी हालत में कुछ दिन व्यतीत होने के पश्चात् महाराज सोलह साल के हो गए। तब उन्होने ससुर की अधीनता में राजत्व करना अशोभनीय लगा। प्रजा की शान्ति –विधान के लिए भी उन्हें दमन करना अपना महान कर्तव्य समझा। किन्तु इतने शक्तिशाली व्यक्ति के हाथों से बलपूर्वक राज काज या राज भण्डार की सारी चीजें निकाल़ लेना असंभव सा प्रतीत होने पर उनका वध करके सारी बाधा –विपत्तियों का उन्मोचन करना ही उचित समझा। उन्होने दैत्यनारायण के ज्येष्ठ जामाता माधव को भूषणा का लस्कर पद प्रदान करने का आश्वासन द्वारा वशीभूत करके कार्योद्धार किया। माधव ने दैत्यनारायण को

द्विल –142

अतिरिक्त मदपान कराकर संज्ञाहीन कर उनका सिर धड़ से अलग कर दिया।

सेनापतियों की शासन क्षमता–रहित कर, वजीर पद की सृष्टि इसके पश्चात् विजय सुदीर्घ काल तक राज्य शासन कर यशस्वी और दिग्विजयी हुए थे। उन्होने सेनापतियों के हाथों से शासन क्षमता को हटाकर ''वजीर'' पदवी धारी नवनियोजित कर्मचारियों के हाथों शासन –भार अर्पित किया था। यह पदवी मुसलमानों के शासन पद्धति के अनुकरण पर आधारित थी।

सेनापति गोपी प्रसाद की पूर्वावस्था अब हम एक विश्वासघातक सेनापति की आलोचना करेंगे जिस का नाम गोपीप्रसाद नारायण था। ये बाछाल सम्प्रदाय के आदमी थे। महाराज विजयमाणिक्य ने पहले इसे बड़ुया उपाधि दिया था। कुछ दिनों के बाद इसे अपना रसोइया बनाया था। त्रिपुर राज्य में रसोइये को ''महामुन्सी'' कहा जाता था। इसके पश्चात् महाराज ने सेनापति बनाया और नारायण की उपाधि से सम्मानित किया। गोपी प्रसाद ने इस पद के प्राप्ति के समय शालग्राम और हरिवंश पुराण स्पर्श कर सदा राजा का हितैषी रहेंगे कहकर प्रतिज्ञा किया था।

महाराज विजयमाणिक्य के पुत्र अनंतदेव बहुत ही कुरूचि सम्पन्न और दुष्ट प्रकृति के थे। ये भावी राजा हैं और इनका भविष्य निरापद करने के लिए महाराज विजय ने बहुत कुछ सोच विचार के बाद सेनापति गोपी प्रसाद की कन्या के साथ अपने पुत्र का विवाह करा दिया एवं सदा पुत्र के हितकर कार्य में नियुक्त रहने के लिए सेनापति को सत्यपाश में आबद्ध कराया।

गोपीप्रसाद का प्राधान्य विजयमाणिक्य के परलोक सिधारने के पश्चात् अनंतमाणिक्य को सिंहासन पर बैठा कर सेनापति गोपीप्रसाद ने राज काज अपने हाथों में लिया। महाराज अनंत सर्वतो भाव से अपने ससुर पर निर्भर करके निश्चिंत थे। वे ससुर के इच्छा के अनुसार रोज रात ससुर के यहाँ जाकर भोजन करते थे। अनंतमाणिक्य की महिषी (गोपीप्रसाद की कन्या) पिता के व्यवहारों से संदिग्ध होकर महाराज को सदा ससुराल जाकर भोजनादि करने पर निषेध करती रही, किन्तु महाराज इस प्रस्ताव को ठुकराते रहे। इस सूत्र पर महारानी ने महाराज की भर्त्सना भी की, किन्तु उनकी सारी चेष्टायें व्यर्थ हो गई थी।

गोपी प्रसाद की विश्वासघातकता इस ओर गोपी प्रसाद अबाध आधिपत्य के फल स्वरूप दिनोंदिन इतने प्रभावित हो उठे कि सिंहासन प्राप्ति के बिना उनके प्रभुत्व की प्यास जैसे नहीं मिट रही थी। अंत में उसने भोजनार्थ अपने भवन आये हुए जामाता को युद्ध हत्यारे द्वारा हत्या करा के 'उदयमाणिक्य' नाम ग्रहण कर सिंहासन

द्विल –143

पर बैठा। उसने अपने भगिनिपति रणागण नारायण (रंग नारायण) को सेनापति पद पर नियुक्त किया था।

रणागण का प्रधान्य और परिणाम इस उदयमाणिक्य के पुत्र जयमाणिक्य के शासनकाल में सेनापति रणागण पूर्ण अधिकार के साथ पूर्ण पद पर आसीन हो गए। वे स्वंय राजदण्ड ग्रहण करने के लिए प्रयासी थे। किन्तु सती और धर्मपरामण स्त्री का निषेध अमान्य कर राजा की हत्या करने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। कुछ ही दिनों के पश्चात् स्त्री का देहांत होने पर पुनः विवाह कर लिया। नव विवाहिता पत्नी उन्हें राज्य प्राप्ति के लिए उत्साहित करने लगी। वह पढ़ना लिखना जानती थी। धर्मग्रंथ पाठ करने को उन्हें समझाती कि दो प्रहर के लिए भी राजत्व करने पर अंत में देवराज इन्द्र का आसन प्राप्त होता है। राज्य प्राप्ति की स्पृहा पहले से ही वृद्ध के मन में थी, इसके ऊपर युवा भार्या/पत्नी का उत्साह पूर्ण वाक्य एवं धर्मग्रंथ लोभनीय उक्तियों ने उन्हें ज्यादा से ज्यादा उद्वेलित कर दिया। इस समय दूसरे सेनापति (देवमाणिक्य के पुत्र) अमरदेव विशेष पराक्रांत हो उठे थे। वृद्ध रणागण ने सोचा राजा के निधन से भी राज्य प्राप्ति का पथ निष्कन्टक नहीं होगा। प्रबल प्रतिद्वंदी अमरदेव निश्चय ही उनके इस संकल्प के विरुद्ध सिंहासन पर अधिकार कर लेंगे एवं राज्य पुनः प्राचीन राजवंश के हाथों चला जाएगा। इसलिए वे अमरदेव के निधन के लिए प्रयासी हो गए। एक दिन रात को अमर को भोजन के लिए बुलाया और उन्हें वध करने के लिए गुप्तचर को नियुक्त कर रखा। इस समय अमर के हितैषी ने तलवार से पान की डंडी को काट कर उन्हें दिखाया। इस इंगित से अमर सारी परिस्थितियों को समझ गये एवं बीमारी का बहाना बनाकर अपने घर चले आये। इसके बाद रणागण के साथ जयमाणिक्य को वध करके अमरमाणिक्य ने पितृ सिंहासन का उद्धार एवं वृद्ध रणागण की राज्य प्राप्ति की प्रबल प्यास को हमेशा के लिये मिटा दिया।

सैनिक विभाग में उच्छृंखलता उच्छृंखल सेनायें दलबद्ध होकर सामान्य कारणों से भी विद्रोहाचरण करने में कुंठित नहीं होती थी। महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में पठान सेनाओं का दो महीने का वेतन बाकी था। इस सामान्य कारण से वे विद्रोही हो उठे और वजीर का वध कर डाला। राजा को वध करके राजधानी लूटने का भी षड़यंत्र कर डाला था। महाराज विजय ने यह जानकर अधिकांश पठानों को गिरफ्तार कर लिया और कुछ भाग गये। पकड़े गए पठानों को चतुर्दश देवता के सामने बलि प्रदान द्वारा उनके द्वारा किये पापों का प्रायश्चित विधान किया गया।

सेनापति वध

सेनापति के पूर्वोक्तिरूप उदाहरण के फलस्वरूप बहुत समय उनके जीवनांत होने के दृष्टांतों का उल्लेख पहले ही किया गया है। यह तो आलोचना से ज्ञात होता है

द्विल –144

कि महाराज धन्य को उच्छृंखल सेनापतियों का वध करने पर मजबूर होना पड़ा था। विजयमाणिक्य ने अपने ससुर और प्रधान सेनापति दैत्यनारायण का वध कर शासन तंत्र को निरापद कर रखा था। वृद्ध सेनापति रणागण के राज्यप्राप्ति की भयानक प्यास अमरदेव के अस्त्र से प्रशमित/बुझी थी।

महाराज देवमाणिक्य ने अपने दीक्षा गुरू की प्ररोचना/षड्यन्त्र से तांत्रिक साधना में सिद्धि प्राप्त करने के उद्‌देश्य से क्रमानुसार अपने आठ सेनापतियों को बलि प्रदान किया था, यह हत्याकांड सेनापतियों के किसी दोष के लिए नहीं, बल्कि राजा के धर्म के प्रति अंधविश्वास के फलस्वरूप बलि चढ़ गये। इस तरह का एक वीभत्स अभिनय हो गया था।

उद्धत और षड़यंत्रकारी सेनापतियों की दुर्गति में फँसने के दृष्टांत अन्यत्र भी विरल नहीं हैं। 1826 ई सन में तुरस्क साम्राज्य के जेनिजारी सैन्यों की यही हालत हुई थी।(1)

दुर्ग और सेना निवास

दुर्ग समूहों के नाम राजमाला द्वितीय लहर के अंतर्भूत समय में अनेक दुर्ग और सेनानिवास थे। उनमें मेहेरकुल दुर्ग, चण्डीगढ़, कैलारगढ़, विशालगढ़, जामीरखाँगढ़, छयघरिया या सुगरियागढ़ यशपुरगढ़, गांभारीगढ़ या गामारियागढ़ और संराइशगढ़ का नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इन सभी दुर्गों के अवस्थान का विवरण बाद में दिया जायेगा। ये सभी दुर्ग राजधानी के करीब चारों ओर थे। इसके अलावा दूरवर्ती विभिन्न स्थानों पर भी सेना निवास रहने का परिचय मिलता है। इस बारे में किंचित आभास नीचे दिया जा रहा है –

"यत सब सेनापति युद्धेर कारण।
थानाय थानाय सबे करे नियोजन।।
दक्षिण दिके चट्टग्राम एक थाना हय।
दस सेनापति तथा नियोग करय।।
श्रीहट्टे उत्तर थाना बड़ई भीषन।
सेड़े थानाय सेनापति रहे बिस जन।।
कलाकोपा पद्‌मार पारे पश्चिमेर थाना।
सेई थानाय सेनापति रहे चल्लिश जना।।

---

(1) इस बारे में रेवरेण्ड जेम्स लांग साहब कहते हैं –**"The fate of these Generals, in the penalty they suffered for their imperious and intriguing conduct, resembled that of the Janizzaries of the Turkish Empire who were cut off at a stroke in 1826; like them and the Mamalukes of Egypt, these Generals appear to have been always more or less involved in Political intrigues."**

J.A.S.B. Vol XIX

द्विल –145
नसिराबाद गड़े बटे थाना चमत्कार।
त्रिश जन सेनापति कार्ये से थानार।।
बिशालगड़े मेहेरकुले दुई थाना आछे।
पनर जन सेनापति ताहाते रईयाछे।।
बिशगाँव बटे थाना पाहाड़ निकट।
सेनापति पाँच जन बड़ई विकट।।
सुसंग आर एक थाना पंचास सेनापति।
दस हाजार सेना तथा करये बसति।।''

– त्रिपुर वंशावली

अर्थात – युद्ध के लिए जगह जगह पर थाना बनाकर सेनापतियों को वहां रखा गया। दक्षिण में चटगांव के थाने में दस सेनापतियों को रखा गया था। श्रीहट्ट में उत्तर थाना था, वहाँ बीस सेनापति थे। कोलाकोपा पद्मा के किनारे पश्चिम थाना था – वहाँ पर चालीस सेनापति थे। नसीराबाद के थाना में तीस सेनापति थे। विशालगढ़ मेहेरकुल में दो थाना हैं। पन्द्रह सेनापति वहाँ हैं। पहाड़ के यहाँ बीस गाँव थाना है वहां विकट पाँच सेनापति रहते हैं। सुसंग थाना में पचास सेनापति और दस हजार सेना वहां रहती है।

ये सभी थाना या सेना निवास महाराज विजयमाणिक्य द्वारा स्थापित हुए थे या इसके अलावा जिन सभी दुर्गों का या सेना निवास का नाम पहले उल्लेख किया गया है, राजमाला में इसका विवरण मिलता है।

नव विजित प्रदेश की शासन प्रणाली कोई नया प्रदेश जीतने पर, उस जगह का अधिकार रखने के लिए एक एक सेना निवास या थाना का संस्थापन करके विश्वस्त और पराक्रांत सेनाध्यक्षों को वहाँ रखा जाता था। इन सभी सेनापतियों को 'थानादार' पदवी दी जाती थी। नवविजित प्रदेश का शासन कार्य इनके द्वारा ही संचालित होता था।

सैनिक विभाग का भोज

महारानी त्रिपुरा सुन्दरी प्रदत्त भोज पहले किसी किसी समय खासतौर से युद्ध यात्रा के पहले सेनाओं को राज सरकार की ओर से भोज दिया जाता था। महाराज छेंथुम फा की महिषी महारानी त्रिपुरा सुन्दरी ने गौड़ेश्वर के विरूद्ध युद्ध यात्रा के पूर्व दिवस अपने तत्वावधान में रंधनादि कराकर सेनाओं को विराट भोज द्वारा परितुष्ट किया था।

महाराज धन्यमाणिक्य प्रदत्त भोज महाराज धन्यमाणिक्य ने सैनिकों को जो भोज दिया था वह खास तौर से विशेष उल्लेख योग्य है। इसके साथ संबन्धियों, ब्राह्मणों और अन्य जाति के लिए भी भोजन की व्यवस्था थी। राजमाला में लिखा है –

द्विज ज्ञाति भोजन कोराय नृपवर।	द्विज ज्ञानि को भोजन कराए नृपवर।
आर खाउयाइलो सैन्य सेना बहुतर।।	फिर खिलाया सैन्य सेनाओं को पेट भर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ

अर्थात – द्विजों को महाराज ने भोजन कराया और बहुत सी सैन्य –सेनाओं को भी भोजन कराया।

यह भोज धन्य सागर के किनारे हुआ था एवं अन्य जाति और श्रेणी के अनुसार स्वतंत्र भाव से रन्धन और भोजन की व्यवस्था थी। यह बात भी राजमाला में मिलती है –

सागरेर चारि पारे बैसाय नाना जाति।	सागर के चारों ओर बैठाया नाना जाति।
रंधन भोजन तथा जार जेई पंक्ति।।	रन्धन भोजन कराते जिसकी जैसी पंक्ति।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ

अर्थात – ''सागर के चारों ओर नाना जाति के लोगों को बैठाया गया। सभी अपनी पंक्ति में भोजन के लिये बैठे''।

त्रिल –146

काठि छोंया सम्प्रदाय इस विशेष भोज के उपलक्ष में त्रिपुरा समाज में ''काठि छोंया'' नाम में एक सम्प्रदाय बन जाने पर त्रिपुरा प्रदेश में यह भोज चिर स्मरणीय हो गया है। ''काठि छोंया'' नामकरण होने का कारण राजमाला में निम्नोक्त रूप से पाया जाता है –

कुकिर सरदारे सेना गणिते बोलिलो।।	राजाज्ञा से मिलने गया कुकि सरदार।।
सेना गणे रन्धन भोजन कोरे सुखे।	सेना गण रन्धन भोजन कर रहे सुख से।
सरदार गणिवारे गेलेन समुखे।।	गिनती हेतु सरदार आया सम्मुख से।।
सेना अन्न यष्टि लोइया र्स्पर्शिया गनिलो।	सेना ने अन्न यष्टि लेकर गिना सबको छूकर।
खाइते छुइलो जाके काठिछोया होइलो।।	खाते समय जिसे छुआ, रहा काठिछोआ होकर।।
राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ	राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ
x x	x x
एई मते काठिछोया नाम कोतो सेना।	इस तरह काठिछोआ हुई कितनी सेना।
श्रीधन्य माणिक्याबधि होइलो गणना।।	श्रीधन्य माणिक्य द्वारा हुई गणना।।
राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ	राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 16पृ

अर्थात – वहाँ पर राजा मंच पर बैठे। कुकि सरदार को उन्होने सेना को गिनने के लिए कहा। सेनायें भोजन कर रही थी। सरदार गिनने के लिए सामने गया। सेना की अन्न वाली लाठी (छड़ी) द्वारा सब को छुआ कर गिनने लगा। जिसे छू दिया उसे 'काठि छोंया' कहा गया।

इससे यह जाना जाता है कि सेनाओं के भोजन के समय कुकि सरदार ने भात की छोटी सी छड़ी से जिन सब को छु दिया और वे लोग ''काठि छोंया'' सम्प्रदाय में बदल गये। इस बारे में

Rev James Long साहब कहते हैं –**"He once gave a great feast to the Brahmans and their relations, they had to cook their own food, he ordered the Commanders of the Kuki Troops to count their men, they did so with a stick while they were eating, the <u>kukis were required by their law to drop eating</u>, but through fear of losing their lives they swallowed the food which was in their mouth, -they have had a nick name applied to them ever since on account of this."**

J.A.S.B. -Vol . XIX

लांग साहब के इस उक्ति से यह समझा जाता है कि कुकि जाति के कुछ लोग 'काठि छोंया' हुए थे, यही उनका विश्वास है। किसी कुकि को भोजन के समय उसे दूसरे लकडी से स्पर्श कर देने पर आहार्य वस्तु अपवित्र अथवा भोक्ता के जातिच्युति होने का कारण नहीं होता। असल में जो त्रिपुरा और बंगाली सेना को भोजन के समय छड़ी से छू दिया गया था उन्हें ही जाति भ्रष्ट एवं इन्हें ही 'काठि (छड़ी) छोंया' कहा गया है। यह सम्प्रदाय नाना जाति के समुदाय से गठित हुआ है। ये एक स्वतंत्र जाति में परिणत होने पर भी त्रिपुरा जाति के साथ ही इनकी घनिष्टता ज्यादा है। अब भी इस सम्प्रदाय का अस्तित्व बरकरार है।

हसम भोजन सैन्यों के भोज के बारे में और एक उल्लेखयोग्य बात है। त्रिपुरा राज्य में प्राचीन काल से ही यह भोज 'हसम भोजन' के नाम से विख्यात है। असल में यह सरकारी भोज है **(State Dinner)**। यह हर साल विजयादशमी के दिन रात को होता है। इस भोज में साधारणतः पार्वत्य प्रजा और सरदार लोग आमंत्रित होते हैं।

द्विल –147

हसम भोजन वाक्य का अर्थ   हसम भोजन का अर्थ बहुत से लोग बहुत तरह से लगाते हैं। बहुत से लोग कहते हैं असम अर्थात अपरिचित भोजन होता है इसलिए इसे हसम भोजन कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है ''हसम'' सुअर को कहते हैं। इस भोजन में बड़ी संख्या में सुअर वध की व्यवस्था है – इसलिए इसे हसम भोजन कहते हैं। फिर किसी किसी के अनुसार बहु संख्यक लोगों के समागम को ''हसम'' कहा जाता है। इस भोज में बहुत से लोग आते हैं – इसलिए इसे हसम भोजन कहते हैं।(1) हम देख रहे हैं कि प्राचीन राजमाला के भाषा के संशोधन प्रयासी आधुनिक लिपिउद्धारक के द्वारा इस द्वन्द्व की सृष्टि हुई है। त्रिपुरा राज्य में पहले सैनिकों का हसम कहा जाता था।(2) राजमाला के भाषा संशोधक ने हसम शब्द के बदले सैन्य, सेना इत्यादि शब्दों के प्रयोग करने से 'हसम' शब्द का अर्थ बदला हुआ है। इस समय बहुत से लोग प्राचीन राजमाला की आलोचना नहीं करते अथवा आलोचना की उन्हें सुविधा ही नहीं मिली। आज वह प्राचीन ग्रंथ विलुप्त हैं। इसी कारण से बहुत से लोग हसम शब्द का प्रकृत अर्थ ही भूल चुके हैं और नाना तरह के अर्थ निकालते हैं। सही अर्थ में सामरिक विभाग के भोज को ही 'हसम भोजन' की आख्या प्रदान की गई है। उन दिनों पार्वत्य प्रजायें सभी

....

(1) हालाम लोग कुकि के ही एक शाखा हैं। इनकी भाषा में बहु संख्यक लोग उपस्थित होने पर उस जनसंघ को हसम कहा जाता था। इसे आधार मान कर ही इस तरह की व्याख्यायें होती हैं।

(2) प्राचीन राजमाला में बहुत से स्थलों पर ''हसम' शब्द का उल्लेख मिलता है। उसके कुछ अंश यहां दिये जा रहे हैं –

1 राजा आइलो गड़े देखिते 'हसम'। धन्यमाणिक्य खण्ड

अर्थात ''राजा हसम देखने के लिए गढ़ में आये।''

2 दस सेनापति मध्ये 'हसम' विस्तर।
राज सैन्य आमि मात्र होई एकेश्वर।। धन्यमाणिक्य खण्ड

अर्थात ''दस सेनापतियों के बीच बहुत सी सेनायें थी। राज सैन्य में मैं ही एक मात्र एकेश्वर होकर रहा।''

3 हसम देखिया तारा आसिया मिलिलो।
विषकुंड पयोमुख मते मित्र कोइलो।। धन्यमाणिक्य खण्ड

अर्थात ''हसम देखकर उनसे आकर मिले। ''विषकुंभ पयोमुख'' के मतानुसार वे उनके मित्र हुए।''

4 गौड़श्वर का गुप्तचर, विजयमाणिक्य की छावनी देखने आने पर पकड़ा गया। वह किस लिए आया है पूछने पर उसने प्रत्युत्तर में कहा था –
''तोमार हसम कोतो देखिते पाठाइलो।'' विजयमाणिक्य खण्ड

अर्थात ''तुम्हारे हसम अर्थात सैन्य कितने हैं देखने के लिए भेजा था''।

5 ''दुई लक्ष आसिलेक मघेर हसम।
पाठान सकले देखि पासरे विक्रम''। अमरमाणिक्य खण्ड

अर्थात ''दो लाख मगों की 'हसम' अर्थात सेना आई जिसे देखकर पाठानों को विक्रम जाता रहा।''

द्विल –148

योद्धा थी एवं आवश्यकता पड़ने पर मातृभूमि के लिए कल्याण कामना से सभी युद्धभूमि में अवतीर्ण होने को बाध्य थे। मूलतः हसम भोजन में उनकी कोई भी श्रेणी याद नहीं पड़ती थी। यह भोज किस राजा के शासन काल में अथवा कब से प्रचलित हुआ है यह निर्णय करना दुःसाध्य है। यह जो बहुत प्राचीन प्रथा है इसमें कोई संदेह नहीं।

हसम भोजन प्रथा का राजनैतिक उद्देश्य इस भोज में एक गहरी राजनीति छिपी है। राज्य में शांति विधान के साथ इस नीति प्रवर्तन का विशेष संबंध था। प्राचीन काल में पार्वत्य प्रजायें विशेषतः कुकि और हालाम श्रेणी के प्रजा बहुत ही दुस्साहसी एवं उग्रस्वभाव के थे। विजया दशमी के दिन युद्ध –यात्रा को ये लोग विशेष पुण्य कार्य एवं अपना महत्वपूर्ण कर्तव्य समझते थे। इस यात्रा को हालाम लोगों की भाषा में "हाकुथुम" कहते हैं। वे अपने इस कौलिक/मुंहबोले प्रजा की रक्षा के लिये एवं स्वार्थ साधन के निमित्त दल बद्ध होकर विजया दशमी की रात आस पास के गाँवों में अकस्मात आक्रमण कर नर हत्या एवं प्रजा का सर्वस्व लूट लेते थे। उन दिनों इनके अमानवीय अत्याचारों से कितने ही जनपद शुन्य और अरण्य में रूपान्तरित हो गये थे। शारदीय पूजा के समय इन्हें नहीं रोकने पर यह उपद्रव निवारण करना असंभव था। राजा के अनुकम्पा सूचक कौशल अपनाने के बिना एक समय में सभी को एक स्थान में एकत्रित करने का और कोई उपाय नहीं था। इन्हीं सभी विषयों की चिंता कर राजनीति–कुशल त्रिपुरेश्वर ने 'हसम भोजन' का प्रवर्तन क्रिया की शुरुआत की एवं आज तक यह प्रथा अक्षुण्य रूप से चल रही है।

दुर्गोत्सव के बोधन के दिवस से ही दूरवर्ती पार्वत्य प्रजाओं का राजधानी में आगमन शुरू हो जाता था। सभी प्रजा, खास तौर से प्रत्येक सम्प्रदाय के सरदार इस समय राजदत्त भोज में योगदान करने पर बाध्य थे। सरदार ही इस सभी अनिष्ट घटनाओं की जड़ में थे अतएव, उनकी उपस्थिति पर कड़ी नजर रखी जाती। जो सरदार उपस्थित नहीं हो पाते थे उन्हें कठोर दण्ड देने का विधान था। राजा के आमंत्रण पर उपस्थित होना सभी के लिए गौरव जनक माना जाता था एवं इसे मुख्य कर्तव्य माना जाता था। अतएव अनुपस्थिति की संख्या बहुत कम होती थी। इस समय पार्वत्य प्रजागणों के द्वारा पहले की तरह अत्याचार की आशंका नहीं है। इसलिये उन्हें भोज में उपस्थित होने के लिए राजदरबार से पहले की तरह अनुरोध आदि करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। फिर भी हर साल बहुत से लोग इस विराट भोज में उपस्थित रहते हैं। (जिस समय इस राजमाला का सम्पादन हो रहा था वह 2000 ई. से 75(seventy five) साल पहले की बात है। तब तक यहाँ राजा का शासन चल रहा था और हसम भोज आदि चल रहे थे। आज राजा का शासन नहीं रहा और हसम भोजन की परम्परा नहीं रही और पहले वाला वह उपद्रव भी सदा के लिये समाप्त हो गया है – हिन्दी अनुवादक)

अशिक्षित एवं उच्छृंखल पार्वत्य प्रजाओं को साल में एकबार राजा–प्रजा के सम्बन्ध के गुरूत्व को समझा देना भोज का मूल उद्देश्य था। इस समय उपस्थित प्रजा गण राजा को नजर प्रदान करते थे एवं राज्य सरकार से उन्हें वस्त्र और विविध द्रव्य और मुद्रा राज प्रसाद स्वरूप प्रदान किया जाता है। सरदारों में उपयुक्त व्यक्ति को उपाधि प्रदान द्वारा गौरवान्वित किये जाने की व्यवस्था भी थी।

द्विल –149

हसम भोजन में हालाम सरदार का प्राधान्य पहले ही उल्लेख किया गया है कि विजया दशमी की रात को यह भोज होता था। इस उपलक्ष में किस सम्प्रदाय को क्या करना होगा, इसके भी कुछ विशेष नियम है। हालाम सम्प्रदाय के विशेष व्यक्ति ही इस विषय के मुख्य कार्यकर्ता माने जाते थे। भोजन पर बैठने के पश्चात् उनके आदेश पर दूसरों को भोजन प्रदान किया जाता था एवं भोजन के पश्चात् उनकी अनुमति से आसन त्याग करना पड़ता था।

उपढौकन प्रदान प्रथा विजया दशमी के दूसरे दिन रात के समय इन्हें लेकर राज कर्मचारियों की एक बैठक होती थी। इस बैठक में प्रजाओं को मद्य एवं वस्त्रादि देने की व्यवस्था थी। इस समय सभी सम्प्रदायों के सरदारों के साथ आलोचना करके पर्वतवासी जनसाधारण की सांसारिक अवस्था, धान और कपास आदि झूम खेती में उत्पन्न शस्यों की अवस्था, सामाजिक विवरण, स्वास्थ्य की हालत एवं उनकी सुख–शांति और अभाव–अभियोग आदि विषयों का विवरण संग्रह किया जाता था। राजधानी में बैठकर सारे पार्वत्य प्रदेश का यथावत विवरण भुक्तभोगी व्यक्तियों से अवगत होने का इस तरह का सुयोग राजपुरूषगण साल में मात्र एक बार पाते थे। इस व्यवस्था द्वारा राज्य की सारी परिस्थितियाँ को अनायास जाना जाता था जो सारे राज्य का परिभ्रमण करके हर साल उन्हें संग्रह करना सम्भव नहीं हो सकता था। हसम भोजन का यह भी एक सबूत था इसमें कोई संदेह नहीं। पार्वत्य प्रदेशों के राज के बारे में किसी तरह का गोलमाल रहने पर उसके समाधान की भी मीमांसा यहाँ हो जाता था।

सैनिक विभाग की ओर भी बहुत सी बातें हैं जो नहीं कही गई। यहाँ पर उनका सम्यक उल्लेख करना असंभव देखकर उसका उल्लेख नहीं किया गया।

राज्य की अवस्था

राजधानी

राजधानी का अवस्थान राजमाला द्वितीय लहर में जिन राजाओं का विवरण दिया गया है, (धर्ममाणिक्य, प्रतापमाणिक्य, धन्यमाणिक्य, ध्वजमाणिक्य, देवमाणिक्य, इन्द्रमाणिक्य, विजयमाणिक्य, अनंतमाणिक्य, उदयमाणिक्य और जयमाणिक्य) उनके शासन काल में राजधानी कभी भी स्थानतंरित नहीं हुई। रांगामाटी में राजपाट रखकर इन्होंने राज्य शासन किया है। महाराज उदयमाणिक्य ने राजधानी का नाम परिवर्तन कर अपने नामानुसार 'उदयपुर' नामाकरण किया था।

द्विल –150

मुसलमान एवं मघों द्वारा त्रिपुरा राज्य बारंबार आक्रांत हुआ है। त्रिपुरेश्वर गण केवल उन सभी आक्रमणों से राज्य और राजधानी की रक्षा करके ही चुप नहीं रहते थे बल्कि वे शत्रुओं के राज्य को कुछ अंशों को अपने अधिकार में लेकर आक्रमण का प्रतिशोध लेने में कभी नहीं चूकते थे और इस ओर सदा सचेष्ट रहते थे।

राज्य विस्तार

महाराज धन्यमाणिक्य का काम महाराज धन्यमाणिक्य राज्य की सीमा को प्रसारित करने के निमित्त विशेष यत्नवान थे। उन्होने मेहेरकुल, पाटिकारा, गंगामण्डल, बगासाइर, बेजुरा, भानुगाछ, विषनाजुरी(विष्णाउड़ी), लंगला एवं बरदाखात आदि राज्य के सीमान्तवर्ती स्थानों को बंग के शासन तंत्र से अलग करके अपने अधिकार में ले आये थे। इन स्थानों में से कोई कोई जगह पूर्ववर्ती राजाओं के शासन काल में त्रिपुरा के हाथों से चली गई थी। महाराज धन्यमाणिक्य ने पुनः उसका उद्धार कर उस क्षति की पूर्ति की थी। खण्डल प्रदेश को अपने अधीन करने में महाराज को कुछ क्षति स्वीकार करनी पड़ी थी पर बाद में वह प्रदेश त्रिपुर वाहिनी द्वारा विशेष रूप से विध्वस्त हो गया था। उस देश के रहने वाले जनसाधारण की ऐसी दुरवस्था हुई थी कि वृक्ष पत्र को छोड़ परिधान योग्य कोई संबल नहीं था। उसका विवरण पहले ही दिया जा चुका है।

इसके बाद धन्यमाणिक्य ने थानांछि राज्य एवं समग्र कुकि प्रदेश पर विजय प्राप्त कर के राज्य की उत्तर और पूर्वी सीमा को प्रसारित किया था। 1435 शक (1513 ई सन) में गौड़ेश्वर होसेन शाह के सैन्य दल को विताड़ित कर धन्यमाणिक्य ने चट्टगांव पर अधिकार प्राप्त किया। इनके शासन काल में अपमानित और क्षुब्ध होसेन शाह ने बारम्बार प्राणपण से चेष्टा करके भी उस क्षति को पूरा नहीं कर पाया। कुछ समय के लिए चट्टग्राम हस्तांतरित होने पर भी 1437 शक में अर्थात 1515 ई सन में धन्यमाणिक्य ने पुनः उसे पठानों के हाथों से उद्धार किया था। तीसरी बार के युद्ध में राज्य का कुछ अंश होसेन शाह के हाथों आया था पर वह बहुत कम था।

महाराज देवमाणिक्य का कार्य धन्यमाणिक्य के पुत्र देवमाणिक्य ने भुलुआ राज्य सह दक्षिण में समुद्र तीर तक विजय प्राप्त की थी। उन दिनों चट्टग्राम उनके ही अधीन था।

महाराज विजयमाणिक्य का कार्य देवमाणिक्य के पुत्र महाराज विजयमाणिक्य ने खासिया राज्य के कुछ अंशों एवं श्रीहट्ट आदि राज्य के उत्तर प्रांत स्थित देश समूहों को जीता था। इस समय पठानों ने पुनः चट्टग्राम पर आक्रमण करने की वजह से लगातार आठ महीने युद्ध के पश्चात् महाराज विजय के द्वारा प्रतिपक्ष को करारी हार का सामना करना पड़ा था। यह युद्ध गौड़ेश्वर सुलतान सुलेमान कररानी के साथ हुआ था।

द्विल –151

विजयमाणिक्य का बंगाभियान विजयमाणिक्य ने मुसलमानों के आक्रमण का प्रतिशोध लेने के अभिप्राय से बंगदेश विजय के लिये निकलने की बात पहले ही हम बता चुके हैं। इस अभियान के समय पठान वंशीय शेष नवाब दाउद साह बंग के सिंहासन पर बैठे थे। पठान और मुगल संघर्ष के फलस्वरूप इस समय बंग का शासन तंत्र शिथिल होने की वजह से महाराज विजय अनायास ही गंगातीर तक समग्र प्रदेश अपने अधीन कर सके थे। उन्होने पहले ही सुवर्णग्राम के मुसलमान शासन कर्ता को पराजित कर वहाँ पर अपना तीर्थ कार्य समाप्त कर के क्रमशः पद्मा अतिक्रम कर गंगा, यमुना और सरस्वती नदी के तीरवर्ती स्थानों को जीता था। उनके अभियान के वर्णन के उपलक्ष में राजमाला में कहा गया है

लोहित्य पश्चिम भागे बसती जाह्नवी।	ब्रह्मपुत्र के पश्चिम में जाह्नवी नदी है।
पूर्व भागे यमुना जे सरस्वती देवी।। (1)	पूर्व भाग में यमुना व देवी सरस्वती है।।(1)
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ

अर्थात –''लोहित्य(ब्रह्मपुत्र) के पश्चिम दिशा में गंगा और पूर्व दिशा में यमुना और सरस्वती है।''

उदयमाणिक्य का शासन काल महाराज उदयमाणिक्य जामाता को वध करके सिंहासन पर बैठे थे सही, किन्तु वे राज्य रक्षा के लिये अयोग्य थे। उनके शासन काल में चट्टग्राम प्रदेश त्रिपुरा के हाथ से निकल गया।

जयमाणिक्य का शासन काल जयमाणिक्य के शासन काल में सेनापति रणागण के दुर्व्यवहार के फलस्वरूप अंतर्विप्लव उपस्थित होने पर भी राज्य की सीमा को लेकर कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जयमाणिक्य ही द्वितीय लहर के शेष नरपति हैं।

प्राकृतिक उपद्रव

भूमिकम्प और दुर्भिक्ष भूमिकम्प, दुर्भिक्ष एवं महामारी आदि उपद्रव द्वारा समय समय पर राज्य की विशेष क्षति हुई है। विजयमाणिक्य के शासन काल में उनके प्रधान सेनापति दैत्यनारायण द्वारा प्रतिष्ठित उदयपुर का जगन्नाथ देवता का मंदिर प्रबल भूमिकम्प से विध्वस्त हो गया था।(2) महाराज उदयमाणिक्य के स्वर्गारोहण के साल (1498 शक) राज्य में एक साथ महामारी और दुर्भिक्ष

....

(1) विजयमाणिक्य खण्ड–55 पृष्ठ

(2) दैत्य नारायण सेनापति अति पुण्यवान।	दैत्यनारायण सेनापति, अति पुण्यवान थे।
जगन्नाथ स्थापे मठ करिया निर्म्मान।।	मठ बनवा कर जगन्नाथ को स्थापित किया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 40पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 40पृ

अर्थात – ''दैत्यनारायण सेनापति बहुत पुण्यवान थे। जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण कर उसमें जगन्नाथ की स्थापना की थी।''

' * * *

कतो दिने सेई मठ भूमिकम्पे फाटे।	कुछ दिन के बाद वह मठ भूकम्प से फटा।
होइलो अनिष्ठ एक देबेर कपटे।।	देवता के भाग्य मे एक अनिष्ट हुआ।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 40पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 40पृ

अर्थात –''कुछ दिनों के पश्चात् मठ भूकम्प से फट गया। दैव प्रकोप से इस तरह का अनिष्ट हो गया।''

द्विल –152

उपस्थित होने से बहुत सी प्रजा की मृत्यु हो गयी।(3) इसके पहले राज्य के उत्तर भाग में (कैलासहर आदि अंचल में) इस तरह का भीषण दुर्भिक्ष हुआ था कि परिवारों में एक दूसरे की सहायता करने में कुण्ठित और अपारग हो गये थे। इस दुर्भिक्ष में मुद्रा के बदले अन्न पाना असंभव था। बहुत से अर्थशाली व्यक्तियों की भी अन्नाभाव से मृत्यु हो गई। राजमाला के प्रथम लहर में इस बारे में काताल और काकचाँद के बारे में एक प्रवाद वाक्य का उल्लेख मिलता है। इस दुर्भिक्ष के कारण ही कैलासहर से त्रिपुरा की राजधानी स्थान्तरित करनी पड़ी थी एवं उक्त समृद्धशाली नगरी सर्वग्रासी दुर्भिक्ष से ध्वंस प्राप्त हो गई थी।

महामारी त्रिपुरा राज्य में अनेक बार महा संक्रामक व्याधियों के प्रार्दुभाव की बहुत सी घटनायें हुई हैं और इनके बहुत से प्रमाण मौजूद हैं। इनमें चेचक की बात ही विशेष उल्लेख योग्य है। राजमाला द्वितीय लहर की आलोचना से जाना जाता है कि ई सन पन्द्रह सदी के मध्य भाग से लेकर सोलहवीं सदी के तीसरे चरण तक धर्ममाणिक्य, धन्यमाणिक्य एवं विजयमाणिक्य– ये तीन दोर्दण्ड प्रतापशाली भूपति ने चेचक से ही देहत्याग किया था। धन्यमाणिक्य के परवर्ती और विजयमाणिक्य के पूर्ववर्ती महाराज देवमाणिक्य और इन्द्रमाणिक्य शत्रु द्वारा मारे गए थे। उनकी अगर रोग से मृत्यु होती तो यह कहना मुश्किल है कि वे चेचक से अपना बचाव कर सकते या नहीं। संक्रमण पीड़ा के प्रादुर्भाव के समय राजा को निरापद रखने की सुव्यवस्था करना बहुत स्वाभाविक है। इस अवस्था में भी एक के बाद एक तीन राजाओं के चेचक के हाथों काल के मुँह में चले जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य में इस रोग का प्रकोप बड़ा तीव्र था एवं इसकी वजह से भीषण महामारी आती थी।

बसन्त/चेचक रोग के प्रबलता के कारण चेचक के कारणों का अनुसंधान करने पर देखा जाता है कि उन दिनों चेचक के टीके नहीं दिये जाते थे। राज्य में यह रोग लगे रहने का यह भी एक प्रधान कारण है। इसके अलावा नैसर्गिक कोई कारण था या नहीं इस सभी में यहां निर्णय लेने का कोई उपाय नहीं है। इस समय भी कुकि और दूसरी पहाड़ी जातियाँ गो–बीज की टीका लेने में घोर आपत्ति करती हैं। राज्य सरकार विशेष चेष्टा करके भी इस विषय में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।

---

(3) चौद्द श आटानम्बइ शकेते तखन। — चौदह सौ अठानबे शक उस दिन।
पारार गुटिका राजा करिलो भक्षण।। — पारे की गुटिका का राजा ने किया भक्षण।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 72पृ — राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 72पृ

अर्थात –''चौदह सौ अन्ठानवे सन या उस दिन राजा ने पारे की गुटिका का भक्षण किया।''

x x x x x x x x

सेइ बत्सरेते राज्ये होइलो महामारी। — उसी साल राज्य में हुई महामारी।
अस्थि पूर्ण होइलो सब देखि सारि सारि।। — अस्थि पूर्ण हुआ सब चारों ओर सारी सारी।।
अन्न कष्टे प्राण गेलो बहुतर नर। — अन्न कष्ट से प्राण त्यागे बहु नर।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 72पृ — राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 72पृ

अर्थात – ''उसी साल महामारी दिखाई दी। हाड़ और चमड़ा ही कतारों में दिखाई देती थी। अन्न कष्ट से बहुत से लोगों ने प्राण त्याग किया।''



वस्त्र बुनती कुकि बालिका

द्विल –153

शिल्प

शिल्प कार्य व शिल्पकार प्रथम लहर में कहे गये शिल्प कार्यों की क्रमोन्नति और विस्तृति उस समय बड़े पैमाने पर हुई थी। इसके अलावा महाराज विजयमाणिक्य ने ध्वजघाट से बहुत से कांस्य बनिकों को लाकर राज्य में कांस्य और पीतल को प्रचलन किया था। इन्हें ध्वजघाट से लाया गया था इसलिए इनके वास –स्थान को नाम "ध्वजनगर" हुआ। यह स्थान विशालगढ़ थाना के इलाके में है (इस समय उदयपुर थाना इलाके में है –हिन्दी अनुवादक)। इस सूत्र से राज्य में बंगाली उपनिवेश की वृद्धि हुई थी।

विविध शिल्प बाँस, बेंत, लकड़ी और लता इत्यादि द्वारा नित्य आवश्यकताओं की अनेक सुन्दर सुन्दर चीजें बनाई जाती थी। इस समय उनका आदर कुछ कम होने पर भी वह सम्पूर्ण विलुप्त नहीं हुई हैं। स्वर्ण धातु निर्मित नाना तरह के आभूषण, गजदंत की पाटी और उत्कृष्ट कारू कार्यखचित विविध वस्तुएं एवं नाना तरह के खिलौने की चीजों की बात यहाँ उल्लेखनीय है।

बुनाई शिल्प बुनाई शिल्प का स्थान सर्वोपरि है। त्रिपुर राज्य में यह शिल्प अति उत्कर्षता के शिखर पर था। नाना श्रेणी के पाछुड़ि, परिधेय वस्त्र और चादर आदि सचराचर सभी परिवारों में बुनी जाती थी और अभी भी हर परिवार में यह विशेष शिल्प अक्षुण्य है। स्त्रियों के सदा पहनने योग्य एक तरह के मोटे वस्त्रों का प्रचलन है, स्थानीय भाषा में इसे 'दुबड़ा' कहते हैं। यह दुबड़ा शब्द आधुनिक नहीं है। प्राचीन बंग साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है।(1) दो दफे घूमाकर पहना जाता था, शायद इसलिए इसका नाम 'दुबड़ा' पड़ा है। कुकि लोग कपास से एक तरह का आसन बनाते हैं इसका नाम 'परी' है। गलीचे की पद्धति से इसकी बुनाई होती है। 'परी' जिस तरह मोटा है उसी तरह कोमल है। यह कुकि शिल्प की विशेषता है। अन्य किसी जाति के शिल्पी इसे बुन नहीं सकते एवं सीखने की कोशिश भी नहीं करते। मनिपुरी स्त्रियों के पहनने लायक एक तरह का कपड़ा बनता है यह खूब सुन्दर और दीर्घ काल तक स्थायी होता है। इसके पाड़ (साड़ी का बार्डर/पाट)का शुचिकार्य शिल्प दक्षता का प्रकृष्ट परिचायक है

रिया या काँचली अर्थात चोली त्रिपुरा के सर्वोत्कृष्ट वयन–शिल्प रिया या काँचाली अर्थात चोली के शिल्प–नैपुण्य और आदर की बात प्रथम लहर में विशेष भाव से वर्णन की गई है। चोली या रिया का व्यवहार अतिशय प्राचीन है। संस्कृत एवं बंग साहित्य में इसके बहुत से उल्लेख मिलते हैं। श्री राम चन्द्र के लंका विजय के पश्चात् सीता देवी को उनके सामने

---

(1) शुनिले श्राद्धेर नाम यजमानेर पाड़ा।
बान्धा दिया खाईया जाय स्त्रीर दुबड़ा।। –द्विजवंशी दास

द्विल –154

उपस्थित करने के समय जो वेश विन्यास किया गया था उसके लिए बंगला रामायण में कहा गया है –

"हृदिमाझे शोभे तार विचित्र काँचलि।
मुकुतार हार ऊपरे कोरिछे झलमलि।" कृत्तिवास।

अर्थात –'हृदय के बीच विचित्र काँचली अर्थात चोली शोभित है और मुक्ता का हार ऊपर झिलमिल कर रहा है।'

द्विजवंशी दास आदि अनेक प्राचीन कवियों ने चोली का उल्लेख किया है। उन दिनों इस वस्त्र का कारू कार्य विशेष प्रसिद्ध था एवं शिल्पिगण इस शिल्प नैपुण्य प्रदर्शन के लिए विशेष यत्नवान रहते थे। कवि रूपराम का धर्मराज के गीत के कुछ दृष्टांत प्रदान किये जा रहे हैं – काँचलिर सम्मुखेते पूर्णरास लेखा।

माधबेरे गोपिनी जेखाने दिल देखा।।
सारि सारि शोभा पाय षोल श गोपिनी।
तार मध्ये दण्डाए आछेन चक्रपाणि।।
ɤ ɤ ɤ ɤ
पूर्णरसे लिखिल सम्मुखे दान खण्ड।
भांगानाय राधाकाणु तरंग निखण्ड।। रूपराम के धर्मराज के गीत।

काँचली अर्थात वक्ष बन्धनी (चोली) के सामने पूर्णरास लिखा था। माधव और गोपियाँ जहाँ दिखाई दी। श्रेणी बद्ध हो गोल में गोपिनियाँ खड़ी थी। उसके बीच चक्रपाणि खड़े हैं।

इस तरह अक्रुर संवाद, रासलीला, दानकेलि, देवी युद्ध, राम–रावण युद्ध आदि नाना विध देव देवियों के चित्र एवं पशु पक्षियों के चित्रों द्वारा काँचली का शोभावर्धन किया जाता था। त्रिपुरा राज्य में प्रचलित चोली का बयन सम्पूर्ण रूप से प्राचीन आदर्श को अपने में संजोए हुए हैं –इसे देखने से ही यह आभास होता है। इसके शिल्प नैपुण्य के प्रदर्शन के लिए कुछ चोलियों के चित्र दिये जा रहे हैं। यहाँ पर यह उल्लेख करना आवश्यक है सभी कुछ राजपरिवार के महिलाओं द्वारा ही बुना गया है। यह बुना गया है –सुई का कार्य नहीं है।

त्रिपुरा रेशम का कारखाना एवं रेशमी वस्त्र एक समय प्रसिद्ध था। पहले मुख्य रूप से चीन देश में भेजा जाता था। उस देश के साथ त्रिपुरा का विनिमय वाणिज्य का सम्पर्क था।

शिल्प कार्य में महिलाओं का कार्य त्रिपुरा बुनाई शिल्प और सिलाई महिलाओं द्वारा संचालित होता था। स्मरणातीत काल से यह प्रथा चलती आ रही है। राजमाला की आलोचना से यह ज्ञात होता है कि कलि के प्रारम्भ काल से (त्रिपुरा के शिल्प कला के प्रवर्तक महाराज त्रिलोचन के समय से) आज तक इस नियम का कभी व्यतिक्रम नहीं हुआ। केवल त्रिपुरा ही नहीं सारे भारत में वैदिक काल से इसके सूत्र की रचना हुई है एवं वयन कार्य महिलाओं का अन्तर्व्यवस्था है। ऋगवेद के द्वितीय, षष्ठ और दसवें मण्डल में इस विषय का उल्लेख मिलता है।

द्विल –154
2nd Leher-Page-154



त्रिपुरा का वयन शिल्प
वक्ष में रिया पहने रमणीवृन्द व नाना प्रकार की रिया(कांचली)

द्विल –155

राज्य का विशेषत्व

खनिज पदार्थ त्रिपुरा राज्य में सुवर्ण की खान रहने के प्रमाण राजमाला में मिलते हैं। धन्यमाणिक्य खण्ड में लिखा है –

आर तत्व महाराजा शुनिलो तखन।	और तत्व महाराजा ने सुना उस क्षण।
कुकि राज्ये सुवर्णेर होयेत उत्पन्न।।	कुकि राज्य में होता है सुवर्ण उत्पन्न।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 32पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 32पृ
र र र र	र र र र
जामाता होपाकलाउ मने गर्ब तार।	जामाता होपाकलाउ मन में गर्व अपार।
थांचाांग चड़िया जाय सोना आनिबार।।	स्वर्ण लाने चला वह पालकी चढ़कर।।
किरात सकले मिलि युक्ति कोरे सार।	सभी किरात मिल कर युक्ति करे सार।
सोना पाइले थाना एथा थाकिबो राजार।।	सोना मिलते ही राजा का थाना होगा इस बार।।
मंत्रणाते जामाताके मद्य पान दिलो।	मंत्रणा में जामाता को मद्य पान दिया।
मद्येते विह्वल जामाई कुकिये काटिलो।	मद्य विह्वल जामाता को कुकियों नें कत्ल किया।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 32पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 32पृ

अर्थात –"और एक तथ्य राजा ने सुना कि कुकि राज्य में सोना उत्पन्न हो गया है। जामाता होपकलाउ के मन में गर्व था और वे सोना लाने के लिए कुकि राज्य गये। सभी किरातों ने मिलकर युक्ति किया। क्योंकि सोना मिलने पर यहाँ राजा का सेना निवास बनेगा। जामाता को उन्होने मंत्रणा करके खूब शराब पिलाया। नशे में चूर जामाता को कुकियों ने मार डाला।"

वैदेशिक परिव्राजक गण भी इस राज्य के स्वर्णखान की बात जानते थे। टेवार्नियार के भ्रमण वृतांत से त्रिपुरा राज्य की अनेक बातें जानी जाती हैं, उन्होने सोने की खान की बात भी बताई है। इस भ्रमणकर्ता के ग्रंथ से कुछ पंक्तियों को हम नीचे दे रहे हैं –

There is nothing in *Tipra* which is fit for ftrangers(strangers). There is a Mine of Gold, but the Gold is very courfe(coarse). And there is a fort(sort) of very courfe(coarse) Silk, which is all the Revenue the King has. He exacts no Subfidies(Subsidies) from his Subjects; but only that they, who are not of the Prime Nobility, fhould(should) work fix(six) days in a year in his Mine, or in his Silk-works. He fends(sends) his Gold and his Silk into China, for which they bring him back Silver, which he coins into pieces to the value of ten Sous, he alfo(also) makes thin pieces of Gold, like the Afpers(Aspers) of Turky; of which he has two forts(sorts), four of the one fort(sort) making a Crown, & twelve of the other.

-(Tavernier's Travells by J. Phillips, Book III part II, Chapter XVI of the Kingdom of *Tipra*.)

उद्धृत वाक्य की आलोचना से जाना जाता है कि त्रिपुरा में उत्पन्न स्वर्ण चीन देश में भेजा जाता था एवं इसके बदले में चीन से चाँदी लाई जाती थी और मुद्रा प्रस्तुत करने की व्यवस्था थी।

इसके अलावा लोहा, कोयला, केरोसिन तेल, लवण और केवलीन(बर्तन एवं खिलौने आदि बनाने की मिट्टी) की खान भी त्रिपुरा में थी एवं इस समय भी है।

द्विल –156

जंगली घोड़े का विवरण त्रिपुरा के पर्वतों में पहले घोड़े भी थे। पहले कुकि लोग राजा को दूसरे वस्तुओं के साथ घोड़ा भी नजराना देते थे।(1)

घोड़ा पैदा होने की कथा त्रिपुरा के नजदीक मणिपुर के जंगलों में आज भी घोड़ों के अस्तित्व मिलते हैं। इस अवस्था में त्रिपुर राज्य में घोड़ा रहना कोई अचरज की बात नहीं है। किसी दैविक आपदा के कारण से अथवा पार्वत्य प्रदेशों में बसने के कारण घोड़ों का वंश विलुप्त या स्थान्तरित हो गया है, ऐसा अनुमान किया जाता है। इस समय त्रिपुरा के जंगलों में घोड़े नहीं पाये जाते।

वन्य हाथियों के विवरण वन्य हाथी त्रिपुरा की एक अमूल्य सम्पदा है। यह सम्पदा विपुल सम्पद के रूप में गण्य है। इस राज्य के हाथी अति सुन्दर एवं दीर्घजीवी है। हर साल ठंड के मौसम में हस्ती खेदा कर के यहाँ हाथी पकड़े जाते थे।(अब यह प्रथा बन्द हो गई है और हाथियों की संख्या भी कम है)। जन आवास की वृद्धि के साथ हाथी क्रमशः दूर जा रहे हैं। घोड़ों की तरह एक दिन इस राज्य में हाथी क्रमशः दुष्प्राप्य हो जायेंगे ऐसी धारणा है। हाथी के बारे में प्रकृत विवरण बाद में दिये जायेंगे।

शासन तंत्र

सेनापतियों का व्यवहार राजमाला प्रथम लहर में देखा गया है कि सेनापति ही शासन विभाग के मुख्य कार्यकर्ता थे। द्वितीय लहर की आलोचना से ज्ञात होता है कि इस प्रथा में अब भी कोई बदलाव नहीं आया है। सैनिक और शासन विभाग एक के हाथों में रहने की वजह से बहुत समय राज्य में नाना तरह की अशांति और विप्लव हो गया है। दुर्दमनीय और प्रबल सेनापति अपने हाथों में शासन भार पाकर अपने को सर्वसम कार्यकर्ता समझते थे और प्रायः राजा की उपेक्षा कर अपनी प्रभुत्व को कायम करने में लग जाते थे। यहाँ तक कि उनके स्वार्थ के खिलाफ रहने वाले राजा का वध करने में भी नहीं हिचकते थे। इस तरह के बहुत से उदाहरण हम पहले भी दे चुके हैं। कोई कोई सेनापति तो क्षमता गर्व से इतना उन्मत्त हो गये थे कि राजा को हटाकर स्वयं राज सिहांसन पर बैठने में भी उन्हें कोई द्विधा या द्वन्द्व नहीं हुआ। सतर्कता अवलम्बन करके भी बहुत से राजा इनके प्रभाव को खत्म नहीं कर सके।

खाँ उपाधिधारी सेनापतिगण महाराज धर्ममाणिक्य के शासन काल में काला खाँ, गगन खाँ और खाँ छामथुम (छामथुम खाँ) नाम के तीनों व्यक्ति अमात्य हुए थे। ये लोग सभी पराक्रमशाली सेनापति थे। धन्यमाणिक्य और विजयमाणिक्य के समय में भी ये लोग सेनापति के सम्मानित पद से वंचित नहीं हुए थे।

---

(1) (क) नानाविध बस्तु जतो नाना रंग घोड़ा। नानाविध वस्तु जितने नाना रंग के घोड़ा।
सहस्र सहस्र कुकि आसिलो दिगम्बरा। सहस्त्र सहस्त्र कुकि आये होकर दिगम्बरा।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 21पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 21पृ

अर्थात "(नाना तरह के वस्तु और नाना रंग के घोड़ों को लेकर हजार कुकि उलंग/नग्न अवस्था में आए।)"

(ख)
पंच हस्ति दश घोडा ताके दिलो नृपे। राजा को पाँच हाथी और दस घोड़े दिये।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 44पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 44पृ

अर्थात "(पाँच हस्ती और दस घोड़ा उसे नृप ने दिया।)"

द्विल –157

राजमाला में पाया जाता है कि महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में जामिर खाँ गढ़ को पठानों के आक्रमण से रक्षा करने के लिए सेनापति गगन खाँ ने प्रबल पराक्रम के साथ संग्राम किया था(2)। महाराज विजयमाणिक्य के समय सैन्याध्यक्ष काला खाँ ने 'नाजिर' उपाधि और मंत्री का पद प्राप्त किया था। काला खाँ ने चट्टग्राम के पठान समर में विपुल विक्रम प्रदर्शन कर अंत में आत्माहुति किया था(3)। खाँ उपाधि धारी व्यक्तिगण सभी रियां जातीय थे। रियां जाति में "चापिया खाँ" उपाधि अब भी है। इस उपाधि के सभी व्यक्ति भावी राय (राजा) कहलाते थे । त्रिपुरा के सैनिक और शासन विभाग में रियां जाति के प्राधान्य के उदाहरण मिलते हैं। उनमें रायकाचाग और रायकछम का नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। खाँ उपाधि विशिष्ट सेनापतियों को, जो रियां जाति के होते थे, दिया जाता था। ये अप्रतिहत भाव से एक हाथ में कठोर शासन यंत्र और सामरिकबल पाकर भी क्षण भर के लिए विचलित नहीं हुए। यह एक विशेष प्रशंसा का विषय हैं। दूसरे उपाधिधारी सेनापति और शासक के कार्यवृत्तो के विवरण इसके पहले हम दे चुके हैं।

शासन प्रणाली

शासन प्रणाली परिवर्तन की चेष्टा महाराज रत्नमाणिक्य के समय मुसलमानों को अनुकरण कर जो शासन परिषद का गठन किया गया था, राजमाला द्वितीय लहर के अन्तर्गत उसी प्रणाली के कायम रहने का परिचय मिलता है किन्तु इस समय भी सेनापति ही शासन के मुख्य कार्यकर्ता थे। महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में "वजीर" पद के प्रतिष्ठा द्वारा मंत्रणादि सारे कार्य सेनापतियों के हाथों से ले लेने की कोशिशें की गई थी, किन्तु यह विशेष कार्यकर नहीं हो सका।

लस्कर पद की प्रवर्तना दूर दराज के अलावा नव विजित प्रदेश का शासन भार जिनके ऊपर अर्पित होता था, उनकी पदवी "लस्कर" होती थी। खण्डल और छाम्बुलनगर(कैलासहर) त्रिपुर राज्य के नियोजित लस्कर द्वारा शासित होता था। महाराज विजयमाणिक्य ने माधव को भुषणा के लस्करी का प्रलोभन देकर

---

(2) गगन खाँ नामेते राजार सेनापति।	गगन खाँ नाम का था, राजा का सेनापति।
तार सने घोर युद्ध होइलो हाताहाती।।	उसके साथ घोर युद्ध भिड़े एक दूजे के प्रति।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ

(राजा के गगन खाँ नामक एक सेनापति थे। उनके साथ घोर युद्ध हुआ यहाँ तक हाथापाई की नौबत आ गई।)

(3) प्रातः काले काला नाजिर युद्ध आरम्भिल।	प्रातःकाल से कालानाजिर ने युद्ध शुरू किया।।
पूर्व प्रेरित बाम बाजू पश्चाते रहिलो।।	पहले भेजा बाम बाजू पीछे रहा।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 47पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 47पृ

अर्थात – "प्रातः काल काला नाजिर ने युद्ध आरम्भ कर दिया। पूर्व प्रेरित ही अपनी वाम भुजा को पीछे की आर रखा"।

ז ז ז ז ז ז ז ז

पैशुन्ये ना कोरे युद्ध राज सेनागण।	राज सेनागण ने युद्ध में पयशुन्य की।।
युद्धे पढ़िलो नाजीर एई से कारण।।	इस कारण युद्ध में नाजिर गिर पड़ा।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 48पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 48पृ

"(धूर्ततावश राज सेनाओं ने युद्ध नहीं किया। इसलिये युद्ध में नाजिर खेत रहे।")

द्विल –158

प्रधान सेनापति दैत्यनारायण की हत्या करवा दी थी। यह हम पहले ही बता चुके हैं। उन दिनों लस्कर का पद विशेष रूप से सम्मानित था और वे अपने अपने इलाके के मुख्य शासक होते थे। यह पद मुसलमान शासन के अनुकरण में हुआ था।

विचार प्रणाली विचार विभाग के लिये, उस समय कोई लिखित कानून अथवा अदालत प्रतिष्ठित नहीं था। मुख्य शासकगण न्याय और धर्मानुमोदित युक्ति के आधार पर अपनी विवेक अनुयायी विचार कार्य का सम्पादन करते थे। उन दिनों कानून के ठेकेदारों की कूट बुद्धि धर्माधिकरण में प्रवेश नहीं कर सकती थी। दोषी व्यक्ति सरल चित्त से विचारक के सामने अपना दोष स्वीकार कर लेता था। झूठा गवाह पेश कर निर्दोषी को दोषी ठहराने का कोई प्रयास नहीं था। विचार प्रार्थना विचारक को पिता या अपना अभिभावक अथवा देवता की तरह मानते थे और कोई भी पक्ष उनके यहाँ अपना मनोगत भाव व्यक्त करने में कुंठित नहीं होता था। अतएव उन दिनों के विचार में आज की तरह कानूनी दाव पेंच अथवा सवाल जवाब का शोर शराबा नहीं था और आसानी से ही सच्चाई सामने आ जाती थी। वादी विवादों को रीति–रिवाजों के तहत वकीलों के दवाब में आकर सब कुछ लुटाकर रास्ते का भिखारी नहीं होना पड़ता था।

प्राण दण्ड के नियम विचार विचार अपराधियों के लिये कारादण्ड की व्यवस्था थी या नहीं कहना मुश्किल है। भयंकर अपराध करने वाले का शिरच्छेद अथवा शूली पर चढ़ा दिया जाता था। किसी किसी समय दण्डित व्यक्ति को कुत्ते को खिला दिया जाता था या हाथी के पैरों कुचलवा दिया जाता था। इसके अलावा नाक कान छेदन की भी व्यवस्था थी ऐसा भी जानने में आया है। ये सभी दण्डादेश खुले मैदान में जन साधारण के सामने अंजाम देने की व्यवस्था थी। इसके कोई कोई दण्ड आज के दिन कठोर कहकर विवेचित हो सकते हैं, किन्तु यह समयोपयोगी व्यवस्थाएं थी। आज के समकालीन कुछ देशों के दण्ड विधान के साथ तुलना करने पर यह हृदयंगम होगा।(1)

---

(1) दूसरे राज्यों के कानून में जिस तरह सम्प्रदायिक भेद देखा जाता है। त्रिपुरा में इस तरह की अवस्था कभी नहीं थी। त्रिपुरा राज्य के पड़ोसी हेड़म्ब राज्य में महाराज गोविन्द चन्द के शासनकाल में जो दण्डविधि प्रचलित थी, नीचे लिखी धारा में लक्षणीय है –

मारणे मारण –मारने से व्यक्ति यदि मर जाता है तो उसे ही राजा बदले के रूप में शूलादि द्वारा मारते थे''।

कृतापराधोपि राजनि कृतप्रहारं शूल मारोप्याग्नेपचेत् – कृतापराधी जो राजा हैं उन्हें अगर कोई व्यक्ति प्रहार करता है तो उसे शुल में गूँथ कर अग्नि में पका दूँगा।

ब्राह्मणेषु कोपात् पाणिं प्रहरण शूद्रः पाणि छेदन दण्डः – शूद्र यदि क्रोध करके ब्राह्मण को हस्त द्वारा प्रहार करता है तो उसका हस्त काटना पड़ता है।

दरबार के विशेष नियम

दरबार की पालनीय पद्धति उन दिनों दरबार में कुछ विशेष नियमों को निर्धारित किया गया था। राजा प्रतिदिन दरबार के समय सिंहासन पर बैठते थे। राजा को प्रणाम करने के लिए वाद्य द्वारा इंगित किया जाता था। उस इंगित के अनुसार सभी एक साथ राजा को प्रणाम करते थे। (1) वर्तमान में बिगुल या बैंड द्वारा सलामी प्रदान करना इसी की अनुरूप प्रथा है। दरबार में सभी को खड़ा रहना पड़ता था। अति अल्प संख्यक व्यक्तियों को बैठने का अधिकार प्राप्त थे।

कूटनीति

कूटनीति का आशय राजनीति क्षेत्र में अनेक समय कूटनीति प्रयोग के प्रमाण मिलते हैं। महाराज धन्यमाणिक्य के द्वारा षडयंत्रकारी सेनापतियों को आबद्ध/पकड़ना और निहत/मारने का विवरण पहले दिया जा चुका है(2)। इसके अलावा उन्होने खण्डल के भूम्याधिकारी(बसिक) को विद्रोही चरण का प्रतिफल प्रदान करने के लिए और एक कौशल अपनाया था। उन्होने बसिकों को (भुम्याधिकारी) मित्र भाव से राजधानी में बुला कर उनके प्रति यथेष्ट

....

"सहासनेवसन शूद्रः कट्यां कृत चिन्हः(छिन्न) अथवा नितम्ब समीप मांसखण्डं कर्त्तयेत् –

ब्राह्मण के एकासन पर एकाकी यदि शुद्र बैठता है तो उसके नितम्ब का एक खण्ड मांस छेदन करना पड़ता है। इत्यादि

ये नियम "विवाद दर्पण" नाम के ग्रंथ के आधार पर बनाये गये है। लेकिन आजकल क्या लोग इसे अपनायेंगे?

मुसलमान शासन काल का कानून और भी विचित्र है। हिन्दु सम्प्रदाय के प्रति विद्वेश भाव विशेष रूप से स्पष्ट हो उठा है। नीचे इसके दृष्टांत दिये जा रहे हैं।

When the Collector of the Dewan asks them (the Hindoos) to pay the tax, they should pay it with all humility and submission: and if the Collector wishes to spit into their mouths, they should open their mouths without the slightest fear of contamination so that the Collector may do so. The object of such humiliation and spitting into their mouths is to prove the obedience of the infidel subjects under protection and promote, if possible, the glory of the Islam, – the true religion and to shew contempt to false religions – (Von Neor's Akbar).

मर्म – यदि कोई मुसलमान दीवान को अदा करने के लिए उपस्थित हो तो उस हिन्दु को सम्पूर्ण अवनमन के साथ उसे देना होगा। यदि मुसलमान दीवान इच्छा प्रकट करें कि वह काफिर के मुँह में थूकेंगे तो उस हिन्दु को तत्काल अपना मुँह खोल देना पड़ेगा, इसमें घृष्टता का बिन्दुमात्र कारण नहीं है। इस थूकने का कई गूढ़ अर्थ है जो स्वीकार करना होगा। इससे सरकार के आश्रित काफिर की सम्पूर्ण विवश्यता की परीक्षा हो जायेगी एवं एक मात्र इस्लाम धर्म का गौरव और मिथ्या धर्म के प्रति घृणा प्रदर्शित होगा। (बंगभाषा और साहित्य तीसरी संस्करण 422 पृष्ठ)

(1) इसाराते कहे सेलाम बाद्य बाजाइया।। ईशारा से कहा सलाम, वाद्य बजाकर।।
राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 15पृ राजमाला त्रिल धन्यमाणिक्य खण्ड 15पृ
(ईशारा से वाद्य बजाकर सलाम बताया)

(2) धन्यमाणिक्य खण्ड 11 पृष्ठ

द्विल –160

सद्व्यवहार किया था। अंत में राजानुसार बसिकों के एक दिन दरबार में उपस्थित होने पर महाराज के इशारे से सेनाओं ने उनका शिरच्छेद किया। इसके बाद महाराज धन्य ने स्वयं खण्डल जाकर उस प्रदेश को सम्पूर्ण रूप से वशीभूत कर लिया था(3)।

विजयमाणिक्य की अवलम्बित नीति महाराज विजयमाणिक्य जैसे वीर उसी तरह राजनीति कुशल नरपति थे। उनकी अपनाई नीति प्रगाढ़ कूटनीति का ज्वलंत दृष्टांत देखकर बहुत से लोग विस्मित एवं स्तम्भित हो गये हैं। इस बारे में मूल विवरण हम नीचे दे रहे हैं –

जयंतिया राजा का असत्य व्यवहार पहले ही उल्लेख किया गया है महाराज विजय के श्रीहट्ट विजय के समय उनके नजदीकी राज्य के राजा जयंतिया भयभीत हो कर त्रिपुरेश्वर के साथ प्रीति/संधि संस्थापन हेतु नाना तरह के नजराना के साथ उनकी राजधानी में आकर वश्यता स्वीकार की थी। महाराज विजय ने जयन्तियापति के इस व्यवहार से खुश होकर उन्हें कई हाथी उपहार स्वरूप दिये। जयन्तिया राजा ने अपने राज्य में जाकर प्रचार किया, "त्रिपुरेश्वर ने भयभीत होकर मुझे हाथी नजराना के तौर पर दिया है"।

हांड़ि सैन्य का जयन्तिया अभियान कुछ दिनों में ही यह संवाद महाराज विजय के कानों में पहुँचा। उन्होने जयन्तियापति के असंगत स्पर्द्धा की बात सुनकर कोपान्वित हुए एवं उसे पकड़कर लाने के बारह हजार हांड़ि जाति के अर्थात –निम्नवर्ग की एक सेना को भेजा। दुर्बल के प्रति अस्त्र प्रयोग अथवा उसे दमन करने के लिये सैनिक शक्ति प्रयोग महाराज विजय ने संगत नहीं समझा –इसलिए हांड़ियों के प्रेरण किया था। सुअर खदेड़ने वाली वाली लाठी उनका युद्धास्त्र एवं डगर नामक चमड़े का एक छोटा सा उनका रण वाद्य था। यह नवविधान अभियान निश्चय ही एक हास्योद्दीपक हुआ था। जयन्तिया नाथ ने इस घटना से लज्जित एवं भ्मीत होकर हेड़म्बेश्वर का आश्रय ग्रहण किया। इस समय निर्भयनारायण हेड़म्ब के अधिपति थे(1)।

---

(3) धन्यमाणिक्य खण्ड 15 पृष्ठ

(1) राजमाला में लिखा है –

ऐमतो साजिया सबे थानाते गेलेन्त।	इस तरह सजकर थाने में गये।
सुनिलो खासिया राजा ऐ सब वृत्तान्त।।	खासिया राजा ने सब वृत्तान्त सुना।।
शीघ्र गिया मिलीलेक हेड़म्ब राजाते।	हिड़म्ब राजा से मिलने तुरंत गया।
दूत एक पाठाइलो त्रिपुरेश्वरेते।।	एक दूत त्रिपुरेश्वर के पास भेजा।।
हेडम्बेर नरपति निर्भय नारायण।	हेड़म्ब का नृपति निर्भयनारायण।
पत्र एक लिखिलेक त्रिपुर सदन।।	त्रिपुर सदन को एक पत्र लिखा।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 45पृ

अर्थात –"इसतरह सजकर सभी थाना में (सेनानिवास) गये। खासिया राजा ने सारा वृतांत सुना। हेड़म्ब राजा से जाकर मिले। उन्होने त्रिपुरेश्वर के पास एक दूत भेजा। उस समय हेड़म्ब के अधिपति निर्भय नारायण थे। उन्होने त्रिपुरश्वर के यहाँ एक पत्र लिखा।"

राजमाला की इस उक्ति द्वारा त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य और हेड़म्बेश्वर निर्भय नारायण समकालीन निर्णीत हुए हैं। आसाम के इतिहास प्रणेता मि गेइट साहब के अनुसार, शत्रुदमन या प्रताप

द्विल –161

उन्होने जयन्तियाधिपति के प्रति क्षमा प्रदर्शनार्थ महाराज विजय को एक पत्र द्वारा अनुरोध किया। विजयमाणिक्य ने जयन्तिया से हांड़ि सेनाओं को लौटा कर हेड़म्बेश्वर के अनुरोध की मर्यादा रक्षा की थी।(2)

पराजित जयन्तिया राजा कौन थे? इस समय जयन्तिया(खासिया) के राजा कौन थे? जानना आवश्यक है। पुरावृत्त आलोचना से जाना जाता है कि जयन्तिया को नारी देश कह कर जैमिनी भारत कहा गया है। इस प्रदेश की अधिश्वरी वीरांगना प्रमीला के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ था। इसके बाद से से ही सुदीर्घ कालों तक जयन्तिया राज्य हिन्दु राजा द्वारा शासित होता रहा। इसके पश्चात् खस और सिन्टेंग आदि पार्वत्य जातियों द्वारा हिन्दु राज्य की विलुप्ति हुई और एक पार्वत्य सरदार ने जयन्तिया प्रदेश के शासन दण्ड को सँभाला। उनका नाम पर्वत राय था। गेइट साहब के अनुसार 1500 ई0 सन में यह घटना हुई थी।

पर्वत राय के पश्चात् माझ गोसांई 1516 –1532 ई0 सन और बूढ़ा पर्वत राय 1532 ई0 सन से लेकर 1548 ई0 सन तक और बड़ गोसांई ने 1548 ई0 सन से लेकर 1564 ई0 सन तक राजत्व किया था।

....

नारायण 1610 ई0 सन में हेड़म्ब राज पद पर प्रतिष्ठित थे। इन्होने किस सन से किस सन तक राज्य शासन किया था, गेइट साहब ने यह नहीं कहा। श्रीहट्ट के इतिवृत्त के पूर्वांश के उपसंहार में लिखा है –''केवल जयंतिया अधिपति ही नहीं वीरवर शत्रुदमन आहोम नृपति प्रताप सिंह को पराजित एवं स्वयं प्रताप नारायण नाम धारण पूर्वक राजधानी माइबंग को कीर्तिपुर नाम से अभिहित किया। यही कछाड़ राजवंशावली में निर्भय नारायण के नाम से विख्यात हुए।'' इस उक्ति से जाना जाता है गेईट साहब के कथित शत्रुदमन या प्रताप नारायण एवं राजमाला के निर्भय नारायण अभिन्न व्यक्ति हैं। विजयमाणिक्य ने 1528 ई0 सन से 1570 ई0 सन तक राज्यत्व किया था। निर्भय नारायण के 1610ई. सन में काछाड़ के सिंहासन पर अधिष्ठित रहने की बात इसके पहले कही जा चुकी है। वे इसके कई साल पहले राज्य सिंहासन पर बैठे थे। इस तरह का अनुमान करना असंगत नहीं होगा। अतएव त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य और हेड़म्ब के अधिपति निर्भय नारायण समकालीन थे। इस तरह का निर्धारण किया जा सकता है।

कैलास बाबू के राजामाला में काछाड़ (हेड़म्ब) के राजाओं की जो वंशलता सन्निविष्ट हुई है उसमें निर्भय नारायण, पाण्डुपुत्र भीम के अधस्तन 53 स्थानीय के रूप में व्यक्त किया है। यह निर्धारण एक दम युक्तिहीन है। जिन्होंने 1610 ई0 सन में राजत्व किया था, वे महाभारत के भीम सेन के अधस्तन 53 व्यक्ति नहीं हो सकते। त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य, महाराज त्रिपुर के अधस्तन 108 स्थानीय थे। त्रिपुर युधिष्ठिर के समकालीन राजा थे। अतएव निर्भय नारायण को भीमसेन का 53 अधस्तन मान लेने पर वे विजयमाणिक्य के समकालीन अथवा 1610 ई0 सन के राजा नहीं हो सकता। इस कारण से कैलास बाबू का निर्धारण प्रमादमूलक प्रमाणित होता है।

(2) इस विषय का विवरण श्रीहट्ट के इतिवृत्त के दूसरे भाग, चतुर्थ खण्ड प्रथम अध्याय में एवं कैलास बाबू के राजमाला दूसरा भाग चतुर्थ अध्याय में विशद रूप से वर्णित है।

द्विल –162

बड़ गोसांई के पश्चात् विजयमाणिक ने जयन्तिया के सिंहासन पर आरोहण किया(1)। इन्होंने 1564 ई0 सन से 1580 ई0 सन तक राज्य शासन किया। त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक 1528 ई0 सन से लेकर 1570 ई0 सन तक राज्य पर आसीन थे। इसी वजह से विजयमाणिक जयन्तिया पति के समकालीन निर्णीत हो रहे हैं और दोनों में पहले वाली कही गई घटना घटी थी। श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता ने भी यही कहा है –

''बड़ गोसांई के पश्चात् विजयमाणिक (संभवतः) 1564 ई0 सन में सिंहासन पर बैठे थे। उन्हीं के समय त्रिपुर राजवंश में भी विजयमाणिक नाम के प्रबल पराक्रांत राजा राजत्व करते थे। यह विजयमाणिक्य प्रख्यात कीर्ति रत्नमाणिक्य के छटवें स्थानीय पुरूष थे। इनके पराक्रम के संवाद को सुनकर जयन्तियापति ने स्वतः प्रवृत्त हो उनके साथ मैत्री स्थापना की थी।''(2)

जयन्तिया राजा का प्रतिहिंसा साधन की चेष्टा इस मैत्री स्थापना के फलस्वरूप जयन्तियापति को त्रिपुरेश्वर से हाथी उपहार के रूप में मिले थे। इसकी वजह से उत्पन्न मनोमालिन्य के कारण हांड़ि सेना द्वारा जयन्तिया राज्य आक्रमण की व्यवस्था हुई थी। हेड़म्बेश्वर ही मध्यस्थता से जयन्तियापति की राज्य –क्षमा प्राप्त हुई थी, किन्तु इस अपमान की बात वे भूल नहीं सके। प्रतिहिंसा परतंत्र जयंन्ती–नाथ ने त्रिपुर राज्य के पर्वतवासी किरातियों को वशीभूत करके उनकी सक्षमता से विजयमाणिक्य के द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने के लिए प्रयासी हुए।

विजयमाणिक्य का राजनैतिक कौशल महाराज विजय की राजनीति कुशलता और कुटनीतिज्ञता के कारण राजा के यहाँ यह गुप्त राजनैतिक कौशल अधिक दिनों तक गोपन नहीं रहा। उन्होने जयन्तिया राज के इस कार्य का प्रतिवाद नहीं करके आत्मबल दृढ़ करने के निमित्त कृत संकल्प का पथ अवलम्बन किया। उन दिनों जयन्तिया राज्य के सीमांत इलाके में त्रिपुरेश्वर की प्रजा 'साखासेप' और ''थांगाचेप'' कहलाने वाले हालाम के कुकि बड़े ही भयंकर और पराक्रमशाली थे। इनके बाहुबल से त्रिपुर भूपति बृन्दों की राज्य सीमा और राज्य सम्मान बहुत बढ़ गया था। ये लोग त्रिपुरेश्वर के प्रति विशेष अनुरक्त प्रजा होने पर भी राजनीति कुशल महाराज विजय उनके प्रति विश्वास स्थापन न कर सके। जयन्तियापति के जाल में फँसकर किसी तरह के विरूद्धाचरण न करें इसलिए उन्हें प्रतिज्ञाबद्ध कराने के लिए कृ तसंकल्प हुए।

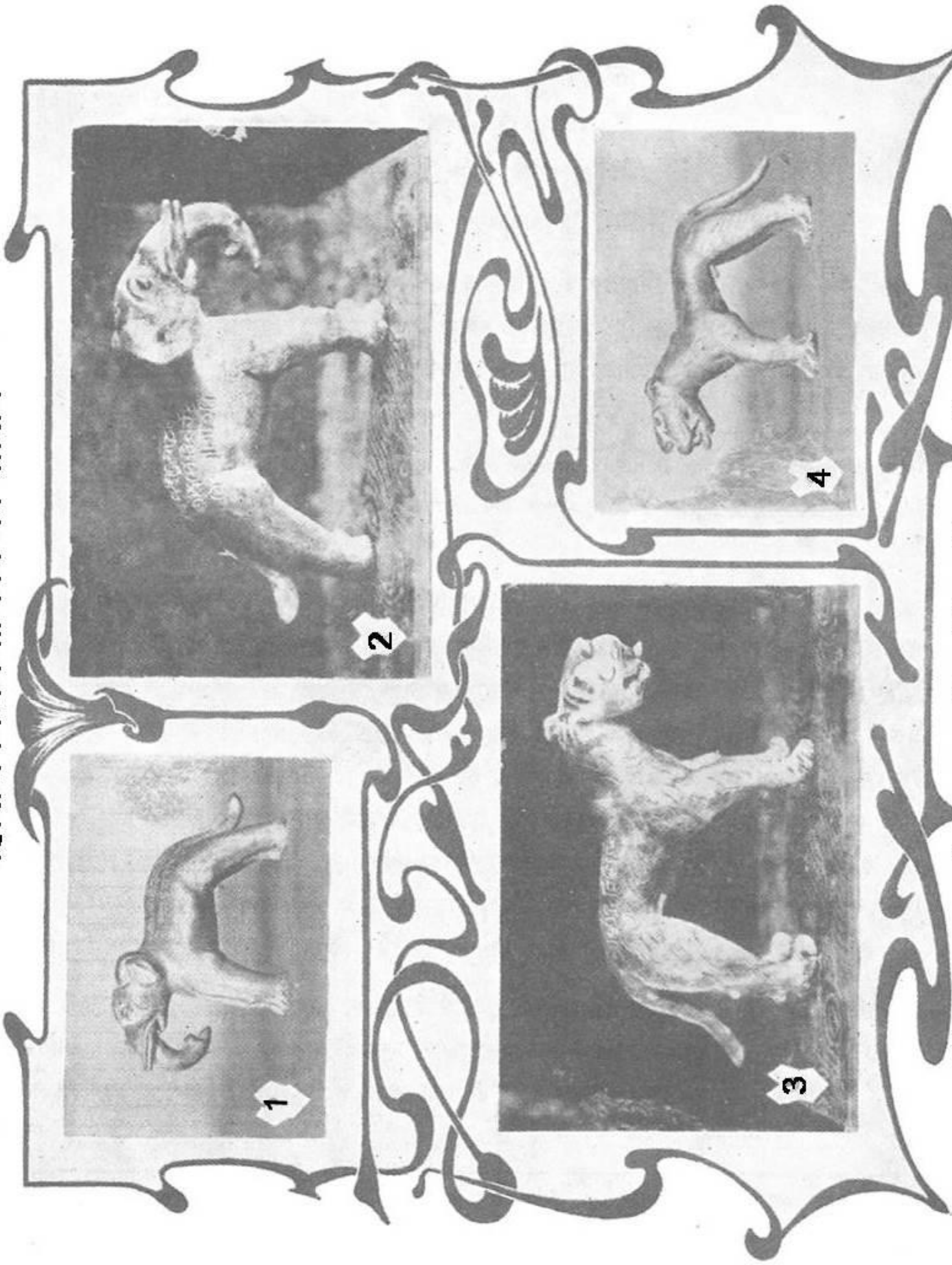
राजदत्त शासन इसके पश्चात् महाराज ने कुकियों को राजधानी में आह्वान करके चिरवश्यता के विरूद्ध कोई कदम नहीं उठायें इस तरह की प्रतिज्ञा कराई और प्रतिज्ञा को अक्षुण्य तथा चिर स्मरणीय करने के अभिप्राय से उन लोगों को विशाल धातुनिर्मित एक हाथी और एक बाघ की मूर्ति

---

(1) राजमाला प्रथम लहर की टीका में ''राज चिन्ह'' शीर्षक में जयन्तिया के तीन राजाओं की माणिक उपाधि धारण की बात लिखी गई है। इसमें विजयमाणिक का नाम मिलेगा।

(2) श्रीहट्ट का इतिवृत द्वितीय भाग चतुर्थ खण्ड, प्रथम अध्याय।

द्विल –162
2nd Leher-Page-162



(1) हाथी का बाये तरफ का चित्र (2) हाथी का दाएं तरफ का चित्र
(3) बाघ का बाये तरफ का चित्र (4) बाघ का दाये तरफ का चित्र

द्विल –163

उपहार स्वरूप दी थी। इन मूर्तियों के पीठ की ओर बंगला अक्षरों में नीचे लिखी संस्कृत वाक्यावली उत्कीर्ण हुई है –

पूर्व्वापौर्य क्रमाद्भवन्त आत्मीया,
इदानीं यदि वैपरित्यमाचरंति।
तदोपरि धर्म्मः शस्य नाशोभवि(1)
ष्यति पश्चादगज शार्दूलौ।।''

यह वाक्यावली विशुद्ध एवं विशेष रूप से स्पष्ट नहीं है। यह इंगित वाणी मात्र हैं। लिपि के किसी अंश के क्षय व अस्पष्ट होने से **Magnifying Glass** की सहायता से पाठ किया जाता है। हमने बहुत कठिनाई से इसका पाठोद्धार किया है। इस सांकेतिक वाक्य का स्थूल मर्म नीचे दिया जा रहा है –

''तुम लोगों के साथ पहले से अब तक जो आत्मीयता चली आ रही है, अभी यदि उसके विपरीत आचरण करोगे तब तुम्हारा धर्म और शस्य विनष्ट होगा एवं पश्चात् गज व शार्दुल द्वारा तुम भी विनष्ट हो जाओगे।''

कुकी जाति की राजभक्ति कुकी लोग दुर्द्धष होने पर भी साधारणतः धर्मभीरू एवं राजभक्त थे। राजा को वे देवता ज्ञान करते थे। उनकी फसलें ही उन की जीविका निर्वाह की एक मात्र सहारा हैं। जिन्हें सदा जंगल में रहना पड़ता है, उनके प्रबल शत्रु हाथी और बाघ उनके चिर सहचर हों और इन दुश्मनों से आत्मरक्षा के लिये जिन्हें सर्वदा सतर्क रहना पड़ता हो, वे यदि प्रतिज्ञा भ्रष्ट होने पर पूर्वोक्त राजशासन से धर्म और शस्य विनष्ट हो और हाथी एवं बाघ के हाथों निहत होने का भीतिप्रद अनुज्ञा रहने से सभी कुकि उस आज्ञा को देवता का आदेश समझकर वंश परम्परा से विशेष सतर्कता के साथ उसका पालन करते आ रहे हैं – इसे देवता का आदेश मानकर भक्ति के साथ अर्चना करते हैं और प्रतिदिन करते हैं। उनके ओझाओं को(2) पूजा का अधिकार दिया गया है।

ये दोनों मूर्तियाँ महाराज विजय के राजनीतिज्ञ गांभीर्य का ज्वलंत उदाहरण हैं। इसके अलावा और किसी उपाय से उग्र स्वभाव असभ्य कुकियों के कर्कश हृदय में राजभक्ति को चिर स्थायी किया जा सकता या नहीं इस समय इसे हृदयंगम करना सहज साध्य नहीं है।

....

(1) पाठ के प्रथमावधि 'शस्य नाशोभवि' तक गजपृष्ठ पर एवं परवर्ती अंश बाघ के पीठ पर उत्कीर्ण हुआ है।

(2) इस विषय में विस्तृत विवरण मेरे लिख गये ''महाराज विजयमाणिक्य'' नाम के निबन्ध में देखिये। नव्य भारत कार्तिक संख्या 1304 बंगला सन

(3) कुकियों के पौरोहित्य कार्य का भार जिनके हाथों में सौंपा जाता था उन्हें 'ओझाई' या ओझा कहते हैं।

द्विल –164

राजकर उस समय राजकर किस नियम से निर्धारित और गृहीत होता था, यह जानने का कोई उपाय नहीं है। समतल भूमि का कर बहुत ही कम था – यह जाना गया है। पार्वत्य कुकि लोग पहले के प्रथानुसार नाना तरह के वस्तु और जंगली जन्तु वार्षिक भेंट स्वरूप देते थे और वहाँ कर स्वरूप गण्य होता था। महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में कुकियों के प्रदत्त भेंट की सूची नीचे दी जा रही है। –

गज दन्त गबय छाग कांस्य बाद्य घोंग।	गज दन्त, गबय, छाग, कांस्य वाद्य घोंग।
रक्त कृष्ण श्वेत वस्त्र विशाल सु –रंग।।	रक्त कृष्ण श्वेत वस्त्र विशाल सु–रंग।।
कांस्य थाली पिकदानी ताम्रेर कंकण।	कांस्य थाली, पीकदानी, तांबे का कंकण।
उबाफेरू जलपात्र देबदारू बन।।	उबाफेरू जलपात्र देवदारू बन।।
किरातिया खड्ग शक्ति पित्तल कांस्य झारि।	किरातिया खड्ग शक्ति पीतल कांस्य झारी।
राज भेंट पाठाइलो पूर्ब अनुसारि।।	राज भेंट पठाया पूर्वरूप अनुसारी।।
नानाविध बस्तु जतो नाना रंग घोड़ा।	नानाविध वस्तु जितने नाना रंग के घोड़ा।
सहस्र सहस्र कुकि आसिलो दिगम्बरा।	सहस्त्र सहस्त्र कुकि आये होकर दिगम्बरा।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 21पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 21पृ

अर्थात –''गजदंत, गबय, छाग, कांसें का वाद्य यंत्र, घोंग, काँसें की थाली, पीकदानी और ताम्बे का कंकण, जलपात्र देवदारू की किरातिया खड़ग, पीतल की बनी झाड़ी इस तरह नाना तरह के वस्तुओं के साथ नाना रंग के घोड़ों को लेकर हजारों कुकि दिगम्बर होकर आये।''

इस सूची की आलोचना से देखा जाताा है कि गजदन्त, घोड़े आदि मूल्यवान वस्तुओं के साथ राजाओं के अग्राह्याय (राजाके ध्यान के अयोग्य) ताम्र कंकण आदि अकिंचित कर द्रव्य भी था। इससे यह अनुमान होता है कि कुकि जो वस्तु संग्रह कर पाते थे और उनके भक्ति प्रणोदित ह्रदय से जो वस्तु राजा को देने की प्रवृत्ति होती थी वह राजदरबार में उपस्थित करते थे। वह वस्तु मूल्यवान हो या न हो, भक्त प्रजा के प्रदत्त उपहार समझ कर राजा उसे सादर ग्रहण करते थे।

इसके अलावा पर्वतवासी प्रजा एवं कक्ुी लोग राजकर के बदले साल में छह दिनों के लिये सोने की खान में और रेशम के कारखाने में कार्य करने पर मजबूर थे। सरकारी तौर पर हाथी पकड़ने के लिये ये उपस्थित रहकर उस कार्य में नियोजित सरकारी राज कर्मचारियों के आदेश और उपदेशानुसार हाथी पकड़ने का कार्य करते थे। राज्य और राजेश्वर के स्वार्थ और सम्मान की रक्षा के लिये ये लोग युद्ध करते थे। पार्वत्य प्रदेशों में सरकारी संवाद प्रचार करना एवं राज कर्मचारी का पर्वतों पर उनके सामान को लेकर एक गाँव से दूसरे गाँवों तक ले जाने का काम इन्हीं का होता था। इसलिये ये लोग कर भार से मुक्त रहते थे। समभूमि के प्रजाओं से मुद्रा कर लिया जाता था और वह भी बहुत कम।

मुद्रा इस समय त्रिपुरा में स्वर्ण और रोप्य मुद्रा का प्रचलन था। यह राजदरबार के तत्वावधान में तैयार होता था। राजा लोग कोई भी उल्लेख योग्य सत्कार्य करने पर अथवा स्वयं नए प्रदेश पर विजय प्राप्त करने पर उसे स्मरणीय बनाने के लिये नई मुद्रा तैयार होती थी एवं घटना का स्थूल मर्म उस पर उत्कीर्ण किया जाता था।

द्विल –165

सिंहासन आरोहण, तीर्थ कार्य सम्पादन एवं युद्ध में विजय प्राप्त कर उन घटनाओं का उल्लेख करते हुए मुद्रा तैयार करने का निदर्शन राजमाला में बहुत से मिलेंगे(1)। उन दिनों मुद्रा की जगह कौड़ी के प्रचलन की प्रथा के भी निदर्शन मिलते हैं(2)।

समाज तत्व समाज तत्व के बारे में कोई विशेष बात हमें राजमाला में नहीं मिलती। प्रथम लहर की टीका में कहा गया है, राजमाला में केवल राजाओं का विवरण दिया गया है। राजा साधारण समाज के अन्दर नहीं है। जिस ग्रंथ में साधारण, जन साधारण की बातें आलोचित नहीं होती, उसमें समाज तत्व की बातें मिलने की प्रत्याशा ही बृथा है। इस बात को सोचना ही निष्प्रयोजन है। प्रासंगिक तौर पर जो दो एक बातों का जो जिक्र आया है उसे हम यहाँ दे रहे हैं।

सुरा का प्रभाव उन दिनों राज्य में शराब का प्रचलन अधिक था। कुकि आदि पहाड़ी जन जातियाँ पानी की तरह शराब पीती थी। इस समय भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। थानांछि के कुकि त्रिपुर वहिनी द्वारा सुदीर्ध आठ महीने तक दुर्ग में अवरूद्ध रहने पर भी वे शराब पीने से बाज नहीं आये(3)। राजा के घनिष्ठ कुटुम्बियों में भी मदिरा का आदर था। धन्यमाणिक्य ने अपने जामाता होपाकलाउ को सोना संग्रह के लियें कुकि प्रदेश में भेजा था। कुकियों ने सोचा, उनके यहाँ सोने की खान का पता लगने पर यहाँ त्रिपुरेश्वर थाना (सेनानिवास) बैठायेंगे। इससे उन्हें बहुत सी असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा और सोने की खान में काम करना पड़ेगा। उन्होने इस उपद्रव से बचने के लिये षड़यंत्र करके राज जामाता को ससम्मान ग्रहण कर, मित्रभाव से अतिरिक्त मद्य द्वारा मदमस्त कर,

....

(1) 1 चौद्शो पांचत्रिश शाके समर जिनिलो। चौदह सौ पैंतीस शक में जीता समर।
चाटि ग्राम जय कोरि मोहर मारिलो।। चट्ट गांव जीतकर निकाली अपनी मुहर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ
अर्थात "1435 शक में समर जीत कर चट्टग्राम में अपनी मुहर चलाया।"
2 फलमति तीर्थे स्नान कोरे महामति। फलमति तीर्थ में स्नान किये महामति।
मोहर मारिलो तथा दान धर्म यति।। मुहर बनाया किया दान धर्म यति।।
राजमाला द्विल देवमाणिक्य खण्ड 33पृ राजमाला द्विल देवमाणिक्य खण्ड 33पृ
अर्थात फूलमति तीर्थ में स्नान करके महामति ने वहाँ पर अपने नाम की मुहर चलाई।
3 ब्रह्मपुत्र स्नान करी जरप मारिलो। ब्रह्मपुत्र में नहाकर स्वर्ण मुद्रा जारी की।
ध्वजधाट विजयी बलि मोहोरे लिखीलो।। स्वर्ण मुद्रा में ध्वजघाट विजय लिखा है।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ
अर्थात "ब्रहुपुत्र में स्नान करके स्वर्ण मुद्रा का दान किया और ध्वज घाट विजयी कहकर मुहर में लिखा।"

(2) "हेन मते पंचशत कुष्माण्ड लोइलो।
राजघर हने कोड़ि शुड़िरे देउआइल।।" पाठान्तर– (बंग्ला)
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 50पृ
अर्थात "उनसे पाँच सौ कुष्माण्ड लिया। राजघर से कौड़ी लेकर मदिरा बनाने वाले को दिया।"

(3) थानांछि के कुकियों के बारे में राजमाला में है –
गड़ेर ऊपरे सैन्य मदे मत्त होइया। गढ़ के ऊपर बैठी सेना, मद मांस से होकर चूर।
त्रिपुराके गालिदेय पद देखाइया।। त्रिपुरा को गाली देते, अपना पैर दिखाकर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ
अर्थात "गढ़ के ऊपर की सेनायें मदमत्त होकर त्रिपुरा को गाली दे रहीं थी और लात दिखा रही थी।"

द्विल –166

संज्ञाहीन अवस्था में वध कर डाला(1)। महाराज विजयमाणिक्य के आदेशानुसार माधव नाम के व्यक्ति द्वारा प्रधान सेनापति दैत्यनारायण को अत्याधिक मदिरा पिलाकर नशे में चूर अवस्था में उनकी हत्या करने के निदर्शन भी राजमाला में मिलता हैं(2)। सैनिक विभाग में सुरा का प्रादुर्भाव रहने की बात प्रथम लहर में मिलती है। द्वितीय लहर में भी इस बारे में दृष्टांत के अभाव नहीं है। सेनापति दैत्यनारायण की बात पहले कही गई है। त्रिपुरेश्वर की पठान सेनाओं ने विद्रोही होकर वजीर का वध कर डाला था एवं विजयमाणिक्य का वध कर राजधानी को लूटने के लिये तैयार थे। किन्तु सुरामत्त अवस्था में उनमें कलह हो जाने पर गुप्त अभिसन्धि प्रकाश में आ गई(3)। महाराज विजय ने उन्हें उनके इस षड़यंत्र का उचित फल दिया था –यह पहले ही हम बता चुके हैं। महाराज विजय ने चट्टग्राम जय करके जो सभी वस्तुओं को प्राप्त किया था उनमें बहुत से सुवर्ण कुष्माण्ड(4)थे। किसी एक सैनिक

....

(1) सोना पाइले थाना एथा थाकिबो राजार।।	सोना मिलते ही राजा का थाना होगा इस बार।।
मंत्रणाते जामाताके मद्य पान दिलो।	मंत्रणा में जामाता को मद्य पान दिया।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 32पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 32पृ

अर्थात "मंत्रणा करके जामाता को मद्य पान कराया और नशे में चूर जामाता को कुकियों ने काट डाला।"

(2) अन्नो खाइया मद्य पान कोरिलो बहुत।।	भोजन के साथ मद्य भी बहुत पिया।।
आर मद्य न खाइबो कहे सेनापति।	सेनापति ने कहा और मद्य नहीं पियेगा।
पिए बलि माधवे पियाए मद्य अति।।	पियो बोलकर माधव ने खूब पिलाया।।
मद्यो पाने सेनापति पडिलेक खाटे।	मद्य पीकर सेनापति खाट पर गिर पड़ा।
खड्ग लइया तखोने माधवे माथा काटे।।	तभी माधव ने खड्ग लेकर सिर काट दिया।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 42पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 42पृ

अर्थात "अन्न खाकर बहुत मद्य पान किया अब और मदिरा नहीं पीना है माधव ने कहा और पिओ" कहकर बहुत अधिक मदिरा पिला दिया। अत्याधिक मदिरा पान कर सेनापति खटिया पर गिर पड़े और माधव ने खड़ग लेकर उनका सिर काट दिया।"

(3) मद्य पाने पाठानेर कलह जन्मिल।	शराब पीकर पठानों में कलह जन्मा।।
पाठानेर कुमन्त्रणा ताते व्यक्त होइलो।।	पठानो की कुमन्त्रणा वहीं व्यक्त हुई।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 46पृ

"मद्य पान कर पठानों में कलह उत्पन्न हुआ और पठानों की कुमंत्रणा व्यक्त हो गई"

(4) उस समय सोना को कुष्माण्ड के आकार की तरह बनाया जाता था और उसकी रक्षा की जाती थी। प्राचीन काल में सबकी अवस्था अच्छी थी और सारे देश में सोना और मणियों की बहुतायत थी। सोने के खिलौने को बालकों के लिये बनाया जाता था। यह बहुत पहले की बात नहीं है। त्रिपुर राज्य के करीब (बाद में त्रिपुरा के अंतर्गत) मेहेरकुल की इस तरह की समृद्धि थी। इस हालत में सोने के कुष्माण्ड का अस्तित्व असंभव प्रतीत नहीं होता। मयनामती के गीतों में उस समय की झाँकी मिलती है।

काहार बाटिते केह उधार ना चाइत।
सोणार ढेलुया लईया बाल्लके खेलाइत।।
हाडाईले ढेलुया पुनि ना चाहित जार।
एमते गोआइल लोके हरिष अपार।
मेहारकुल बेडि छिल मुलिबांशेर बेड़ा।
गृहस्तेर परिधान सोणार पाछुरा।। इत्यादि भवानी दास

अर्थात "किसी के घर पर कोई उधार माँगने नहीं जाता था। सोने के खिलौने से बालक खेलते थे। खो जाने पर उसे खोजते नहीं थे। इस तरह हर्ष अपार हर्ष में लोगों ने दिन गँवायें। मेहेरकुल में मुरली बाँस से बाड़ा बनाया गया था। सोने से बुने गये कपड़े लोग पहनते थे।

द्विल –167

ने एक कुष्माण्ड चोरी से शराब बेचने वाले को देकर उसके बदले में मदिरा पान किया था(5)। राजपरिवार में भी मदिरा का प्रचलन नहीं था, ऐसी बात नहीं। अमरमाणिक्य, जयमाणिक्य के सेनापति पद पर नियुक्त रहते हुए उनके प्रतिद्वंदी रणागण ने उन्हें मद्य पान कराकर हत्या का षड़यंत्र रचा था(6)।

केवल पुरूषों में सुरा के प्रति आसक्ति कहना ही यथेष्ट नहीं है। रमणी समाज में भी मदिरा के प्रचलन रहने के प्रमाण मिलते हैं। महाराज धन्यमाणिक्य महिषी सेना की रमणियों को मदिरापान कराकर उनकी अवस्था को देख आनन्दित होती थी(7)।

उन दिन मदिरा बहुत ही सुलभ थी। सुवर्ण कुष्माण्ड के बदले मदिरा पान करने की बात इसके पहले कही गई है। इस बारे में राजमाला में है –

पितोलेर जानिया कुष्माण्ड नियाछिलो।	कुष्मांड पीतल जानकर लिया।।
ऐक आना मूल्य करी मद्‌यपान कोइलो।।	एक आना का शराब पिया।
अबशिष्ट लइया गेलो राजार साक्षात।	बचा हुआ राजा के पास ले गया।।
सुवर्ण कुष्माण्ड हेनो जानीलो पश्चात।।	सोने का कुष्मांड है बाद में पता चला।
दूत मुखे सुनि राजा तदन्त कोरिलो।	राजा ने दूत से सुनकर जांच किया।।
सुडी घरे दिया पाइके मद्‌यपान कोइलो।।	मदशाला मे देकर सैनिक ने शराब पिया।
आष्ट सेर मद्य ताते कोरिआछे पान।	वहां पर आठ सेर की शराब पी।।
ए सब वृतान्त कोहे राजा विद्यमान।।(8)	यह सब कहानी राजा को बताया।(8)
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 49पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 49पृ

अर्थात "पीतल जानकर वह कुष्माण्ड ले गया था। एक आना के दर से उसने मदिरा पान किया था। बाद में जो बचा उसे राज के यहाँ ले गया। दूत के मुँह से सारी बातें सुनकर राजा ने तहकीकात की। शराब बेचने वाले ने बताया कि उसने कुष्माण्ड के बदले में आठ सेर मदिरा पान किया है। राजा के यहाँ मदिरा बेचने वाले ने ये सारी बातें कही।"

राजामाला की इस उक्ति से जाना जाता है कि एक आने में आठ सेर मदिरा उसे पान किया था। एक पैसे में दो सेर मदिरा मिलता था। उन दिन हर घर में मदिरा बनाने का अधिकार था। आज की तरह मदिरा पर कोई शुल्क धार्य नहीं किया गया था।

---

(5) दैवे कुष्माण्ड एक पाइके(3) लुकाइया।	एक सैनिक(3) ने कुष्मांड को छिपा लिया।।
मद्‌यपान कोरिछिलो सुडी घरे निया।।	मदशाला में जाकर शराब पी।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 49पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 49पृ

अर्थात "दैवयोग से एक सिपाही ने छिपाकर मदिरा बनाने वाले के घर में जाकर (सोने के) कुष्माण्ड के बदले में मदिरापान किया।।"

(6) अमरमाणिक्य ने स्वयं कहा है –

आमा डाके रणागण भोजन करिते।	मुझे बुलाया रणागण ने, भोजन वहां करने।
मद्य पान कराइया चाहिलो मारिते।।	मद्यपान कराकर चाहा मुझे मारने।।
राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 74पृ	राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 74पृ

अर्थात "रणागण ने मुझे अपने घर पर भोजन के लिये बुलाया। मदिरापान कराकर मुझे मारना चाहता था।"

(7) सागरेर खनन देखिते महारानी।	सागर का खनन देखने को महारानी।
सैन्येर रमणी संगे रात्रिते आपनि।।	महारानी के साथ आई सेनाओं की रमणी।।
ज्योत्सना काल कोन रात्र नारीगण संगे।	किसी चांदनी रात में नारियों के संग।
मद्‌य मांस खाउयाइया चाहे बहु रंगे।।	मद्य मांस खिलाया चाहा बहु रंग।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 17पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 17पृ

अर्थात "सागर का खनन कार्य देखने के लिये महारानी आई। सैनिको की स्त्रियां रात को आई। चाँदनी रात में किसी एक रात को नारियों को साथ लेकर मदिरा –मांस खिलाकर उनके बहुत तरह के रंग भाव में देखते थे।"

(8) राजमाला विजयमाणिक्य खण्ड।

द्विल –168

खासतौर से मदिरा बनाने के उपकरण उस समय बिना मूल्य के अथवा अल्प मूल्य में मिलते थे। मदिरा सुलभ होने का यही कारण था।

पान प्रदान द्वारा आमंत्रण और सम्मान प्रदर्शन की प्रथा समाज में ओर एक विशेष नियम के प्रचलित रहने के निदर्शन पाये जाते हैं, किसी कार्य के सम्पादन के लिये व्यक्ति विशेष का आह्वान अथवा विदा देने के समय पान प्रदान करना। सेनापति और मंत्री गोपीप्रसाद नारायण ने अपने जामाता अनंतमाणिक्य का वध करने के लिये राजा के मल्ल–गुरू गदाभीम को अनुरोध किया था। गदाभीम ने इस प्रस्ताव से असम्मत होकर कहा था –

पुरूषानुक्रमे आमि ताहार चाकर।।	पुरूषानुक्रम से मैं हूं उनका चाकर।।
शताधिक पुरूषाबधि विजय नृपति।	शताधिक पुरूषाबधि से विजय नृपति तक।
तार बंश मारि आमा नाहि अव्याहति।।	उनके वंश को मार मेरी अव्याहति कब।।
दश द्विज सम येनो एक राजा होय।	दस द्विज सम राजा होता एक।
राजबंश बधे होय नरक निश्चय।।	राजवंश वध से होता है अनंत नरक।।
छत्रधारी सिंहासन जेई राजा होय।	छत्रधारी सिंहासन पर जो करता राज।
तार बधे महापाप धर्मशास्त्रे कोय।।	शास्त्र कहता उसके वध से होता महापाप।।
बिशेष आमार बंश पालिले नृप बरे।	मेरे वंश को विशेष सबसे पाला नृप वर ने।
किबा धर्म होये आमि ताके मारिबारे।। (9)	कौन सा है वह धर्म हम जाएं उसे मारने।।(9)
राजमाला द्विल अनन्तमाणिक्य खण्ड 66पृ	राजमाला द्विल अनन्तमाणिक्य खण्ड 66पृ

अर्थात "पुरूषानुक्रम से मैं राजा का नौकर हूँ। सैकड़ों वर्षों से विजय नृपति ने पाला है। उनके वंश को मारने हमें मुक्ति नहीं मिलेगी। दस द्विज के बराबर एक राजा होता है। राजवंश के वध निश्चय ही से घोर नरक होता है। छत्रधारी सिंहासनारूढ़ जो राजा होता है उसके वध से महापाप होता है ऐसा धर्मशास्त्रों में कहा गया है। विशेष रूप से मेरे वंश को उन्होने पाला है। उनके मारने से हमें क्या धर्मफल मिलेगा।"

मंत्री ने समझा इसके द्वारा सिद्धि की संभावना नहीं है –तब

एकथा शुनिया मंत्री निःशब्दे रहिलो।	यह बात सुन मंत्री रह गये मौन।
पान दिया गदाभीम विदाय करिलो।। (10)	पान देकर विदा किया गदाभीम को।।(10)
राजमाला द्विल अनन्तमाणिक्य खण्ड 66पृ	राजमाला द्विल अनन्तमाणिक्य खण्ड 66पृ

गदाभीम की राजभक्ति की बात सुन कर चुप हो गया और पान दे कर गदाभीम ने उसे विदा किया।

अन्यत्र भी पान प्रदान द्वारा आह्वान या विदा करने का दृष्टांत विरल नहीं है। रत्नमाणिक्य के शासन काल में उन्होने अपने मामा बलिभीम नारायण, अनुज दुर्ज्जय देव एवं राजवंश जात गौरीचरण और चम्पकराय, इन चारों को युवराज पद पर नियुक्त किया था। राजा कम उम्र के थे इसलिये युवराज गण ही राज कार्य सँभालते थे। इस समय त्रिपुरेश्वर के प्रतिश्रुति हस्ती उपहार नहीं मिलने से ढाका के सूबा बहादूर खाँ ने एक विशाल सेना वाहिनी को साथ देकर केशरलाल को त्रिपुरा के विरूद्ध भेजा था। मुगल सेनापति केशरलाल ने अपने अधीनस्थ सेनापतियों को शिविर में बुलाकर कहा, "त्रिपुरेश्वर हस्ती प्रदान नहीं कर रहे हैं। बलिभीम ही इस अनर्थ के कारण हैं। तुम उसे पकड़कर ले आओ। हाथी नहीं पाने पर युद्ध

(9) राजमाला अनंतमाणिक्य खण्ड।

(10) इस तरह के पान प्रदान की प्रथा हिन्दु समाज में कोई नई नहीं है। प्राचीन बंगला साहित्य भण्डार में इस प्रथा के प्रचलित रहने के बहुत से निदर्शन विद्यमान हैं।

द्विल –169

अनिवार्य है। बलिभीम को पकड़ने के लिये जिसमें साहस हो, वह दर्प के साथ आकर मेरे हाथ से पान ग्रहण करें।''(1)

कृष्णमाणिक्य के शासन काल में युवराज हरिमणि देव ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कप्तान(2) के साथ मुलाकात करने के लिये उनके शिविर में गए थे। उनके विदाई के समय समय साहब ने उन्हें विदाई के समय उपहार स्वरूप एक उत्कृष्ट बन्दूक, एक पिस्तौल, एक थान बनात (थान बुना कपड़ा) और पान प्रदान किया था।(3)

त्रिपुर राज्य में पान प्रदान द्वारा निमंत्रण करने की प्रथा अब तक उसी तरह चली आ रही है। किसी शुभ कार्य के सम्पादनार्थ राजाज्ञा ग्रहण के समय एवं इस कार्य के उपलक्ष पर विशिष्ट व्यक्तियों को निमंत्रण करने के समय पान देने की प्रथा त्रिपुरा में बहुत पहले से चली आ रही है।

राजदरबार में पान और गंध द्रव्य प्रदान करना हिन्दु राजत्व काल का नियम है। उन दिनों पान के साथ चन्दन दिया जाता था। उस प्राचीन प्रथा के अनुसार आज भी हिन्दुओं में विवाह के समय पान और चन्दन प्रदान किया जाता है। मुसनमान शासन काल में चन्दन के बदले इत्र प्रचलित हुआ था। तब से राज दरबार में पान के साथ इत्र प्रदान करते हैं। त्रिपुरा के राज दरबार में अब भी पान के साथ चन्दन के बदले इत्र ही प्रदान किया जाता है।

महिला महात्म्य इस काल की राज महिषियाँ धर्म परायणा, साध्वी एवं बुद्धिमती थी। भूमिदान, जलाशय खनन एवं देवता स्थापना आदि विविध प्रकार के पुण्य कार्य द्वारा उनमें से बहुत सी महिषियाँ चिरस्मरणीयाँ हुई हैं। अनेक राजमहिषी सहास्य बदन से पति के साथ चितारोहण द्वारा हिन्दु महिलाओं के सतीत्व गरिमा के जाज्वल्यमान दृष्टांत प्रदर्शन किया है।

राज महिषियों की तेजस्विता और बुद्धि की प्रखरता के अनेक दृष्टांत हैं। उनमें से यहाँ एक मात्र दृष्टांत यहाँ दिया जा रहा है।

---

(1) 'चम्पकविजय' नाम की हस्तलिखित एक किताब में इस बारे में लिखा है –

''कोन व्यक्ति जाइबा जे हउ आगुयान।
दर्प कोरि हस्त होने लउ गुया पान।।''

अर्थात ''तुमसे कौन व्यक्ति, जो आगे जायेगा, वह दर्प से आगे बढ़े स्वयं मेरे हाथ से गुया पान ले जाये।।''

(2) इस साहब का नाम कृष्णमाला में ''किंलाक'' लिखा है। यह नाम सही है या नहीं यह निर्णय करना असंभव है। राजमाला और कृष्णमाला में लेखकों ने अंग्रेजों के नाम विकृत करके उन्हें भूत बना दिया है।''

(3) कृष्णमाला नामक हस्तलिखित ग्रंथ में लिखा है –

''पिस्तल बन्दुक दुई इस्पात निर्माण।
एई अस्त्र आमरार युद्धेते प्रधान।।
एई बनायत जे अंगेर आभरण।
तोमाके दिलाम खातिरजमार कारण।।
पान दिया साहेबे जे बहु आश्वासिया।
बासा जाइते युबराज बिदाय कोरिया।।'' आदि

द्विल –170

राजमहिषी का दीप्त तेज अनंतमाणिक्य, उनके सुसर गोपीप्रसाद के प्रति अत्यंत वशीभूत थे एवं यह अतिरिक्त वश्यता उनके विनाश का कारण हुआ था। यह बात पहले ही कही गई है। राजमहिषी (गोपीप्रसाद की पुत्री) पिता के व्यवहार से संदिग्ध होकर राजा को हमेशा ससुर के यहाँ जाने से रोकती थीं। किन्तु राजा इसकी परवाह नहीं करते थे। अंत में गोपीप्रसाद ने राज्य लोभवश राजा की हत्या करवाई। महारानी पति के साथ चिता पर जाने के लिये कृत संकल्प हुई, पिता द्वारा बाधा पाकर वह संकल्प पूर्ण नहीं कर सकी। गोपीप्रसाद, अपनी पुत्री की क्षोभ और शोकाभिभूत होकर, क्षिप्त बाघिनी की तरह दुष्कर्मी पिता पर आक्रमण कर दिया व कर्कश वाक्य और करूण रूदन शुरु किया। पुत्री के कर्कश वाक्य और करूण रूदन को नजर अंदाज कर, राज्य लोभी गोपीप्रसाद शीध्रता पूर्वक सिंहासन पर बैठे। यह दृश्य राजमहिषी के लिये असहनीय हो गया और वह सिंहनी की तरह गर्जन कर कह उठी, ''तुमने राज्य लोभवश राजा की हत्या कर नरक का पथ साफ करके रख दिया। मुझे पति के साथ सहगामिनी होने में बाधा प्रदान कर घोर पाप किया है। राजा का वध कर राज्य पर अधिकार किया है। रानी क्यों सिहांसन पर नहीं बैठेगी?'' यह कहकर महारानी पिता के बाँई ओर बैठने के लिये सिंहासन पर जा बैठी। पापिष्ठ गोपीप्रसाद इस बार कन्या से यहाँ पराजित हुआ। कन्या को बाँई ओर बैठते देख राम नाम उच्चारण पूर्वक सिंहासन से उतर गया। इसके बाद गोपीप्रसाद ने राजधानी के करीब चन्द्रपुर गाँव में सिंहासन उठाकर ले गये थे।(1)

स्त्री शिक्षा का निदर्शन इस समय राज्य में स्त्री शिक्षा का सूत्रपात हुआ था। सेनापति गोपीप्रसाद(उदयमाणिक्य) की दूसरी पत्नी

पाँचाली(धर्म ग्रंथ, चालीसा की तरह) का पाठ करके पति को सुनाने की बात राजमाला में मिलती है। प्रतिभामयी राजमहिषियों के कार्यकलापों की आलोचना से ज्ञात होता है कि वे सुशिक्षिता थी, किन्तु राजमालाकार ने इस विषय में कोई स्पष्ट विवरण प्रदान नहीं किया है।

इंगित और सांकेतिक चिन्ह

इंगित मनोगत भाव दूसरों को समझाने के लिये त्रिपुरा में नाना तरह के इंगित प्रचलित थे। इससे बहुत से कठिन/गुरुतर/भयानक विषयों को भी आसानी से समझाया जाता था। जयमाणिक्य के सेनापति अमरदेव ने स्वयं कहा है –

आमा मारि रणागण राजा होइते चाय।।	मुझे मार रणागण होना चाहता राजन।।
आमा डाके रणागण भोजन करिते।	मुझे बुलाया रणागण ने, भोजन वहां करने।
मद्य पान कराइया चाहिलो मारिते।।	मद्यपान कराकर चाहा मुझे मारने।।
राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 74पृ	राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 74पृ

(1) हस्तलिखित त्रिपुर वंशावली ग्रंथ की आलोचना से जाना जाता है कि उदयमाणिक्य (गोपीप्रसाद) ने कन्या को चण्डीगढ़ नाम के एक जगह पर जागीर प्रदान कर वहीं पर रखा था। यह चण्डीगढ़, उदयपुर और सोनामुड़ा के बीच मेलाघर/मेलागड़ के करीब है।

द्विल –171
2nd Leher-Page-171



कदबा चिन्ह सांकेतिक चिन्ह

द्विल –171

ताहा ना जानिया आमि गेलाम तखने। यह सब जाने बिना मैं गया वंहा तत्क्षण।
पान बटु छेदि आमा देखाय अन्य जने।। पानपात्र में छेद कर इशारा किया एक जन।।
राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 74पृ राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 74पृ

अर्थात पान थैली छेदकर दिखाते ही अमरदेव को सारे षड़यंत्र की आभास हो गया और बीमारी का बहाना बना उन्होने वह स्थान त्याग किया और आने वाली विपदा से अपनी रक्षा कर सके। यह इंगित न पाते तो वह मृत्यु अनिवार्य थी।

गोपनीयता से अनुराग अथवा विराग का भाव जताने के लिये नाना तरह के इंगित/इशारे समाज में प्रचलित थे एवं इस समय भी हैं। यहाँ पर एक इंगित/इशारे का उल्लेख किया जा रहा है।

पहाड़ी त्रिपुरा जातियों में विवाह–प्रार्थी वर को एक साल तक लड़की के घर में रहकर बिना वेतन के लड़की अभिभावकों के निर्देशानुसार जूम खेत में (पहाड़ पर जो फसलें पैदा की जाती हैं उसे जूम कहते हैं) और सांसारिक नाना तरह के कामों को करना पड़ता था। इस तरह के प्रथा का उद्देश्य यह था कि भावी जामाता और कन्या में पारस्परिक सद्भाव जन्मता है या नहीं एवं विवाह प्रार्थी व्यक्ति कन्या को पालन एवं संरक्षण दे पायेगा या नहीं, कन्या के अभिभावक लोग इस सुयोग से उसे परख लेते थे एवं भावी जामाता द्वारा अवैतनिक काम कराकर उसे लड़की से शादी करने में लड़के को यहाँ की रीति के अनुसार जो कुछ दहेज देना पड़ता है उसी के बदले में उसका वेतन मान लिया जाता था। कन्या को दहेज देने में समर्थ व्यक्ति को इस तरह के श्रम नहीं करना पड़ता है। यदि किसी भावी वर को कन्या पसंद नहीं करती है तो बिना कुछ कहे वह वर के खाने वाले भात में कोयले का टुकड़ा अथवा और कोई अखाद्य वस्तु चोरी से मिली देती है। पानी में नमक या पीसी हुई मिर्च भी मिला देती है। ऐसा देखकर भावी वर समझ जाता है कि यहाँ पर अब विवाह नहीं होगा और वह चुपचाप चला जाता है।

कदबा बहुत से सांकेतिक चिन्हों को राज कार्य में भी ग्रहण किया जाता था। कोई स्थावर सम्पत्ति को अगर कुर्क करना पड़ता अथवा किसी जगह प्रवेश निषिद्ध होने पर लिखित कुर्क परवाना अथवा निषेध आज्ञा को प्रचार द्वारा निरक्षर और बर्बर पार्वत्य प्रजाओं समझाना कठिन होता था। एक सांकेतिक चिन्ह द्वारा, वह उद्देश्य आसानी से सिद्ध होते देखा गया है। स्थानीय भाषा में उस चिन्ह को 'कदबा' कहते हैं। एक बाँस के टुकड़े के ऊपर के हिस्से को चारों ओर से चीर दिया जाता है। चिरे हुए अंश पर दो बाँस के छोटे टुकड़ों को x चिन्ह की तरह बैठा दिया जाता है ओर उस बाँस को उस विवादग्रस्त या जिस जगह पर निषेधाज्ञा हो, वहां खड़ा करके गाड़ दिया जाता है। उसके आसपास कोई नहीं जाता था। इसके द्वारा कुर्क की गई सम्पत्ति के करीब कोई भी जाने का साहस नहीं करता था। कालक्रम में सरकार के अंगो पर इस चिन्ह के सहारे व्यक्ति विशेष के स्वार्थ सिद्धि के लिये कोई भी आदमी इस चिन्ह का व्यवहार शुरू कर देता था। इसी कारणवश खासतौर से कानून के विधान के अनुसार कार्य परिचालना की सख्ती की वजह से सांकेतिक चिन्ह जब छिछले हो गये तो इस चिन्ह की प्रथा भी क्रमशः खत्म हो गई।

द्विल –172

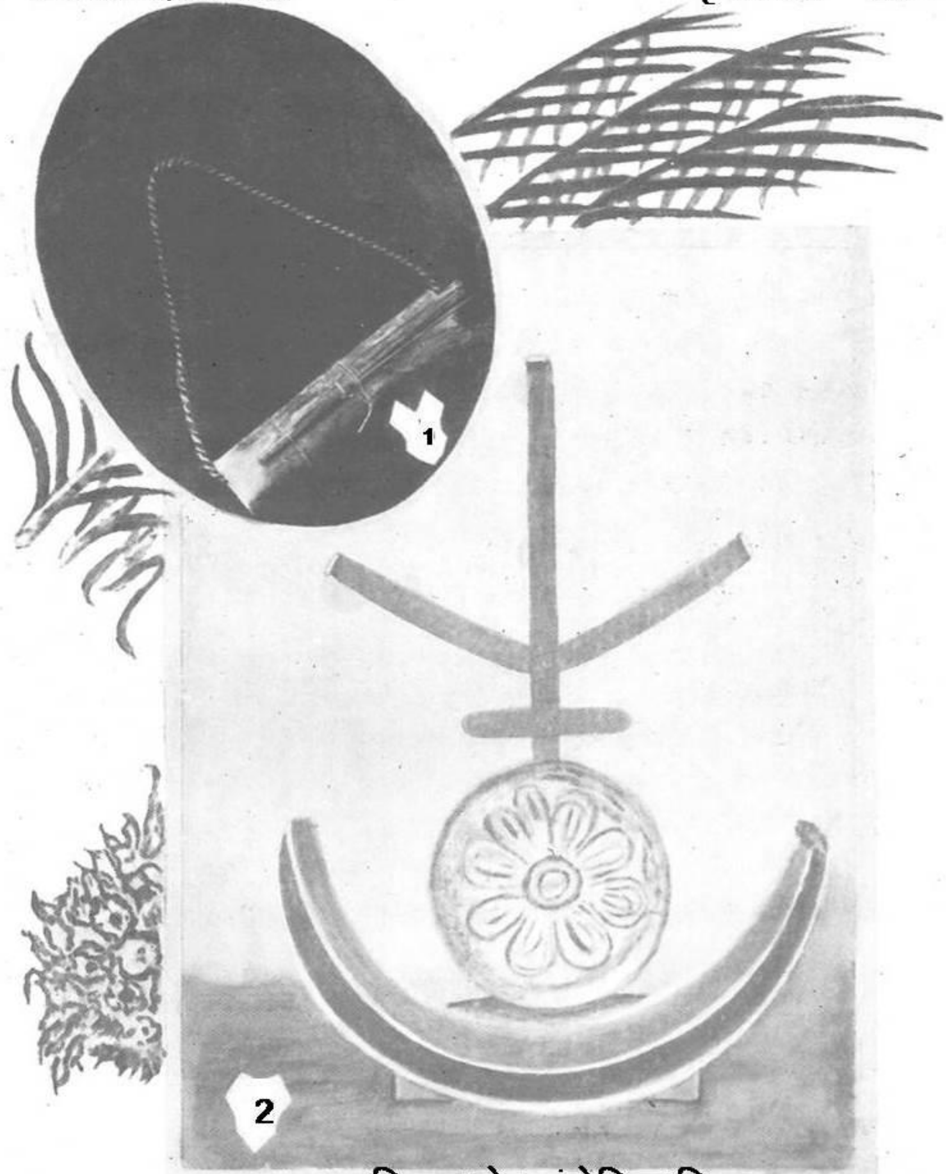
फुराई पार्वत्य प्रदेश के लिये और एक सांकेतिक चिन्ह प्रचलित था। वह बड़ा ही भयानक था। यह चिन्ह लोहे का बना था। स्थानीय भाषा में इसे 'फुराई' कहते थे। इस चिन्ह के वाहक पार्वत्य प्रदेश में जाकर अपनी जुबान से जो आज्ञा देता था उसे पार्वत्य प्रजागण निःसंकोच राजाज्ञा मानते थे और पालन करते थे। राजा के आदेश के बिना यह चिन्ह निकाला नहीं जाता था। युद्ध विग्रह आदि विशेष कारण के बिना सामान्य कारणों से इसके व्यवहार की प्रथा नहीं थी। इस चिन्ह को लेकर सरकारी 'बिनन्दिया' सिपाही पार्वत्य जिस किसी गाँव में जाकर, जो आदेश पालन करना होगा उसका मर्म समझा देता था एवं फुराई को उस गाँव में दे आता था। उस गाँव के लोग अविलम्ब उनके करीबी दूसरे गाँव में फुराई पहुँचा कर राजा के आदेश को सुना देते थे। इस तरह क्रमानुसार एक गाँव से दूसरे गाँव में फुराई पहुँचाया जाता था और साथ राजा का आदेश भी सुनाया जाता था। फुराई एक हाथ से दूसरे हाथ में एक गाँव से दूसरे गाँव में होते होते जहाँ से पहले चलाया गया था वहीं पर लौट आता था।

इस तरह से अति सहज रूप से एवं अल्प समझ के भीतर सारे पार्वत्य इलाके में राज निर्देश प्रचारित होता था। साधारणतः पार्वत्य प्रजाओं को किसी निर्दिष्ट समय पर निर्धारित स्थान पर सब की उपस्थिति या सम्मिलित होने के लिये ही फुराई को भेजा जाता था। फुराई में किसी प्राणी को खून लगा देने पर समझा जाता था कि युद्ध में योगदान करना होगा। उसके साथ मिर्च को पीसकर बांध देने पर समझा जाता था कि यह कार्य विशेष जरूरी है। एक गाँव में फुराई पहुँचने पर तुरंत उसे उस गाँव के लोग दूसरे गाँव में पहुँचाते थे। ऐसा करने पर वे बाध्य थे। दिन रात अधिकांश रूप से यह चित्र एक गाँव से दूसरे गाँव में भेजा जाता था। आँधी, वर्षा या किसी तरह के बाधा विघ्न इसमें रूकावट नहीं डाल सकते थे। अगर किसी गाँव का आदमी इस कार्य में अगर जरा सी भी शिथिलता दिखाता तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था।

उयाथ्लं बाँस के द्वारा भी फुराई बनाई जाती थी। स्थानीय भाषा में इसे ''उयाथ्लं'' कहा जाता था। इससे भी फुराई का उद्देश्य संसाधित होता था। बाँस द्वारा बनाया गया फुराई या ''उयाथ्लं'' के नीचे के हिस्से में आग लगाने पर उसे बहुत ज्यादा जरूरी समझा जाता था।

फुराई व्यवहार की निषेध आज्ञा बहुत पहले से ही यह प्रथा चलते चलते महाराज वीर चन्द्रमाणिक्य के प्रथम शासन काल तक सुश्रृखंला रूप से चलती रही। काल महात्म्य में ''कदबा'' की न्याय ''फुराई'' के कार्य में भी व्यभिचार आरंभ हुआ। सरकार के अगोचर में भी समय समय पर पहाड़ी गाँवों में ''फुराई'' भेजी जा रही थी। इस नियम के गलत उपयोग होने पर राज्य में नाना तरह के अनिष्ट और अशांति की आशंका कर महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य के शासन काल में खास अपील अदालत के (ब्रिटिश गवर्नमेंट स्थानीय हाईकोर्ट) 1295 त्रिपुरा के 22 आश्विन दिनांक एक आदेश में यह प्रथा बंद कर दी गई।

द्विल –172
2nd Leher-Page-172



त्रिपुरा के सांकेतिक चिन्ह

1. मुयाथुलं 2. फुराई

द्विल –173

जिस प्रस्ताव और आदेश के द्वारा ''फुराई'' चलाने की प्रथा का निवारण किया गया था वह नीचे दिया जा रहा है।

सोनामुड़ा

फौजदारी अदालत की

मुहर

41 नं सेहा .

मेमो

श्रीलश्रीयुत युवराज बहादूर के कुमिल्ला अंचल में पदार्पण के उपलक्ष में सोनामुड़ा टाउन के जंगलों को साफ करने के लिये त्रिपुरा के लोगों को संग्रह करने की अनुमति का प्रचार करने के लिए अत्र सोनामुड़ा थाना का आछावद्दीन कांस्टेबल, बड़ा नारायण निवासी, श्याम राय चौधुरी के घर में कुली संग्रह के लिये जाने के बाद बीमार होने पर, आगे जाने में असमर्थ होने पर दूसरे त्रिपुरा के लोगों को खबर देने के लिये उक्त श्याम राय चौधुरी के द्वारा फुराई चलाया था। श्रीश्रीयुत के साक्षात आदेश के बिना इस प्रकार 'फुराई' चलाने की प्रथा नहीं है।

अत्र से बिनन्दिया गारद की बरखास्ती बिनन्दिया मुक्ताचरण त्रिपुरा अपने निजी कार्यवश अत्र इलाका के रांगामुड़ वैद्यनाथ त्रिपुरा के घर में जाकर उपरोक्त 'फुराई' पाने पर उसे यहाँ उपस्थित करने के पश्चात् उक्त श्याम राय चौधुरी, वैद्यनाथ त्रिपुरा एवं आछावद्दीन कांस्टेबल को तलब कर जबानबन्दी लेने पर देखा गया कि आछावद्दीन कांस्टेबल के अनुमति से उक्त श्याम राय चौधुरी ने अपने घर में रहने वाले धनीराय त्रिपुरा नाम के एक व्यक्ति द्वारा वह 'फुराई' तैयार करा के वैद्यनाथ त्रिपुरा के घर में भेजा था।

ऊपरोक्त कारणवश आछावद्दीन कांस्टेबल और श्यामराय चौधुरी को फौजदारी अदालत को सौंप कर जवाब लेने के बाद विवादी की सफाई साक्षी की तलब करके मुकद्दमा के सुनायी का दिन आगामी पहला अश्विन निश्चित किया गया है।

इस समय फुराई चलाना में सम्प्रति यद्यपि कोई अशांति या अनिष्ट का कारण ना हो। वास्तविक रूप से फुराई चलाना कितना भयानक विषय है और इसकी वजह से कितना अनर्थ और विश्रृंखलता हो सकती है, यह कहना ही बहुत है। किन्तु इस बारे में कानूनन कोई विधान दिखाई नहीं देता है। फुराइ चलाना निषेध है, बोल कर ज्ञात है, किन्तु इस संम्बन्ध में निषेध आज्ञा लिपिबद्ध है, का कोइ तथ्य नहीं है। इस हालत में उस घटना के बारे में कैसा प्रतिविधान करना कर्तव्य है, सत्वर इस विषय में विहितानुमति पाना एवं भविष्य के लिये एक नियम विधिबद्ध होने की आवश्यकता है। इसलिये–

यह आदेश हुआ

ऊपरोक्त विषय का किस तरह का प्रतिविधान किया जायेगा जल्द ही विहितानुमति पाना और भविष्य के लिये एक नियम विधिबद्ध करने के प्रार्थना पत्र मेमों की एक खण्ड प्रतिलिपि

द्विल –174

राजधानी के माननीय अपील अदालत के विचारपति के यहाँ प्रेरण किया गया है। इति सन 1295 त्रिपुराब्द दिनांक 28 भाद्र।

sd Kailash Chandra Sen **sd Hari Mohan Das**
Sheristadar **Deputy Magistrate**

फुराई एक सांकेतिक चिन्ह है। युद्ध इत्यादि में कुकियों के प्रति उपयोग होता है। इस सांकेतिक चिन्ह को दर्शाकर पार्वतीय प्रजाओं को संग्रह किया जाता है। श्री श्रीयुत के सरकारी अनुमति के बिना उक्त ''फुराई'' को स्वेच्छाचारिता के रूप में व्यवहार करने का किसी को अधिकार नहीं है। प्रस्तावित व्यक्तियों के द्वारा किसी असत् उद्देश्य में व्यवहार न करने पर भी सरकारी अनुमति के बिना इसका व्यवहार करना अनुचित हुआ है। अतएव विवादियों को दण्ड मिलना संगत है।

इसलिये

–इस विषय में विहितार्थ यह कागज महामान्य खास अपील अदालत में भेजा जा सकता है। इति सन 1295 त्रिपुराब्द 21 आश्विन।

(साक्षर) –श्री काली कमल सेन (साक्षर) श्री गोपीकृष्ण देव
सेरेस्तादार अपील के विचारपति

91 नं सेहा।

'फुराई' को यदि कोई गलत अभिप्राय से व्यवहार कहता है तो वह राज विरोधिता और राजाज्ञा उल्लंघन और शांति भंग आदि के अपराध में अपराधी होगा। जब इन्होंने असरल भाव से कार्य नहीं किया, कहकर जाना गया तब इन्हें अच्छी तरह सतर्क और भविष्य में कोई इस तरह करने से शांति भंग आदि का दोषी होगा, कहकर मेमों प्रचार के लिये यह कागज अपील अदालत के जरिये सोनामुड़ा भेजा जा सकता है।

1295 त्रिपुराब्द दिनांक 22 आश्विन।

(Sd) M R Ray

साक्षर –श्री गगन चन्द्र विश्वास साक्षर श्री ब्रज मोहन देव
पेशकार खास अपील अदालत के विचार पतिगण।

राजाओं का काल निर्णय

राजमाला द्वितीय लहर में किसी किसी राजा के शासन काल का प्रकृत विवरण प्रासंगिक रूप से पहले आलोचित होने पर भी यहाँ इस बारे में विशद विवरण प्रदान किया जा रहा है।

धर्ममाणिक्य का शासनकाल धर्ममाणिक्य के राजत्व काल को लेकर राजमाला द्वितीय लहर की रचना आरम्भ हुई है। किन्तु रचयिता ने इनके राज्यप्राप्ति का समय अथवा शासन काल का निर्धारण नहीं किया है। राजमाला के समालोचक लांग **(Rev James Long)** साहब के मतानुसार धर्ममाणिक्य ने 1407 ई सन में राजा होकर

द्विल –175

बत्तीस सालों तक राजत्व किया है(1)। इस हिसाब से 1407 से 1439 ई सन तक महाराज का राजत्व काल निर्णीत होता है। परलोकगत कैलास चन्द्र सिंह महाशय ने कहा है –

"1329 शकाब्द में महाराज धर्ममाणिक्य ने सिंहासनारोहण किया।"(2) उनके अनुसार महाराज का राजत्व काल 1329 शकाब्द से 1412 शकाब्द तक तीरासी(83) साल का था। चाकलारोशनाबाद (**Circle office**) के सेटेलमेंट अफसर मि. कमिंग साहब ने (**J G Cumming ICS**) कैलास बाबू के मत का ही अनुसरण किया है। **History of Tripura** ग्रंथ के प्रणेता मि सेण्डिस साहब (**E F Sandy's**) ने 1407 से 1458 ई सन तक 51 साल धर्ममाणिक्य का राजत्व काल निर्धारण किया है। देखा जा रहा है महाराज के राज्य प्राप्ति का शकांक पूर्वोक्त व्यक्तियों में मतानैक्य रहने पर भी राजत्व काल निर्धारण के बारे में वे परस्पर एक मत नहीं हो सके। लांग साहब के अनुसार महाराज के राज्य भोग का काल 32 साल होता है। कैलास बाबू और कमिंग साहब के मत से 83 साल होता है एवं सेण्डिस साहब के अनुसार 51 साल निर्धारित हुआ है। इन्होंने किस सूत्र के सहारे महाराज के राज्याभिषेक का समय निर्णय किया है एवं शासनकाल निर्धारण के बारे में इस तरह मत वैषम्य होने का कारण क्या है, किसी ने भी इस बारे में कोई बात नहीं कही अथवा अपने मत के समर्थन की चेष्टा भी नहीं की।

राजमाला की आलोचना से यह प्रतीतमान होगा कि ऊपर के निर्धारण अभ्रांत एवं प्रामाणिक नहीं है। पहले ही कहा गया है धर्ममाणिक्य ने 1380 शक में ताम्रशासन द्वारा ब्राह्मणों को भूमिदान किया था(3) एवं 32 सालों तक राजत्व किया था(4)। लांग साहब जैसे प्रमुख इतिहासकारों के अनुसार 1329 शक (1407 ई सन) धर्ममाणिक्य सिंहासन आरोहण का समय मान लेने पर उस शक से भूमिदान का समय (1380 शक) तक 51 साल होता है। सेण्डिस साहब

....

(1) **He was appointed Raja, AD 1407, with the unanimous consent of the people. "He soon sought the road to heaven" by presenting lands to the Brahmans, the titles to which were registered on copper plates. After a Peaceful reign of thirty two years he died J.A.S.B. -Vol . XIX**

(2) कैलास बाबू की राजमाला द्वितीय भाग तृतीय अध्याय 38 पृष्ठ

(3) धर्ममाणिक्य द्वारा प्रदत्त ताम्र शासन निम्नलिखि वाक्यों द्वारा समय निर्देशक के वाक्य उत्कीर्ण हुए हैं –

"शाके शून्याष्ट विश्वाब्दे वर्षे सोम दिने तिथौ
त्रयोदश्यां सिते पक्षे मेषे सूर्यस्य संक्रमे" इत्यादि

(4) बत्रिस बत्सर राजा राज्य भोग छिलो।	बत्तीस सालों तक राज्य भोग किया राजा।
सुमधुर बाक्ये राजा प्रजाके पालिलो।।	सुमधुर वाक्यों से राजा ने पाला अपनी प्रजा।।
राजमाला द्विल धर्ममाणिक्य खण्ड 6पृ	राजमाला द्विल धर्ममाणिक्य खण्ड 6पृ

अर्थात "32 सालों तक राजा का राज्य भोग था। अपने सुमधुर वाक्यों से राजा ने प्रजाओं का पालन किया"।

द्विल –176

ने शायद इसी सूत्र का सहारा लिया है, किन्तु जिन्होंने 32 सालों तक राजत्व किया है एवं 1380 शक में जो राजपद पर प्रतिष्ठित थे, उनका राज्याभिषेक 1329 ई शक में नहीं हो सकता। फिर लांग साहब ने राजमाला के मतानुसार धर्ममाणिक्य का राजत्व काल 32 साल निर्धारण करने पर भी उन्होने 1439 ई सन (1361 शक) राजत्व काल के अंत होने के सिद्धांत में उपनित होने पर (को अपनाने से) पूर्वोक्ति कारणों से उनके इस निर्वाचन को प्रामाण्य कहकर ग्रहण नहीं किया जा सकता। इस बारे में राजमाला को छोड़, निर्भर योग्य और कोई प्रमाण नहीं है। पूर्वोक्त व्यक्तियों ने राजमाला के मत का उलंघन किया है और अंत में भ्रम के चक्कर में पड़ गए यह बात निःसंकोच से कही जा सकती है।

पक्षान्तर में, द्विज बंगचन्द्र की रचित "त्रिपुर वंशावली" नाम की हस्तलिखित किताब में पाया जाता है कि धर्ममाणिक्य ने 841 से 872 त्रिपुराब्द तक राज्य शासन किया है। इसके अनुसार उनका राजत्व काल 1353–1384 शक (1431–1462 ई सन) स्थिरीकृत होता है। यह निर्धारण राजमाला के वाक्यानुसार सटीक लगता है और इसके द्वारा महाराज का 32 सालों तक राज्यभोग करना एवं 1380 शक तक विद्यमान रहना निश्चित होता है। अतएव धर्ममाणिक्य 1431 से लेकर 1462 ई सन तक राजदण्ड धारण किये हुए थे। यही एक मात्र विशुद्ध निर्धारण के रूप में ग्रहण किया गया।

प्रतापमाणिक्य का राजत्व काल धर्ममाणिक्य के परलोक सिधारने के पश्चात् उनके कनिष्ठपुत्र प्रतापमाणिक्य सेनापतियों की षड्यन्त्र से जयेष्ठ भ्राता धन्य को उल्लंघन कर 1385 शक में (1463 ई सन) सिंहासन पर बैठे। पूर्ण एक साल तक राजत्व करना उनके भाग्य में संभव नहीं हुआ। राज्य लाभ के कुछ दिनों के पश्चात् ही उन्हीं सेनापतियों द्वारा उनकी हत्या हो गई।(1)

धन्यमाणिक्य का शासन काल प्रतापमाणिक्य के बाद उनके सौतेले बड़े भाई धन्यमाणिक्य सेनापतियों की अनुकम्पा से सिंहासन पर बैठे। राजमाला में इनके सिंहासन पर बैठने के और राजत्व काल का उल्लेख न रहने पर भी अनुसंगिक प्रमाणों द्वारा उसे निर्णय करना कठिन नहीं है। ये प्रतापमाणिक्य के बाद के राजा थे। 1385 शक तदनुसार 1463 ई सन के खत्म होने के पहले ही प्रताप के शासन काल के खत्म होने की बात राजमाला में पाई जाती है। अतएव महराज धन्य 1385 शक में ही राज्याधिकारी हुए थे। यह बात पाई जाती है। 'त्रिपुरवंशावली' से भी यह निर्वाचन समर्थित होता है। उस ग्रंथ में धन्यमाणिक्य के बारे में लिखा है –"आष्ट शै तिहात्तर सने राजत्व पाईलो" अर्थात' 873 त्रिपुराब्द में उन्हें सिंहासन मिला"। त्रैपुरी 873 ई सन और पूर्वोक्त 1385 शक अभिन्न है।

---

(1) महाबलबंत देखि दिने ना मारिछे।	महाबलबन्त देख मार न सके दिन में।
सेनापति सबे चक्रे रात्रिते बधिछे।।	कर चक्रांत सेनापतियों ने वध उसे रजनी में।।
राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्यखण्ड 6पृ	राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्यखण्ड 6पृ

अर्थात – "महबलवान देखकर दिन में नहीं मारा बल्कि सेनापतियों ने चक्रांत कर रात में उन्हें वध किया।

द्विल –177

अतएव त्रिपुर वंशावली के निर्धारण के अनुसार महाराज धन्य के राज्य प्राप्ति का यह शकांक सटीक कहकर ग्रहण करने में कोई बाधा दिखाई नहीं देती। उक्त ग्रंथ में उनके शासन काल निर्धारण का उपयोगी प्रसंग भी मिलता है –

"क्रमान्वये तिप्पान्न बत्सर राजत्व कोरिलो।
नयश पचिस सने परलोक होइलो।"

अर्थात –"लगातार तिरपन(53) साल तक उन्होने राजत्व किया और नौ सौ पचीस सन में वे परलोक सिधारे।"

त्रिपुरी सन 925 में एवं 1437 शक अथवा 1515 ई सन में कोई प्रभेद नहीं है। अतएव महाराज धन्य 1385 शक (1463 ई सन) से लेकर 1437 शक (1515 ई सन) तक त्रिपर सिंहासन पर अधिष्ठित थे। त्रिपुर वंशावली से यह प्रमाणित होता है। राजमाला में है, महाराज धन्य ने 1423 शक में (1501 ई सन) त्रिपरा सुन्दरी के मन्दिर का निर्माण कराया था(2) एवं 1435 और 1437 शक में दो बार चट्टग्राम में मुसलमानों के साथ युद्ध में लिप्त हुए थे(3)। उनके शासन काल की 1413, 1419 और 1428 शक की कुछ मुद्रायें मिली है। पूर्वोक्त निर्धारण के साथ इन सभी कार्यकाल का सामंजस्य रहने से उस निर्धारण की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कैलास चन्द्र सिंह के मत से धन्यमाणिक्य ने 1490 ई सन में (1412 शक) सिंहासनरूढ़ हो कर तीस सालों तक राजदण्ड धारण किया था। कमिंग साहब और सेंडिस साहब, कैलासबाबू के मत का अनुसरण कर, 1490–1520 ई सन् (1412–1442 शक) धन्यमाणिक्य का शासन काल निर्धारण किया है। यह निर्धारण महाराज के पूर्वोक्त कार्यों का विरोधी न होने पर भी निर्विवाद ग्रहणीय नहीं है कारण इससे पूर्व धन्यमाणिक्य के शासनकाल निर्धारण उपलक्ष में ये जो भूल में पतित हुआ है उसका संशोधन न होने पर धन्यमाणिक्य के राज्य प्राप्ति का शकांक इनके अनुसार 1385 ई के बदले 1412 ई सन(1490 ई) आधारित हुआ है। यह सिद्धांत राज्याभिषेक के प्रकृत समय से सत्ताइस साल आगे होने की वजह से एवं शासन काल झुठी कमी (53 साल के बदले तीस साल) कर देने से महाराज के पूर्वकथित

....

(2) "शाके वहल्यक्षिवेधोमुख धरणीयुते लोकमात्रेऽम्बिकयै।
प्रादात् प्रासाद राजं गगनपरिगतं सेवितायै स देवैः" – देवी मन्दिर का शिलालेख

(3)क चौद्शो पांचत्रिश शाके समर जिनिलो।	चौदह सौ पैंतीस शक में जीता समर।
चाटि ग्राम जय कोरि मोहर मारिलो।।	चट्ट गांव जीतकर निकाली अपनी मुहर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 22पृ

अर्थात –"1435 शक में समर जीता और चट्टग्राम को जीतकर अपना सिक्का चलाया।"

ख चौद्सो सात्रिश शके चाटिग्राम जिने।	चौदह सौ सैंतीस शक में चट्टग्राम जीता रण में।
शुनिया होसन शाहा महा क्रोध मने।।	सुनकर होसेन शाह महाक्रुद्ध हुए मन में।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 24पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 24पृ

अर्थात –"1437 ई में चट्टग्राम को जीत लिया सुनकर होसेन शाह के मन में बड़ा क्रोध आया।"

द्विल –178

कार्यों के समय इस निर्धारण की अवधि में आ गये हैं। थोड़ा सा ख्याल करने पर देखा जायेगा कि त्रिपुर वंशावली के साथ तुलना में कैलास बाबू आदि निर्धारित राज्यप्राप्ति के शकांक सत्ताइस साल आगे होने पर भी महाराज के परलोक सिधारने का काल दोनों मतों से केवल पाँच साल का फर्क रह जाता है। इसी वजह से महाराज के कार्यों के साथ इस निर्धारण में समय का सामंजस्य दिखाई दे रहा है। इन्होंने किस सूत्र को आधार मान समय को इस तरह उलट पुलट कर दिया है उसे किसी ने भी नहीं कहा। धन्यमाणिक्य के समय को पारकर किचिंत आगे बढने पर देखा जायेगा कि परवर्ती राजाओं के शासन काल के साथ इनके मत के सांमजस्य की रक्षा नहीं होती। सारे हालातों की पर्यालोचना करने पर लगता है कि सेंडिस साहब ने असावधानी की वजह से अथवा पहले के कुछ मत विप्लव में फँसकर धर्ममाणिक्य और धन्यमाणिक्य के शासन काल का परस्पर अदल बदल कर दिया है अर्थात धर्ममाणिक्य के शासन काल को बत्तीस साल के बदले इक्कावन साल और धन्यमणिक्य के राजत्व काल तीरपन साल के बदले तीस साल बताया है – इस तरह अनुमान किया जा सकता है। किन्तु कैलास बाबू आदि के मत के आधार के बारे में किसी तरह का अनुमान करना भी दुःसाध्य हो उठा है। इस तरह के मत के विरोधाभाष की जगह आधारहीन मत को परित्याग कर सामान्य सूत्र सुलभ होने पर भी उसी मत को ग्रहण करना कर्तव्य है और इसलिये धन्यमाणिक्य ने 1385 से 1437 शक तक (1463 से लेकर 1515 ई सन) राजत्व किया था यही यहाँ स्वीकृत निर्धारण होना चाहिये और यही यहाँ निर्धारण किया गया।

ध्वजमाणिक्य का शासन काल धन्यमाणिक्य के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र ध्वजमाणिक्य सिंहासन पर बैठे। राजमाला एवं श्रेणीमाला ग्रंथ में इनका विवरण नहीं मिलता। सेंडिस साहब ने भी यह नाम बाद में रखा है। कैलास बाबू ने ध्वजमाणिक्य का नामोल्लेख किया है किन्तु उनके समय के बारे में कुछ नहीं कहा। कमिंग साहब के मत से इन्होंने एक साल से भी कम समय तक राजत्व किया था। त्रिपर वंशावली का मत अन्य तरह का है। उस ग्रंथ में लिखा है

"क्रमागत छय बत्सर राजत्व कोरिलो।
नय श एकत्रिश सने स्वर्ग प्राप्ति होइलो।।"

अर्थात "छह सालों तक उन्होने राजत्व किया और नौ सौ इकतीस(931) सन में उनकी मृत्यु हो गई।"

इस वाक्य से हमें मिलता है, धन्यमाणिक्य शासन काल में (1437 शक) के पश्चात् 1438 शक से लेकर छह साल (1443 शक तक) ध्वजमाणिक्य ने राजदण्ड धारण किया था। त्रिपुराब्द 931 और 1443 शकाब्द में कोई पार्थक्य नहीं है। इस अवस्था में त्रिपुर वंशावली के मत का अवलम्बन करना ही संगत और समीचीन लगता है।

देवमाणिक्य का शासन काल ध्वजमाणिक्य के परलोक गमन के पश्चात् उनके कनिष्ठ भ्राता देवमाणिक्य राजाधिकारी हुए। इनके राज्याभिषेक का समय राजमाला में नहीं मिला। कैलास बाबू के अनुसार ये 1442 शक में (1520 ई सन) सिंहासनरूढ हुए थे। सेंडिस और कमिंग साहब का

द्विल –179

भी यही मत है। त्रिपुर वंशावली में लिखा है, देवमाणिक्य 932 त्रिपुराब्द में (1444 शक–1522 ई सन) राजा हुए थे।(1) यह निर्धारण कैलाश बाबू के हनर्धारण अपेक्षा दो साल पीछे है, किन्तु महाराज के राजत्व के अंत के समय के बारे में इनमें कोई मतभेद नहीं है। कैलास बाबू ने कहा है –''चन्ताई(2) ने देवमाणिक्य की 945 त्रिपुराब्द में गोपनीय तरीके से हत्या कर दी।'' कमिंग साहब के अुनसार 1535 ई सन में देवमाणिक्य का शासन काल का अंत होता है। इन दोनों मतों में कोई प्रभेद नहीं है। त्रिपुर वंशावली के लेखक भी यही घोषणा करते हैं।(3)

कैलास बाबू आदि ने देवमाणिक्य राज प्राप्ति का जो समय निर्देश किया है, पूर्ववर्ती राजा ध्वजमाणिक्य के राजत्व अवसान के समय के साथ सामंजस्य की रक्षा नहीं हो रही है। अतएव यह समय निर्धारण सटीक नहीं हो सकता। इस विषय में त्रिपुर वंशावली का निर्दिष्ट समय ही अभ्रांत लगता है। किन्तु 1535 ई सन (1457 शक) महाराज के राजत्व के अंत होने की बात पूर्वोक्त व्यक्तियों द्वारा कहे वाक्य स्वीकार कर लेने पर भी उनकी यह उक्ति निर्भरयोग्य नहीं हो सकती। क्योंकि राजमाला में पाया जा रहा है देवमाणिक्य ने परवर्ती राजा इन्द्रमाणिक्य के एक साल, इसके पश्चात् विजयमाणिक्य बयालीस साल एवं इसके बाद अनंतमाणिक्य के डेढ़ साल राजत्व करने उपरांत 1494 शक में उदयमाणिक्य के सिंहासन पर अधिकार कायम कर लिया था। उक्त 1494 से पूर्वोक्त तीनों राजाओं (इन्द्रमाणिक्य, विजयमाणिक्य और अनंतमाणिक्य) का शासन काल 45 साल घटा देने पर 1449 शक में देवमाणिक्य के राजत्व का अवसान हुआ था यही प्रतीतमान होगा। इस हिसाब से 1522 से लेकर 1527 ई सन तक (1444–1449 शक) देवमाणिक्य के शासन काल का निर्धारण करना ही समीचीन होगा।

इन्द्रमाणिक्य का शासन काल देवमाणिक्य के पश्चात् इन्द्रमाणिक्य का राजत्व काल है। शिशु इन्द्र को सिंहासन पर बैठाकर लक्ष्मीनारायण नाम के मिथिला वासी एक ब्राह्मण राज्य शासन कर रहे थे। राजमाला के अनुसार इनका राजत्व काल मात्र एक साल स्थायी हुआ था।(4) अतएव इन्द्रमाणिक्य 1449 से

---

(1) ''नय श बत्रिश सने अभिषिक्त होइलो।
महादर्पे राज्यशासन आरम्भ कोरिलो।।'' त्रिपुर वंशावली।

अर्थात ''932 सन में राज्याभिषेक हुआ और महादर्प के साथ राज्य शासन आरम्भ कर दिया।''

(2) देवमाणिक्य को लक्ष्मीनारायण नाम के मैथिल ब्राह्मण ने वध किया था। यह बात राजमाला में स्पष्ट भाषा में लिखी गई है। इस अवस्था में यह हत्या अपराध चन्ताई के सिर पर थोपने का कारण समझ में नहीं आता।

(3) ''देवमाणिक्यके काटिया फेलिलो।
नय श पंयताल्लिश सन त्रिपुरा आछिलो।।'' त्रिपुर वंशावली

अर्थात ''देवमाणिक्य को काट दिया और 945 सन में त्रिपुरा आया।''

(4)ऐई मते वत्सरेक ब्राह्मणे शासय। इस तरह ब्राह्मण ने एक साल राज्य किया।
राजमाला द्विल इन्द्रमाणिक्य खण्ड 37पृ राजमाला द्विल इन्द्रमाणिक्य खण्ड 37पृ

(इस तरह एक साल तक ब्राह्मण ने शासन किया)

द्विल –180

1450 शके के कुछ अंशों तक (1527–1528 ई सन) राज्यभोग किया था यही प्रमाणित होता है।

विजयमाणिक्य का शासन काल इन्द्रमाणिक्य के बाद विजयमाणिक्य 1450 शक में (1528 ई सन) सिंहासन पर बैठे। इनके राजत्व काल के बारे में राजमाला में एक भ्रमात्मक उक्ति लिपि बद्ध हुई है –

सातचल्लिस वर्ष नृपेर बयस होइया छिल।।	राजा का सैतालिस साल उम्र हुआ था।।
सातचल्लिस वर्ष राजा राज्य भोग कोरे।	सैतालिस साल राजा ने किया राजभोग।
दैवगति बसन्त नृपेर होइलो शरीरे।।	दैवगति नृपदेह हुआ बसन्त रोग।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य 63पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य 63पृ

अर्थात "47 साल नृप की उम्र हुई थी। सैतालिस साल राजा ने राजभोग किया। दैवगति से उनके शरीर में चेचक दिखाई दिया।"

राजा के सैंतालिस साल की उम्र में कथा ठीक नहीं है। उन्होनें 42 साल रात्यभोग किया था एवं 47 उम्र में स्वर्ग प्राप्ति हुई थी। प्राचीन राजमाला में इस बारे में स्पष्ट उक्ति पाई जाती है –

"ब्याल्लिस बत्सर राजा राज्य भोग कोइलो।
सातचल्लिस बत्सर बयस होइलो जबे।
दैवगति राजार शीतला होइलो तबे।। आदि।

अर्थात "बयालीस साल राजा को राज्य भोग हुआ। जब उनकी उम्र सैंतालिस साल की हुई तब उन्हें चेचक की बीमारी हुई थी।"

राजाबाबू के घर में रखी गई राजमाला पुस्तक में अविकल यही सारी बातें लिखी हैं। सैंतालिस साल राजत्व की बात जो लिखी गई है वह लिपिकार की प्रमाद मूलक बात है यह अतिसहज बोध्य है, और एक कथा द्वारा पूर्वोक्त वाक्य पूरी बात प्रमाणित होती है। महाराज ने सैंतालिस वर्ष राजत्व किया और सैंतालिस वर्ष की उम्र में परलोक सिधारा से तो यही समझना होगा कि जन्म ग्रहण के साथ साथ राज्य पद पर प्रतिष्ठित हुए थे, लेकिन बात सही नहीं है। महाराज विजय, देवमाणिक्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। देवमाणिक्य के स्वर्गप्राप्ति के पश्चात् विजय को छोड़कर उनके कनिष्ठ भ्राता इन्द्रमाणिक्य ने एक साल तक ही राजत्व किया था। इसके बाद विजय सिंहासन पर बैठे। अतएव जन्मकाल से ही उन्हें सिंहासन पर बैठना पड़ा यह बात भी सही नहीं है। ऐसा सिद्धांत करना ठीक नहीं है। इन्होंने पाँच साल की उम्र में सिंहासन अलंकृत किया और 42 सालों तक राज्य शासन करने के ऊपरांत 47 वर्ष की उम्र में परलोक सिधारे, यह सत्य कथा है। लिपिकार ने प्रमादवश राजत्व काल 42 साल की जगह 47 लिख दिया है यह ग्रहणीय नहीं है।

महाराज विजय सम्राट अकबर के समसामयिक थे महाराज विजय भारत सम्राट अकबर के समसामयिक थे। उनके सुयोग्य मंत्री आबुल फजल की लिखित आइन–ई–आकबरी ग्रंथ में विजयमाणिक्य का नाम पाया जाता है। यह बात पहले भी एक बार कही गई है(5)। इसके अलावा काछाड के अधिपति निर्भय नारायण और जयंतिया–राज विजय मानिक, विजयमाणिक्य के समकालीन थे(6)। बंगेश्वर

(5) राजमाला द्वितीय लहर 117पृ
(6) राजमाला द्वितीय लहर 45पृ

त्रिल –181

दायुद शाह के साथ चट्टग्राम के अधिकार को लेकर संग्राम की बात इसके पहले कही जा चुकी है। महाराज विजय के शासन काल में 1481 शक में (1559 ई सन) मुद्रित रोप्य मुद्रा मिली है(7)।

उक्त विवरणों की सहायता से एवं राजमाला की उक्ति द्वारा निर्धारित होता है कि महाराज विजय ने 1450 शक (1528 ई सन) से 1492 शक (1570 ई सन) तक 42 सालों तक राजत्व किया था।

विभिन्न मत की मीमांसा 'History of Tripura' ग्रंथ के प्रणेता सेंडिस साहब एवं सेटलमेंट अफसर कमिंग साहब के अनुसार विजयमाणिक्य 1535 से 1583 ई सन, 48 सालों तक राजत्व किया था। कैलास बाबू कहते हैं महाराज के शासन काल में 945 से 993 त्रिपुराब्द तक 48 साल होता है। पूर्वोक्त व्यक्तियों ने कैलास बाबू के मत का ही अनुसरण किया है, त्रिपुर वंशावली के रचयिता इसी मत के पक्षपाती हैं। रेवरेण्ड लांग साहब ने महाराज के शासन काल के शकांक का उल्लेख न करके भी 47 सालों तक राजत्व करने की बात कही है(8)। संभवतः राजमाला की प्रमाद मूलक उक्ति (सैंतालिस साल राजत्व की कथा) को लेकर इस तरह के सिद्धांत पर पहुँचे हैं। यह भ्रांत धारणा के वशीभूत होकर महाराज के राज्य प्राप्ति का समय निश्चित किया है। पहले के राजा के (इन्द्रमाणिक्य के) शासन काल के साथ तुलना करने पर इसका सहज ही अनुमान किया जा सकेगा। खास तौर से राजत्व काल 42 वर्ष के बदले 48 साल के हिसाब से इन लोगों ने और एक भारी भूल कर बैठे हैं। अतएव उनकी अवधारणा विशुद्ध कहकर ग्रहण करने का कोई उपाय नहीं है।

अनंतमाणिक्य का शासन काल इसके बाद अनंतमाणिक्य 1492 शक में (1570 ई सन) राजा हुए थे। राजमाला में इनके राज्य प्राप्ति के समय का उल्लेख नहीं है। राजत्व के बारे में लिखा है –

बत्सर देड़ेक राजा राज्येर शासन।	डेढ़ साल राजा का था चलता शासन।
परलोक गेलो राजा श्वशुर कारण।।	परलोक सिधारे राजा ससुर के कारण।
राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 66पृ	राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 66पृ

अर्थात "डेढ़ साल राजा के राज्य शासन का समय था। अपने ससुर के कारण राजा परलोक सिधारे"।

इनके डेढ़ साल राजत्व करने के उपरांत ससुर (सेनापति गोपीप्रसाद) द्वारा इनकी हत्या हुई थी। अतएव इनका शासन काल 1492 शक (1570 ई सन) के मध्यभाग से डेढ़ साल निश्चित हुआ है।

---

(7) विजयमाणिक्य ने हीरा गोपीनाथ विग्रह प्रतिष्ठा के उपलक्ष में ताम्र पत्र द्वारा ब्राह्मण को भूमिदान किया था। उस ताम्र पत्र में समय चिन्ह विलुप्त हो गया है, इससे इनके शासन काल का निर्धारण करना असंभव हो गया है।

(8) अनंतमाणिक्य के बारे में लांग साहब ने कहा है –

"His father soon after died of small pox having reigned 47 years.

J.A.S.B. -Vol . XIX

त्रिल –182

पहले के इतिहासकारों ने दूसरे राजाओं की तरह इनके शासनकाल में भी अड़चने लगा दी है। कैलास बाबू, सेंडिस साहब और कमिंग साहब ने एक ही बात कही है कि अनंतमाणिक्य ने 1583 से 1585 ई सन तक राज्य भोग किया हैं। त्रिपुर वंशावली के अनुसार महाराज अनंत ने 994 से 995 त्रिपुराब्द तक (1584–1585 ई सन) राजत्व किया था। पहले के राजाओं के समय से गणना करने पर देखा जायेगा कि यह समय निर्धारण भ्रमपूर्ण है। अनंत के पश्चात् उदयमाणिक्य क शासन काल के साथ तुलना करने पर भी यह सिद्धांत सटीक नहीं होता। लांग साहब ने अनंतमाणिक्य के समय निर्णय के बारे में कुछ भी नहीं कहा है, किन्तु डेढ़ साल के राजत्व की बात कहकर राजमाला के मत का ही समर्थन किया है।(9)

उदयमाणिक्य का शासन काल अनंतमाणिक्य के ससुर सेनापति गोपीप्रसाद ने जामाता का वध कराकर उदयमाणिक्य नाम धारण कर सिंहासन पर अधिकार जताया। इनके राज्य प्राप्ति के समय के बारे में राजमाला में है –

गौड़ेश्वरे शुने विजयमाणिक्य मरण।	गौड़ेश्वर ने सुना विजयमाणिक्य मरण।
चौद्द श चौरानब्बई शके उदय राजन।।	चौदह सौ चौरानबे शक में उदय राजन।।
राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 69पृ	राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 69पृ

अर्थात "गौड़श्वर ने विजयमाणिक्य के मृत्यु की खबर को सुना। 1494 शक में उदय राजन सिंहासन पर बैठे।"

इससे हमें यह मिलता है कि उदयमाणिक्य 1494 शक में (1572 ई सन) राजा हुए थे। उनके राजत्व अवसान का समय भी राजमाला में दिया गया है –

चौद्द श आटानम्बइ शकेते तखन।	चौदह सौ अठानबे शक उस दिन।
पारार गुटिका राजा करिलो भक्षण।।	पारे की गुटिका का राजा ने किया भक्षण।।
राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 72पृ	राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 72पृ

बाजी करण के लिये पारद से बनी हुई एक बटी भक्षण के बाद 1498 शक में उदयमाणिक्य का स्वर्गवास हो गया था। इन्होनें 1494 शक (1572 ई सन) से 1498 शक (1576 ई सन) पाँच साल तक राज्य शासन किया था(1)।

कैलास बाबू संगृहीत राजमाला में उदयमाणिक्य के प्रसंग में लिखा गया है –"गोपीप्रसाद ने अपना नाम परित्याग कर उदयमाणिक्य नाम धारण कर 995 त्रिपुराब्द (1585 ई सन) में सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए।" दूसरी एक जगह

---

(9) **Ananta Manik succeeded to the throne by the help of his father-in-law, the quondam cook, with whom Ananta always dined. After the king reigned 1½ years he was strangled at the instigation of his father-in-law.** **J.A.S.B. -Vol . XIX**

(1) पंचबत्सर राजत्व करिया शासन।	पांच सालों तक किया राज्य को शासन।
एई मते मरिलो उदयमाणिक्य राजन।।	इस तरह मर गया उदयमाणिक्य राजन।।
राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 72पृ	राजमाला त्रिल अनन्तमाणिक्य 72पृ

अर्थात –"पाँच सालों तक राज्य शासन कर इसी तरह उदयमाणिक्य राजा की मृत्यु हुई"।

द्विल –183

लिखा गया है –''उदयमाणिक्य की मृत्यु के बाद उनके पुत्र जयमाणिक्य 1006 त्रिपुराब्द में (1596 ई सन) सिंहासन पर आरोहण किया था।'' इससे उदयमाणिक्य का राजत्व काल ग्यारह वर्ष माना गया है। कमिंग और सेंडिस साहब ने बिना विचारे कैलास बाबू के पथ का अनुसरण किया है। त्रिपुर वंशावली के अनुसार इन्होंने 995 से 1004 त्रिपुराब्द तक राजत्व किया है।

पहले ही कहा गया है कि राजाओं के काल निर्णय सम्बन्ध में राजमाला को छोड़ कर निर्भर योग्य अन्य प्रमाण नहीं है, अतएव राजमाला के मत की उपेक्षा कर ऊपर लिखे व्यक्तियों की उक्ति का समर्थन नहीं किया जा सकता। उदयमाणिक्य के कालनिर्णय के बारे में इसके पहले भी कोशिश की गई है। अतएव यहाँ अधिक आलोचना की कोई जरूरत नहीं है।

जयमाणिक्य का शासनकाल उदयमाणिक्य के पुत्र जयमाणिक्य राजमाला द्वितीय लहर के शेष राजा हैं। इन्होंने 1498 शक में (1576 ई सन) सिंहासनारूढ़ से 1499 शक (1577 ई सन) तक राजत्व किया था। इनका शासन काल केवल डेढ़ साल रहा।(2)

कैलास बाबू के अनुसार जयमाणिक्य 1006–1007 त्रिपुराब्द (1596–1597ई सन) राजत्व किया था। कमिंग साहब और सेंडिस साहब ने इस धारणा का ही पोषण किया है। लांग साहब ने इस बारे में कुछ भी नहीं कहा है। त्रिपुर वंशावली में कहा है ''जयमाणिक्य 1004 त्रिपुराब्द में (1594 ई सन) राजा हुए थे।'' जरा सा सोचने पर यह उभर उठता है कि इनका कोई भी समय निर्धारण सही नहीं है। राजमाला के रचयिता ने उदयमाणिक्य का जो काल निर्धारण किया है उसकी आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जयमणिक्य के राज्य प्राप्ति का काल 1594 अथवा 1596 ई सन नहीं हो सकता। सामने की ओर देखने पर जयमाणिक्य के परवर्ती अमरमाणिक्य के शासन काल में दो रौप्य मुद्रा में विशेष रूप से लक्षणीय है। इनमें एक 1499 शक की और दूसरी मुद्रा 1502 शक की उत्कीर्ण है। राज्य प्राप्ति के पहले किसी के नाम का सिक्का प्रचलित नहीं हो सकता। यह बात सर्वसम्मत है। अतएव अमरमाणिक्य 1499 शक में (1577 ई सन) राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। यह बात अवश्य स्वीकार्य है। ऐसे स्थल पर अमरमाणिक्य के उर्धस्तन भूपति जयमाणिक्य का शासन काल 1594 या 1596 ई सन आरम्भ होना असम्भव था, इस सब कारण जयमाणिक्य(1576–1577 ई सन) में था। इसे ही युक्ति संगत और प्रामाण्य मान लेने में कोई बाधा दृष्टि –गोचर नहीं होती।

---

(2) क्रमान्वये देड़ बत्सर राजत्व कोरिलो। –त्रिपुर वंशावली
अर्थात'' लगातार डेढ़ सालों तक राज्य शासन किया।''

द्विल –184

शासन काल की तालिका ऊपर आलोचना से द्वितीय लहर के अन्तर्भूक्त राजाओं के (धर्ममाणिक्य से जयमाणिक्य तक) शासन काल जिस तरह से निर्धारित किये गये हैं उसका संक्षिप्त सार नीचे दिये जा रहे हैं–

नाम	शक	त्रिपुराब्द	ई सन
धर्ममाणिक्य	1353 –1384	841 –872	1431 –1462
प्रतापमाणिक्य	1385 –1385	873 –873	1463 –1463
धन्यमाणिक्य	1385 –1437	873 –925	1463 –1515
ध्वजमाणिक्य	1438 –1443	926 –931	1516 –1521
देवमाणिक्य	1444 –1449	931 –937	1522 –1527
इंद्रमाणिक्य	1449 –1450	937 –938	1527 –1528
विजयमाणिक्य	1450 –1492	938 –980	1528 –1570
अनंतमाणिक्य	1492 –1494	980 –982	1570 –1572
उदयमाणिक्य	1494 –1498	982 –986	1572 –1576
जयमाणिक्य	1498 –1499	986 –987	1576 –1577

उदयमाणिक्य और जयमाणिक्य के शासन काल के बारे में और एक बात कहने की है। अगरतला स्थित वजीर के घर के ग्रंथागार में कई राजाओं के राजत्व काल के निर्देशक एक प्राचीन सूची मिली है। उस सूची में उदयमाणिक्य से लेकर उसके पश्चात् के राजाओं के नाम और राजत्व के बारे में लिखा गया है। उदयमाणिक्य के पहले के राजाओं के नाम नहीं हैं। संभवतः स्वतंत्र एक कागज में वह भी लिखा था। किसी कारणवश वह नष्ट हो गया है। इस सूची के निर्देशानुसार उदयमाणिक्य 1492 से लेकर 1497 शक तक पाँच साल एवं जयमाणिक्य 1497 से 1498 शक तक डेढ़ साल राजत्व करने की बात पाई जाती है। समय के बारे में राजमाला के साथ इस सूची का सामान्य प्रभेद दिखाई दे रहा है। इस तरह के पार्थक्य के कारणों का निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है। जिस कारण से भी हो, इस तरह की सामान्य विषमता विचारणीय नहीं है। उस सूची के द्वारा भी पूर्वकथित इतिहासकारों का निर्धारण सही नहीं माना जायेगा। इस स्थान पर उक्त तालिका की प्रतिकृति प्रदान की जा रही है।

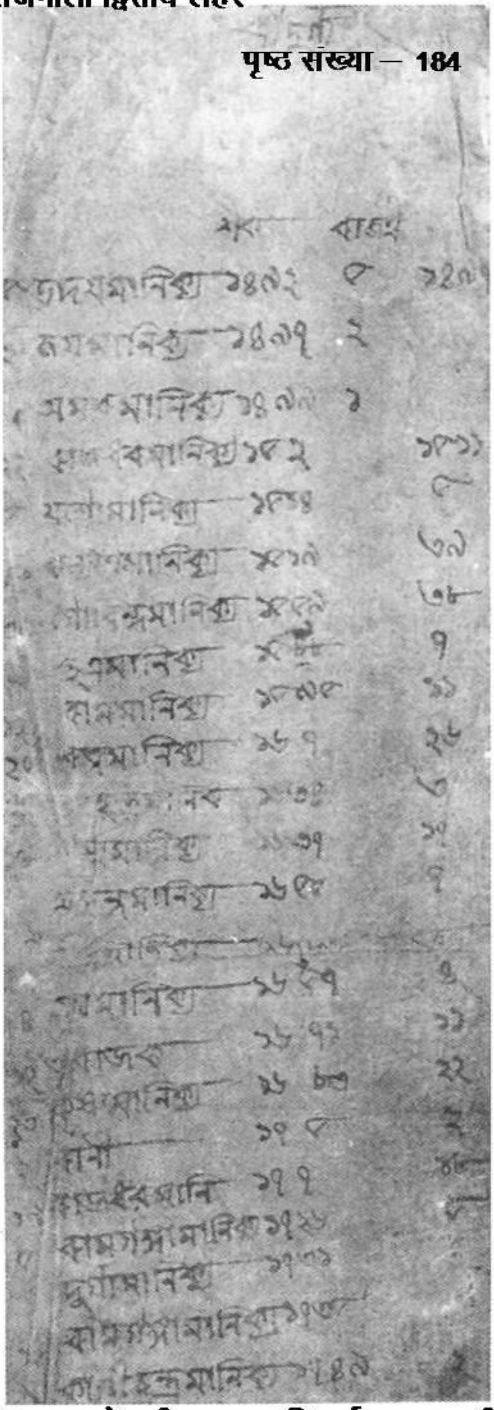
राजाओं के समय निर्णय के उपलक्ष में यह स्पष्टतः उभर आता है कि कैलास बाबू ने उनके शासन काल का जिस तरह निर्धारण किया था, बाद के संग्राहको ने उसे निर्विवाद रूप से ग्रहण किया है। इस बारे में उन्होने किसी तरह के अनुसंधान की चेष्टा की थी ऐसा नहीं लगता है।

द्विल –184

2nd Leher-Page-184

राजमाला द्वितीय लहर

पृष्ठ संख्या – 184



त्रिपुरेश्वरगणों की काल निर्णायक प्राचीन लिपि

द्विल –185

ताम्र शासन का तथ्यानुसंधान

राजमाला के प्रथम एवं द्वितीय लहर में भूमिदान के बारे में दानपत्र ताम्रपत्र में सम्पादन के निदर्शन पाये जाते हैं। इसके बाद की लहरों में इसके अनेक द्रष्टांत हैं। इस प्रणाली से दानपत्र सम्पादन की प्रथा कितनी प्राचीन है एवं परवर्ती समय में उसकी अवस्था किस रूप में आ पहुँची थी इस बारे में कुछ आलोचना शायद अप्रासंगिक नहीं होगा।

ताम्र शासन का विवरण आदि काल में धर्मप्राण नरपतिगण धर्मबुद्धि –प्रबुद्ध होकर ब्राह्मणों को भूमिदान करते थे। उनके द्वारा सम्पादित दानपत्र ताम्रफल के उत्कीर्ण करने की प्रथा थी। दान की गई भूमि के परिमाण और उसके परिचय सूचक विवरण, दाता का नाम और गोत्रादि के साथ दान–ग्रहीता का नाम आदि लिखने के पश्चात् दातागण अपनी अपनी मुद्रा अंकित कर वह ताम्रपत्र प्रदान करते थे। इस प्रणाली से सम्पादित दानपत्र साधारणतः ''ताम्र शासन'' के नाम से जाना जाता था।

ताम्रशासन शुरू करने का काल निर्णय करना असंभव है यह प्रथा किस समय पहले पहल प्रवर्तित हुई थी, इसे जानने का कोई उपाय नहीं है। राज चक्रवर्ती सगर आदि धर्मपरायण भारत सम्राटों के शासन काल में किस प्रणाली से दानपत्र सम्पादित होता था, वह भी आज अज्ञात है।

श्री रामचन्द्र का ताम्र शासन पुरातत्व की आलोचना से केवल इतना ही जाना जाता है कि त्रेता युग में प्रणाली प्रचलित थी। दासरथी रामचन्द्र ने धर्मारण्य में जीर्णोद्धार और यज्ञ सम्पादन के उपलक्ष में ब्राह्मणों को ताम्र शासन द्वारा भूमि दान की थी। उनके पहले के शासन का विवरण संग्रह करना दुःसाध्य है। उस ताम्रपत्र में जो वाक्य उत्कीर्ण हुआ था उसे नीचे दिया जा रहा है–

''आस्फोटयन्ति पितरः कथयंति पितामहः।
भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्मान् सन्तारयिष्यति।।
बहुभिर्बहुधा दत्ता राजभिः पृथिवीत्वियम्।
यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदाफलम्।।
षष्टिवर्ष सहस्रानि स्वर्गे बसति भूमिदः।
आच्छेत्ताचानुमन्ता च तान्येव नरकं व्रजेत्।।
सन्दं सैस्तुद्यमानस्तु मुदगरैर्व्विनिहत्य च।
पाशैः सुवध्यमानस्तु रोरवीति महास्मरम्।।
ताड्यमानः शिरे दण्डैः समालिंग्य विभावसुम्।
क्षुरिकयाच्छिद्दयमानो रोरवीति महस्वनम्।।

द्विल —186

यमदुतैर्म्महाघोरैर्ब्रह्म वृत्ति विलोपकः।
एवंबिधैर्म्महा दृष्टैः पीड़्यन्ते ते महागणैः।।
तत्स्तिर्यक्तमाप्नोति योनिं वा राक्षसीं शुनीम्।
व्यालीं शृगालीं पैशाचीं महाभूत भयंकरीम्।।
भूमेरंगुल हर्त्ता हि स कथं पापमाचरेत्।
भूमेरंगुल दाता च स कथं पुण्यमाचरेत्।।
अश्वमेध सहस्राणां राजसूय शतस्य च।
कन्या शत प्रदानस्य फलं प्राप्नोति भूमिदः।।
आयु यशः सुखं प्रज्ञा धर्म्मो धान्यं धनं जयः।
सन्तानं वर्द्धते नित्यं भूमिदः सुखमश्नुते।।
भूमेरंगुल मेकन्तु ये हरन्ति खला नराः।
विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्क कोटर वासिनः।
कृष्णसर्पाः प्रजायन्ते दत्त दायापहारकाः।।
तड़ागाणां सहस्रेण अश्वमेध शतेन वा।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता विशुध्यति।।
यानीह दत्तानि पुनर्धनानि दानानि धर्म्मार्थ यशस्कराणि।
औदार्यतो विप्रानिवेदितानि को नाम साधुः पुनराददीत।।
चलदलदललीला चंचले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्व्व संसार सौख्ये।
अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां नरक गहन गर्त्तावर्त्त पातोत्सुको षः।।
ये पस्यन्ति महीभूजः क्षितिमिमां यास्यन्ति भुक्ताखिलां नो याता न तु
यति यास्यति न वा केनापि सार्द्धं धरा।।
यत्किंचिद्भुवि तद्विनाशि सकलं कीर्त्तिः परं स्थायिनी, त्वेवां वै।
वसुधापि षैरूपकृता लोप्या न सत्कीर्त्तयः।।
एकैव भगिनी लोके सर्व्वेयामेव भुभुजाम्।
न भोज्या न करग्राह्या विप्रदत्ता वसुन्धरा।।
दत्वा भूमिं भाविनः पार्थिवेशान् भूयोभूयो याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्म्म सेतुर्णृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः।।
अस्मिन् वंशे क्षितौ कोऽपि राजा यदि भविष्यति।
तस्याहं करलग्नोऽस्मि मद्दत्तं यदि पाल्यते।।

स्कन्द पुराण—ब्रह्म खण्ड, 34अः 24—41 श्लोक

मर्म —पितृपितामह गण कहते हैं कि हमारे वंश में यदि कोई भूमिदाता जन्म ग्रहण करता है तब वह हमें उद्धार करेगा। बहुत से राजा बहुत तरीके से यह पृथ्वी दान करके गये हैं। किन्तु जो जब भूस्वामी हुए हैं, उनका उसी समय दान पत्र हुआ है। भूमिदाता छह हजार वर्ष स्वर्ग में वास करते हैं। प्रदत्त भूमि के आहर्ता एवं आहरण के अनुमोदनकारी दोनों का ही नरक वास होता है। वहाँ उस ब्रह्मवृत्ति लोपकारी व्यक्ति को यमदूत के आदेश द्वारा पीसते, मुग्दर द्वारा निहत एवं फांस द्वारा नियंत्रित करते हैं। उस अवस्था में वह उच्च स्वर से क्रन्दन करता है। यमदूत उसे अग्नि में फेंक देते हैं, दण्ड से उसके मस्तक में

द्विल –187

प्रहार करते हैं और छुरे से अंग कर्तन करते हैं। इस अवस्था में पड़कर उसे केवल उच्चस्वर से रूदन करना पड़ता है। इस तरह महादुष्ट महागणों द्वारा भूमिहर्ता पीड़ित होता है। बाद में तिर्यक योनि, राक्षसी योनि एवं शुकर योनि प्राप्त होती है। फिर भी ब्याली, शृगाली और महाभूत भयंकर पिशाची योनि तक उसे मिलती है। जो व्यक्ति प्रदत्त भूमि का उंगली मात्र स्थान हरण करता है, वह और किस तरह क्या पाप आचरण करेगा? अर्थात उसके पाप करने का कुछ भी बाकी नहीं रहता और जो उँगली मात्र भूमिदान करते हैं, वे और किस तरह पुण्याचरण करेंगे? अर्थात –पुण्यानुष्ठान का उनका और कुछ भी बाकी नहीं रहता। सहस्र अश्वमेध, शत वाजपेय, एवं शत कन्या दान का फल–भूमिदाता को प्राप्त होता है। भूमिदाता की आयु, यश, सुख, प्रजा, धर्म, धन्य, धन, जय और संतान सभी की वृद्धि होती है। वे नित्य सुख प्राप्त करते हैं। जो खल स्वभाव वाला नर प्रदत्त भूमि का अंगुली मात्र हरण करता है, निर्जन विन्ध्याटवीर सूखे हुए कोटरे में वे काला सर्प होकर वास करता है। जो दान करके पुनः हरण कर लेते हैं उनकी भी वही हालत होती है। भूमि का हरण करने वाला सहस्र तड़ाग, शत अश्वमेघ एवं कोटि गौ प्रदान कर विशुद्ध होता है। धर्म, अर्थ और यश के लिये वे सभी धन और दूसरे सभी दानद्रव्य उदारता के साथ ब्राह्मण को दान करता है, कोई साधु उसे पुनः ग्रहण करता है? यह जीव लोग चलपत्र के पत्र लीला की तरह चंचल और संसार के सर्वसुख तृण खण्ड के की तरह अर्थहीन हैं। इस अवस्था में नरक के गहन गर्त्त के अवार्त में पतनोत्सुक दुर्बुद्धि लोग ब्राह्मण शासन अपहरण करते हैं। जिन सभी महीपालों ने इस नीति का पालन किया है, वे इसे भोग करके ही रहेंगे। उनके किसी के साथ यह पृथ्वी नहीं गई, न जाती है, न गई और न जायेगी। इस भूतल पर जो कुछ है नहीं गया, न जाता है, न गया और न जायेगा। इस भूतल पर जो कुछ है, सभी कुछ सभी नश्वर है –''एक मात्र कीर्ति ही चिरस्थाई है। अतएव वसुधापतियों को कभी भी सत्–कीर्ति का लोप नहीं करना चाहिए। विप्रसात् कृत वसुन्धरा इस जग के महीपति गणों को भगिनी है, अतएव वह कभी भी उनकी भोग योग्या या कर ग्राह्य नहीं है। मैं रामचन्द्र भूमिदान कर भावी गणों के यहाँ भुयोभूयः प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे अपने अपने अधिकारों के रहते हुए इस साधारण धर्मसेतु का पालन करे। इस वंश में यदि कोई क्षितिपतिगण इस मत्प्रदत्त शासन का पालन करें तो मैं उनके करतल गत होकर रहूँगा।

(बंगला 'बंगवासी' का हिन्दी अनुवाद)

''इस ताम्र शासन के प्रदान के समय दसरथी रामचन्द्र की उम्र चवालीस?????????? (चतुश्चत्वारिंग शत) साल थी।''

ताम्र शासन के बारे में शास्त्रीय मत इस उद्धृत लिपि में, भूमि दान के अक्षय फल प्राप्ति की बात कही गई है। दाता की तरह, दाता के अधस्तन पुरूष भी इस पुण्य के अंश को पाते हैं एवं परवर्ती भूपतिगण भी इस फल से वंचित नहीं होते। इसके अलावा, स्वदत्त या परदत्त भूमि को जो भूम्याधिपति हरण करते हैं, उनके पाप का अंत नहीं है। शास्त्र ग्रंथों में इस बारे में नाना तरह की व्यवस्था का पता चलता है। महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार स्वयं भूमिदान करने की अपेक्षा परदत्त दान की रक्षा करना अधिक पुण्यप्रद होता है। उन्होने कहा है –

''ददयादभूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यन्च कारयेत्।
आगामी भद्र नृपति परिज्ञानाय पार्थिवः।।

द्विल –188

पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिन्हनं।
अति लेख्यात्मनोवंश्यानात्मानन्च महीपतिः।।
प्रतिग्रह परीमाणं मानाच्छेदोपवर्णं।
स्वहस्त कालसम्पन्नं शासनं कारयेत् स्थिरं।। (याज्ञवल्क्य)

वृहद्धर्मपुराण उत्तर खण्ड के तृतीय अध्याय में और अन्यान्य ग्रंथों में भूमिदान एवं ब्रह्मवृत्ति के बारे में अनेक बातें पाई जाती हैं। अपनी तथा दूसरे की प्रदत्त भूमि के हरणकारी के भयंकर पापों की बहुत सी बातें हैं। उनमें से केवल एक ही हम यहाँ दे रहे हैं –

"स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत बसुन्धराम।
षष्टि वर्ष सहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।।
भूमेः स्वपरदत्ताया हरणान्नाधिकं क्कचित्।
पापमस्ति महारौद्रं नस्वीकुर्म्मः पुनान्तताम्।। ब्रह्मपुराण 155 अध्याय 6–7 श्लोक।

शास्त्रीय वाक्यों के प्रति विश्वास प्राचीन काल के भूपति गण इन सभी शास्त्रीय वाक्यों में आस्थावान थे इसलिये मुक्त हाथों से भूमिदान करते थे। उनके स्थलवर्त्तीगण दूसरे नृपति भी इस दान के अक्षुण्य/बरकरार रखते थे। अधिकांश ताम्रशासन में ही श्री रामचन्द्र के सम्पादित शासन के अंश विशेष के उत्कीर्ण होने के प्रमाण मिलते हैं। उदाहरण–स्वरूप बल्लाल सेन, भोजबर्मादेव, हरिबर्म्म देव, धर्ममाणिक्य, लक्ष्मण सेन और श्यामल बर्म्म के सम्पादित शासन और अन्यान्य अनेक ताम्र शासन की बातें उल्लेखनीय हैं। इससे यही समझा जाता है कि श्री रामचन्द्र के परवर्त्ती भूस्वामीगणों ने उनके पुण्य आदर्श का अनुसरण किया था। कई कई शासन में उनके अनुरोध का उल्लेख रहने की वजह से यह धारणा और ज्यादा बद्धमूल हो गई है। राज देवखड़ग अपने तेरहवें राज्यांक के 25 पौष के दिनांक को आसरफपुर के ताम्र शासन का सम्पादन किया था। उस शासन में उत्कीर्ण वाक्यावली यहाँ पर उल्लेख योग्य है –

"इति कमलदलाम्बु बिन्दुलोलां श्रियमनुचिंत्य मनुष्य।
जीवितः च सकलमिदमुदाहृतं चबुध्य नहि पुरूषैः।
परकीर्त्तयो बिलो –।। एतान्योतां भाविनः
पार्थिवेन्द्रां भूयोभूयो प्रार्थयत्येष रामः।

मर्म "श्री एवं मानव जीवन पद्मदल स्थित जल बिन्दु की तरह चंचल है, यह सोचकर एवं पूर्वोक्त विषयों की आलोचना करके कोई दूसरे की कीर्ति का विलोप न करें। भविष्यत् राजाओं के उद्देश्य से श्री रामचन्द्र ने पुनः पुनः यह अनुरोध किया है।

द्विल –189

भूमि दाताओं की धर्मभीरूता का निदर्शन उन दिनों के भूस्वामी इतने धर्मभीरू थे कि परदत्त भूमिहरण करना शास्त्र विगर्हित होने पर भी, दाताओं ने शास्त्र के वाक्य को अधिकतर दृढ़ करने के उद्‌देश्य से भावी अधीश्वरों को प्रदत्त भूमि के ऊपर हस्तक्षेप न करने के लिये सविनय अनुरोध करने में भी कभी विस्मृत नहीं होते थे। स्वयं रामचन्द्र ने उनके ताम्र शासन में उत्कीर्ण कराया था –

"अस्मिन वंशे क्षितौ कोऽपि राजा यदि भविष्यति।
तस्याहं करलग्नोऽस्मि मद्‌दत्तं यदि पाल्यते।।"

धर्ममाणिक्य का ताम्र शासन इस आदर्श को परवर्ती दाताओं में कुछ लोगों ने इसे अपनाया था। रामचन्द्र ने दानरक्षाकारी भविष्य पुरूषों के करतलगत रहने को अंगीकार किया था। परवर्ती समय में इस अंगीकार को और दृढ़ करने के प्रमाण मिलते हैं। त्रिपुराधीश्वर महाराज धर्ममाणिक्य ने कुमिल्ला नगरी के वक्षः स्थल पर सुविशाल धर्मसागर की प्रतिष्ठा के समय ब्राह्मणों को ताम्र शासन के द्वारा जो भूमि दान किया था उस दान पत्र में लिखा है –

"मम वंश परिक्षीणे यः कश्चिद्‌भूपति भवेत्।
तस्य दासस्य दासोहं ब्रह्मवृत्तिं न लंघयेत्।।

लक्ष्मण सेन का ताम्र शासन हलायुध मिश्र के "सेक शुभोदय" नामक पुस्तक में राजा लक्ष्मण सेन के द्वारा सम्पादित दान पत्र की जो प्रतिलिपि संयोजित है उसमें लिखा है –

"मयि मृते सति कश्चिद्राजा ये भवेत्।
तस्य दासस्य दासोहं यो ये कीर्त्तिं न लंघयेत्।।

श्यामल वर्मा का ताम्र शासन विक्रम पुर के सामंत राजा श्यामल वर्मा ने 994 शक में सेन राजाओं के करद के रूप में उक्त प्रदेश की प्रतिष्ठा की थी। उन्होने आदि शूर की तरह पंचगोत्रीय पाँच वैदिक ब्राह्मणों को लाकर एक यज्ञ का सम्पादन किया था। समागत ब्राह्मण पंच को में शौनक गोत्रीय यशोधर शर्मा को ताम्र शासन के द्वारा सामन्तसार ग्राम को दान दिया था। इस दानपत्र में उत्कीर्ण है –

"मया दत्तामिमां भूमिं यः करोति हि पालनं।
तस्य दासस्य दासोऽहं भवेयं जन्मजन्मनि।।"

ताम्र शासन प्रदान की प्रथा आधुनिक नहीं है इस तरह के दृष्टांतों का अभाव नहीं है। ताम्र शासन द्वारा भूमि प्रदान की प्रथा रामचन्द्र के परवर्ती कालों तक चालू थी। प्रत्नंतत्वविदों के अनुसंधान से भारत के नाना स्थानों से प्रतिनियत ताम्र फलक मिल रहे हैं। एक मात्र त्रिपुर राज्य में अनुसंधान करने पर शत शत ताम्र शासन प्राप्त

द्विल –190

होंगे। उसकी आलोचना से स्पष्ट ही प्रतीयमान होगा कि त्रिपुर भूपति वृंद केवल सामरिकवीर ही नहीं थे –दानवीर भी थे। राजमाला के हर लहर में ताम्र पट्ट के बहुत से निदर्शन मिलेंगे। यह अवस्था केवल त्रिपुरा में ही नहीं है –सर्वत्र ही परिलक्षित होगी। सारे भारत में अब भी बहुत भारी पैमाने पर ताम्र शासन नहीं मिले है, कितने दिनों में उनका सम्यक उद्धार होगा यह विषय मनुष्य धारणा के अगोचर है।

धर्म के साथ शौर्य की मर्यादा की रक्षा ताम्र शासन के क्रमिक विवरण की आलोचना से जाना जाएगा, समाज में एक ऐसा समय आया था जिस समय धर्म की मर्यादा की रक्षा के साथ –साथ शौर्य का गौरव भी पूर्ण मात्रा में सुरक्षित रहता था। उस समय दाता धर्म भाव से प्रेरित होकर दानपत्र सम्पादन के समय वीर्य की गरिमा को भूल नहीं सके थे। दानपत्र में दाता के और उनके पूर्वजों के कीर्ति कलापों के घोषणा वाक्यों को उत्कीर्ण किया जाता था। यह शुरत्व की पूजा के अलावा और कुछ नहीं है। किन्तु ताम्र शासन के प्रथम युग में दाताओं के हृदय में इस तरह के भावों का दृष्टांत नहीं है। पहले उद्धृत किये गये रामचन्द्र दानपत्र में भी इसका आभाष नहीं मिलता। बहुत से बौद्धमतावलम्बी राजा भी इस तरह के गर्व के हाथों से निष्कृति लाभ को प्राप्त हुए हैं। उदाहरण स्वरूप श्रीचन्द्र देव के शासन का उल्लेख किया जा सकता है। बाद में इस भाव की क्रमशः विकृत बुद्धि आरम्भ हो गई थी। इसकी वजह से धर्मभाव का कितना म्लान हो रहा था, दो एक उदाहरण से उसे दर्शाने की चेष्टा की जायेगी।

राजा देवखड़ग का ताम्र शासन राजा देवखड़ग आसरफपुर लिपि की बात हम पहले ही बता चुके हैं। उस शासन में उत्कीर्ण वाक्यों में पाया जाता है –

''जयत्यशेष क्षितिपाल मूलिमाला मणिद्योतित पादपीठ **x x x** प्रणतोत्तमागं श्रीदेवखड़गो नृपतिर्ज्जितारिः।''

अर्थ ''राजा देवखड़ग जिनके पादपीठ अनेक क्षितिपालों के मौलिस्थित मणियों द्वारा समुदभाषित है **x x x** जिन्होंने अरिकुल को जय किया है, उनकी जय हो।''

केशव सेन का ताम्रशासन केशव सेन देव के इदिलपुर ताम्र शासन के चतुर्थ श्लोक में जो बातें उत्कीर्ण हुई है, वह भी पूर्वोक्त भावों की तरह है। श्लोक है –

''अवातरदथान्वये महति तत्र देवः स्वयं,
सुधा किरण शेखरो विजयसेन इत्याख्यया।
यदंध्रिनखधोरणिस्फुरितमौलयः ह्मभुजो,
दशास्यनतिविभ्रमं बिदधिरे किलैकैकशः।।

मर्म : ''सुधाकिरण शेखर स्वयं महादेव के सदृश विजयसेन नाम के एक नरपति ने इस वंश में जन्म ग्रहण किया था। विजित नृपतियों ने जब नतमस्तक हो, उनके चरणों में प्रणाम किया तब उन भूपति वृन्द के मुकुट मणियों की ज्योति चारों ओर विकीर्ण होते समय ऐसा प्रतीत होता था जैसे दशास्य रावण ही उन्हें प्रणाम कर रहा है।''

द्विल –191

दामोदर देव का ताम्रशासन 1165 शक में राज दामोदर देव के सम्पादित चट्टल के ताम्र शासन में है –"देवः श्री मधुसूदनाख्य नृपतिर्येनापि सेवानमत् भूमिपाल ललाटघृष्टचरणः श्री वासुदेवोऽजनि।।" आदि

ईशान देव का ताम्र शासन राजा इशान देव के प्रदत्त भाटेरा के शासन में उत्कीर्ण है –

"ह्मा पाल चूड़ामणि मंडितांघ्रिः पुत्रोऽभवत् केशव देवदेवः –आदि।

विजयमाणिक्य का ताम्र शासन काल के इस उत्ताल तरंग ने त्रिपुर सिंहासन के पादमूल तक चुम्बन किया था। महाराज विजयमाणिक्य ने उदयपुर में जगन्नाथ विग्रह स्थापना के उपलक्ष में ब्राह्मणों को भूमिदान किया था। उस दान के ताम्र फलक में उत्कीर्ण हुआ है –

"राजाराज शिरोरत्न निघृष्ट चरणाम्बुजः।
श्रीश्रीविजयमाणिक्यो राजा राजभि राजते।।"

ताम्र शासन में अंकित शौर्यभाव की कथा इस तरह के बहुत से दृष्टांत प्रदान किये जा सकते हैं। उत्कल राज नरसिंह देव की प्रशस्ति में भी इस तरह की लिपि उत्कीर्ण हुई है। यह समय के स्रोत की लगातार गति के अलावा और क्या हो सकती है? विजयमाणिक्य के पहले और बाद में सम्पादित त्रिपुरा के जो ताम्र शासन आजतक मिले हैं, उसमें किसी में भी इस तरह उक्ति नहीं है। विजयमाणिक्य अथवा राष्ट्र–विजयी दूसरे राजाओं की इस तरह की उक्तियाँ गर्व–दृप्त होने पर भी एक दम निरर्थक नहीं कही जाएगी। किन्तु किसी किसी जगह पर देखा जा रहा है, काल माहात्म्य के प्रभाव में पड़कर बहुत से करद–राजा भी आत्मअवस्था को भुलाकर दानपत्र के सम्पादन के समय राजचक्रवर्ती की तरह राजाओं में शिरोरत्न चरणों में घर्षणकारी कहकर अमूलक श्लाघा का वर्णन करने भी नहीं चुके। चाटुकार पारिषद वर्ग भी अम्लान चित से उसकी रचना और ताम्रपत्र में उसकी खुदाई कर प्रभु को कृतार्थ करने में पीछे नहीं रहे। इन सभी कार्यों की आलोचना से स्पष्ट ही प्रतीयमान होगा, उस समय धर्मभाव को विदलित करके यशोलिप्सा समाज में अपना मस्तक उठा रही थी।

ताम्र शासन में अंकित वाक्य द्वारा रूचि का परिचय किसी किसी शासन की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज की रूचि क्रमशः निम्नगामी हो रही थी। विलासिता एवं व्यभिचार को प्रसार के युग में सभी शासनो ने सम्पादित किया हैं – यह बिना द्विधा से कहा जा सकता है। इसके उदाहरण स्वरूप केशव सेन का ताम्र शासन की बात उल्लेख योग्य है। इस प्रशस्ति के नवम श्लोक में दाता ने अपने पिता लक्ष्मण सेन की कीर्ति की वर्णना में कहा है –

"प्रत्युषे निगड़स्वरैर्नियमित प्रत्यर्थि पृथ्वीभुजां,
मध्यान्हे जलपान मुक्त करभ प्रोद्गाल घन्टारवैः।

द्विल –192

सायं वेश विलासिनी जारणन्मन्जीर मंजुस्वनै
येर्नाकारि विभिन्न शब्द घटन बन्दयं त्रिसन्ध्यं नभः।

मर्म "(लक्ष्मण सेन) प्रत्युष बेला में नरघाती बन्दी बृन्द के बन्धन–श्रृंखल की आवाज से, मध्यान्ह में पानी पीने हेतु समागत करभ और उष्ट्रयूथ के गले की घन्टियों की आवाज से एवं संध्या समय राजपथ वाहिनी बारविलासिनियों के सुमधुर नुपुर निक्कन से आकाश मार्ग को ध्वनित करते थे।"

पहले लक्ष्मण सेन की प्रशस्ति का जो विवरण दिया गया है, उसमें उन्होने ठीक इसी भाषा में अपनी आत्मकीर्ति की घोषणा की था। केशव सेन ने पिता की वह अतुल कीर्ति को पुनः एक बार कसौटी पर कस लिया है। इसके बाद पिता की बातें छोड़कर अठारवाँ श्लोक में केशव ने केवल आत्मकीर्ति का वर्णन किया है। वह और भी कदर्य है। यहाँ पर उस श्लोक को हम दे रहे हैं –

"आकर्णाचंलमेलकारविशिखक्षेपैः समाजेद्विषां,
दानांतः कणगर्भदर्भकलनैर्गोष्ठीषु निष्ठावतां।
नीवीबन्धविसरणेः परिषदित्रस्यत् कुरंगीदृशां,
अव्यापारनुखोषितं क्षणमपि प्राप्नोतिनैतत्करः।।"

मर्म –"उनके (केशव सेन के) हस्तद्वय कभी भी विश्राम सुख नहीं भोगते थे। आकर्ण आकर्षित बाण द्वारा विपक्षियों के साथ युद्ध, ब्राह्मणों को हिरण्यगर्भदान एवं लज्जाशीला कुरंगनयना सुन्दरियों के कटि बन्धन वस्त्र को श्लथ करना/खींचना आदि कार्यों में उनके दोनों हाथ सदा नियुक्त रहते थे।

यही अंत नहीं है। उक्त शासन के 23वाँ श्लोक भी उल्लेखयोग्य है –

"आरूह्याभ्रं लिहगृहशिखामस्य सौन्दर्य लेखां,
पश्यंतीभिः पुरिविहरतः पौरसीमंतिनीभिः।
वार्त्ताकूतैर्नयनचलितैर्विभ्रमं दर्शयन्त्यो,
दृष्टाः सख्यः क्षणाविघटित प्रेमबद्धैः कटाक्षैः।।

मर्मः "पुरी विहार के समय सुन्दरियाँ अभ्रभेदी गृहचुड़ा पर आरोहण कर उन्हें (राजा को) देखती थी। वे इन सभी चलित नयना कामिनियों के प्रति क्षणमात्र प्रेम कटाक्ष करते थे।

धर्म–प्रणोदित चित्त से दानपत्र सम्पादन करने के समय, उन दिनों सायं कालीन राजपथ वाहिनी बारविलासिनियों की नुपुर ध्वनि ह्रदय में जाग्रत होती है। रास्ते में चलते समय गृहचुड़ास्थित सुन्दरियों के साथ कटाक्ष विनिमय याद आता है। सुन्दरियों के कमर के वस्त्र लेकर खींचने की बातें याद आती है। खासतौर से उन दिनों इन्हीं सभी कीर्ति कलापों की कहानी दानपत्र में उत्कीर्ण कराना राजा एवं राज पंडित गण भी इसे गौरव सूचक मानते थे। उन दिनों की रूचियों के विषय, धर्मभाव के विषय में क्या चिंतनीय नहीं है? केवल ताम्र फलक में ही नहीं, शिलालिपियों में एवं साहित्य में भी इन कुरूचियों की विस्तृत छाया पड़ी थी। किन्तु त्रिपुरा के किसी भी शासन में इस तरह की कुरूचि को स्थान नहीं मिला।

ह्रिल –193

ताम्र शासन में अनावश्यक बातें यहाँ पर और एक बात कहने की है। भूमिदाता गण को ताम्र शासन द्वारा अपने को राष्ट्र–विजयी कहकर घोषणा करने का एक सहज सुयोग उन्हें मिला था। जिन राजाओं ने इस तरह की घोषणा की थी, उन सभी में विजयश्री प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं था, ह्रदय में स्वतः ही इस प्रश्न का उदय होता है। इस बारे में एक संदिग्ध दृष्टांत का उल्लेख किया जा रहा है। 1165 शक (1243 ई सन) में सम्पादित राजा दामोदर देव के चट्टल शासन में उन्हें ''त्रिपुर जयिनं'' विशेषण से भूषित किया गया है(1)। इस वाक्य के यथार्थ के बारे में सन्देह है। क्योंकि दामोदर का राजस्व ई सदी 13 सदी के प्रारम्भ में समाप्त था। ये बंगदेश में मुसलमान प्रभाव विस्तार के पूर्ववर्ती समय की बात है। उस समय त्रिपुरा सामरिक बल असाधरण था। चट्टग्राम, मघों को छोड़ त्रिपुरा का प्रतियोगी अन्य किसी प्रबल शक्ति के रहने का प्रमाण नहीं है। दूसरी ओर दामोदर देव द्वारा अपने को त्रिपुरा विजयी घोषित करने पर भी त्रिपुरा में अथवा चट्टग्राम में उनके किसी तरह के प्राधान्य के निदर्शन नहीं मिल रहे हैं। वे चट्टग्राम के खण्ड राज्य के शासक थे, किन्तु त्रिपुरा शक्ति के सामने खड़े होने लायक उपयुक्त क्षमताशाली थे, ऐसा नहीं लगता। यहाँ तक कि उनकी राजधानी कहाँ थी, इस समय यह बताना भी नामुमकिन है। असल में त्रिपुरा विजय के लायक होते तो इतने थोड़े से समय में हम उन्हें विस्मृति के अंधकार में विसर्जन नहीं कर पाते। निश्चय ही उनका परिचय ज्ञापक कोई निदर्शन विद्यमान रहता।

समाजिक हालात विपर्यय की कथा पूर्वोक्ति सारे विवरणों की आलोचना से स्पष्ट ही यह ह्रदयंगम होगा कि ताम्र शासन के प्रवर्तन के समय छोटे बड़े समाज सभी सरल, धर्मभीरू एवं सत्यनिष्ठ थे। दानपत्र स्थायित्व रक्षा के निमित्त दाता एवं ग्रहीता दोनों पक्षों की सतर्क दृष्टि थी। इस उद्देश्य से ही इस कार्य में ताम्रफलक का व्यवहार हो गया था। अधिक स्थायी एवं पवित्र कहकर ही शायद इस धातु का व्यवहार हुआ था। यह केवल साधारण दानपत्र तैयार करने में सहज है, दाता और ग्रहीता किसी पक्ष के मन में इस तरह की भावना कभी नहीं उपजी। बहुत से शासक साफ तौर से त्रिपुरा का ताम्र शासन आदि की आलोचना से जाने जाते है, सोलह सौ सदी तक दान पत्र में प्रदत्त भूमि की चारों ओर की सीमा लिपि करने में भी आवश्यकता अनुभव नहीं की गई। परिमाण लिपि करना ही यथेष्ट समझा जाता था। भूमि का चारों ओर की सीमा के बारे में दाता और ग्रहीता दोनों जानते थे। किन्तु इतना सुयोग रहने पर भी ग्रहीता भूमि का सीमा का उल्लघंन कर कभी भी भूमि की सीमा बढ़ाने की कोशिश नहीं करते थे। सत्रहवीं सदी से ताम्रपत्र में भूमि की चारों ओर की सीमा के उत्कीर्ण करने की प्रथा प्रवर्तित हुई है। समाज के रूचि

---

(1) 'आंभाज श्रीमुषण पिशुनः प्रेमभूः कैरवाणां चूढ़ारत्नं त्रिपुर जयिनं केलिकारो निशायाः।''

द्विल –194

परिवर्तन के साथ साथ संभवतः इसी समय से ही दान ग्रहण करने वालों के आचरण के बारे में शायद संदेह की सूचना हुई होगी। काल के प्रभाव से सर्वत्र ही क्रमशः ताम्रशासन की प्रचलन एकदम बंद कर देना पड़ा है और यह भी सामाजिक अवनति का ही फल है। इस समय जो कोई भी निदर्शन पत्र (दलील) सम्पादन के समय साक्षी को सामने रखकर एवं रजिस्ट्री करवा कर भी बहुत सी जगहों पर निरापद नहीं हुआ जा सकता। अधिकांश दलीलों के पश्चात्, वाद–विवाद, मामला–मुकदमा लगा ही रहता है। अतएव यह ताम्र शासन प्रचलित रखने का युग नहीं है, यह बात अति सहज बोध्य है एवं लोक चरित्र है जो इस प्रथा के बंद कर देने का मुख्य कारण लगता है। कानून की दांव –पेंच और कानून व्यवसायी की कूट बुद्धि इस तरह के परिवर्तन का पथ प्रदर्शक हो उठी है।

त्रिपुरा के ताम्रशासन ही इस आलोचना का मूल विषय है। किन्तु इस समय अनेक शासन दुष्प्राप्य हो जाने से एवं आविष्कृत बहुत से शासनों के प्रति आस्था स्थापन करते समय मन में द्विधा –भाव उपस्थित होने की वजह से इस प्रसंग का सुनियोजित आलोचना की सुविधा नहीं हो सकी।

सैन्याध्यक्षों की उपाधि

त्रिपुरा के सामरिक विभाग के प्राचीन विवरणों की आलोचना से ज्ञात होता है कि इस राज्य में सैन्याध्यक्षों की उपाधि समय समय पर बदलती रही है। महाराज त्रिलोचन के पहले इनकी क्या उपाधि थी, यह नहीं जाना जा सका। उसके पश्चात् जो विवरण संग्रह करना संभव हुआ है वह नीचे दिया जा रहा है।

सेना

सेनाध्यक्षों की 'सेना' उपाधि महाराज त्रिलोचन के कुछ दिन पहले से सैन्याध्यक्षों की उपाधि 'सेना' कहने के निदर्शन मिलते हैं। निम्न श्रेणी के योद्धागणों को ''सैन्य'' एवं उनके अध्यक्षों को ''सेना'' पदवी से जाना जाता था। त्रिलोचन के शासन काल में भी इस प्रथा के प्रचलित रहने के प्रमाण मिलते हैं इसके दो एक दृष्टांत देना आवश्यक हैं।

महाराज त्रिलोचन के भूमिष्ठ होने(जन्म लेने) के संवाद से राज्य में आनन्द कोलाहल उपस्थित हुआ था। उस समय –

आनन्द ह्रदय होईलो सैन्य सेनागण।।	आनन्द ह्रदय हुए सैन्य सेना गण।।
मनुष्य शरीरे देखे शोभा त्रि–नयन।	मनुष्य देह में देखे शोभित त्रिनयन।
पात्र मंत्री सैन्य सेना सबे तुष्ट मन।।	पात्र मंत्री सैन्य सेना सभी तुष्ट मन।।
राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 17पृ	राजमाला प्रल त्रिपुर खण्ड 17पृ

द्विल –195

महाराज त्रिलोचन के चतुर्दश देवता प्रतिष्ठा काल के विवरण आलोचना से मिलता है–

पात्र मंत्री सैन्य सेना लोइया राजाय।	लिया साथ राजा ने पात्र मंत्री और सैन्य सेना।
नमस्कार कोरिलेन सर्बदेव पाय।।	नमन किया राजा ने सभी देवों के चरण।।
राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 31पृ	राजमाला प्रल त्रिलोचन खण्ड 31पृ

महाराज दाक्षिण, हेड़म्बपति के साथ युद्ध में पराजित होकर खलंमा नामक स्थान में जाने के उपलक्ष में राजमाला में है –

सैन्य सेना सने राजा स्थानांतरे गेलो।	सैन्य सेना साथ राजा गए स्थानांतर।
बरबक्र उजानेते खलंमा रहिलो।।	उपरी भाग बरबक्र बसे खलंमा जाकर।।
राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36पृ	राजमाला प्रल दाक्षिण खण्ड 36पृ

(इन दोनों का भावार्थ)–सैन्य और सेना गणों के मन में आनन्द की लहर दौड़ी। पात्र –मंत्री सैन्य सेना सभी का मन तुष्ट हुआ।

(सैन्य और सेनाओं के साथ राजा स्थानान्तर में गये। बरबक्र (बराक नदी) के ऊपरी हिस्सें खलंमा में रहने लगा।)

महाराज शिक्षराज के वन गमन के समय 'सेना' गणों का राजा के साथ कुछ दूर अग्रसर होने का उल्लेख है –

पुत्र आदि सेनागन काँदिते काँदिते।	रोते रोते पुत्र आदि और सेना गण।
आगुबाडि दिल निया कोतो दूर पथे।।	आगे बढ़ ले गये बहुत दूर तक राजन।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 42पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 42पृ

(अर्थात –''पुत्र आदि सेना गण रोते रोते आगे बढ़कर रास्ते पर कुछ दूर तक पहुँचा आये।''

महाराज जूझारू फा के लिका अभियान के उपलक्ष में वर्णित है –

त्रिपुरार चर गण ताहाके देखिया।	त्रिपुरा के चरों ने उन्हें देखकर।
युद्ध हेतु सैन्य सेना गेलेक साजिया।।	युद्ध हेतु सेना हो गई प्रस्तुत।।
राजमाला प्रल यूझारू फा खण्ड 50पृ	राजमाला प्रल यूझारू फा खण्ड 50पृ

(अर्थात –''त्रिपुरा के चरों ने उसे देखकर युद्ध के लिये सैन्य और सेना लेकर चले गये।'')

इस समय तक सैन्याध्यक्षगण की 'सेना' उपाधि देखने को मिलती है। सम्यक विवरण से पता चलता है कि महाराज त्रिपुर से जुझारू फा तक 72 जन राजाओं के शासन काल में सैन्याध्यक्षों की उपाधि 'सेना' थी।

इसके पश्चात् (महाराज प्रतीत और महाराज जूझारू फा के समय) सेना उपाधि के साथ यदा कदा ''सेनापति'' शब्द का उल्लेख भी मिलता है। इससे यह अनुमान होता है कि इसी समय से सेनाध्यक्षों के सेनापति उपाधि का सूत्रपात हुआ था।

जांगे फा से छेंगाछाग तक 21 राजाओं के नाम राजमाला में पाये जाते हैं। उन के शासन काल का कोई भी विवरण राजमाला में नहीं है। अतएव इनके समय सेनाध्यक्षों की क्या उपाधि थी, जानने का कोई उपाय नहीं है।

सेनापति

सेनापति उपाधि महाराज छेंगाछाग के पुत्र छेंथुम फा के समय साधारण सिपाहियों को 'सैन्य' उनके अधिनायक वृन्द की 'सेनापति' उपाधि थी। यह उपाधि संभवतः छेंथुम फा के पहले ही प्रवर्तित

द्विल –196

हुई होगी। गौड़ेश्वर के साथ महाराज छेंथुम फा से जो युद्ध हुआ था उसकी सूचना में मिल रहा है –

1 सैन्य सेनापति सबे अनुमति दिलो।	सैन्य सेनापति सबने दी अनुमति।
नृपति के महादेवी अनेक भर्तसिलो।।	नृपति की भर्त्सना की महादेवी।।
राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 56पृ	राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 56पृ

अर्थात "सैन्य सेनापतियों ने अनुमति दिया। नृपति की महारानी ने भर्त्सना की।

2 ए बोलिया ढोले बाडि दिते आज्ञा कोइलो।	यह कहकर नगाड़े पर करने को कहा आघात।
जतो सैन्य सेनापति सब सजि आइलो।।	सभी सैन्य सेनापति आए कर साज।।
राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 56पृ	राजमाला प्रल छेंथुम फा खण्ड 56पृ

अर्थात "यह कहकर ढोल पर आघात करने की आज्ञा दी। जितने सैन्य सेनापति थे सभी सजकर आ गये।

धर्म देव के सिंहासन लेने के निमित्त काशीधाम से राज्य में प्रत्यागमन के समय –

कोतो दिने आसिलेक देश सन्निहिते।	कितने ही दिनों पर लौटे देश अपने।
सैन्य सेनापति आसे आगु बाडी निते।।	सेनापति आये उन्हें आगे लेने।।
पंच भ्रातृ मिलिया कोरिलो आलिंगन।	पंचभ्राताओं ने किया परस्पर आलिंगन।
राजपद धुलि लोइलो सेनापति गण।।	राज पद की धूलि लिये सेनापति गण।।
राजमाला द्विल ग्रन्थारम्भ खण्ड 4पृ	राजमाला द्विल ग्रन्थारम्भ खण्ड 4पृ

अर्थात "कितने दिनों के बाद देश के करीब लौटे। सैन्य सेनापति आगे बढ़कर उन्हें लेने आए। (पाँचों भाईयों ने मिलकर आलिंगन किया। सेनापतियों ने राजा की पदधुलि ली।)

महाराज प्रतापमाणिक्य के शासन काल में सेनापति उपाधि का उल्लेख मिलता है।

प्रताप कनिष्ठ पुत्र लोके राजा कोरे।	प्रताप, कनिष्ठ पुत्र को, लोगों ने किया राजा।
अधार्मिक देखि ताके लोके मारे पोरे।।	अधार्मिक देख उसे मारे उसकी प्रजा।।
महाबलबंत देखि दिने ना मारिछे।	महाबलबन्त देख मार न सके दिन में।
सेनापति सबे चक्रे रात्रिते बधिछे।।	कर चक्रांत सेनापतियों ने वध उसे रजनी में।।
राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्य 6पृ	राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्य 6पृ

दस सेनापति नियोग की प्रथा धर्ममाणिक्य के पहले से ही दस सेनापति नियुक्त रहने के प्रमाण मिलते हैं। सामरिक विभाग सहशासन भार इन्हीं के हाथों में रहते थे –यह बात हम पहले भी बता चुके हैं। राजमाला प्रथम लहर में बस इतना ही विवरण मिलता है। द्वितीय लहर में प्रथम राजा धर्ममाणिक्य के समय में भी 'सेनापति' उपाधि प्रचलित थी और दस सेनापति नियुक्त किये गये थे। राजकुमार धर्मदेव पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके वाराणसी क्षेत्र में सन्यासी के भेष में रहते समय देश से आदमी ने जाकर उन्हें सूचित किया –

तोमा पिता महामाणिक्य शीतला होइया।	तुम्हारे पिता, महामाणिक्य बसन्त रोग होकर।
बैकुंठ निवासी होइलो पंच सुत राखिया।।	बैकुण्ठ वासी हो गये पंच पुत्र रखकर।।
तोमा चारि भाई आछे रणेर माझार।	रण मध्य फंसे तुम्हारे चारों भ्राता।
सेनापति नाहि दिछे राजा कोरिबार।।	सेनापति नहीं होने देता उन्हें राजा।।
दस सेनापति मध्ये राजा होते चाय।	दस सेनापति में राजा होना कोई चाहता उनमें।
ना माने काहाके केहो मने भय पाय।।	न मानते किसी को वे, सब डरते हैं मन में।।
राजमाला द्विल ग्रन्थारम्भ खण्ड 3व4पृ	राजमाला द्विल ग्रन्थारम्भ खण्ड 3व4पृ

अर्थात "तुम्हारे पिता महामाणिक्य चेचक से बैकुंठ निवासी हो गये पाँच पुत्र को रखकर। तुम्हारे चारों भाई युद्ध में फँसे हैं। दस सेनापति में से एक राजा होना चाहते हैं। कोई किसी की बात नहीं मानता। सभी एक दूसरे से डरते है।

द्विल –197

महाराज प्रतापमाणिक्य के शासन काल में पाया जाता है –

रत्नमाणिक्य राजा स्वर्ग होइलो गति। रत्नमाणिक्य राजा की हुई स्वर्ग गति।
राजमाला प्रल रत्नमाणिक्य खण्ड 69पृ
अधार्मिक प्रतापमाणिक्य होइलो ख्याति।। अधार्मिक प्रतापमाणिक्य की हुई ख्याति।।
राजमाला प्रल प्रतापमाणिक्य खण्ड 69पृ राजमाला प्रल प्रतापमाणिक्य खण्ड 69पृ
ताहाने मारिलो रात्रे दस सेनापति। मार गिराये उस रात दस सेनापति।
राजमाला प्रल 70पृ राजमाला प्रल 70पृ

अर्थात राजा रत्नमाणिक्य का स्वर्गवास हो गया। अधार्मिक प्रतापमाणिक्य की दस सेनापतिओं ने हत्या कर दी

प्रतापमाणिक्य की हत्या करने के पश्चात् उनके ज्येष्ठ सहोदर धन्यमाणिक्य को सिंहासन पर बैठाने के लिये सेनापतिगण कृत संकल्प हुए। इस समय कुमार धन्य सेनापतियों के भय से विश्वस्त पुरोहित के घर में गुप्तभाव से
रह रहे थे। सेनापतियों ने उनका संधान पाकर –

परे दश सेनापति सैन्य सज्जा कोरि। पश्चात दसों सेनापति सैन्य सज्जा करके।
पुरोहित गृहे गेलो हस्ती अश्वे चडि।। पुरोहित के घर गये हस्ती घोड़ा चढ़ के।।
राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्य खण्ड 7पृ राजमाला द्विल प्रतापमाणिक्य खण्ड 7पृ

अर्थात ''बाद में सैन्य सज्जा करके हस्ती और अश्व पर चढ़ के पुरोहित के घर गए''।

दूसरी जगह हमें देखने को मिलता है –

नृपति देखिते चले दश सेनापति।। नृपति को देखने चले दसों सेनापति।।
पुरोहित लोइया गेलो अति शीघ्र गति। पुरोहित वहा ले चले अति शीघ्र गति।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ

अर्थात ''नृपति को देखने दसों सेनापति, पुरोहित को लेकर अतिशीध्र गति से चले।

छेंथुम फा के समय से धन्यमाणिक्य के राजत्व के प्रथम चरण तक सेनापति उपाधि का अस्तित्व पाया जाता है। महाराज धन्य ने दुर्दांत सेनापतियों का वध कर नये सैन्यदल गठन के समय सैन्याध्यक्षों का श्रेणी विभाग करके सरदार, हजारी और बड़ुआ उपाधि प्रदान की थी(1)। इस समय प्रधान सेनापतियों को 'नारायण' उपाधि प्रदान की थी। इन उपाधियों को मूल विवरण क्रमशः दिया जा रहा है।

सरदार

सरदार उपाधि यह साधारण सैन्यों के ठीक ऊपर का पद था। सरदारों की किस तरह की क्षमता थी एवं कितने सैन्यों के ऊपर एक एक सरदार के रहने की व्यवस्था थी, जानने का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं है। पार्वत्य सेनाओं के नायकगणों को सरदार उपाधि थी। संभवतः लठैत श्रेणी

---

(1) सरदार कोरिलेक अर्द्ध सैन्य दिया। सरदार बनाया अर्द्ध सेना देकर।
हाजारी कोरिया छिलो कोतो सैन्य लोइया।। हजारी बनाया कुछ सेना और लेकर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ

सरदार बनाया अर्द्धसैन्य देकर और हजारी बनाया कुछ सेनाओं को लेकर।

* * * *

श्रीधन्य माणिक्य राजा तदवधि सेना। श्रीधन्य माणिक्य की तब से हुई सेना।
बड़ुया पदवी ख्याति कोरिलो रचना।। बड़ुया पदवी ख्याति की, उन्होनें की रचना।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 12पृ

श्रीधन्य माणिक्य राजा ने तब से बड़ुआ पदवी की रचना की।

द्विल –198

के योद्धाओं के अधिनायको को सरदार उपाधि दी जाती थी। उन दिनों सैनिक विभाग में लठैत सेना रहने के प्रमाण राजमाला में मिलते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये माटी खनन का कार्य भी करते थे। त्रिपुर राज्य में सुबृहत दीर्धिका की अधिकता देखी जाती है। इसके अधिकांश सैनिक कर्मचारियों के द्वारा खनन किया गया था। लठैत श्रेणी के सैन्यगण युद्ध यात्रा के समय दूसरे अस्त्रों के साथ कुदाल साथ लेते थे। त्रिपुर वाहिनी के जयंतिया अभियान के समय देखा गया है –

द्वादश हाजार हाडी हाते कुदाल लोइया।	बारह हजार हाडी हाथ में कुदाल लेकर।
हाडीये डगर बाद्य चले बाजाईया।।	हाडी डगर वाद्य बजा कर चले।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 44पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 44पृ

अर्थात –बारह हजार हांड़ि सेना हाथ में कुदाल लेकर चली और अपनी छोठी से चमड़े के वादय् जिसे डगर कहते हैं –बजाती हुई चली।''

हाजारी

हाजारी उपाधि –यह सरदार के ऊपर के कर्मचारी की पदवी थी। एक हजार पदातिक के अधिनायक हजारी उपाधि प्राप्त करते थे। राजमाला में हाजरा उपाधि का भी उल्लेख है। हाजारी हजारी और हाजरा अभिन्न उपाधि ही समझी जाती है।

बड़ुआ

बड़ुआ उपाधि –यह हाजारी के ऊपर का पद है। ''बड़'' शब्द से बड़ुआ पद की सृष्टि हुई है। यह उपाधि अब भी किसी किसी पार्वत्य सम्प्रदाय में पाई जाती है। इस समय सैनिक विभाग के साथ इसका किसी तरह का सम्पर्क नहीं है।

नारायण

नारायण उपाधि –महाराज धन्यमाणिक्य ने रणदक्ष प्रधान सेनापति को नारायण उपाधि प्रदान करने की व्यवस्था की थी। राजमाला की आलोचना से ज्ञात होता है कि 'रसांग' (आराकान) विजयी सैन्याध्यक्ष को ''रसांगमर्दन'' और ''नारायण'' उपाधि से भूषित किया था। इस सेनानी का नाम जाना नहीं जा सका। इसके पहले और किसी सेनापति को नारायण उपाधि देने का कोई प्रमाण नहीं है। पूर्वोक्त व्यक्ति की नारायण उपाधि का निदर्शन राजमाला में मिलता हैं –

चाटिग्राम होते भंग दिलो गौड़ सेना।	चट्ट गांव से भी रण भंग किया गौड़ सेना ने।
रसांग मर्दन नारायणके बसाइलो थाना।।	रसांग मर्दन नारायण बैठाया उस थाना में।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 24पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 24पृ

अर्थात – चट्टग्राम से गौड़ सेनाओं ने रण भंग किया। रंसाग मर्दन नारायण को वहाँ थाना में (सेना निवास) बैठाया।

देवामाणिक्य के समय सेनापति की क्या उपाधि थी, राजमाला में इस विषय में उल्लेख न रहने पर भी उनके बाद इन्द्रमाणिक्य के शासन काल में ''नारायण'' उपाधि

द्विल –199

मिल रही है। इससे समझा जाता है कि देवमाणिक्य के समय भी यह उपाधि प्रचलित थी।

इन्द्रमाणिक्य के प्रसंग में लिखा है –

दैत्य नारायण नाम प्रधान सेनापति। दैत्य नारायण नाम के प्रधान सेनापति।
ब्राह्मण मारिते युक्ति करिलो संगति।। ब्राह्मण को मारने की सभी ने युक्ति की।।
राजमाला द्विल इन्द्रमाणिक्य खण्ड 37पृ राजमाला द्विल इन्द्रमाणिक्य खण्ड 37पृ

अर्थात "दैत्यनारायण नाम के प्रधान सेनापति थे। ब्राह्मण वध हेतु उन्होने युक्ति की।"

महाराज विजयमाणिक्य के राजत्व काल में भी यही दैत्यनारायण सेनापति थे। लिखा है–

दैत्य नारायण सेनापति अति पुण्यवान। दैत्यनारायण सेनापति, अति पुण्यवान थे।
जगन्नाथ स्थापे मठ करिया निर्म्मान।। मठ बनवा कर जगन्नाथ को स्थापित किया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ

अर्थात "दैत्यनारायण अति पुण्यवान सेनापति थे। उन्होने जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण किया।

दैत्यनारायण ने क्षमता के गर्व से उन्मत्त होकर राज्य में नाना तरह की अशांति की सृष्टि की एवं राजा के प्रति अवज्ञा प्रकाश करने पर महाराज विजय ने उनका वध कर गोपी प्रसाद नाम के सेनापति को नारायण उपाधि प्रदान की थी। यथा –

राजा बोले गोपीप्रसाद तोमार होइलो भाला। कहा राजा ने गोपी यह बात हुई अच्छी।
आजि होते तुमि आमार बेयाई होइला।। आज से तुम हो गए मेरे प्रिय संबंधी।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 62पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 62प

अर्थात "राजा ने कहा गोपी प्रसाद तुम्हारा तो अच्छा ही हुआ। आज से तुम हमारे समधी हुए।"

x x x x

x x x x

तार परे महल द्वारे राखिलो समुखे। इसके पश्चात महल द्वार के सामने मैंने रखवाया।
परे गोपीप्रसादनारायण(4) कोरिलाम तोके।। पश्चात् गोपीप्रसाद नारायण(4) करवाया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 63पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 63पृ

अर्थात "मैंने तुम्हें महल द्वार के सामने रखा। बाद में गोपीप्रसाद नारायण कर दिया।"

विजयमाणिक्य के पुत्र अनंतमाणिक्य के शासन काल में भी नारायण पदवी का प्रचलन था।

राजमाला में उल्लेख है –

ताहार भागिना बीर मर्दन नारायण। उसका भानजा वीर मर्दन नारायण।
ताहाके शिखाये मंत्री वधिते राजन।। उसे सिखाया मंत्री ने वध करने राजन।।
राजमाला द्विल अनंतमाणिक्य खण्ड 66पृ राजमाला द्विल अनंतमाणिक्य खण्ड 66पृ

अर्थात "उनका भांजा जिसका नाम वीरमर्दन नारायण था उस मंत्री ने (गोपीप्रसाद ने) सिखाया कि वह राजा का वध करे।)

उदयमाणिक्य के शासन काल में अनेक सेनापतियों की उपाधि नारायण थी। उनके राजत्व काल में गौड़ेश्वर ने त्रिपुरा आक्रमण के निमित्त विपुल वाहिनी प्रेरण करने पर महाराज उदय ने विपक्ष के विरूद्ध में –

रणागण नारायण पाठाइलो त्वरिते।। शीध्र भेजा रणागण नारायण।।
राज भगिनीपति रणागण नारायण। राजा भगिनीपति रणागण नारायण।
सेनापति करे ताके सैन्येर रक्षण।। सेनापति ने किया उसे सैन्य के रक्षण।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

अर्थात "रणागण नारायण को त्वरित गति से भेजा। राजा के भगिनी पति रणागण नारायण थे। अपने सेनाओं की रक्षा के लिये उसे सेनापति बनाया।"

इस युद्ध में नारायण उपाधि वाले जितने सेनापति रणागण के सहयात्री हुए थे राजमाला में उनका नाम मिलता है –

चन्द्रदर्प नाम चन्द्र सिंह नारायण। चन्द्रदर्प नाम चन्द्र सिंह नारायण।
उड़िया नारायण छिलो अरि भीम तखन।। उड़िया नारायण था अरिभीम उस क्षण।।

द्विल –200

आगुयान नारायण आर गज भीम।	आगुयान नारायण और गजभीम।
चलिलो ए सब सैन्य पराक्रमे सीम।।	चली ये सारी सेना पराक्रम में असीम।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

अर्थात ''चन्द्रदर्प का नाम चन्द्रसिंहनारायण था। उड़ियानारायण ओर अरिभीम सब साथ थे। आगुयाननारायण और गजभीम की सेना चली जो अति पराक्रमी थी।''

राजमाला के प्रथम और द्वितीय लहर में यहाँ तक विवरण प्राप्त हैं। परवर्ती लहरों में भी नारायण उपाधि का बहुत उल्लेख है। उसे यथा समय विस्तृत करेंगे।

'नारायण' उपाधि सेनापतियों के हाथों में राज्य का भार रहने से उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इनके बारें में बहुत से व्यक्तियों ने बहुत से मत प्रकाश किये है। अकबर के मंत्री अबुल फजल ने कहा है –

Bordering upon Bhatty is a very extensive country subject to the King of Tipperah. * * * him they style Yeyah Manik (Bijoy Manikya) and whoever are possessed of Rajship bear the title of Manik at the end of their names and all the nobility are called Narayan. Their Military force consists of a thousand elephants, two hundred thousands infantry, but they have few or no cavalry''.

Translation of Ayin-i-Akbori by Francis Gladwin P 298.

मर्म ''भाटी अंचल में त्रिपुरा राजा के अधीन एक विशाल राज्य है। विजय माणिक इसके राजा हैं। जो कोई भी राजा होता है तो उसके नाम के साथ ''मानिक'' उपाधि लग जाती है एवं सभ्रांत व्यक्तियों को ''नारायण'' उपाधि मिलती है। एक हजार हाथी, दो लाख पदातिक सेना उनके सामरिक बल में है। किन्तु अश्वारोही सेना विरल है।

'रियाज–उस्–सलातिन' ग्रंथ में भी नारायण का विवरण पाया जाता है। इसके अलावा और भी बहुत सी बातें कही गई है। राजमाला के अगली लहर उसकी आलोचना की जाएगी।

चतुर्दश देवता के पूजक नारायण – चतुर्दश देवता के पूजक श्रेणी के लोगों में प्रधान पूजक(चंताई) के अधस्तन व्यक्ति को भी नारायण उपाधि दी गई है। यह उपाधि किस कारण से एवं किस समय से पूजक के प्रति दी गई थी, यह निर्णय करना इस समय संभव नहीं है।

महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में सैनिक विभाग का पुनः संस्कार हुआ। इस समय भी प्रधान सेनापतिगणों में नारायण उपाधि रहने के प्रमाण मिलते हैं। इसके अलावा पठान सेना द्वारा अश्वारोही दल गठन एवं 'खाड़ाइत' उपाधि के नए सैनिक बल ग्रहण द्वारा महाराज विजय ने सैनिक विभाग को सुदृढ़ किया था। 'खाड़ाइत' के बारे में विवरण नीचे दिये जा रहे हैं।

खाड़ाइत या खाड़ातिया

खाड़ाइत उपाधि – महाराज विजयमाणिक्य ने खाड़ाइत सम्प्रदाय के नियुक्ति द्वारा त्रिपुरा के सैनिक विभाग को विशिष्ट रूप से दृढ़ किया था। राजपुरी की रक्षा करना इनका प्रधान कार्य होने पर भी आवश्यकता पड़ने पर समर क्षेत्र में भी अवतीर्ण होना भी इनके कर्तव्य में पड़ता था। विजयमाणिक्य के बंगाभियान के समय उनके साथ

द्विल –201

दो हजार खाड़ाइत रहने के प्रमाण मिलते हैं। राजमाला के खाड़ाइत जो संक्षिप्त विवरण मिलता है वह यह है –

खड्ग चर्म जाठि हाते देखि भयानक।।	खड्ग चर्म लौह दण्ड हाथों मे, भयानक दैहिक।
सातबार धन्य सागर फिरिते जे पारे।	सात बार धन्य सागर जो पार कर सके।
सेई जना तार नाम खाड़ाताइया धरे।	खाड़ाताइया वही होता था सही विदित संसार।।
दिवा रात्र थाके राज द्वारेते प्रहरी।	दिन –रात के थे वे राजद्वार के प्रहरी।
बड़ो बड़ो अंग तारार विक्रमे केशरी।	बड़े बड़े अंगों उनके और विक्रम में केशरी।
राजमाला द्विल विजयममाणिक्य खण्ड 58पृ	राजमाला द्विल विजयममाणिक्य खण्ड 58पृ

"खड़ग चर्म और दण्ड हाथ में वे बड़े भयानक लगते थे। धन्य सागर विशाल सरोवर को जो तैरकर सात बार आ जा सकता था उसे ही खाड़ातिया या खाड़ाताइया कहा जाता था। उन्हें दिन रात राजद्वार पर पहरा देना पड़ता था। उनके बड़े बड़े अंग थे और वे पराक्रम में सिंह के समान थे।"

धन्य सागर लम्बाई में एक हजार गज और चौड़ाई में दो सौ सत्तर गज हैं। सरोवर का सात बार प्रदक्षिण करना बलिष्ठ व्यक्ति का ही कार्य है, यह सहज ही अनुमान किया जात है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण न होने पर कोई भी खाड़ाइत पद का अधिकारी नहीं होता था। विशाल व विक्रमशाली व्यक्ति ही खाड़ाइत विभाग में अपनी जगह बना पाता था। राजमाला की वर्णना से यही ज्ञात होता है।

खाड़ाइत उपाधि का प्रचीनत्व खड़ग चर्मधारी योद्धा दल प्राचीन काल से ही खड़गधारी या खाड़ाइत के नाम से अभिहित हो रहे थे। यह महाराज विजयमाणिक्य का नव निर्माण नहीं है। पुराण ग्रंथ में भी इस सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है।

"सुरूपस्तुरूणः प्रांशुर्दृढ़ भक्तिः कुलोचितः।
शूरः क्लेशसहश्चेव खड्गधारी प्रकीर्त्तितः"।। मत्स्य पुराण 215 अध्याय 18 श्लोक

मर्म – "सुन्दर, सुदर्शन, तरूणवयस्क, दीर्घकाय, राज के प्रति दृढ़ अनुरक्त, सत्कुल सम्मुत, शूर और कष्ट सहिष्णु व्यक्ति को खड़गधारी पद पर नियुक्त करना चाहिए।

इससे यह समझा जाता है, खड़गधारी या खाड़ाइत पौराणिक युग के प्रवर्तित सम्प्रदाय हैं। बाद में अनेक स्थल पर सैनिक विभाग में इस श्रेणी में कर्मचारी नियुक्त किये गए थे। वेहार के इतिवृत 'राजावली' पुस्तक में पाया जाता है कि वहाँ के सैनिकों में 'खाड़ाधरा' नाम के एक श्रेणी के योद्धा थें यह खड़ग धारी का ही नामांतर मात्र है। मयनामती गीतों से हमें ज्ञात है, गोपीचाँद अपनी माँ के यहाँ कहते है।

"आर विभा कराइला खाण्डाये जिनिया।
आर विभा कराइला उरूया राजार माईया।।" भवानी दास के मयनामती का गान

(और विवाह कराया खड़ग धारी सेनाओं की सहायता से जीतकर उरूया राजा की लड़की से।)

खाण्डा शब्द का अर्थ खाड़ा अर्थात कृपान अथवा खड़ग। उड़िष्या प्रदेश में एक श्रेणी के योद्धाओं को खण्डाइत उपाधि भी है। "खाण्डाए जिनिया" वाक्य द्वारा समझा जाता है, राजा माणिकचन्द्र के यहां खण्डाइत सेना थी। खण्डाइत और खाड़ाइत अभिन्न वाक्य है। उड़िस्या वासी किसी राजा को लक्ष्य कर उद्धृत कविता में "उरूया राजा" शब्द व्यवहृत हुआ होगा। श्रद्धास्पद

द्विल –202

अध्यापक श्रीयुत नलिनी कान्त भट्टशाली महाशय ने यह कहा है ''उरुआ राजा'' शब्द राजेन्द्र चोल के प्रति कहा गया है। इस वाक्य के प्रति दृढ़ रूप से निर्भर भी करने का उपाय नहीं है और इधर उपेक्षा करने के योग्य प्रमाण नहीं हैं।

उड़िष्या प्रदेश में एक समय खण्डाइत सम्प्रदाय का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। यह सम्प्रदायनाना जातीय लोगों के समवाय से गठित होने पर भी प्राधान्य हेतु में त्रिपुरा के ''काठिछोंआ'' सम्प्रदाय की तरह एक स्वतंत्र जाति में परिणत हो गये हैं। उक्त प्रदेश में खड़गधारी सैन्यदल ने खण्डाइत नाम से ख्याति प्राप्त किया था। ये अपने को क्षत्रिय कहकर परिचय देते हैं। छोटे नागपुर में भी इस जाति का अस्तित्व मिलता है। वे कहते हैं कि इनके पूर्वज उड़िष्या से आये थे।

खण्डाइतों की उपाधि से इन्हें योद्धापुरूष ही समझा जाता है। उड़िष्या के खण्डाइतों में उत्तर कबाट, दक्षिण कबाट, गड़ नायेक, सिंह, दौबारिक, नायेक, बाघा, बाहुबलेन्द्र, महारथी, मल्ल, रणसिंह, सामन्त, सेनापति आदि उपाधियाँ मिलती है। ये प्रधानत बड़ घरी और छोट घरी इन दो श्रेणियों में विभक्त हैं। प्रत्येक विभाग के पुनः बहुत से उपविभाग हैं। यहाँ उसकी आलोचना निष्प्रयोजन हैं। इनमें साम्प्रदायिक उच्च–नीचता है। किसी किसी सम्प्रदाय का अन्न दूसरा सम्प्रदाय ग्रहण नहीं करता। किन्तु ब्राह्मण लोग सभी सम्प्रदायों का जल ग्रहण करते हैं। इस सम्प्रदाय के अधिकांश लोग वैष्णव धर्मावलम्बी हैं। ये इस समय युद्ध व्यवसायी न होने पर भी तलवार के प्रति उपास्य देवता की तरह सम्मान प्रदर्शन करते हैं। इसे अतीत शौर्य का लुप्तप्राय चिन्ह ही समझना चाहिए।

नाजिर

नाजिर उपाधि नाजिर –यह उपाधि महाराज विजयमाणिक्य के शासन में प्रथम प्रवर्तित हुआ था। यह उपाधिधारी काला नाजिर का नाम सबसे पहले आता है कि –

त्रिपुर राजार थाना श्रीहट्टे बोसाइलो।	त्रिपुर राजा का थाना, श्रीहट्ट में बैठा।
काला नाजिर त्रिपुर थानाते रहिल	काला नाजिर त्रिपुर थाना में रहा।।
राजमाला द्विल विजयममाणिक्य खण्ड 45पृ	राजमाला द्विल विजयममाणिक्य खण्ड 45पृ

अर्थात ''त्रिपुरा राजा का एक थाना (सैनिक निवास) श्रीहट्ट में स्थापित हुआ था। काला नाजिर त्रिपुरा के थाना में रखे गये।

पार्वत्य सिपाहियों द्वारा संस्थापित गारद एवं पार्वत्यवासी सैनिकों के परिचालन का दायित्व जिनके हाथों सौपा गया था वे नाजिर उपाधि प्राप्त होते थे। यह पहले ही कहा जा चुका हैं। राजा के घनिष्ठ सम्पर्क वाले लोग ही इस पद के अधिकारी थे।

द्विल –203

सती दाह

त्रिपुरा में सती दाह का प्रचलन त्रिपुरा राज्य में स्मरणातीत काल से सतीदाह प्रथा प्रवर्तित होकर सुदीर्घ समय तक चली थी। राजमाला के द्वितीय लहर में हम देखते हैं –महाराज धन्यमाणिक्य की पट्टमहिषी महारानी कमला देवी ने पति के साथ चिता रोहण किया था(1)। देवमाणिक्य की महिषी एवं विजयमाणिक्य की महिषियां भी पति की सहगामिनी हुई थी(2)। अनंतमाणिक्य की महिषी महारानी जयावती सहमरण के लिये कृतसंकल्प हुई थी –उसके पिता सेनापति गोपीप्रसाद (बाद में उदयमाणिक्य) के बाधा प्रदान से उसका संकल्प पूर्ण नहीं हुआ(3)। राजमाला के आगे के लहरों में इनका विशद निदर्शन मिलेगा।

सती दाह प्रथा का प्राचीनत्व अतीत की और दृष्टिपात करने पर जाना जायेगा कि वैदिक काल से ही भारत में सती दाह प्रथा चली आ रही थी(4)। कोई कोई पुनः सायण भाष्य के प्रति दोषारोप करके वैदिक वाक्य की दूसरी तरह की व्याख्या करते हैं। यहाँ पर उसकी आलोचना करना संभव नहीं है।

वैदिक काल के बाद बृहस्पति, अंगिरा, विष्णु, व्यास और हारीत पृभति पुराण और संहिताकार महर्षिगणों ने सती दाह का समर्थन किया है। महाभारत में इस विषय के प्रमाण मिलते हैं –

''भर्त्रानुमरणं काले याः कुर्व्वन्ति तथाविधाः।
कामात् क्रोधात् भयान्मोहात् सर्व्वाः पूता भवन्ति ताः।।

मर्म ''कामना, क्रोध, भय किवां मोह, जिस कारण से भी हो, जो सभी रमणियाँ मृत पति की सह गामिनी होंगी, वे सभी पवित्र होंगी''।

शास्त्रों के वाक्य, पथ प्रदर्शक मात्र है। भारत का साध्वी रमणी समाज पतिप्राणा हैं –पति को छोड़ उनके जीवन का और कोई मान्य नहीं है। अतएव ज्वलंत चिता में पति के साथ शयन करके आत्माहुति दान करना उनके लिये अस्वाभाविक नहीं है। बल्कि पति की सहगामिनी होना धर्म पत्नी का अवश्य कर्तव्य है, ऐसा रमणियों का दृढ़ विश्वास था। महाभारत में है, पांडुराजा की पत्नी कुंती ने पति के अंत्येष्टि क्रिया के समय सपत्नी माद्रि से कहा था –

''अहं ज्येष्ठा धर्म्मपत्नी ज्येष्ठं धर्म्मफलं मम।
अवश्यम्भाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्त्तय।।

---

(1) धन्यमाणिक्य खण्ड 33 पृ
(2) देवमाणिक्य खण्ड 38 पृ
(3) विजयमाणिक्य खण्ड 64 पृ और अनन्तमाणिक्य खण्ड 67 पृ
(4) इयं नारी प्रतिलोकं वृणानं निपद्यत उपत्वा मर्त्यप्रेतं।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणंचेह धेहि।'' – 13
– तैत्तिरीय आरण्यक 6/1/13/

द्विल –**204**

अन्वाष्यामीह भर्त्तारमहं प्रेतवशं गतम्।
उत्तिष्ठ त्वं विसृज्यैनमिमान् पालय दारकाम्।।''

मर्म –''माद्रि, मैं पति की ज्येष्ठा धर्मपत्नी हूँ। धर्मफल प्राप्ति का मैं ही प्रधान अधिकारिणी हूँ। तुम मुझे अवश्यंभावी विषय में प्रतिनिवृत न करना। मैं ही मृतपति का अनुगमन करूँगी। तुम पति का मृतदेह परित्याग कर उठो एवं संतानों की रक्षा करो।''

किंतु माद्रि के आग्रह की प्रबलता की वजह से, कुंती अपना संकल्प त्याग करने पर विवश हो गई थी। माद्रि ने ही पति के मृत देह को लेकर चितारोहण किया था। महाभारत में सहमरण के और भी बहुत से निदर्शन भरे पड़े हैं।

सती दाह के बारे में शास्त्रीय मत सती के लक्षण के बारे में शास्त्र में जो वर्णन है उससे सती दाह के समर्थन के प्रमाण मिलते हैं। उनके एक वाक्य यह है –

''आर्त्तार्त्ते मुदिता ह्रष्टे प्रोषिते मलिना कृशा।
मृते मृयते या पत्यौ साध्वीज्ञेया पतिब्रता।।'' कल्पतरू

मर्म ''जो स्त्री पति की व्यथा से व्यथित, पति के हर्ष में खुश, पति के विदेश गमन से मलिन और कृश एवं पति वियोग में मृत्यु को प्राप्त होती हैं वे ही सती है।''

अवस्था के चलते सहमरण को निषिद्ध कहकर भी शास्त्र में घोषित हुआ है। उनके एक वचन नीचे दिये जा रहे हैं

''बालापत्यान्धगर्म्भिण्यो ह्रदृष्ट ऋतवस्तथा।
रजस्वला राजसुते नारोहन्ति चितां शुभे।।''

मर्म ''गर्भवती, शिशु संतान की जननी और रजस्वला रमणी चितारोहण नहीं करेगी। शुद्धितत्व एवं वृहन्नारदीय पुराण में भी इस विषय में आलोचना की गई हैं –

''बालापत्याश्च गर्म्भिण्यो ह्रदृष्ट ऋतुवस्तथा।
रजस्वला राजसुते नारोहन्ति चितां शुभे।।'' बृहन्नारदीय पुराण

मर्म ''बालक को पालने वाली, गर्भिणी, रजस्वला, अदृष्टा ऋत (जो अब तक रजस्वला नहीं हुई हो) रमणी के लिये सहमरण निषिद्ध है।

मृतदेह को बासी करके रखना शास्त्र विरूद्ध कार्य है। किन्तु विशेष अवस्था पर एक रात रखने की व्यवस्था है –

''तृतीयेऽन्हि उदक्याया मृते भर्त्तरि वै द्विजाः।
तस्यानुमरणार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम्।। भविष्य पुराण

जो ॠतुमती होने के तीसरे दिन स्वामी की मृत्यु होने पर वह नारी पति के साथ अनुगमन करने के लिये एक रात मृतदेह की रक्षा कर सकेगी।

द्विल –205

सहमरण में असमर्थ नारी के पक्ष में अनुमृता होने की व्यवस्था है। किसी किसी शास्त्र ग्रंथ में सहमरण और अनुमरण को एकार्थ ज्ञापक कहा गया है पर फिर भी उन दोनों का प्रभेद भी शास्त्र वाक्य द्वारा ही जाना जा सकता है। ब्रह्म पुराण के अनुसार –

देशांतरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम्।।

मर्म "देशांतर में पति की मृत्यु होने पर साध्वी स्त्री उनके दोनों पादुकाओं को वक्ष पर धारण कर शुद्ध होकर आग में प्रवेश करे।

सहमरण समर्थक को इस तरह के शास्त्रीय वचन संग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस बार सहमरण की पद्धति के बारे में दो एक बातें कहूँगा।

सहमरण विधि मृत पति के संस्कार के लिये चिता तैयार हो जाने पर सहमरण का संकल्प करने वाली स्त्री स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन कर कुश हाथों में लेकर पूर्व की ओर मुँह करके बैठे और मास, पक्ष, तिथि अपना गोत्र और नाम उच्चारण पूर्वक संकल्प मंत्र पाठ करे। इसके पश्चात् लोकपालगण, आदित्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, अंतर्यामी पुरूष, यम, दिवा, रात्रि, संध्या और धर्म को साक्षी करके तीन बार अथवा सात बार चिता को प्रदक्षिण करके उस पर आरोहण करें। उस समय ब्राह्मणगण निम्न मंत्र का पाठ करें –

"ऊँ इमा नारीरविधवाः सपत्नी रांजनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्ने।।"
"ऊँ इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो याः सुशोभनाः।
सह भर्त्तृशरीरेण संविशन्तु विभावसुम्।।" ब्रह्मपुराण

शुद्धि तत्वादि शास्त्रीय ग्रंथों में सहमरण से संबन्धी अनेक विषय मिलेंगे। यहाँ पर सम्यक आलोचना असंभव है।

मृत पति की सहगामिनी होना ही स्त्री के लिये प्रशस्त कर्तव्य कह कर संहिता और पुराणों में एक वाक्य से स्मरण किया गया है। जो स्त्री पति को सहगामिनी नहीं होगी उसके लिये ब्रह्मचर्य अवलम्बन उचित है। ब्रह्मचारिणी स्मरण, कीर्तन केलि आदि अष्टांग–मैथुन और ताम्बुल वर्जन करेंगी एवं दिन में एक बार मात्र आहार करेंगी और मिट्टी पर शयन करेंगी। पुत्र या पौत्र के न रहने पर प्रतिदिन तिल और कुशोदक द्वारा मृत व्यक्ति का तर्पण करेंगी।

यह सहमरण का अनुकुल मत था। इस प्रथा के विरूद्ध मत भी शास्त्रों में पाये जाते हैं। दोनों मतों के विचार करने पर अनुकूल मत का ही श्रेष्ठत्व प्रतिपादित होगा –ऐसा लगता है। किन्तु परवर्ती काल में हमारा समाज वह श्रेष्ठ भाव रक्षा करने में समर्थ नहीं हुआ।

द्विल –206

सती की आंतरिक दृढ़ता सतियां किस तरह मनसा वाचा कर्मणा से पति परायणा थी एवं पति के मृत्यु के साथ साथ अपने जीवन को कितना व्यर्थ समझती थी, यहाँ पर उसका एक उदाहरण हम दे रहे हैं। यह घटना एक अंग्रेज राज पुरूष ने स्वयं देखा था।

बंगाल के भूतपूर्व लेफ्टिनेन्ट गर्वनर सर ह्यलिडे हुगली जिला के मजिस्ट्रेट पद पर नियुक्त रहने के समय एक सतीदाह को उन्होने देखा था। उन्होने कहा है –उनके घर से कुछ मील की दूरी पर गंगा किनारे सतीदाह का आयोजन चल रहा है, सुनकर डाक्टर वाइज और चापलेन को लेकर मैं वहाँ उपस्थित हुआ। हम लोग सहमरण के लिये तैयार सती के यहाँ जाकर आत्महत्या से विरत रहने के लिये बहुत सी युक्तियों को अपनाया। सती मनोयोग के साथ सारी बातें सुन रही थी। किन्तु इससे कोई फल नहीं हुआ। कुछ समय के पश्चात् सती ने चिता रोहण के लिये व्याकुल होकर सब की अनुमति प्रार्थना की। उसकी अवस्था देखकर मजिस्ट्रेट को भी अनुमति देनी पड़ी। किन्तु धर्मयाजक पादरी साहब इससे संतुष्ट नहीं हुए। श्मशान शय्या में किसी की भावनाएं होंगी, इसे समझाने के लिये उन्होने हर संभव प्रयास किया। सती ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं देकर एक प्रदीप लाने के लिये कहा। उसे अपने हाथों से जलाकर उसके ऊपर अपनी एक उँगली रख दी। उन्होने तीव्र दृष्टि से पादरी की ओर देखकर जैसे अपनी मौन भाषा में कह रही थी ''तुम लोग जिस यातना की बात कह रहे हो वह कुछ भी नहीं है।'' उनके प्रदीप में रखी गई उँगली में फफोले उभरे और जल कर काले पड़ गए। अंत में उँगली जलते जलते काली और टेढ़ी हो गई। इस समय एक क्षण के लिए भी हाथ नहीं उठाया एवं उनकी बातों में या शरीर में किसी तरह की यातना किवां अनुभूति के लक्षण दिखाई नहीं दिये। तब सती ने पूछा, ''आप लोगों को प्रबोधना मिली?'' तो, तब मजिस्ट्रेट ने कहा, ''यथेष्ट प्रबोध मिला है।'' सती ने कहा, ''अब मैं चिता में प्रवेश कर रही हूँ।'' मजिस्ट्रेट ने भी सिर हिलाकर अुनमति दी। तब सती ने चिता पर स्वामी के साथ शयन किया।'' उपस्थित अंग्रेंजों ने सती को बलिष्ठता का दर्शन किया। उनकी आत्माहुति का दर्शन कर विस्मित और चमत्कृत हुए थे।

यह विवरण बक्लाण्ड साहब की लिखित **Bengal under Lieutenant Governors** नामक ग्रंथ में दिया गया है और विश्वकोष सम्पादक द्वारा गृहीत हुआ है।

इस तरह के दृष्टांत के अभाव नहीं है। त्रिपुरा राज्य में इसके बहुत से उदाहरण मिलेंगे। दृष्टांत को लेकर ज्यादा बढ़ चढ़ कर बातें करने की इच्छा नहीं है, इसलिये यहीं पर उसे छोड़ देना ही उचित है।

भारत वर्ष में सहमरण प्रथा की विस्तृति सहमरण प्रथा भारत के प्रायः हर जगह प्रचलित थी। उन दिनों पहले कहे गये दृष्टांत प्राय हर घर में दिखाई देते थे। मुसलमानों के प्रभाव बढ़ने के समय युद्ध में निहत वीर पुरूषों की महिलाओं के विपक्ष के हाथों लांछित होने की आशंका से उन्होने जहर व्रत का अवलम्बन किया था। वे पति के ज्वलंत चिता में अथवा

द्विल –207

अग्निकुंड में अम्लान चित्त से दलबद्ध होकर आत्मदाह करती थी। बहुत से स्थलों पर सती के श्मशान क्षेत्र में खड़े कीर्ति स्तंभ अतीत के सतीत्व की गौरव घोषणा करते हैं।

भारत के बाहर समहरण प्रथा सहमरण प्रथा केवल भारत में ही थी, ऐसी बात नहीं है। शाकद्वीप, जबद्वीप, लम्बक द्वीप, चीन, थ्रेश, ग्रीस, रोम और उत्तर यूरोप आदि अनेक देशों में यह प्रथा प्रचलित थी। किसी किसी देश में यह प्रथा अब भी चालू है, पर उन देशों की प्रथा कुछ भिन्न तरह की है। अधिकांश स्थानों पर स्त्री को किसी न किसी तरह से वध करके पति के साथ समाहित कर दिया जाता था। किसी किसी देश में राजा की मृत देह के साथ बहुसंख्यक दास दासी और राजा के प्रिय व्यक्तियों को भी सहगामी किया जाता था। कुकियों के मृत राजा के साथ जितने अधिक मस्तक दिये जाते थे उतना ही उनके गौरव की वृद्धि मानी जाती थी। इसके लिये उनके करीब के सैकड़ों आसाम के रहने वाले लोगों और बंगालियों के शिरच्छेद होने के बहुत से प्रमाण मिलेंगे। किन्तु भारतीय हिन्दुओं की तरह जीवंत देह दग्ध करने की प्रथा अन्य देश या जाति में नहीं है। इस प्रथा के अनुकूल और प्रतिकूल में विदेशी बहुत से भ्रमणकारी और पंडितों ने अनेक ग्रंथों व प्रबन्ध की रचना की है और बहुत से लेख लिखें हैं। इनमें प्राफेसर एच एच विलसन, ग्रीक पंडित प्रपारटीयस, सिसिरो, यूरोपीय पंडित वयशेश, ऐतिहासिक हेरोदोडस, सर ह्यलिडे, बकलैंड, भ्रमणकारी एलफिलस्टोन, आबिदुबई, मार्कोपालो, ओडरिक, ग्यासपारो, जे पी भिनसेजो आदि का नाम उल्लेखनीय है।

ब्रह्मचर्य व्रत पति के साथ सहमरण होना पत्नी का अवश्य कर्तव्य है, सभी शास्त्रों का यही अभिप्राय है, इस तरह की बात नहीं है। यदि ऐसा ही होता तो प्रतिकूल मत शास्त्र ग्रंथो में नहीं दिया जाता। जो स्त्री स्वेच्छा से आत्मदाह करेगी उसी के लिये सहमरण की व्यवस्था है। जो नारी सहमरण के लिये अनिच्छुक है, वह ब्रह्मचर्य व्रत अवलम्बन करके जीवन –यापन करेगी। प्राचीन काल में पतिप्राणा महिलाओं में पति के सहगमन में विमुख स्त्री की संख्या अधिक थी, ऐसा नहीं लगता।

सहमरण प्रथा का व्यभिचार समाज की परिस्थिति के परिवर्तन के साथ साथ क्रमशः मानसिक भाव एवं विश्वास भी भिन्न हो गया था। उसके साथ ही सहमरण में भी भावांतर दिखाई दिया। अनेक स्थलों पर लोकरंजना के भय से, किवां समाज गौरव प्राप्ति की आकांक्षा से अनेक स्त्रियों की अनिच्छा से उन्हें जोर जबरदस्ती से पति के शव के साथ जला दिया जाता था। इसके अलावा सम्पति के लोभ से, सम्पति के अंश को हड़प लेने के अभिप्राय से, स्वार्थान्ध कुटुम्बी, विधवा को पति के शव के साथ बांध कर श्मशान में लकड़ी के नीचे दबाकर जला डालते थे। इस समय विधवाओं के प्रति अत्याचार की मात्रा अधिक बढ़ गई थी। यह मुसलमान राजत्व काल की घटना है।

द्विल –208

भारत सम्राट महामति अकबर इस प्रथा के विरोधी थे। योधपुर (जोधपुर) राज परिवार के एक सहमरण की खबर पाकर वे उसके निवारण के लिये अश्वारोहण से एक सौ मील की दूरी पर घटना स्थल पर उपस्थित हो सके थे। वे कहते थे कि जो सती स्वेच्छा से पति के साथ सहगामिनी होंगी, उन्हें निषेध नहीं करना होगा। किन्तु इस विषय में किसी पर जोर जबरदस्ती नहीं की जा सकती, यह अन्याय है। सम्राट के इस तरह के अभिमत के बावजूद भी मुसलमान शासन काल में सतीदाह प्रथा अवैध रूप से चल रही थी। उन दिनों बल प्रयोग नहीं हुआ था ऐसी बात नहीं है।

अंग्रेज शासन काल में सतीदाह प्रथा अंग्रेजों के शासन काल में भी सती प्रथा दीर्घ दिनों तक चलती रही। पहले पहल जोन्स साहब ने इस प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई। इस अपराध से उन्हें भारत छोड़ना पड़ा था। इसके बाद सन 1805 ई में सतीदाह बंद करने के लिये पुनः चेष्टा हुई, किन्तु हिन्दुओं के तुल आन्दोलन के फलस्वरूप उस बार भी गवर्नमेन्ट को चुप रहना पड़ा।

सहमरण प्रथा और लार्ड उइलियम (विलियम) बेन्टिन्क इसके बाद राजा राम मोहन राय सतीदाह प्रथा के निवारण के लिये कटिबद्ध हुए। उन्होने 1817 और 1819 ई सन में सहमरण के विरूद्ध दो किताबें लिख प्रचार करके अकृतकार्य होने के बाद 1827 ई सन में और एक ग्रंथ का प्रणयन किया। इस समय लार्ड उइलियम(विलियम) बेन्टिन्क भारत के राज प्रतिनिधि थे। उन्होने राम मोहन राय, द्वारका नाथ ठाकुर और अन्नदा प्रसाद बन्द्योपाध्याय आदि देश के संभ्रात व्यक्तियों की पृष्ठ पोषक पाकर इस प्रथा के विवरण के लिये कृत संकल्प हुए एवं सन 1829 ई के चौथे दिसम्बर के दिन कानून (**Regulation XVII of 1829**) द्वारा सतीदाह प्रथा को बंद कर दिया था।

इसके पश्चात् भी सतीदाह प्रथा को सम्पूर्ण रूप से बंद करने में कुछ विलम्ब हुआ था। बहुत सी जगहों पर गवर्नमेन्ट के आदेश की अवज्ञा कर सतीदाह चल रहा था। इसके लिये बहुत से अभियुक्तों को दण्ड प्राप्त भी हुए थे। लोगों की बाधा न मानकर अथवा उनकी नजरों से बचकर साध्वी –स्त्री का अकस्मात पति की चिता में कूदने के दृष्टांत भी बहुत से हैं। पतिप्राणा का हृदय कानून के अधीन नहीं है और उनके संकल्प में बाधा प्रदान करना कानून के सीमा से परे है। वर्तमान काल में प्रज्वलित श्मशान में आत्मदाह करने की सहूलियत न होने पर भी बहुत सी साध्वी स्त्रियाँ नाना तरह और तरीके से पति की अनुगामिनी हुई है और हो रही है। पर पहले की अपेक्षा इस समय इनकी संख्या गिनने लायक नहीं है।

सहमरण प्रथा और त्रिपुरा राज्य ब्रिटिश भारत के अंतर्गत देशी राज्यों में वह कानून कार्यान्वित हुआ था। किन्तु इस कानून के प्रचार के पश्चात् भी क्रमशः साठ सालों तक त्रिपुर राज्य में सतीदाह प्रथा बिना किसी बाधा के चलती रही। 1888 ई सन में इस ओर ब्रिटिश गवर्णमेंट की दृष्टि गई। इस समय चट्टग्राम के

द्विल –209

कमिश्नर लायेल साहब (**Mr D R Lyall**) ने बंगाल गवर्णमेन्ट के अनुरोध पर त्रिपुरा के पालिटिकल एजेन्ट को इस विषय को लेकर एक पत्र लिखा और इस बारे में उस समय के असिस्टैन्ट पालिटिकल एजेन्ट स्व. राय उमाकांत दास बहादूर ने 11 जून 1888 ई सन को त्रिपुर राज्य पर एक पत्र लिखा था –यही सतीदाह निवारण हेतु गवर्णमेन्ट की ओर से प्रथम पत्र था।(1) उस पत्र के द्वितीय पर्याय में लिखा गया था

–2. During my recent movements in the Sonamura Division in March last, I heard of three cases of the kind having occurred amongst Jamatyas in the course of the last two or three years. These cases are noted in the margin(2). If any more have taken place within the last 4 or 5 years anywhere in the State, this office may be supplied with a list of them.

मर्म –"गत मार्च महीने में जब मैं सोनामुड़ा अंचल में गया था तो सुनने में आया कि जमातिया सम्प्रदाय में 2/3 वर्ष पहले इस तरह की तीन (सतीदाह) घटनायें घटी थी। साथ में उसे उल्लेख किया गया। यदि 4 –5 सालों में इस राज्य में इस तरह की घटना हुई थी तो उसकी एक सूची इस आफिस को भेजना आवश्यक है।"

इसके पश्चात् गवर्णमेंट की ओर से सतीदाह निवारण के लिये बार बार पूछने पर भी त्रिपुर दरबार में इस बारे में शेष जवाब न देने पर कमिकश्नर साहब ने पुनः पालिटिकल एजेन्ट को और एक पत्र लिखा। 1888 ई सन के तीसरे सितम्बर की तारीख को महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादूर दरबार से इस विषय में जो जवाब दिया गया था, उसका मूल मर्म यहाँ दिया जा रहा है –

"सतीदाह इस राज्य की बहु प्राचीन काल की प्रचलित प्रथा है एवं प्रजा साधारण इस प्रथा को अति पवित्र कहकर जानते हैं। जिन सभी पार्वत्य जातियों में यह प्रथा प्रचलित है, वे अब भी अशिक्षित हैं, अतएव राजदरबार से इस प्रथा के प्रतिकूल हस्तक्षेप होने पर राज्य में असंतोष का भाव एवं इसके फलस्वरूप अशांति उपस्थित हो सकती है। खास तौर से विगत दस सालों से यह प्रथा स्वतः ही दिनोंदिन कम होती जा रही है। यहाँ पर विशेष उल्लेख योग्य यह है

....

(1) **Letter No 276. From Babu Umakanta Das, Assistant Political Agent of Hill Tippera, To Babu Banga Charan Bhattacherjee, B.A. Officer-Incharge of His Highness the Maharaja's English Office Dated Agartala the 11th June 1888.**

(2) **(i) Wife of Charan Senapati of Burma Cherra about three years ago.**

(ii) Wife of Ganga Mohan Senapati, named Beni Lakshmi of Falilong Cherra in about Baisak before last.

(iii) Wife of Milaram Burma of Hantarai Choudhury's para on Tuiruppa Cherra, in about Magh last.

द्विल –210

कि ब्रिटिश राज्य में जिस तरह उत्पीड़ित या षड्यन्त्र द्वारा सती को दग्ध किया जाता था इस राज्य में वैसा नहीं होता है। सती स्वेच्छा से स्वामी का अनुगमन करती है।

"इन सभी विषयों की पर्यालोचना करके दरबार इस विषय में किसी तरह की निषेधाज्ञा को प्रचार की आवश्यकता नहीं समझता। किन्तु किसी तरह जैसे किसी पर उत्पीड़न या षड्यन्त्र द्वारा सतीदाह नहीं करे और क्रमशः अपने आप यह प्रथा उठ जाये, दरबार उस और ध्यान रखेगा।"

सहमरण प्रथा सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार का पत्र

इसके उत्तर में पालिटिकल एजेन्ट के यहाँ चट्टग्राम के कमिश्नर ने जो पत्र लिखा था उसे नीचे उद्धृत किया गया है –

From

D. R. Lyall Esquire,
Commissioner of the Chittagong

To

The Political Agent,
Hill Tippera

No $\frac{687}{1X\text{-}21}$ H.T.

Dated, Chittagong, the 2nd Oct 1888.

Sir,

I have the honour to acknowledge the receipt of your No.$\frac{1993}{XVI\text{-}27}$ dated 3rd September forwarding reply of the Hill Tipperah Durbar on the subject of Sati.

2. The reply is excessively unsatisfactory and not what I should have expected from a ruler so enlightened as the Maharaja, nor can I admit that the facts are correctly stated.

The custom of Sati is certainly not indegenous, and is, to the best of my belief, practised by none of the Hill Tribes except as an innovation. It is only the Hindooized portion of the Hill men who practise the custom, and they are not a class likely to become disaffected nor would their disaffection be of the faintest consequence.

3. The practice has clearly declined because it was believed to be forbidden, the Koylasher case which took place in February last proves this -and if it is now publicly admitted by the Maharaja that it is forbidden, the custom will very soon revive as it is quite clear that what is not forbidden is allowed, or in other words, tacitly encouraged.

4. I request that you will place the matter again before the Maharaja strongly advising him to pass a law to the same effect as Regulation XVII of 1829 and to see that it is enforced.

5. I cannot too strongly impress on the Maharaja the fact that his present action amounts to a direct encouragement of an act which has for nearly 60 years been declared illegal in India and which the whole civilized world unites in holding to be absolute barbarism.

द्विल –211

I should be very unwilling to have to lay this question at length before the Government and trust that the Maharaja will take such action as will not necessitate my pushing the matter further.

I have etc.
(Sd) D. R. Lyall,
Commissioner

Memo No. $\frac{2289}{XVI-27}$ Dated Comillah, the 22nd Oct, 1888.

Copy forwarded to the Political Agent.

Agent of Hill Tipperah with reference to his No. 3/c dated 28th August/88. He is requested to place the matter again before the Maharaja and report after 3 months that a law for suppressing the custom of Sati has been passed and is enforced in Hill Tipperah.

(Sd) Gouri Sankar Biswas,
for Pl Agent

अनुवाद

नं $\frac{687}{IX-21}$ चट्टग्राम, 2रा अक्टूबर 1888

"महाशय,

सतीदाह के बारे में पार्वत्य त्रिपुरा के राजदरबार का प्रत्युत्तर सम्बलित आपके तीसरे सितम्बर तारीख $\frac{1993}{XVI-27}$ नं पत्र मिला।

राज–दरबार का लिखित उत्तर संतोषप्रद नहीं है। महाराज की तरह सुशिक्षित व्यक्ति के यहाँ से मैं इस तरह का उत्तर पाऊँगा, ऐसा मैंने प्रत्याशा नहीं की थी। उस पत्र में जो लिखा गया है उसे सही कहकर भी स्वीकार नहीं कर सकता।

सतीदाह प्रथा पार्वत्य त्रिपुरा की आदिम प्रथा नहीं है। मेरा विश्वास है कि पार्वत्य जातियों में यह प्रथा नई चालू की गई है। जो पार्वत्य जातियाँ हिन्दु धर्मोचित आचार का अवलम्बन करती है वे सतीदाह प्रथा का अनुसरण करती है। ये सभी लोग असंतोष प्रकाश करने वाले आदमी नहीं है एवं इनकी असंतुष्टि आशंकाजनक भी नहीं है।

यह प्रथा निषिद्ध होने पर ही आजकल कम होती जा रही है। कैलासहर में गत फरवरी महीने की घटना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि महाराज का इस तरह कोई अभिप्राय व्यक्त हो कि इस विषय में किसी तरह की राजकीय निषेधाज्ञा नहीं है तो यह प्रथा पुनः प्रबल होगी। क्योंकि यह सहज ही उपलब्ध होता है कि जो निषिद्ध नहीं है, वह अनुमोदित है, अतएव इससे इस प्रथा को उत्साह प्रदान किया जायेगा।

मैं अनुरोध कर रहा हूँ आप इस विषय में पुनः महाराज के यहाँ उपस्थित होंगे जिससे 1829 ई सन के 17 नम्बर रेगुलेशन की तरह यह आइन(कानून) जारी हो और उसके अनुसार कार्य हो –इस विषय में विशेष रूप से परामर्श दिया जाएगा। मैं विशेष रूप से महाराज के नजरों में लाना चाहता हूँ कि जो प्रथा आज से साठ (60) साल

द्विल –212

से आइन(कानून) विरूद्ध भारत में प्रचार की गई है एवं जिसे सभी सुसभ्य जातियाँ असभ्य व्यवहार के रूप में करार देकर सोचती हैं, महाराज की वर्तमान कार्य पद्धति द्वारा इस प्रथा का उत्साहवर्द्धन किया जा रहा है।

विषय को विस्तृत रूप से गवर्णमेन्ट के दरबार उपस्थित करना हमारा अभिप्रेत नहीं है। भरोसा करता हूँ महाराज इस तरह का बन्दोबस्त करेंगे जिससे मुझे इस विषय में अधिक कुछ करना न पड़े।''

(साक्षर) डि आर लायेल
कमिश्नर

नं 2289
XVI-27

कुमिल्ला 22 अक्टूबर

पालिटिकल एजेन्ट का 28 अगस्त तारीख का 3/C नं पत्र के प्रत्युत्तर की प्रतिलिपि उनके यहाँ भेज दी गई। उन्हें अनुरोध किया जा रहा है कि वे इस विषय को महाराज के यहाँ उपस्थापित करें एवं तीन महीने के पश्चात् रिपोर्ट करें कि सतीदाह प्रथा निवारण संबंधी कानून प्रचारित हुआ है एवं त्रिपुर राज्य में इस कानून के अनुसार कार्य होगा।

(साक्षर) गौरीशंकर विश्वास
For Pl Agent

इसके पश्चात् स्व. महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादूर के आदेश पर सतीदाह प्रथा त्रिपुरा में हमेशा के लिये बंद हो गई।

सहमरण प्रथा के बारे में मंतव्य सतीदाह प्रथा के बारे में विवरण संक्षेप में शेष करना पड़ा। इस बारे में जानने की बहुत ही बातें हैं। इसके अनुकूल और प्रतिकूल बहुत लोगों ने बहुत सी बातें कही है। यहाँ पर इस विषय के बारे में सम्ये बातें करना असंभव है। बृहस्पति, अंगिरा, व्यास, हारित और विष्णु संहिता आदि ग्रंथों की आलोचना करने से इस विषय में एक धारणा होगी। यह प्रथा अच्छी हो, बुरी हो, इस पुण्य कर्म के रूप में हिन्दु समाज दृढ़ विश्वास के साथ मानता था। त्रिपुर हिन्दु राज्य है, त्रिपुरेश्वर गण स्मरणातीत काल से हिन्दु धर्म के पृष्ठ पोषक एवं संरक्षक थे। यही कारण था कि ब्रिटिश राज्य में सतीदाह प्रथा बंद हो जाने पर भी साठ सालों तक त्रिपुरा में यह प्रथा अबाध रूप से चल रही थी। किन्तु ब्रिटिश राज्य की तरह बल प्रयोग द्वारा, षड्यन्त्र द्वारा, बाध्य करके, किवां स्वार्थ साधन के उद्देश्य से किसी सती को पति की सहगामिनी करने की बात कभी भी सुनी नहीं गई। सतीयों के स्वेच्छा से एवं विशेष आग्रह से चितारोहण किया था।

सहमरण प्रथा निवारक आइन ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने जिस कानून द्वारा सतीदाह निवारण किया है, उसे यहाँ प्रदान कर इस विषय को समाप्त किया जा रहा है।

द्विल –213

REGULATION – XVII OF 1829

1. The practice of Sati or of burning or burying alive the widows of Hindus is revolting to the feelings of human nature, it is nowhere enjoined by the religion of the Hindus as an imperative duty, on the contrary a life of purity and retirement on the part of the widow is more especially and preferably inculcated, and by a vast majority of that people throughout India the practice is not kept up nor observed. In some extensive districts it does not exist. In those in which it has been most frequent it is notorious that in many instances acts of atrocity have been perpetrated which have been shocking to the Hindus themselves and in their eyes unlawful and wicked. The measures hitherto adopted to discourage and prevent such acts have failed of success and the Governor-General in Council is deeply impressed with the conviction that the abuses in question cannot be effectually put an end to without abolishing the practice altogether. Actuated by these considerations the Governor-General in Council – without intending to depart from one of the first and most – important principles of the system of British Government in India, that all classes of the people be secure in the observance of their religious usages so long as that system can be adhered to without violation of the paramount dictates of Justice and humanity – has deemed it right to establish the following rules, which are hereby enacted to be in force from the time of their promulgation throughout the territories immediately subject to the Presidency of Fort William.

II. The practice of Sati or of burning or burying alive the widows of Hindus is hereby declared illegal and punishable by the Criminal Courts.

***First.* All Zemindars, talukdars and other proprietors of land, whether malguzari or Lakhiraj all sardar farmers and under-renters of land of every description, all dependent talukdars, all naibs and other local agents, all native Officers employed in the collection of the revenue and rents of lands on the part of Government or the Court of Wards, and all mandals other headmen of villages are hereby declared especially accountable for the immediate communication to the officers of the nearest Police Station of any intended sacrifice of the nature described in the foregoing section, and any zemindar or other description of persons above noticed, to whom such responsibility is declared to attach, who may be convicted of willfully neglecting or delaying to furnish the information above required, shall be liable to be fined by the Magistrate or Joint Magistrate in any sum not exceeding two hundred rupees, and in default of payment to be confined for any period of imprisonment not exceeding six months.**

द्विल –214

Second. **Immediately on receiving intelligence that the sacrifice declared illegal by this Regulation is likely to occur, the Police darogha shall either repair in person to the spot or depute his Muharrir or Jamadar accompanied by one or more barkandazes of the Hindu religion, and it shall be the duty of the Police Officers to announce to the persons assembled for the performance of the ceremony that it is illegal and to endeavour to prevail on them to disperse, explaining to them that in the event of their persisting in it they will involve themselves in a crime and become subject to punishment by the Criminal Courts. Should the parties assembled proceed in defiance of these remonstrances to carry the ceremony into effect. it shall be the duty of the Police officers to use all lawful means in their power to prevent the sacrifice from taking place and to apprehend the principal persons aiding and abetting the performance of it, and in the event of the Police officers being unable to apprehend them they shall endeavour to ascertain their names and places of abode and shall immediately communicate the whole of the particulars to the Magistrate or Joint Magistrate for his orders.**

Third. **Should intelligence of a sacrifice declared illegal by this Regulation not to reach the Police officer until after it shall have actually taken place or should the sacrifice have been carried into effect before their arrival at the spot, they will nevertheless institute a full enquiry into the circumstances of the case in like manner as on all other occasions of unnatural death, and report them for the information and orders of the Magistrate or Joint Magistrate to whom they may be subordinate.**

दूसरे राज्यों में जिस कार्य साधन के लिये कानून या रेगुलेशन की आवश्यकता होती है, त्रिपुरा राज्य में एकमात्र राजा के वाक्य से ही वह हो जाता है। इस राज्य मे सतीदाह निवारन के लिये सभा का आह्वान अथवा कानून की कोई आवश्यकता नहीं हुई। स्व. महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य के एक साधारण चपरासी(रोवकारी) से ही वह प्रथा सदा के लिये बंद हो गई।

(Sd) B. C. Deb

त्रिपुरा सतीदाह रहित करने के बारे में आदेश

रोवकारी स्वाधीन त्रिपुरा, दरबार श्रीश्रीयुत महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादूर। सन 1299 त्रिपुराब्द तारीख 8 ज्येष्ठ।

जबकि यह जाना गया है कि इस राज्य के पर्वतीय प्रदेशों से किसी किसी जगह सतीदाह अब भी सम्पूर्ण रूप से बंद नहीं हुई है, इसलिए बंद कर देना आवश्यक है। इसलिए –

यह हुक्म दिया जाता है :–

इसके द्वारा उल्लेखित सतीदाह प्रथा को बंद किया जाता है और इस आदेश प्रचार की तारीख से यह आदेश लंघन करके किसी जगह पर यह क्रिया होने पर, अथवा इसमें भाग लेने पर संसृष्ट व्यक्तिगण दण्डनीय होंगे। कार्य को वास्तव रूप देने के लिये यह आदेश रोवकारी राजस्व विमाग में भेजा जा सकता है।

(साक्षर) श्रीप्यारीमोहन राय
मुन्सी

हस्ति विज्ञान

वन्यहस्ती सम्बन्धी विवरण राजमाला द्वितीय लहर के अनेक स्थलों पर हाथियों का उल्लेख मिलता है। खास तौर से श्वेत हस्तियों को विवरण मिला है। वन्य हाथी त्रिपुरा की विपुल सम्पदा हैं। एकमात्र हाथियों के लिये ही मुसलमानों की लोलुप दृष्टि त्रिपुरा पर पड़ी थी। इसी वजह से उन लोगों ने बार बार त्रिपुरा राज्य पर आक्रमण किया है और बहुत तरह के विप्लव पैदा किये हैं।

हाथियों के बारे में बहुत सारी बातें जानने की हैं। प्राचीन ऋषियों ने इस बारे में विशेष रूप से आलोचना की है एवं अभिज्ञ व्यक्तियों के पास भी इस तरह के बहुत से तथ्य हैं। वे लोग भी इन तथ्यों से अवगत हैं। इनकी जानकारी विवरण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्राचीन काल में त्रिपुरा के जंगलों में हाथियों की संख्या अत्यन्त अधिक थी। इस समय भी त्रिपुरा के प्रायः सभी अंचलों में हाथी पाये जाते हैं। किन्तु पहले की तुलना से अब इनकी संख्या में कमी आ गयी है। पार्वत्य प्रदेशों में शहरों/लोकालय के बढ़ जाने से, बहुत से जगहों पर हाथियों के यातायात का पथ अवरूद्ध हो गया है। हस्तियों का झुंड जनता के करीब विचरण नहीं करना चाहता। इसलिए ये हाथी गहन वन में, या राज्य के बाहर चले गये हैं। हाथियों की संख्या की कमी का यह भी एक प्रधान कारण है। इसके अलावा कुकि, चाख्मा और मघ आदि पार्वत्य जातियाँ गजदंत चोरी करने के उद्‌देश्य से एवं मांस संग्रह के सुयोग मिलते ही बड़े बड़े गुंडा हाथी (पुरूष हाथी) का वध कर देते हैं। पुरूष हाथियों की संख्या साधारणतः कम होती है, वह भी मनुष्य के द्वारा हत्या कर देने पर दिनोंदिन इनकी संख्या कम होती जा रही है। यह भी हस्तीवंश वृद्धि की ओर बड़ी बाधा है।

भारत के अनेक प्रदेशों में वन्य हस्ती पाये जाते है। किन्तु त्रिपुरा के पर्वत की तरह सुन्दर एवं स्वस्थ हाथी दूसरी जगह दुर्लभ है। राज्य के दक्षिणांचल के हस्ती से उत्तरांचल के हस्ती दीर्घजीवी और अधिक बलशाली है।

हाथियों का स्वभाव बहुत मायने में मनुष्य के स्वभाव से तुलना योग्य है। इसी कारणवश प्राचीन ऋषियों ने मनुष्य समाज की तरह हस्तियों में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन चार श्रेणियों में विभक्त किया है। शास्त्रोक्त लक्षणादि द्वारा उसे अलग किया जाता है। इन चार श्रेणियों के हाथियों को पुनः 8 श्रेणियों में विभक्त किया गया है। इसका विवरण बाद में दिया जाएगा।

हाथी झुंड में रहते और विचरण करते हैं। एक बड़ी उम्र की कुनकी(हस्तिनी) दल की नेत्री होती है। उसके इशारे से सारा दल परिचालित होता है। स्थानीय भाषा में इस कुनकी को 'पालमाई' या ''चराल कुनकी'' कहा जाता है। गुंडा हाथी अधिक बलवान और साहसी होने पर भी असतर्क और अधिकांश समय मदमस्त अवस्था में रहता हैं। खास तौर से दल में नया बच्चा जन्म लेने पर उसकी हत्या करने के लिये

द्विल –216

सदा कोशिश करते हैं। यही उनका स्वभाव है। इन्हीं सभी कारणों से प्रायः गुंडा हाथी को दलपति नहीं बनाया जाता है। एक दल से खदेड़ा हुआ हाथी दूसरे दल में आसानी से नहीं मिल पाता। सभी मिलकर उसे मारकर खदेड़ देते हैं।

हाथियों के झुंड सदा एक जगह नहीं रहते। जहाँ पर काफी मात्रा में वृक्ष और पत्ते मिलते हैं और निकट पानी है उसी स्थान पर कुछ दिनों तक विचरण करते हैं। सारा दिन अपने मन से घूम फिर कर आहार करते हैं और तब दल से दूर रहकर चारों और फैल जाते हैं। एक रात को पहाड़ी के किसी श्रृंग पर इकट्ठा होकर, छोटे छोटे बच्चों को बीच में रखकर चारों ओर बड़े बड़े हाथी सोते हैं। ये इतने सतर्क रहते हैं कि निदृतावस्था में सामान्य शब्द पाने पर हठात् जागकर उठ खड़े हो जाते हैं।

बहुत समय तक पहाड़ी नदी, सोता या सरोवर आदि में दलबद्ध होकर नहाते हैं और जलक्रीड़ा करते हैं। उनके विशाल देह के अवरोध से बाधा प्राप्त होकर नदी का प्रवाह शिथिल पड़ जाता है और ऊपरी हिस्से में जलस्तर बढ़ने लगता है और निचले हिस्से /भांटि/ का जल कम हो उठता है। अधिक गरमी पड़ने पर ये प्रायः जलमग्नावस्था में अथवा ठंढी गुहा स्थित गहन अरण्य के छाँह में रहते हैं। गरमी के दिनों में ये बहुत दूर गहन जंगलों में चले जाते हैं। शीत –समागम पर पुनः लौट आते हैं।

इनका झुंड जहाँ आठ –दस दिन रहता है, वह स्थान वन –जंगल शुन्य सा हो जाता है। एक जगह पर जब खाने का कुछ नहीं रहता तब ये अन्यत्र चले जाते हैं। स्थान परित्याग के समय पालमाई के इशारे पर सभी एक जगह हाजिर होते हैं। इसके पश्चात् श्रेणीबद्ध होकर पालमाई का अनुसरण करते हैं। दल का प्रधान गुंडा सबके पीछे रहता है। काफी दूरी चलने के समय सद्य –प्रसूत बच्चों को लेकर किसी हस्तिनी के दल के साथ अनुसरण करने में असमर्थ होने पर उसकी रखवाली के लिये प्रहरी रूप में तीन हस्तिनियों को पीछे रखकर बाकी दल सुविधाजनक स्थान के लिए आगे बढ़ जाता है। पीछे का दल बच्चा समेत धीरे धीरे चलकर दो तीन दिनों में जाकर उनके साथ मिल पाता है।

रामकेला, तारा, गुलर(डुमुर) के पेड़, मुली बाँस के नीचे का नरम हिस्सा हाथियों का प्रिय खाद्य है। इसके अलावा प्रायः सभी तरह के तृण, पल्लव का ये आहार करते हैं। पद्म की डन्डी व बेल आदि इनका उपादेय खाद्य है।

हथियों का झुंड साधारणतः एक ही रास्ते से चलता है। उनके गमन का पथ पचीस तीस हाथ का होता है और रेल पथ की तरह सीधा होता है। स्थानीय भाषा में इस रास्ते को दोयाल कहते हैं। जनमानव शून्य गहन अरण्य में हाथियों के दोयाल को छोड़कर अन्य कोई रास्ता नहीं है। वहाँ अगर कोई मनुष्य जाए तो उसे इसी रास्ते को अपनाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। इसमें हर क्षण हाथियों के झुंड के सामने पड़ने का खतरा बना रहता है।

द्विल –217

हाथियों की आसक्ति भी कुछ मानें में मनुष्य की तरह ही होती है। दल के निर्दिष्ट कुनकी के प्रति एक एक गुंडा आसक्त रहता है एवं उनके साथ घूमना फिरना पसन्द करता है। दूसरी कुनकियों को पसन्द नहीं करता। हस्तिनी जब तक ऋतुमती नहीं होती तब तक कभी भी गुंडा के साथ सहवास नहीं करती।

हस्तिनी एक बार में एक ही बच्चा प्रसव करती है। कदाचित् कभी जोड़े बच्चे होते हैं। ये साधरणतः 24 महीना गर्भ धारण करने पर पुरूष बच्चे को जन्म देती है और 18 महीने पर मादा बच्चा प्रसव करती है। किसी किसी समय इस नियम का सामान्य परिवर्तन देखा जाता है। हस्तिनी एक बार प्रसव करने पर एक साल के भीतर ही पुनः गर्भवती होती है। हस्तिनियाँ साधारणतः 16 साल की उम्र में प्रथम गर्भ धारण के योग्य होती हैं। हस्तिनी का गर्भ और स्तन ठीक मनुष्य की तरह होता है। पशुओं में हस्तिनी का संतान वात्सल्य अतुलनीय है। किसी किसी दल में एक या एक से अधिक हस्तिनी द्वारा नए बच्चे को जन्म देने पर बच्चे गुंडा के द्वारा विनष्ट न हो, दल की सारी हस्तिनियाँ इस ओर सदा सतर्क दृष्टि रखती है। बच्चे का आंशंकाजनक समय जब तक नहीं बीत जाता तब तक दुष्ट प्रकृति के गुंडो को दल में घुसने नहीं दिया जाता। दल में घुसने की कोशिश करने पर सभी मिलकर उसे मारती है और खदेड़ देती है। इस अवस्था में गुंडे दूरी पर रहकर दल का अनुसरण करते हैं।

संतान मरने से या किसी कारणवश दल से भटक जाने पर माता क्षुधा –तृष्णा भूलकर उन्मादिनी की तरह चीत्कार करती है एवं सारे जंगलों में दौड़ती रहती है। संतान की रक्षा के लिये ये व्याघ्रादि हिंस्त्र जन्तुओं के साथ प्राणपण से लड़ाई करती है। इस संग्राम के समय बच्चे को छाती के नीचे रखती है और हिंस्त्र जन्तु घूम फिर कर जिस ओर से आक्रमण करता है अपने मुह घुमा कर सूड़, दांत और पैर से उसके आक्रमण को व्यर्थ करती है। उस समय हस्तिनी जोर जोर से चीत्कार करती रहती है। प्रतिपक्ष को आक्रमण करने की सुविधा मिलने पर त्रुटि नहीं करती। इस समय हस्ती –शिशु माँ के छाती से बिलकुल नहीं निकलता। दल के दूसरे हाथी करीब रहने पर वे भी आकर उसकी सहायता करते हैं। एकाधिक हाथी देखकर बाघ स्वयं ही वहाँ से भाग जाता है। कभी कभी बच्चे के लोभ को छोड़कर ऐसे भी बाघ हाथी को आक्रमण करता है और कभी कभी हाथी द्वारा मारा भी जाता है।

दैवयोग से अगर बच्चा दल से भटक जाय तो उसे पकड़कर खाने के लिए बड़े आकार के दो एक बाघ प्रायः हाथियों के झुंड के पीछे होकर उनका अनुसरण करते हैं। गेंडा हाथियों के मल को बड़े चाव से खाते हैं। इसलिये कभी कभी हाथियों के झुंड के साथ गेंडा को भी देखा जाता है।

एक कुनकी का बच्चा दूसरी कुनकी द्वारा प्रतिपालित प्रायः देखा जाता है। वे पालने वाले बच्चे को अपनी संतान की तरह प्यार करती हैं एवं सर्वदा यत्न के साथ उसकी रक्षा करती हैं। बच्चा भी अपने माँ का साथ छोड़कर पालन करने वाली माँ के साथ ही रहता है। दूध पीने

द्विल –218

समय केवल माँ के पास जाता है और पुनः पालने वाली माँ के पास लौट आता है। बच्चा जब कभी पालन करने वाली माँ से भटक जाता है तो वह माँ की तरह व्यग्र होकर उसे खोजती है, दौड़ती है। यह ठीक मानव समाज की धात्री माँ के अनुरूप ही कार्य कहा जायेगा।

प्रत्येक कुनकी अपने अपने वंशजों को लेकर एक साथ रहती है। मानव समाज में जैसे एक घर में पृथक पृथक घरों में पुत्र कन्यादि को लेकर लोग रहते है। ये भी उसी तरह एक दल में रहकर भी अपनी अपनी संतान संततियों को लेकर कुछ स्वतंत्र होकर रहती हैं। यह अवस्था देखने पर सहज में ही समझ में आती है।

हाथियों के दल में बीस –पच्चीस से लेकर शताधिक की संख्या भी देखी जाती है। दल में एकाधिक दुष्ट प्रकृति के गुंडा रहने पर हमेशा उनमें कलह होता है। प्रतिद्वंदिओं में जो हाथी सबसे दुर्बल होता है, वह हमेशा मार खा कर दल से अलग हो जाता है। इस तरह के कई खदेड़े गए गुंडे एकत्रित होकर एक क्षुद्र दल का गठन करते हैं। स्थानीय भाषा में इस दल को 'फाटुआ' दल कहते हैं।

हस्ती जाति विभाग

हाथियों को ऊँचाई के अनुसार देश भेद से नानाविध आख्या प्रदान की जाती है। त्रिपुर राज्य में जिस तरह इनका श्रेणीकरण किया है वह नीचे दिया जा रहा है –

पुरूष हाथी के बारे में दूध पीने की अवस्था तक ''बच्चा'' कहा जाता है, दूध छोड़ने पर सात फुट तक ऊँचाई वाले हाथी को ''मियाना'' एवं अधिक ऊँचाई वाले हस्ती को ''गुंडा'' या ''दाँताल'' (दंतेल) नाम से बुलाया जाता है। पुरूष हाथियों में जिसका दांत नहीं निकला हो उसे ''मक्ना'' कहा जाता है।

हस्तिनी के बारे में बच्चा अवस्था पार होने पर सात फुट की ऊँचाई वाली हस्तिनी को ''मियानी'' कहा जाता है एवं इससे अधिक ऊँचाई वाली हस्तिनी को ''कुनकी'' कहा जाता है। हस्तिनी जब तक प्रथम गर्भ धारण नहीं करती, तब तक वह ''मियानी'' श्रेणी में ही रहती है।

प्रादेशिक प्रथानुसार हस्ती का मस्तक, कर्ण, आँख, सूंड, दंत, नाखून और पूँछ इत्यादि के लक्षणानुसार हाथी शुभ या अशुभ लक्षण युक्त है, यह निर्णय किया जाता है। प्राचीन ऋषियों ने भी हाथी के लक्षण आदि के बारे में बहुत कुछ कहा है। अब इसके बारे में एक सक्षिप्त विवरण प्रदान करेंगे।

हाथी का दांत विशेष मूल्यवान है एवं इसके द्वारा नाना तरह के विलासद्रव्य, खिलौने, उपवेशन के आसन एवं पाटी भी तैयार होती है। त्रिपुरा राज्य में गजदंत द्वारा अनेक वस्तुएं तैयार की जाती हैं। हाथी की अस्थि भी काम में आती है। किन्तु यह दांत की तरह मूल्यवान और दीर्घकाल स्थायी भी नहीं होती।

त्रिपुरा के गजदंत पर एकमात्र राजा का ही अधिकार है। इसे अगर दूसरा कोई ले ले तो वह कानून के अनुसार दण्डित होता है। इस तरह कानून प्रचलित रहने पर भी बहुत से लोग गहन अरण्य में चोरी से हाथी का वध करके दांतों की चोरी करने से नहीं डरते।

द्विल –219

गजमुक्ता बहुत ही दुर्लभ एवं मूल्यवान वस्तु है। पुरूष हाथी के सूंड के दोनों किनारे जो दो बृहत दांत हैं उनमें किसी किसी दांत के भीतर मुक्ता जन्मते हैं। दांतों को चीरने से वह पाया जाता है। हस्तिनी के दांतों में मुक्ता नहीं होता।

हाथियों के बारे में प्रादेशिक विवरण मामूली तौर पर दिया गया है। इस विषय में कहने की बहुत सारी बातें हैं, लेकिन बाहुल्य भय से उसे छोड़ देना पड़ा है।

प्राचीन ऋषियों ने हाथी के बारे में जिन सभी बातों की चर्चा की है उसका स्थूल विवरण यहाँ दिया जा रहा है। साधारणतः अग्नि पुराण, गरूड़ पुराण, नन्दी पुराण, कालिका पुराण, ब्रह्म पुराण, हरिवंश, पराशर संहिता, बृहस्पति संहिता, गार्ग्य संहिता, बृहत संहिता, वसंतराज शाकुन, युक्तिकल्पतरू, कविकल्पलता, विष्णुधर्मोत्तर, शुद्धितत्वम, राजनिर्घन्ट आदि प्रायः सभी शास्त्र ग्रंथों में ही अल्पाधिक मात्रा में हाथी के बारे में नाना तरह के ज्ञातव्य विवरण मिलते हैं। उनकी विस्तृत आलोचना संभव नहीं है। यहाँ मामूली से विवरण मात्र दिये जायेंगे।

ऋषिगणों ने हाथियों को ब्राह्मण आदि चार जातियों में विभक्त करने का पहले ही उल्लेख किया है। महर्षि पराशर कहते हैं

''ब्रह्मादि जातिभेदेन तेषां भेद चतुर्विधः।
विशालांगाः पवित्राश्च ब्राह्मणाः स्वल्प भोजिनः।
शूरा विशाला वह्वाशाः क्रुद्धाः क्षत्रियजातयः।। पराशर।

जिस हाथी की विशाल देह हो, पवित्र एवं अल्प भोजी हो, वह ब्राह्मण जातीय है। क्षत्रिय जातीय हाथी बलिष्ठ, विशालकाय एवं क्रोध स्वभावपन्न होता है। वैश्य और शुद्र जातीय हाथी मिश्र लक्षण युक्त होते हैं। उन सभी जातियों से उत्पन्न हाथी को स्वतंत्र आख्या प्राप्त हैं –

एक जाति समुत्पन्नो गजः शुद्ध इतिस्मृतः।
लक्षणंच यथा प्रोक्तं शुद्धंचतत्र दृश्यते।।
शुद्ध द्विजाति संभूतस्तल्लक्षण समन्वितः।
जारजो नाम विख्यातो यथास्वं बलवीर्यवान्।।
द्विजातिद्वय जातो यः स शूर इति कथ्यते।
द्विजाति जारजोत्पन्न उद्दांत इति कथ्यते।।
एवं संयोग भेदेन गज जातिरनेकधा।
तां यो जानाति तत्वेन स राज्ञः पात्रमर्हति।। पराशर।

एक जातीय पिता और माता से उत्पन्न हाथी को शुद्ध कहते हैं। शास्त्रोक्त उत्कृष्ट लक्षण समूह शुद्ध हाथी में विद्यमान रहते हैं। शुद्र और ब्राह्मण जातीय हाथी से उत्पन्न पर ब्राह्मण जातीय हाथी के लक्षणयुक्त और वीर्यवान हाथी को ''जारज'' कहते हैं। दो द्विजातीय हाथी से उत्पन्न हाथी ''शूर'' के नाम से कथित होता है। ब्राह्मण

द्विल –220

जातीय और जारज से पैदा हाथी को उद्दान्त कहते हैं। इस तरह पर परस्पर रूप समिश्रण से अनेक जाति हस्ति उत्पत्ति होती है। इन सभी हस्ती जाति भेद से जो अवगत है वही राजा के अमात्य पद प्राप्ति के योग्य हैं।

अष्ट दिग्गज

गजसमूह अष्ट दिग्गजों के वंशज कह कर शास्त्रकारों के द्वारा घोषित एवं इसलिये इन्हें आठ भागों में विभक्त किया गया है। यथा –

गजानामष्टधाभेदाः संक्षेपेन प्रकाश्यते।
ऐरावतः पुण्डरीको बामनः कुमुदोऽन्जनः।।
पुष्पदंतः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः।
एषां वंश प्रसूतत्वात् गजानामष्टजातयः।।

ऐरावत, पुण्डरीक, बामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक –यही दिग्गज कहलाते हैं। इनके वंशज प्रसूत गज समूहों में पूर्वोक्ति अष्ट दिग्गजों के लक्षण निम्न रूप से दिये गये हैं।

ये कुंजराः पाण्डर सर्वदेहाः सुदीर्घ दन्ताः सितपुष्पदन्ता।
अलोमशा अल्पभुजो बलाढ्या महाप्रमाणा लघुपुष्ट लिंगाः।
क्रुद्धाः समीके मृदवोऽन्यकाले लघुम्बुपाना बहुलो प्रदानाः।।
विस्तीर्ण दानास्तनुलोमपुच्छा ऐरावतस्याभिजन प्रसूताः।
तेषेव सर्वेषु विशुद्धवर्णा अतीव वृत्ताः प्रभवन्ति मुक्ताः।
नाल्पेन पुण्येन महीपतिनां स्पृशन्ति भूमण्डल–मध्यमेते।
दन्ता विभग्ना अपियुद्धरंगे पुनः प्ररोहन्ति पुरैव तेषाम्।।''

जो हाथी शुभ्रवर्ण, सुदीर्घ और पुष्पदंता है, लोमशून्य, अल्प भोजी, बलवान, बृहत अवयववाला, क्षुद्र फिर भी पुष्ट लिंग युक्त, युद्ध काल में कोपन स्वभाव एवं दूसरे समय नम्र स्वभावयुक्त, अल्प जलपान करने वाला, शरीर और पूँछ सामान्य बाल युक्त, जिसके शरीर से प्रचुर मात्रा में मदस्त्राव होता है, वही हस्ती ऐरावत वंशज है। इस जाति के हस्ती के दंतों में विशुद्ध, वर्णमुक्त एवं सुगोल मुक्त पैदा होता है। ये राजाओं के थोड़े से पुण्य में भूमण्डल स्पर्श नहीं करते। युद्ध की वजह से इनके दांत टूट भी जायें तो पुनः वृद्धिप्राप्त होते हैं। इन्हीं हस्तियों को साधारणतः श्वेत हस्ती कहते हैं।

ये कुंजराः कोमल सर्वदेहाः पुच्छा न दण्डाः खर गण्डदेशाः।
स्रवणमदाः संतत्रोष भाजोऽमर प्रियाः सर्वभुजो बलाढ्याः।।
सुतीक्ष्णदंता रसना गजानां ते पुण्डरीकः प्रबर प्रसूताः।
ते पद्मगंधं विसृजंति रेतो दानंच नैषां वमथुः प्रभृता।
न तोय पानेऽभ्यधिका स्पृहा च श्रमेऽपि नैते बल मुत्सृजन्ति।
अमीतु षेषां निबसंति राज्ञां ते वै समस्त क्षिति शासनार्हाः।।

अर्थात –जिस हाथी का सर्वांग कोमल है, पूच्छ दण्डाकृति नहीं है गण्डदेश खर है, जो सतत मदस्रावी और क्रुद्ध है, देवप्रिय है, सर्वभूक है और बलवान है, जिसके दांत और जीभ अत्यंत तीक्ष्ण हैं वह

द्विल –221

हाथी पुण्डरीक वंशोद्भव है। इनके वीर्य पद्म गंध युक्त है एवं मदस्त्राव और बमन ज्यादा नहीं होता। इनके जलपान की भूख अधिक नहीं होती और ये श्रमक्लांत नहीं होते। ऐसा हाथी जिस राजा के गृह में रहता है वे सारे पृथ्वी के शासन करने योग्य होते हैं।

ये कुजंराः कर्कश खर्बदेहाः कदापि माद्यंति गलन्मदाश्च।
आहार योगाद्वलवीर्य भाजोनात्यम्बुकामा बहु लोम गण्डाः।।
विरूपदन्तास्तनु पूच्छ कर्णा ज्ञेया वुधैर्व्वामन वंश जाताः।।"

अर्थात –जिस हस्ती की देह कर्कश और खर्बाकृति है जो कभी कभी उन्मत्त हो जाते हैं, सर्वदा मदस्त्राव होता है जिसका, आहार के द्वारा बल और वीर्यवान होता है जो, जो अधिक जलपान की इच्छुक नहीं है, जिसके गण्डस्थल पर अधिक बाल हैं, दोनों दांत कुत्सित हैं, देह, पूच्छ एवं कर्ण विरूप हैं, पण्डितों ने उसे वामन वंश जात कहकर निर्देश दिया है।

ये दीर्घ देहास्तनु दीर्घ शुण्डाः कुदंत भाजो मलपूर्ण देहाः।
स्थविष्ठ गण्डाः कलहप्रियाश्च ते कुंजरा स्युः कुमुदस्य वंशाः।।
अन्यद्विपान दर्शनमात्र तन्तु निध्नन्तिते दुर्गमनाश्च पुं साम्।।

अर्थात –जिसका देह और शुण्ड दीर्घ, दन्त कुत्सित, शरीर सततः मलयुक्त, गण्डस्थल स्थूल, जो कलह प्रिय हैं, वे कुमुद वंशजात है। ये दूसरे हस्तियों को देखते ही वध करते हैं। इनके सामने मनुष्य सहज में जा नहीं सकता।

ये स्निग्ध देहाः सलिलाभिलाषा महा प्रमाणास्तनु शुंड दन्ताः।
स्थविष्ठ दन्ताः श्रमदुःसहाश्च ते कुजंराश्चांजन वंश जाताः।।

अर्थात –जिस हाथी स्निग्ध देह हो, जल पान के अत्यंत अभिलाषी हो, जिसकी देह सुबृहत हो, जिसके दांत और सूंड छोटे हों, दोनों दांत स्थूल एवं श्रमकष्ट सहन में पटु हो, ये अंजन वंशसम्भुत हैं।

रेतश्च दानंच सृजस्ति शश्वदानूपदेशे प्रभवंति ये तू।
ते पूष्पदंताभिजन प्रसूता महा जवास्ते तनु पूच्छ भागाः।।

अर्थात –जो हाथी सदा मदजल और रेतः परित्याग करता है, जिसके अनुपदेश में उत्पन्न, जिसके पूच्छ अति सूक्ष्म और वेगगति अति तीव्र है जिनकी, वह हाथी पुष्पदंत वंशजात है।

सुदीर्घ दन्ता बहु लोमभाजो महाप्रमाणाश्च सुकर्क्कशांगाः।
भ्राम्यन्ति नाध्व भ्रमणाभियोगान्नाहार पानादिषु चाति शक्तिः।।
मरू प्रदेशे विचरंति ते वै मुक्ता फलानामिह जन्म मध्ये।
महाशरीरातिसुकर्क्कशांगा नारिष्ट दंता मृदु शुक्ल दंताः।।
महाशनाः क्षीण पुरीषमूत्र विस्तीर्ण कर्णास्तनु रोमगण्डा।
ते सार्वभौमाभिजन प्रसूता विशुद्ध मुक्ताः प्रभवंति चैषु।।

जिसके दांत सुदीर्घ हैं, जो हाथी बहुलोमयुक्त है, बृहदाकार है, कर्कश अंग विशिष्ट है, भ्रमण में अक्लांत स्वभाव का है, आहार और पान में अतिशय पटु है, रेगिस्तान में भ्रमण करन की इच्छा रखता है, जिसका शरीर कर्कश और सुवृहत है, दोनों दांत जिसके लम्बे हैं, कोमल और शुक्लवर्ण है, अधिक भोजन करता हो लेकिन

द्विल –222

मल मूत्र कम त्याग करता हो, कर्ण विस्तीर्ण, गण्ड अति रोमावली क्षीण हैं –वे ही सार्वभौम दिग्गज के वंशज हैं। इस जाति के हाथियों में विशुद्ध मुक्ता उत्पन्न होता है।

ये दीर्घशुंडाः सुविभक्त देहाः महाजबाः क्रोध परीतकाश्च।
विस्तब्धकर्णास्तनुपूच्छदन्ताः सदाशनाश्चैव वशाप्रियाश्च।।
प्रवृद्ध गण्डास्तनु लोमयुक्ताः स्ते सुप्रतीक प्रवर प्रसूताः।
महाप्रमाणामितमौक्तिकानि भवंति चैतन्निजगाद काप्यः।।

अर्थात –जिनका सूंड दीर्घ है, देह सुविभक्त, वेग प्रचण्ड है जो क्रोधी स्वभाव के हैं। जिस हाथी के दोनों कान सदा स्तब्ध रहता है, पूँछ और दांत क्षीण है, हमेशा खानेवाला, हस्तिनी प्रिय, गण्डदेश वृहत हैं, शरीर अधिक लोममुक्त है, वे सुप्रतीक वंशसंभूत हैं। इन सभी हाथियों में वृहत आकार के मुक्ता पाये जाते हैं।

यह रहा अष्टदिग्गजों के वंश विवरण। वृहत संहिता प्रणेता बराहमिहिर ने पुनः हाथियों को चार जातियों में विभक्त किया है – भद्र, मन्द्र, मृग और मिश्र।

हेम चन्द्र ने भी यही कहा है – "भद्रोमन्द्रोमृगोमिश्रश्चतस्रोगज जायतः।।"

अर्थात –जिस हाथी के दांत मधु की तरह वर्ण युक्त हैं, अंग प्रत्यंग सुविभक्त, देह न मोटा और न पतला और अतिकाय बलशाली है, मेरुदण्ड धनु जैसा, जघनभाग शूकरसदृश हो, वे ही भद्र जाति के हैं।

जिसका वक्षस्थल और कक्षदेश शिथिल हैं, उदर दीर्घ है, गलदेश वृहत, चर्म मोटा, पेट और पूँछ स्थूल है, आँखे सिंह की तरह स्थूल है, उसको मन्द्र जाति के हैं।

जिस हाथी का अधर, लांगुल व लिंग खर्वाकृत, गलदेश, दंत, शुण्ड, कर्ण, पद चतुष्टय अपेक्षाकृत खर्व, आंख स्थूल हो, वे ही मृग जाति के हैं।

जो सब हाथी मिश्र लक्षण युक्त हैं अर्थात पूर्वोक्ति दोनों जातीय हाथियों के लक्षण जिनमें दिखाई दें वे संकीर्ण या संचय जाति के हाथी हैं।

इनमें प्रत्येक जाति को हाथी की उच्चता, दैर्घ्य, शरीर की परिधि एवं मद जल का वर्ण आदि का निर्देश दिया गया है, बाहुल्यभय से उसे लिखना बन्द कर देना पड़ा।

बराहमिहिर, पराशर, गार्ग्य एवं भोजराज आदि के ग्रंथों में हाथी के लक्षण आदि के परीक्षा के बारे में नाना तरह के विवरण पाये जाते हैं। उनमें भोजराज कृत युक्तिकल्पतरू की तरह ही अधिकतर प्रशस्त है। आवश्यकतानुसार उसके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं।

उत्तम हाथी

रम्यो भीमो ध्वजोऽधीरो वीरः शुरोऽष्टमंगलः।
सुन्दरः सर्वतोभद्रः स्थिरो गंभीर वेद्यपि।
बरारोह इतिप्रोक्ता गजा द्वादश सप्तमाः।।

रम्य, भीम, ध्वज अधीर, वीर, शूर, अष्टमंगल, सुन्दर, सर्वतोभद्र, स्थिर,

द्विल –223

गंभीरवेदी और बरारोह, यह द्वादशविध हाथी को आर्य ऋषियों ने उत्कृष्ट कहकर निर्धारण किया है –

विभक्तावयवः पुष्टः सुदंतः सुमहानपि
तेजस्वी रम्य इत्युक्तो गजः संपत्तिवर्द्धक।।

अर्थात –जिस हाथी के अंग सुविभक्त एवं पुष्ट, दंत सुन्दर, देह बृहत एवं तेजस्वितापूर्ण है, वही रम्य हाथी है। ये हाथी प्रचुर धन सम्पदावर्द्धक हैं।

अंकुशादि प्रहारेण यस्य भीतिर्नजायते।
स भीमोऽयं गजः शुद्धो राज्ञः सर्वार्थसाधनः।।

अर्थात –जो हाथी अंकुश आदि के प्रहार से भयभीत नहीं होता एवं शुद्ध लक्षण युक्त है उसे भीम कहते हैं। ये राजा के सर्वार्थ सिद्धि दाता हैं।''

शुण्डाग्रात् पूच्छपर्यतं रेखा यस्यैव दृश्यते।
ध्वजः शुद्धो गजो नाम साम्राज्य प्राणदायकः।।

अर्थात – जिस हाथी के सूँड से लेकर पूँछ तक एक रेखा दिखाई देती है वे सभी शुद्ध लक्षणाक्रांत हाथी को ध्वज कहते हैं। ये साम्राज्य और दीर्घायु दायक हैं।

समौ कुंभौ खराकारौ आवर्त्तो तत्र चोच्छ्रयौ।
अधीरोऽयं गजो नाम्ना राज्ञां विप्र विनाशनः।।

जिसके कुंभ द्वय (हाथी के सिर के दोनों ओर उँचे मांस) परस्पर समान हों, देखने में खर्वाकृति, देह आवर्त विशिष्ट एवं आवर्त स्थान उन्नत हो, उसे अधीर कहते हैं। यह हाथी राजाओं के लिये अमंगलकारी है।

आवर्तः प्रष्ठतो यस्य स्वनाभिमभिविन्दति।
पूष्टांगो बलवान् वीरो राज्ञामभिमत प्रदः।।

जिस हाथी के पीठ से नाभि तक आवर्त्त रहता है, देह पुष्ट एवं बलशाली होता है, उसे वीर कहते हैं। यह हाथी राजाओं के अभिलाषित विषय में सिद्धि प्रदान करता है।

महाप्रमाणः पुष्टांगः सुदंतश्चारूगंडकः।
भक्षणे भक्षणे श्रांतः शूरो लक्ष्मीविर्वद्धणः।।

जो हाथी बृहदाकार है, देह पुष्ट है, दांत और गंडस्थल सुन्दर है, आहार करने से परिश्रांत होता है, उस हाथी को शूर कहते हैं। इस हाथी के द्वारा राजलक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

सितौ दन्तौ सितः पूच्छः सितारेखा सितानखाः।
रक्त कुंभाक्षिवीर्यांगै विज्ञेयः सोऽष्टमंगलः।।
अयं गजेन्द्रो यस्यास्ते तस्य स्यात् सकला मही।
नारिष्टानीतयस्तत्र यत्रास्तेऽयं गजेश्वरः।।
आयोजनशतं यावदनर्थं कुरूते क्षयम्।
नाल्प पुनैरयं प्राप्यो मनुजेन्द्रैः कलौयुगे।।

''जिसके दोनों दांत, पूँछ एवं नाखून शुभ्रवर्ण हैं एवं शरीर श्वेत वर्ण रेखा विशिष्ट है, जिसके कुंभ, आँखें एवं पुरूष चिन्ह रक्त वर्ण हैं, वे हाथी अष्टमंगल कहलाते हैं। यह हाथी जिसके घर में

द्विल –224

रहता है वे समस्त पृथ्वी के अधीपति होते हैं। इस हाथी के वासस्थान में अनिष्ट या अनीति नहीं रह सकती एवं उस स्थान से शतयोजन तक यह हाथी अंमगल नष्ट करता है। कलियुग में राजाओं के पुण्य की स्वल्पता के कारण अष्टमंगल हाथी देखा नहीं जाता।

अन्य पाँच जातियों के उत्कृष्ट हाथी के लक्षण आदि विशेष उल्लेख योग्य नहीं है। राजन्य वर्ग के लिए सुखकर हस्ती के लक्षण नीचे दिये जा रहे हैं –

शुभौ दन्तौ शुभः शुण्डः शुभौ कुंभौ शुभस्तनुः।
गण्डयोर्गण्डयौर्मघ्ये आवर्त्तः शुभलक्षणः।।
शश्वन्मदश्रुति परिप्लुत गण्डदेशास्तीक्ष्नांन्कुशेन विनिवारयितुं न शक्याः।
ज्ञातिद्विषो नवपयोदरवा गभीराः पृथ्वीभुजाः सकलसैख्यकरा भवंति।।

अर्थात "जिस हाथी के दोनों दाँत, शुण्ड, दोनों कुंभ, देह और गण्डमध्य या दोनों गण्डों में आवर्त्त रहता है, वही हाथी शुभ लक्षण युक्त है। जिस हाथी का गण्डदेश सदा मदस्त्राव से आप्लुत रहता है, तीक्ष्ण प्रहार से भी जिसे निवारण करना कष्ट साध्य है, जो दूसरे हाथी को देखकर क्रुद्ध होते हैं, जिनके रव जलदगंभीर हैं, वे सभी हाथी राजाओं के लिये सुखकर होते हैं।

दुष्ट हाथी

दोषयुक्त हाथियों को शास्त्रकारों ने बीस भागों में विभक्त किया है। यथा –

दीनःक्षीणोऽथ विषमो विरूपो विकलः खरः।
विमदो ध्नापकः काको धूम्रो जटिल इत्यपि।।
अजिनी मण्डली श्वित्री हतावर्तो महाभयः।
राष्ट्रहा मुषलीभाली निःसत्व इतिविंशति।।
महादोषाः समाख्याता गजानां भोजभूभुजा।।

(1) दीन, (2) क्षीण, (3) विषम, (4) विरूप, (5) विकल, (6) खर, (7) विमद, (8) ध्नापक, (9) काक, (10) धूम्र, (11) जटिल, (12) अजिनी, (13) मंडली (14) श्वित्री, (15) हतावर्त (16) महाभय, (17) राष्ट्रहा, (18) मूषली, (19) भाली, (20) निःसत्व यही बीस प्रकार के हाथी महादोष युक्त हैं।

इन हर तरह के लक्षण और दोषों के वर्णन नीचे दिये जा रहे हैं।

अतिक्षीणतरः क्षीणतनु दंतोऽति निष्प्रभः।
दीनाख्यः कुरूते दीनं भूभुजं नात्र संशयः। ।1।

"जिसकी देह अतिशय क्षीण हो, दोनों दांत क्षीण एवं निष्प्रभ हों, उस हाथी को दीन कहते हैं। ऐसे हाथी के गृह में रहने पर राजा को भी दरिद्र होना पड़ता है।"

खर्वशुण्डो महापूच्छो निश्वासो वेगवर्जितः।
क्षीणोऽयं कुरूते क्षीणं स्वामीनं सम्पदा। ।2।

"जिसके सूंड खर्व हों, बड़ी पूच्छ हो, निश्वास का वेग मृदु हो उसे क्षीण कहते हैं। यह हाथी स्वामी के धन सम्पदा का विनष्टकारी होता है।"

द्विल –225

कुंभे दन्तेहक्षिकर्णे च वैषम्यं पार्श्वयोस्तथा।
यस्यायं विषमो नागो नागवत् कुरूते क्षयम्। ।3।

विषम हस्ती का कुंभ, दंत, चक्षु, कर्ण किवां पीछे दोनों तरफ परस्पर असमान होते हैं – यह सर्पवत क्षयकारी है।

आस्कन्धात्तु शिरः क्षीणं पश्चाद्भागस्य पुष्टता।
विरूप इति नागोऽयं कुरूते भूधनक्षयम्। ।4।

जिसके स्कंध से मस्तक तक क्षीण और पश्चात् भाग स्थूल हो –इसे विरूप हस्ती कहते हैं। इस हस्ती के द्वारा राजा का राज्य और धन क्षय होता है।

नानाभोगैरपि कृतैर्यस्य नो जायते मदः।
युद्धाय नोपक्रमते विकलं तं विवर्ज्जयेत्। ।5।

बहुविध भोग से भी जिसका मदक्षरण नहीं होता, जो हस्ती युद्ध काल में बल प्रकाश नहीं करता उसे हस्ती को विकल कहते हैं। इस तरह के हस्ती को वर्जन करना चाहिए।

खरता सहजा यस्य शरीरेऽस्तीति लक्ष्यते।
तनु दन्त करो हस्ती खरः कुलविनाशनः। ।6।

जिस हस्ती का शरीर स्वभावतः खरता के रूप में ज्ञात होता है, जिसके दोनों दांत और सूंड कुछ छोटे हों उसे खर हस्ती कहते हैं इससे पालक का कुल क्षय होता है।

न जायते मदो यस्य स्वकाले जायतेऽथवा।
विरूपो विवशो वापि विमदं दूरतस्त्यजेत्। ।7।

जिस हस्ती में मद स्त्राव नहीं होता, होने पर भी अकाल में होता है, जो हस्ती नितांत ही कुत्सित है, अवश है उसको विमद कहते हैं। इस जातीय हस्ती का त्याग करना उचित है।

लघु प्रमाणः क्षीणांगस्तनुशुण्ड शिरोदरः।
अश्रान्तं श्वसिति व्यग्रः पतेद्वै नेत्रयोर्म्मलम्।।
त्रिके पूच्छाग्रतो वापि आवर्तो मण्डलोऽथवा।
बहिः प्रकुरूते लिंगं सर्वथा गतचेष्टवत्।।
भूभुजा नहिवीक्षोऽयं ध्नापकाख्यो गजाधमः।
यदीच्छेच्छाश्वतीं भूतिं शरीरारोग्यमेव वा। ।8।

जिस हस्ती का प्रमाण लधु है, अंग क्षीण है, सूंड़, शिर और उदर अपेक्षाकृत छोटे हैं, जो हस्ती व्यग्र भाव से सांस त्याग करता है, आँखों से अविरत मल निर्गत होते हैं, जिसकी कमर में और पूँछ के अग्रभाग में आवर्त किवां मण्डल चिन्ह रहता है, जिसका लिंग बराबर बाहर निकला रहता है पर निश्चेष्ट भावापन्न है उस अधम हस्ती को ध्नापक कहते हैं। जो श्री वृद्धि एवं आरोग्य अभिलाषी है उस नरपति को इस जातीय हस्ती का दर्शन भी नहीं करना चाहिए।

द्विल –226

शंख देशौ भग्नौ स्कन्ध देशोऽति गुच्छकः।
काकोऽयं कुरूते मृत्युं स्वामिनो नात्र संशयः। ।9।

जिस हस्ती का शंख देश अर्थात ललाट की हड्डियां टूटी हों एवं स्कन्ध अति उच्च हों तो उस हस्ती को काक कहते हैं। इस जाति के हाथी अपने प्रभु के मृत्यु का कारण बनते हैं।

विषमौ शंखगौ दन्तौ षस्य शुंड विरोधिनौ।
भिद्येते वा विदीर्येतां स्वयं शुन्यान्तरावुभौ।
कुरुते व्यधितं नाथं धूम्र नामा गजाधमः ।10।

जिस हस्ती का ललाट स्थित दोनों ओर की अस्थियाँ एवं दोनों दांत विषम हों, जिसके सूंड़ –शरीर का विरोधी हो, स्वयं भिन्न या विदीर्ण एवं शुन्यांतर में हो, ऐसे अधम गज को धुम्र कहते हैं। ये अपने प्रभु को व्याधि प्रदान करते हैं।

मूर्द्धजाः कर्कशा रूक्षा जटारूपानुवन्धिनः।
यस्यायं जटिलो नागः कुरूते धनसंक्षयम्। ।11।

जटिल हाथी के मस्तक के केश कर्कश, रूक्ष और जटा की तरह होते हैं। इस से स्वामी का धन क्षय होता है।

स्कन्धे वा गात्रदेशे वा लग्नं चर्म्मेऽवलक्ष्यते।
अजिनी नाम नागोऽयं कुरूते भूधनक्षयम्।।
नैनं स्पृशेन्नवीक्षेत यदिच्छेदात्मनः श्रियम्। ।12।

जिसका स्कंध या गात्र चर्म लग्न कह कर बोध होता है, उसे अजिनी कहते हैं। इसके द्वारा स्वामी की भूमि और धनक्षय होता है। जो श्री वृद्धि के अभिलाषी हैं वे इस जैसे हाथी को स्पर्श या दर्शन न करें।

मंडलानि प्रदृश्यंते एकं द्वे वा बहूनि वा।
विरूपाण्युद्गतानीव मंडली कुल नाशनः। ।13।

जिस हाथी के अंग में एक दो या बहु संख्यक मंडल रहता है एवं वे मंडल यदि विरूप उन्नत हों तो उस हाथी को मण्डलीक कहते हैं। यह अपने प्रभु के कुल का विनाशिनी है।

तानि श्वेतानि यस्य स्युः श्वित्री स धन नाशनः। ।14।

जिस हस्ती के पूर्वोक्ति मण्डल श्वेत वर्ण हों उसे श्वित्री कहते हैं। यह हाथी स्वामी के धन का विनाश करती हैं।

ह्रदये उदरे चैव त्रिके पूच्छस्य मूलतः।
गुदे मेढ्रे पदे चैव आवर्त्तेन हतश्रियम्।
योगिनं कुरूते भूपं प्रवासिनमुपद्रुतम्। ।15।

जिस हाथी के ह्रदय में, उदर में, त्रिक देश में (मेरूदण्ड के शेष भाग में), पूच्छमूल में, गुझ्य देश में, लिंग या पाद देश के आवर्त श्रीहीन होते हैं, उसे हतावर्त कहते हैं। ये राजाओं को योगी, प्रवासी या उपद्रुत करते रहते हैं।

द्विल –227

गच्छतो यस्य गुल्फाभ्यां भवेत् संघर्षणं मुहुः।
अपि सर्वगुणैर्युक्तस्ताज्यश्च स महाभयः।।
राष्ट्रं धनं कुलं सैन्यं मैत्रं दारान् तथा प्रजाः।
क्षपयत्य शुभो नागो दृष्ट मात्रो न संशयः।।
तत्रापम्रियते लोकस्तत्र वज्र भयं भवेत्।
व्याधि वह्नि भयं वात्र यत्रास्ते स महाभयः। ।16।

अर्थात "जिस हाथी के गमन के समय पैरों की एड़ी हमेशा संघर्षण होती है उसे महाभय कहते हैं। यह हाथी सर्वगुण्तन्वित होने पर भी उसे परित्याग करता ही उचित है। राज्य, धन, कुल, सेना, मित्र, पत्नी एवं प्रजा इनके दृष्टि मात्र से ही विनष्ट होते हैं। यह हाथी जिस देश में रहता है उस देश के आदमी भी क्रमशः विनष्ट होते हैं। उस देश में वज्रभय, ब्याधिभय एवं अग्निभय होता है।

भृशं सन्ताडय्मानस्तु पादैकं यो न गच्छति।
पृष्ठोदरं समावृत्य रेखा रक्तसमा यदि।
न्यस्ताग्रिम पदस्थाने पश्चात्पातः पदे यदि।
अपि सर्वगुणैर्युक्तो राष्ट्रहायं गजाधमः।।
राष्ट्रदपा क्रियतेऽयं भूभुजा श्रियमिच्छता
राष्ट्रान्ते रक्षितो मोहात् कुरूते राष्ट्र संक्षयम्। ।17।

जो हाथी विशेष भाव से ताड़ित होकर भी एक पग भी चलना नहीं चाहता। जिसके पृष्ठ से उदर तक गोलाकार रेखा दिखाई देती है, चलने के समय आगे के पैर की जगह पीछे का पैर पड़ता है उसे राष्ट्रहा कहते हैं। यह हाथी सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी हाथियों में अधम है। जो राजा अपनी श्रीवृद्धि के अभिलाषी हैं वे इस जाति के हाथी को अपने राज्य से निकाल दें। यह हाथी जिस राज्य में या प्रदेश में रहता है, थोड़े दिनों में वह विनष्ट हो जाता है।

पादाश्चात्यन्त विषमा दंतौ चान्योन्य वैषमौ।
पंजरो दृश्यते भग्न एकोवाष्टौ द्वयोऽथवा।।
दन्तौ वा चलतो यस्य किमु वा न प्ररोहतः।
कुंभौ वा विषदौ यस्य मुषली स गजाधमः।
राष्ट्र दुर्ग वलामात्यक्षयकृत्तं परित्यजेत्। ।18।

जिस हाथी के पद परस्पर असमान हों, दोनों दांत विषम हों, पंजरों में एक, दो या सभी टूटे हों, जिसके दांत हिलते हों, या नहीं हों, जिसके दोनों कुंभ श्वेत वर्ण के हों उस अधम हाथी को मूषली कहते हैं, इसके द्वारा राज्य, दुर्ग, सेना और अमात्यगण विनष्ट होते हैं। इस तरह के दुष्ट हाथी को त्याग करना ही उचित है।

चर्म खण्ड इवाभाति भाले यस्याति कर्कशः।
भाली स कुरूते नागो भर्त्तुः कुलधनक्षयम्। ।19।

"जिस हाथी के ललाट का चर्म अत्यन्त कर्कश हैं उसे भाली कहते हैं। यह हाथी स्वामी के कुल और धन क्षयकारी है।"

द्विल –228

पुष्टो विशालः सद्दंतः सत्कारोऽपि शुभोऽपि सन्।
न रणे साहसो यस्य स निः सत्तवो गजाधमः।।
सर्वेषां गज दोषाणामुक्त एव महानयम्।
येनैकेन गुणाः सर्वे तृणायंते सुनिश्चितम्। ।20।

जिस हाथी की देह पुष्ट हो एवं विशाल हो, दतंद्वय सुन्दर हो जो हाथी रण में साहसहीन हो उस अधम हाथी को निःसत्तव कहते हैं। हाथी में जितने प्रकार के दोषों का उल्लेख किया गया है। उसमें यह दोष सबसे मुख्य है।

बीस तरह के दुष्ट हाथियों के लक्षणों का और दोषों का वर्णन किया गया है। गार्ग्य आदि ऋषियों के अनुसार और भी नाना तरह के लक्षण युक्त दुष्ट हाथी हैं – यहाँ पर उनका सम्यक उल्लेख करना असंभव है। राजाओं के लिये दुष्ट हाथियों को देखने की भी मनाही है। अगर दर्शन हो जायें तो उसके प्रशमन के लिये होम और दानादि कार्य करने पड़ते हैं। इस बारे में शास्त्रीय मत नीचे दिये जा रहे हैं।

दोषैर्दृष्टान् गजान्राजान वीक्षेत कदाचन।
न्यसेद्वा परराष्ट्रेषु नगरात् क्रियते वहिः।।
दस्यात् द्विजेभ्यः शुद्धेभ्यो गणाकायाथवा नृपः।
दृष्ट्वा यदि गजान् दुष्टान् दद्याच्छृंगि शतं द्विजे।
पूरं निराजयेद्वापि आत्मानम्वाथवा सूतम्।
देव सूक्तेन जुहुयादयुतन्वाति तत्परः।।
तिलान् वा जुहूयादग्नौ तत्प्रतिकार हेतवे।

अर्थात –'राजगण कदापि दुष्ट हाथी का दर्शन न करें। इस तरह के हस्ती को परराज्य में गच्छित रख दें अथवा नगर से निकाल दें अथवा किसी विशुद्ध ब्राह्मण गणक को दान कर दें। यदि किसी कारणवश कोई दुष्ट हाथी दिखाई दे तो ब्राह्मण को शत गोदान एवं नगरी को अपने को किवां पुत्र को नीराजन(1) करेंगे। देवसूक्त मंत्र द्वारा होम अथवा उसके प्रतीकारार्थ अग्नि में तिल होम करें।

हाथी के जिन सभी लक्षणों का वर्णन किया गया है हस्तिनी के लिये भी यह प्रयोज्य है। पाराशर संहिता में हाथी के जिन लक्षणों का वर्णन किया गया है वे प्रायः भोजराज के वर्णना के ही अनुरूप हैं। बाहुल्यभय से वह इस आख्यायिका में सन्निवेशित नहीं किया गया।

देश और अरण्यभेद से हाथी के आकार और वर्णगत पार्थक्य तो होते ही हैं। उन विस्तृत विवरणों की चर्चा थोड़े शब्दों में लिखने का कोई उपाय नहीं है।

हाथी के परमायु — हाथी के परमायु मनुष्य के समान ही होते हैं अर्थात 120 साल। पहले उत्कृष्ट हाथी के जो लक्षण बताये गये हैं उसके एक एक लक्षण के अभाव से हाथी के

---

(1) नीराजन –यह एक तरह का होम है। इस होम की विधि, सम्पादन, प्रणाली एवं उसके फल इत्यादि विषय कालिका पुराण 86 अध्याय, पद्मपुराण 107 अध्याय, स्कन्धपुराण, कालोत्तर तंत्र एवं हरिभक्तिविलास आदि ग्रंथों में मिलता है। देवता के आरत्रि को भी 'नीराजन' कहते हैं।

द्विल –229

दस साल की आयु का क्षय होता है। साधारणतः 60 साल में हाथी का एवं तीस साल में हस्तिनी सारे अंगों की पूर्णता प्राप्त करते है।

हाथी मनुष्य समाज के विशेष उपकारी है। इस बृहत प्राणी को पकड़ने की प्रणाली, पालतू बनाने के उपाय, पालन एवं व्यवहार में लाने के नियम, व्याधि एवं चिकित्सा आदि के बारे में बहुत सारी बातें कहने की हैं। उसका वर्णन राजमाला के तृतीय लहर में हम करेंगे।

प्रचलित किंवदन्ती

दोयापाथर और श्वेत हस्ती

दौचापाथर या दोयापाथर राजमाला द्वितीय लहर में ''दौचापाथर'' नाम पाया जाता है। महाराज धन्यमाणिक्य द्वारा नरबलि की संख्या संकोचन के विवरण के उपलक्ष्य में वर्णित है –

पूर्बेते त्रिपुर राजा नरबलि दितो।	पहले त्रिपुर राजा नरबलि देते।
सहस्रे सहस्रे बंग बर्षे काटा जाइतो।।	सहस्र सहस्र बंगवासी हर वर्ष काटे जाते।।
श्रीधन्य माणिक्ये माना ताहाके कोरिलो।	श्रीधन्य माणिक्य ने इसे मना किया।
तद्बधि नरबलि निषेध होइलो।।	तब से नरबलि कर्म बन्द हो गया।।
तिन बत्सरे एक नर चतुर्दश देबे।	एक नर चतुर्दश को तीन साल बाद।
कालिकाते एक नर पाइबेक जबे।।	कालिका एक नर पायेंगी तब।।
दौचा पाथरे दुई नर शत्रु पाइले होय।	दौचा पाथर दो नर यदि शत्रु मिल जाये।
गोमती ते दुई बलि घटे जे समय।	गोमती में दो बलि तब हो जाये।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29पृ

''पहले त्रिपुरा के राजा नरबलि देते थे। हर साल हजारों हजार बंगवासियों को काटा जाता था। महाराज श्रीधन्य माणिक्य ने इसे निषेध कर दिया। तब से नरबलि बंद हो गई। तीन साल में एक नरबलि चतुर्दश देवता के यहाँ होगी। कालिका देवी भी एक नर बलि पायेंगी। दौचापाथर दो शत्रु पकड़े जाने पर होगी। गोमती नदी के तट पर उस समय दो बलि होगी।''।

'दोचापाथर' एक स्थान का नाम है। साधारणतः इसे 'दोयापाथर' भी कहते हैं। त्रिपुरा के लोग इसे 'नानागोमती दोयापाथर' भी कहते हैं। यह एक देव स्थान है। कभी कभी त्रिपुरश्वर लोग भी यहाँ आकर रहते थे। यहाँ पर देवार्चन के समय हर साल यहाँ बहुत भारी संख्या में नरबलि दी जाती थी। महाराज धन्यमाणिक्य ने इस नियम को बन्द कर दिया और केवल समर क्षेत्र में पकड़े गये शत्रुओं में से केवल दो की बलि चढ़ाई जाती थी।

श्वेत हस्ती की कथा 'दोयापाथर' के बारे में एक प्राचीन आख्यान त्रिपुरा जाति में प्रचलित है। इसके साथ सफेद हाथी का जन्म वृतांत भी संयोजित है। ब्रह्मदेश सफेद हाथी के लिये प्रसिद्ध था। त्रिपुरा में सफेद हाथी कदाचित ही कभी कभी दिखाई देता था(1)। जो वस्तु या प्राणी दुष्प्राप्य होता था, उसके बारे में

---

(1) थानांछिते एक हस्ती धबल आछिलो।	थानांछि में एक हाथी था धवल वर्ण।
हेड़म्ब राजाये ताके चाहिया पाठाइलो।।	हेड़म्ब से राजा ने मांगा उसे तत्क्षण।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 17पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 17पृ

(थानांछि में एक सफेद हाथी था। हेड़म्ब राजा ने उसे देने के लिये खबर भेजा)

द्विल –230

नाना तरह के संस्कार मूलक उपाख्यान लिखे जाते थे। असभ्य समाज में मन गढ़न्त भ्रांतियाँ काफी मात्रा में फैली थी। पार्वत्य समाज में प्रचलित दोयापाथर एवं सफेद हाथी के बारे में आख्यान भी उनके अपने संस्कार के मुताबिक थे। इस आख्यान को त्रिपुरा के लोग अपनी भाषा में कहते हैं। त्रिपुर पहाड़ी भाषा में इसे 'केरां कथमा' कहते हैं। इस आख्यान को भाषान्तरित कर यहाँ दिया जा रहा है।

दोयापाथर का विवरण और श्वेत हस्ती की जन्म कथा

जिस जगह से गोमती और खोयाई नदी निकली है, जनसाधारण उसे रघुनन्दन पर्वत कहते हैं। गोमती के उत्पत्ति स्थल से पूर्व की ओर कुछ ही दूरी पर स्थित उस जगह को ''नानागोमती दोयापाथर'' कहते हैं। प्राचीन काल में यह स्थान त्रिपुर भूपति की विहार भूमि थी।

इस स्थान से कुछ ही दूरी पर पहाड़ी बस्ती के एक गृहस्थ के झोपड़ी में बैठकर एक पूर्ण गर्भवती युवती बैठकर वस्त्र बुन रही थी। वह एक बाँस के मचान पर बैठी थी। उसके मचान के नीचे एक पूर्ण गर्भवती गाय बैठी हुई थी और अलसाई सी पागुर कर रही थी। असतर्कतावश हठात् युवती का कपड़ा बुनने वाली थुरी या माकु हाथ से छूटकर नीचे गिर गया। गर्भवती युवती मचान से नीचे उतरकर माकु लेने में अलसा रही थी और नीचे लेटी हुई गाय से कहा, ''तुम जरा यह स्वीकार करो और मेरे माकु को उठाकर मुझे दे दो।'' यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि उन दिनों मनुष्य और पशु पक्षियों में आपसी वाक्यालाप होता था। युवती द्वारा अनुरोध करने पर गाय ने कहा, अगर तुम एक विषय में प्रतिज्ञाबद्ध होगी तो मैं तुम्हारा माकु उठाकर दूँगी।'' ''क्या प्रतिज्ञा करनी होगी''? युवती ने पूछा। युवती से पूछे जाने पर गाय ने कहा, ''हम दोनों ही गर्भवती हैं। हमारे में किसी को अगर पुत्र या कन्या हुई तो उन दोनों को विवाह सूत्र में बाँधना होगा। यह प्रस्ताव अगर तुम्हें स्वीकार हो तो मैं तुम्हारा माकु तुम्हें दे सकती हूँ।''

युवती ने मन में सोचा पशु के साथ मनुष्य का विवाह होना असंभव है। अतएव इसमें सम्मति प्रदान करना या न करना एक ही बात है। खासतौर से आलस्यवश गाय से कार्योद्धार करवाने के लिये सहमत हो गई और कहा, ''मैं बड़ा ही आलस्य का अनुभव कर रही हूँ। तुम माकु ऊपर उठा कर दो। मैं तुम्हारे प्रस्ताव पर सहमत हूँ और इसे पूर्ण करने के लिये मैं प्रतिज्ञा कर रही हूँ।'' यह प्रस्ताव नितांत ही अकार्य समझकर रमणी ने मन ही मन मुस्करा दिया।

कुछ दिनों के पश्चात् ठीक एक ही समय पर गर्भवती महिला ने एक कन्या संतान को जन्म दिया और गाय ने एक बछड़े को जन्म दिया। नवप्रसूता कन्या और गाय का बछड़ा दोनों मातृस्नेह से उत्तरोत्तर बड़े और पुष्ट होने लगे। लड़की समान उम्र की लड़कियों के

द्विल –231

साथ खेलती और तब गोवत्स मातृ –स्तन्य छोड़कर बालिका का अनुसरण करता एवं उसकी ओर अपलक नयनों से देखता रहता। वह एक मुहूर्त के लिये भी लड़की से दूर नहीं रहना चाहता। पड़ोसियों में बहुत सी औरतों को गाय और युवती की प्रतिज्ञा की बात याद थी। वे स्मित वदन से बालिका और गोवत्स की और उँगली उठाकर उन दोनों की प्रतिज्ञा की आलोचना करती एवं गोवत्स के व्यवहार को देख विस्मय प्रकाश करती।

क्रमशः बालिका ने किशोरवस्था में प्रवेश किया। उसने माता की प्रतिज्ञा की बात सुन रखी थी एवं गोवत्स की क्रिया कलाप भी देख रही थी। जननी की इस प्रतिज्ञा की बात क्रमशः वृद्धों की आलोचना का विषय हो उठा। युवको ने इस प्रसंग को लेकर हँसी –विद्रुप करना आरम्भ कर दिया। बालिका यह सब कुछ समझ उठी थी। वह इस विषय को लेकर लज्जित मर्म यातना के साथ किसी तरह दिन गुजार रही थी। एक ओर लोग की व्यन्जना तो दूसरी ओर गोवत्स के यह गहरे प्रेम ने उसे व्याकुल कर दिया। बालिका ने एक दिन व्याकुल चित्त से माँ से अपनी इस दशा के बारे में जब जानना चाहा तो माँ ने कहा, ''लोगों की बात तुम कानों में मत उतारो। यह असंभव है। मनुष्य के साथ क्या कभी पशु का विवाह हो सकता है?''

काल क्रम से बालिका जवानी की दहलीज पर पंहुची। गोवत्स भी पूर्वानियम से एक वृष में रूपान्तरित हुआ। अब यह वृष एक क्षण के लिये भी लड़की से अलग होना नहीं चाहता था। अपलक नयनों से युवती की ओर देखता रहता और युवती, माँ की प्रतिज्ञा की बात सोच सोच कर शर्म के मारे मरी जा रही थी। इसके अलावा लोगों का उपहास उसके लिये असहनीय हो उठा।

युवती ने सोचा आत्महत्या के अलावा इस असहनीय यातना से मुक्ति का और कोई उपाय नहीं है। एक दिन उसने चोरी से एक निर्जन जगह पर जाकर, एक आँवले की डाली पर फँासी का फंदा लगाकर आत्महत्या कर ली। इस घटना से उस वृष ने भी उन्मत्त की तरह जाकर उस वृक्ष पर सर पटक पटक कर प्राण त्याग दिया।

इसके कुछ दिनों के पश्चात् उस देश के राजा मृगया के लिये हस्तीपृष्ठारूढ़ होकर वन में गये। पर्वत के भीतर कुछ दूर जाने पर एक पत्रविहीन आँवले के वृक्ष को देखा। इस पत्रविहीन आँवले के वृक्ष के एक डाली पर दो बृहत जुड़े आँवलों को देखा। इतना बड़ा और सुन्दर आँवला, राजा ने कभी नहीं देखा था। दोनों एक ही वृंत पर होने से उसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया था। राजा ने आग्रह के साथ अपने सहचरों से कहा, ''ऐसा आँवला मैंने कभी भी नहीं देखा। दोनों फल मुझे तोड़कर दो।'' एक व्यक्ति व्यस्तता और व्यग्रतापूर्वक फल तोड़ने के लिये गया। दैवयोग से एक फल उसके हाथ से नीचे गिर गया और नीचे खड़ी राजा की हस्तिनी ने तत्क्षण ही उसे सूड़ से उठाया व उसे निगल गई। दूसरा फल राजा के हाथों में प्रदान किया गया।

द्विल –232

राजा मृगया से लौटकर संगृहीत आँवले को रानी के हाथों में देकर कहा 'ऐसा विशाल एवं सुन्दर आँवला मैंने पहले कभी देखा नहीं था। एक आँवले के पेड़ पर एक वृन्त पर दो फल लगे हुए थे। फल तोड़ते समय एक हाथ से छूटकर नीचे गिर गया जिसे हथिनी ने खा लिया। दूसरा तुम्हारे लिये लाया हूँ।' रानी ने अति प्रसन्नता के साथ उस फल को खाया।

रानी निःसन्तान थी। आँवले को खाने के कुछ दिनों के पश्चात् रानी को गर्भ का संचार हुआ। इस घटना से राजा और प्रजा सभी के आनन्द की सीमा नहीं रही। काल पूर्ण होने पर रानी ने अपूर्व सुन्दरी एक कन्या प्रसव किया। राज्य में आनन्द की लहर दौड़ गई।

राजा की हथिनी भी रानी के साथ ही गर्भवती हुई थी। उसके गर्भकाल पूर्ण होने पर सर्व सुलक्षणपूर्ण एक श्वेत बच्चे को जन्म दिया। सुदुर्लभ सफेद हाथी राज्य में जन्म लेने पर सभी ने इसे शुभलक्षण और सौभाग्य का चिन्ह माना।

राजनन्दिनी एवं हस्ती –शावक दिनों दिन बढ़ने लगे। हस्ती –शावक हमेशा राजकुमारी के साथ साथ रहता था, साथ छोड़ने पर हमेशा अनिच्छा प्रकाश करता था। हस्ती शावक के इस तरह की अनुरक्ति देखकर सभी विस्मित एवं आनन्दित होते थे।

राजकुमारी ने अब किशोरावस्था में पदार्पण किया। सहचरियों के साथ क्रीड़ा कौतुकादि के लिये समय समय पर वह अन्तःपुर से बाहर भी विचरण करती थी। श्वेत हस्ती शावक भी उसके साथ दौड –धूप करता था। एक दिन राजकुमारी को अकेले विचरते देख हाथी के बच्चे ने आकर, अपने सूंड से राजकुमारी को पीठ पर बैठाकर, भाग गया और गोमती के दोयापाथर में उपस्थित हुआ। वहाँ उसने वन्यलताओं की सहायता से एक कुटिया का निर्माण कर वहीं पर राजकुमारी को रखा। प्रतिदिन सयत्न से फूल मूलादि लाकर राजकुमारी को देता और राजकुमारी उसी से अपनी क्षुधा की निवृति करते लगी।

इधर राजकुमारी के खो जाने पर राज्य में कोहराम मच गया। चारों और अनुसन्धान के लिये लोग दौड़े। किन्तु कहीं भी राजकुमारी का पता नहीं चला। किसी प्रधान व्यक्ति के द्वारा देखा गया कि श्वेत हस्ती भी हस्तीशाला में नहीं है। बहुत खोजबीन पर भी कहीं भी उसका पता नहीं चला। राजकुमारी के प्रति इस हाथी का प्रबल अनुराग किसी के लिये अविदित नहीं था। सभी ने समझा कि यह हाथी का ही कार्य है। वहीं राजकुमारी को लेकर भाग गया है।

तब पुनः अनुसंघान के लिये चारों ओर आदमियों को भेजा गया। उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर लोगों को भेजा पर कहीं भी उनका पता नहीं मिला। राजकुमारी तो क्या श्वेत हस्ती की कोई भी खबर नहीं मिली और लोग लौट आए। पूर्व की ओर गये लोगों ने पाया कि उन्होने हाथी का पदचिन्ह देखा है और बहुत दूर अग्रसर होने पर भी

द्विल –233

हाथी और राजकुमारी का पता नहीं चला। उनका अनुमान है कि वह राजकुमारी के साथ दोयापाथर की ओर गया है। किन्तु वह स्थान बहुत ही दुर्गम है और वहाँ पर नहीं पहुँच पाने पर वे लौट आये हैं।

इसके पश्चात् राजा ने घोषणा की कि जो व्यक्ति सफेद हाथी का वध करके राजकुमारी का उद्धार करके लायेगा, राजा वाणप्रस्थ अवलम्बन के पूर्व अपना आधा राज्य और राजकुमारी को उसके हाथ अर्पण कर देंगे। इसके अलावा राजा के वाणप्रस्थ अवलम्बन के बाद वही व्यक्ति समग्र राज्य का अधीश्वर होगा। इस घोषणा के पश्चात् बहुत दिन व्यतीत हो गये। किन्तु राजकुमारी की प्राप्ति की आशा से कोई भी व्यक्ति इस दुःसाहसिकता पूर्ण कार्य के लिये आगे नहीं बढ़ा। तब राजा और रानी हताश हृदय से भगवान से अपनी मृत्यु कामना करने लगे।

राजा का उद्विग्न चित्त किसी भी तरह धैर्य धारण नहीं कर रहा था। दिन आता, चला जाता, दुःखमयी शर्वरी सारे जगत को तमसावृत करके कितनी बार आई और चल गई –किन्तु राजकुमारी का सन्धान नहीं मिला। रानी के अश्रु धारा का विराम नहीं, राजपुरी के सभी शोक विह्वल थे – गहरे शोक की छाया राज्य में छाई थी। एक मात्र राजकुमारी के बिना सारा राज्य जैसे निर्जीव सा हो पड़ा था।

ऐसे ही एक दुःसमय में भूतुया और रांगिया नाम के दो व्यक्तियों ने निवेदन किया "हम लोग श्वेत हस्ती का वध करके राजकुमारी का उद्धार करेंगे लेकिन हमारे लिये छह मास का खाना राज्यसरकार को निर्दृष्ट स्थान पर पहुँचा देना होगा"। राजा ने हृष्ट –चित्त से इस प्रस्ताव पर सहमति प्रकट की और रसद इत्यादि की व्यवस्था के लिये मंत्री को आदेश प्रदान किया। तब रांगिया और भूतुया ने पाँच हथियार बाँध कर बहुत से लोगों के साथ दोयापाथर की ओर प्रस्थान किया।

कुछ दूर जाने पर छोटे आकार के हाथी के पग चिन्हों को देखा। पग चिन्हों को देखकर चलते चलते बहुत दूर जाने पर पग चिन्ह बड़े आकार के दिखाई देने लगे। वे समझ गए कि पहले जो पग चिन्ह दिखाई दिये थे वे पग चिन्ह छोटे थे अर्थात वह हाथी तब छोटा था और बाद में वह बड़ा हुआ तब उसके पग चिन्ह बड़े दिखाई देने लगे। हाथी राजकुमारी को ले जाते समय, पूर्ण वयस्क नहीं हुआ था। इससे यह भी पता चला कि गोमती दोयापाथर के रास्ते में ही वह पूर्ण वयस्क हुआ था और इसी वजह से उसका पदचिन्ह क्रमशः बृहदाकार हुआ था। इससे यह भी ज्ञात हुआ कि दोयापाथर पहुँचते उसे दीर्घ समय लगा था। वे बहुत कष्ट सहते हुये दोयापाथर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर सभी लोगों को लौटा दिया। केवल भूतुया और रांगिया एक छोटा बाँस का मचान बनाकर ऊपर से घास फूस की छावनी बनाकर रह गये।

इनमें रांगिया ही बुद्धिमान और कार्यक्षम था। भूतुया उसके निर्जन प्रवास का साथी मात्र था। रांगिया प्रतिदिन श्वेत हस्ती और राजकुमारी के सन्धान में निकलता। भूतुया प्रहरी के रूप में कुटिया में रहता। रांगिया जाते समय विशेष

द्विल –234
सावधान करके कह जाता यदि कोई आकर ''कट् कट् जांगे'' कहे तब तुम कहोगे ''रांगिया भूतुया जांगे'' रांगिया रोज जाते समय यह बात भूतुया को कहकर जाता। एक दिन रात में दो पहर के समय रांगिया की अनुपस्थिति में अकस्मात एक भीषण दर्शन राक्षसी ने भूतुया की कुटिया के सामने आकर कहा ''कट् कट् जांगे'' भूतुया ने पहले की उपदेश वाणी के अनुसार उत्तर दिया, ''रांगिया भूतुया जांगे।'' यह सुननां था कि राक्षसी भय से भाग गई। कुछ समय पश्चात् चुपके से आकर पुनः उसने पूछा, ''कट् कट् जांगे'' इस बार भी उत्तर हुआ, ''रांगिया भूतुया जांगे।'' राक्षसी भय –विह्वल चित्त से विकट चित्कार करती हुई अरण्य में अदृश्य हो गई।

इस बार भूतुया ने सोचा, रांगिया मेरा छोटा भाई है। उसका नाम पहले लेने से राक्षसी भय से भाग गई। मेरा नाम पहले कहने से वह और भी भयभीत होगी। यदि राक्षसी पुनः आये तो मैं अपना नाम पहले लूँगा। राक्षसी के चरित्र के बारे में भूतुया को कुछ मालूम नहीं था एवं रांगिया जो देवता का औरस जात संतान है यह भी उसे ज्ञात नहीं था। इसी कारणवश वह अपना नाम पहले कहने की कल्पना करने लगा। वह यह सब सोच ही रहा था कि राक्षसी ने आकर पूछा, ''कट् कट् जांगे'' तुरंत भूतुया ने उत्तर दिया, ''भूतुया रांगिया जांगे''। यह सुनते ही राक्षसी गर्जन कर उठी एवं क्रोध से भूतुया को कुटिया के बाहर लाकर उसकी जीभ को काट दिया। भूतुया भय से संज्ञाशून्य हो गया। उसे आस पास की झाड़ –झुंखारों में उठाकर फेंक दिया और पाताल पुरी में चली गयी।

इस ओर रांगिया ने बहुत से अनुसन्धानों के बाद सफेद हाथी को खोज ही लिया। हाथी एक सरोवर में ख़ुशी मन ने स्वच्छ और स्निग्ध जल से सूड़ द्वारा अपने सर्वांग में सिंचन कर रहा था और सरोवर में उगे कोमल मृणालों का भक्षण कर रहा था। वह रांगिया का देखकर ही समझ गया कि उसका प्रबल प्रतिद्वदी उपस्थित हुआ है। तब उस हस्ती ने पूछँ उठाकर, दांत को सामने किये हुए घोर चिग्घाड़ कर रांगिया पर आक्रमण किया। रांगिया पहले से तैयार था। वह हाथी के सामने जाकर अस्त्राघात करने लगा। अविराम सात दिनों तक घोर संग्राम हुआ। इस घोर युद्ध में श्वेत हाथी की मृत्यु हुई। रांगिया ने उसके दोनों दांतों का उखाड़ कर उसे लेकर अपनी कुटिया में लौट आया।

रांगिया ने कुछ दूरी से अपनी कुटिया की भग्नावस्था देखकर समझा जरूर कोई अनर्थ हुआ है। उसने कुटिया में आकर देखा कि भूतुया नहीं है। उस वन में राक्षसी के आवागमन की बात वह पहले से ही जानता था। भूतुया राक्षसी के हाथों मारा गया है या राक्षसी उसे पकड़कर कहीं ले गई है यह बात समझते देर न हुई। बहुत सोच विचार कर उसने एक जगह गढ्ढा खोदकर दोनों दांतों को रखा।

द्विल –235

इसके पश्चात् रांगिया भूतुया की खोज में निकला और खोजते हुए देखा कि एक गढ़े से चिटियाँ निकल रही हैं एवं गढ़े के किनारे सूखे हुए पत्तों पर खून की कुछ बूँदें पड़ी हुई हैं। यह देखकर उसे संदेह हुआ और दो हाथ मिट्टी खोदने पर उसे जीभ का कटा हुआ टुकड़ा मिला। रांगिया समझ गया कि यह भूतुया की जीभ का टुकड़ा है और राक्षसी ने काट कर गाड़ दिया है। बहुत खोजने पर भूतुया को बेहोशी की हालत में झाड़ियों के भीतर पाया गया। यत्न के साथ सेवा करने पर उसे होश आया। किन्तु उसमें उच्चारण की शक्ति नहीं थी। तब रांगिया ने उस कटी हुई जीभ को हाथ में लेकर कहा, ''अगर मैं प्रकृत रूप से देवता के औरस से जन्मा हूँ तो कभी भी हमारी बात व्यर्थ नहीं हो सकती। भूतुया की कटी हुई जीभ निश्चय ही पूर्ववत् जुड़ जाएगी और यह उपाख्यान चिर प्रसिद्ध होकर रहेगा। रूग्ण, विकलांग आदि कोई भी व्यक्ति इस उपाख्यान को कहकर देवता की पूजा करेगा वह निश्चय ही आरोग्य होगा।'' यह कहकर उसने चन्द्र और सूर्य को साक्षी मानकर भूतुया की जीभ को उसके मुँह के भीतर के अंश के साथ सटा दिया और उसी क्षण उसकी कटी जीभ जुड़ गई और वह पहले की तरह स्वाभाविक हो गया। भूतुया ने अपनी दुर्गति का सारा विवरण रांगिया को सुनाया और एक खांगड़ा की झाड़ी की ओर ऊँगली से इशारा करके कहा कि इस झाड़ी के भीतर एक सुरंग है। राक्षसी का मैंने उसी सुरंग के भीतर जाते देखा है। मुझे राजकुमारी की खोज में जाना पड़ेगा। तुम यहीं मेरा इंतजार करना। मैं जब तक लौट कर नहीं आता, तुम कहीं मत जाना। अब तुम्हें किसी तरह की आशंका नहीं है'' –यह कहकर रांगिया चला गया

इसके पश्चात् रांगिया ने खांगड़े की झाड़ी को हटाकर देखा कि यहाँ एक बृहत सुरंग है एवं धिलालता सुरंग के बाहर एक पेड़ को लपेटी हुई है। उस लता के सहारे ही उस सुरंग में आया जाया सकता था। रांगिया ने उसी लता के सहारे सुरंग में प्रवेश किया। कुछ दूर नीचे उतरने पर उसने देखा कि बड़ी अट्टालिकाओं से भरी एक समृद्ध पुरी यहाँ विद्यमान है। सुसज्जित उद्यान, स्वच्छ सलिल सरोवर और गगन स्पर्शी इन सभी अट्टालिकाओं को देखकर उसने समझ लिया कि यह एक सुबृहत राजपुरी है। रांगिया ने एक महल की तरह की अट्टालिका में प्रवेश किया और हर कमरे में गया पर कहीं भी मनुष्य का दर्शन नहीं हुआ। अंत में एक कोठरी में जाकर देखा कि एक परम् सुंदरी युवती अकेली पलंग पर बैठकर व्याकुल भाव से रो रही है। तब रांगिया ने धीरे धीरे युवती के करीब जाकर पूछा, ''सरले, तुम कौन हो? एवं क्यों इस जनमानवहीन पाताल पुरी में अकेली बैठकर रो रही हो?'' अकस्मात् मनुष्य के आगमन से युवती चौंकी और आश्वस्त हुई। दोनों हाथों से अपनी आँसुओं को पोंछकर वीणा मधुर

द्विल –236

कंठ से कहा, ''मैं बहुत दुर्भागिनी हूँ, राजकन्या होकर भी मनुष्य की असहनीय भयंकर दुख भोग रही हूँ।'' युवती का सारा वृतांत सुनकर रांगिया ने समझा यही उसकी वह राजकुमारी है जिसे वह खोज रहा है। तब उसने सान्त्वना देकर उसे कहा, ''तुम्हें अब कोई भय नहीं है। मैं राक्षसी का वध कर तुम्हारा उद्धार करूँगा। राक्षसी किस समय आयेगी, मुझे बताओ।'' कुमारी ने कहा ''राक्षसी के आने में और विलम्ब नहीं है, किन्तु उस भीषण मूर्ति राक्षसी को तुम क्या वध कर सकोगे?'' यह कहकर राजकुमारी ने रांगिया की आँखों में अपनी कातर नजरों से देखती हुई व्यथित प्राणों से अनिमेष नयनों से उसे देखने लगी। उसकी उस निराश दृष्टि ने रांगिया के हृदय को चंचल कर दिया। उसने अपने प्रबोध वाक्यों से राजकुमारी को सान्त्वना देने का भरसक कोशिशें की।

ठीक शाम के समय राक्षसी गंभीर गर्जना करती हुई आने लगी। उसके आने से भयंकर तूफान सा आ गया। रांगिया पहले से ही सतर्क था। राक्षसी के पुरी में प्रवेश करते ही भीषण वेग से उस पर आक्रमण किया। बहुत देर तक घोर संग्राम के बाद राक्षसी पराजित हुई। रांगिया ने तीक्ष्ण अस्त्र द्वारा उसका सिर काट लिया।

उसके बाद रांगिया राजकुमारी को साथ लाकर भूतुया के साथ मिला एवं तुरंत दोयापाथर त्याग कर राजकुमारी और भूतुया के साथ राजधानी की ओर प्रस्थान किया। श्वेत हस्ती के दोनों दांतों को मिट्टी के गढ़े से निकाल कर साथ ले लिया।

अनेक गिरि कन्दराओं, गुहाओं को पार करते हुए, सरोवरों को पार कर बहुत दिनों के पश्चात् राजधानी में लौट आये। राजा –रानी अपनी खोई हुई बेटी को पाकर आनन्द सागर में डूबने लगे। रानी ने कन्या को गोद में बैठाकर बार बार मुख चुम्बन करने लगी। राज्य आनन्द विभोर हो उठा था। घर घर में मांगलिक और आनन्द आमोद प्रमोद के अनुष्ठान होने लगे।

रांगिया ने राजा को प्रणाम कर श्वेत हस्ती के दोनों दांतों को उपढौकन/भेंट स्वरूप प्रदान किया। राजा ने हृष्ट चित्त से रांगिया को आलिंगन कर कहा, ''तुमने मुझे पुनः जीवित किया है। इसके पुरस्कार स्वरूप अपनी प्राण तुल्य दुहिता के साथ तुम्हें आधा राज्य अर्पण कर रहा हूँ।'' इसके बाद विशाल समारोह में रांगिया के साथ राजकुमारी का विवाह सुसम्पन्न हुआ। भूतुया को राजा के परिषदों में स्थान मिला। राजा रानी, कन्या और जामाता को लेकर सुख के साथ दिन गुजारने लगी।

इस तरह कुछ साल व्यतीत होने पर राजा भोगवासना से वैरागी हो उठे। तब उन्होने जामाता के हाथों में सारे राज्य का राज्यभार सौंपकर भगवद् आराधना के निमित्त सस्त्रीक वन की ओर प्रस्थान किया। रांगिया राजकुमारी के साथ सुख से राजत्व करने लगा।

द्विल –237

यही उपाख्यान की मूलवस्तु है। त्रिपुरा के पार्वत्य इलाके में अगर कोई रूग्ण, पंगु या चलने फिरने की शक्ति खो बैठता है, उसकी कल्याण कामना से यह आख्यान कहकर पूजा की जाती है। पार्वत्य अरण्य स्थित घिलालता जो पेड़ से लिपटी हो उसकी जड़ की पूजा की जाती है। पूजा के समय दो आदमियों से अधिक का रहना या जाना निषिद्ध है। पूजा समाप्त करके वापस आते समय पेड़ से लिपटी घिलालता के सात टुकड़े करके रखा जाता है। सरल विश्वासी रोगियों को इस पूजा द्वारा उनकी उत्कृष्ट व्याधियों के हाथ से निजात मिलते देखा गया है। अब भी त्रिपुर जातियों में पूर्णमात्रा में इस पूजा का प्रचलन है।

प्राचीन आख्यानों का इस तरह पल्लवित होने पर भी चिंता करके देखने पर उसमें हमें एक सत्य का साक्षात्कार होता है। इस आख्यान से ज्ञात होता है कि त्रिपुरा राज्य में एक समय श्वेत हस्ती का अस्तित्व था। यह राज्य ब्रह्मदेश के समीपवर्ती है। ब्रह्म और श्याम देश श्वेत हस्ती के लिये विख्यात है। इस हालत में त्रिपुरा में श्वेत हस्ती का अस्तित्व असंभव या अविश्वसनीय नहीं है। खास तौर से राजमाला की उक्ति से भी इस विषय के प्रमाण मिले हैं।

श्वेत हस्ती के बारे में पौराणिक मत अनेक पौराणिक ग्रंथों में हस्ती के बारे में थोड़ा बहुत विवरण तो मिलता हैं। किसी किसी ग्रंथ में हस्ती विज्ञान का विवरण विस्तृत रूप से दिया गया है। प्राचीन पण्डितों ने हाथियों को आठ भागों में बाँटा है। उनमें श्वेत हस्ती को ऐरावत आख्या दी गई है। देवराज इन्द्र का ऐरावत सफेद वर्ण का था। संभवतः इसी कारणवश श्वेत हस्ती को इस तरह की आख्या दी गई है। इस बारे में प्राचीन मत नीचे दिया जा रहा है –

गजानामष्टध्यभेदः संक्षेपण प्रकाश्यते।
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽजनः।।
पुष्पदंतः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिगगजाः।
एषांवंश प्रसूतत्वात गजानामष्टजातयः।।

पराशरसंहिता।।

ऐरावत, पूण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम और सुप्रतीक इस तरह के आठ हस्तियों को दिग्गज् कहा जाता है।

यह हो गया हाथी की श्रेणी या जाति विभाग। इसके पश्चात् प्रत्येक श्रेणी का लक्षण निर्णीत हुआ है। उनमें ऐरावत ही सर्वश्रेष्ठ है। ऐरावत के लक्षण के बारे में लिखा गया है –

ये कुंजराः पाण्डर सर्वदेहाः सुदीर्घ दन्ताः सितपुष्पदन्ता।
अलोमशा अल्पभूजो बलाढ्या महाप्रमाणा लघुपुष्ट लिंगाः।
क्रुधाः समीके मृदवोऽन्यकाले लघृम्बुपाना बहुलो प्रदानाः।।
विस्तीर्ण दानांस्तनुलोमपुच्छा ऐरावतस्याभिजन प्रसूताः। आदि

द्विल –238

जो हस्ती धवल वर्ण है, लोमशुन्य है, अल्पभोजी अथवा बलशाली है, सुवृहत है, क्षुद्र पर स्थूल लिंग वाला है, युद्ध काल में कोपन स्वभाव एवं अन्य समय नम्र स्वभावयुक्त है, अल्प जल पीने वाला पर अधिक मदस्रावी है और जिसके पूँछ के अग्रभाग सुक्ष्म लोम युक्त हैं –वही ऐरावत जातीय हाथी है।

इससे जाना जाएगा, धवल हस्ती को ही ऐरावत श्रेणी में रखा गया है। श्वेत हस्ती सुदुर्लभ है। यह हस्ती देवताओं का पूजित होने वाला एवं सौभाग्य का चिन्ह स्वरूप है। राजा भी इसकी पीठ पर नहीं चढ़ते। श्वेत हस्ती के विषय में ज्ञातव्य बहुत सारी बातें इसके पहले कही जा चुकी है। यहाँ पर उसकी पुनः आलोचना की कोई आवश्यकता नहीं।

राजा रामगति का आख्यान

इसके पहले पृष्ठ संख्या 15 में पाद टीका में राजा रामगति के आख्यान की प्रतिश्रुति दी गई है। राजा रामगति का लीला क्षेत्र खण्डल परगना था। यह परगना पहले त्रिपुरा राज्य के भीतर था। काल प्रभाव से वह मुगलों के हाथों में और फिर ब्रिटिश के राज्य मुक्त हुआ। इस लहर के धन्यमाणिक्य खण्ड में खण्डल वासियों के जो वृतांत मिलते है, इससे उन्हीं कुचक्री एवं कूटबुद्धि सम्पन्न कहकर ही जाना जाता है। बाद में इन्हें बड़ा ही सरल तथा अंधविश्वासी कहा गया है और इसके प्रमाण स्वरूप रामगति का आख्यान यहाँ दिया जा रहा है।(1)

खण्डल, दक्षिणशिक और चौदह ग्राम आदि दक्षिण अंचल के बहुत से स्थानों में एक सुदीर्घ ग्राम्य कहानी ग्राम्य भाषा में रामगति को लेकर उसकी रचना हुई है। कविता को हम नीचे दे रहे हैं :–

रामगति राय सिद्धाबाला,
गौराकामार तार चेला,
तारा करे ओना पेना,
प्रभु आनि बाड़ी।।
जखन प्रभु आनिया छिलो,
राधाकान्त ठाकुर छिलो,
तार बाड़ी प्रभुरे निलो,
बोसते दिलो गोशाला घरे।।

---

(1) यह आख्यान, बिलोनीया महकमें में मजिस्ट्रेट और कलेक्टर श्रद्धेय सुहृद श्रीयुत कामिनी कुमार सिंह महाशय ने खण्डल परगना के काली नगर निवासी 74 साल के पूर्ण चन्द्र वैद्य की सहायता से संग्रह किया गया है। उन वैद्य महाशय का कहना है उनके पाँच या छह साल की उम्र में राजा रामगति की घटना हुई थी।

द्विल –239

विल्वपत्र नाहि छिलो,
यज्ञ–काष्ठ आनि दिलो,
        तारा सबे कोरे यज्ञ–धुनी।।
प्रभु बोले सती आनि देओ मोरे,
सती आनि नाही दिले, प्रभु याबे पाताले,
        भक्त सबे कोरे हाय रे हाय,
धनीराम पाटारी(2) छिलो
सती आन्ते लड़ दिलो,
सतीर पाये धरि,
        भक्त सबे कोरे गड़ागड़ी।।
'आयनी' रे पाइले भूते
गांग फिरार(3) उत्तर पाड़े,
तिनशत मानुषेर
        जात मारलो सुरा कानार पूते।।
एक पातिल सिन्नी रान्धे,
राँड़ी बुड़ी बसि कान्दे,
        प्रभु मोरे सिन्नी ना देखाइलो।
खोयाजेर पुत जाय,
हिलाल गाजी नाम ताय,
        खेजुड़िया ग्राम शालार बाड़ी।।''

इस कविता से एवं स्थानीय अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि कम से कम सत्तर साल पहले (2000ई से एक सौ अड़तीस साल से अधिक – हिन्दी अनुवादक) खण्डल परगना के अधीन कालिकापुर गाँव में रामगति के पुरोहित राधाकान्त ठाकुर का करलिया टिला में घर था। ये सभी स्थान पहले त्रिपुरा में थे। इस समय (बांग्लादेश – हिन्दी अनुवादक) नोया खाली जिला स्थित फेनी महकमा के अधीन हैं। यह जगह त्रिपुरा के बिलोनीया महकमे के पश्चिमउत्तर कोने पर एक मील की दूरी पर स्थित है। रामगति जाति के कायस्थ थे। उनके पिता का नाम था सुराकाना। संभवतः उनकी एक आँख खराब थी इसलिये उन्हें काना कहा गया है। उनका प्रकृत नाम था सुरमणि अथवा सुरचन्द्र।

कुछ साधारण श्रेणी के लोगों पर रामगति का विशेष प्रभाव था। ''गौरा कामार'' नाम का एक व्यक्ति उनका प्रधान चेला था। इस कविता की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है। 'सिद्धावाला' एंव 'चेला' शब्द द्वारा ऐसा लगता है जैसे रामगति को किसी प्रकार के धर्मभाव के कारण यह प्राधान्य उन्हें मिला था। इस समय भी किसी

---

(2) पाटारी – ग्राम तहसील का गुमास्ता।
(3) गांग फिरा –नदी अपनी गतिपथ परिवर्तन कर जब दूसरे पथ से बहने लगती है, पहले के जो सूखे हुए गढ़े हैं उसे गांग फिरा कहते हैं।

द्विल –240

किसी गाँव में जैसे त्रिनाथ का मेला, किशोरी भजन आदि के उपलक्ष में सम्प्रदायों की सृष्टि होती है, रामगति ने भी उस तरह एक दल का गठन किया था। अवस्था के परिप्रेक्ष्य में यही समझा जाता है।

रामगति के गुरू का नाम एवं भजन प्रणाली का विषय इस समय नहीं जाना जाता। गुरू के आगमन के उपलक्ष में रामगति के घर में एक बड़ा समारोह हुआ था। उसके पुरोहित राधाकांत ठाकुर ने भी इस उत्सव में योगदान किया था। उनके द्वारा अपने प्रभु को अपने घर ले जाने की बात भी कविता में पाई जाती है। किन्तु घर में जाकर गुरू के बैठने की जगह गौशाला में हुई थी। इस उक्ति के द्वारा प्रभु की जाति और मर्यादा पर कटाक्ष किया गया है, ऐसा ही आभाष मिलता है। जो भी हो रामगति के भक्त प्रभु को लेकर अतिव्यस्त हो गये। उनके पूजा की सामग्रियों का संग्रह, यज्ञधूनी प्रज्ज्वलन आदि सब कुछ हुआ। तब प्रभु ने कहा, ''मुझे सती लाकर दो नहीं तो मैं पाताल में प्रवेश करूँगा।''

प्रभु की आज्ञा के पालन का उपाय न देखकर उनके पाताल प्रवेश के भय से भक्तों में हाहाकार ध्वनि हुई। तब धनीराम पाटारी, सती लाने के लिये दौड़ा। पाटारी लोग किस श्रेणी के प्राणी थे एवं निम्न समाज में उनका प्रताप कितना अधिक था, यह आज भी देखने को मिलता है। उनका कोई कार्य असाध्य नहीं था। इसलिये धनीराम सती संग्रह के कार्य में साहस के साथ आगे बढ़ा होगा। ''आयनीरे पाइलो भूते'' (आयनी को भूत ने पकड़ा – हिन्दी अनुवादक) उक्ति से आगे का सारा विवरण समझा जाता है। धनीराम ने आयनी को ही ''सती'' का सुदुर्लभ आसन प्रदान कर उसे धन्य किया था।

गुरू भक्तों की सेवा से संतुष्ट होकर जाते समय कह गए, ''मैं फिर आऊँगा किन्तु तब भिन्न रूप धारण करके आविर्भूत होऊँगा। अन्तरंग भक्तों को छोड़कर कोई मुझे पहचान नहीं सकेगा।''

रामगति लकड़हारा था। पार्वत्य जंगलों से रोज लकड़ी लाकर लोकालय में बेचता था। वह एक दिन लकड़ी को बोझा लाते समय एकान्त होकर वन में विश्राम करते समय जोरों से भगवान का नाम ले रहा था। उस समय जंगल के भीतर से किसी दुष्ट आदमी ने छिप कर कहा, ''रामगति, तेरे दुःख का अवसान हो गया है। तू बहुत जल्द राजा होगा''। इस वाक्य को रामगति ने भगवान का प्रत्यादेश माना और उसके अन्तरंग मित्र गौरा कामार (लौहार) से सारी बातें बताई। इस कामार (लौहार) के द्वारा यह बात सर्वसाधारण में प्रचारित हो गई।

इधर रामगति का दल क्रमशः बड़ा और मजबूत हो गया। साथ साथ उसका प्रभाव भी बढ़ने लगा। देवता का प्रत्यादेश समझ कर ऐसी हालत हो गई कि रामगति के भक्त उसे 'राजा रामगति' कहकर बुलाने लगे एवं बाँस से

द्विल –241

बनाये गए सिंहासन पर उसे सस्त्रीक बैठाकर उसकी अभिषेक क्रिया भी सम्पन्न की। श्रेष्ठ चेला गौरा कामार (लौहार) उसका प्रधान मंत्री बना। धनीराम राजस्व सचिव हुआ। कालिकापुर में उसका राजपाट स्थापित हुआ था। धनीराम ग्राम पाटारी (पटवारी) था। यह हम पहले भी कह चुके हैं। गौरा कामार का परिचय नहीं मिलता। पहले जिस 'आयनी' की बात कही गई है उस युवती ने भावाविष्ट होकर प्रतिज्ञा किया कि वह अविवाहित रहेगी। गुरूजी के आविर्भूत होने पर (रामगति के गुरू) वह उन्हें स्वामी रूप में वरण करेंगी।

इस तरह से भक्त वृन्दों में कुछ दिन राजा रामगति के राजत्व चलने के पश्चात् किसी भीख माँगने वाले फकीर ने भीख मांगते घूम फिर कर राजा रामगति के घर के सामने आया। इस फकीर का नाम था हिलाल गाजी। वह छागलनाइया थाना के अन्तर्गत खाजुड़िया गाँव निवासी खोयाज मुल्ला का बेटा था। हिलाल गाजी अपंग था एवं दुर्भाग्य से अदृष्ट के बिड़म्बना के फलस्वरूप भिक्षावृति ही उसकी एक मात्र जीविका थी। इसे देखकर किसी किसी के मन में शक हुआ कि गुरूजी (रामगति के गुरू) चतुराई करने के लिये इस भेष में आविर्भूत हुए हैं। यह खबर सारे गाँव में फैल गई। फकीर बेचारा भला अब जाये तो कहाँ जाये। राजा रामगति और उनके भक्तों ने दल बल के साथ फकीर को जाकर पकड़ा और यत्न के साथ उसे घर ले आए। कोई उसके पैर पर लोट कर प्रणाम कर रहा है, कोई हवा कर रहा है, कोई पद सेवा करके अपना जीवन सार्थक कर रहा है। उसे लेकर छीना झपटी शुरू हो गई। विपन्न हिलाल गाजी ने त्राहि त्राहि चीत्कार करते हुए बार बार अपना आत्म परिचय दिया। अपने को छुड़ाने के लिये बहुत सी साध्य साधना किया, किन्तु किसी तरह कृत कार्य नहीं हो सका। वह जितना ही अपना असली परिचय देकर छूटना चाहता था, भक्त समाज उसे उतना ही अधिक जकड़ने की कोशिशें करता था। भक्तों ने सोचा, गुरूदेव छलना करके उन्हें वंचित करना चाहते हैं। हिलाल गाजी बहुत कोशिशों के बावजूद भी जब छुटकारा नहीं पा सका तो सोचा शायद यही नियति की इच्छा है, खुदा की इच्छा से ही यह सब हो रहा है। अतएव अब चुप रहना ही अच्छा है।

तब सभी ने मिलकर प्रभु को नहला कर नव वस्त्र पहनाया एवं आसन पर बैठाकर अर्चना करना शुरू किया। गुरू पद पर उत्सर्ग कर देने वाली आयनी को लाकर उसके बायीं ओर बैठाया। एक हांड़ि सिन्नी प्रसाद बनाया गया और गुरूदेव को भोग निवेदन किया और उनके खाये हुए प्रसाद का जूठन खाकर अपने को धन्य और अपने जीवन को सार्थक बनाया।

राजत्व की सीमा में ही भक्तों को सीमाबद्ध रखने से रामगति को तृप्ति नहीं हो रही थी। चारों ओर प्रभाव विस्तार की चेष्टा होने लगी। उसके दल के अत्याचारों से आस पास के जन समाज में विरूद्ध प्रतिक्रिया हुई। थोड़े दिनों में रामगति के राजत्व की कहानी राजपुरूषों के कानों तक गई।

द्विल –242

गुरु हिलाल गाजी के रामगति के घर में रहते समय अकस्मात एक दिन पुलिस गुरूजी के साथ राजा, रानी, पात्र मित्र सभी को गिरफ्तार करके ले गई। रामगति के राजत्व का यहीं अंत हो गया। पुलिस व धर्मध्वजी ने रामगति को संपारिषद धर्माधिकरण में भेज दिया।

यह खबर सुनकर हिलाल गाजी का भाई उसकी रक्षा के लिये आया एवं बहुत सी कोशिशों के पश्चात् पृकट तथ्य उद्घाटित होने पर हिलाल गाजी को मुक्ति मिली। रामगति और उसके मुख्य चेलों को कारादण्ड हुआ। इनके विरूद्ध क्या अभियोग दायर किया गया था, इसका पता नहीं चला। किसी किसी का अनुमान है कि इनके विरूद्ध राज द्रोह का अभियोग दायर किया गया था।

रामगति एवं उसके अंतरंग भक्तगणों को हिल्लाल गाजी के प्रसादी सिन्नी को खाने की वजह से समाज–च्युत किया गया था। भक्तों को छोड़कर और कम से कम तीन सौ लोग भी इसी कारण से समाज–च्युत हुए थे। एक सुयोग देखकर कुमिल्ला से एक क्रिश्चियन पादरी ने आकर उनमें से अनेक लोगों को ईसाई धर्म में दीक्षित किया था। उनके वंशज अब भी कुमिल्ला नगरी में जीवन यापन कर रहे हैं। जिन लोगों ने अकस्मात किसी झोंकवश प्रसाद ग्रहण किया था उन्हें प्रायश्चित करा के पुनः समाज में ले लिया गया। कोई कोई समाज–च्युत होकर ही रह गया।

राजा रामगति की शेष परिणति की बात कोई नहीं कर सकता। अतएव उसका विवरण अब यहाँ देने की कोई जरूरत नहीं है।

विषलता की उत्पत्ति

राजमाला के धन्यमाणिक्य खण्ड में लिखा गया है –

दुई प्रहरे खनिलेक ताते एक दीघी।	दो प्रहर में खनाया वहा एक पुष्करिणी।
ना खाय गोमतीर जल विष दिबो लागि।।	विष मिलाया गोमती में, न पिये गोमती का पानी।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ

अर्थात "दो प्रहर में वहाँ एक तालाब का खनन किया। गोमती नदी में विष मिला दिया गया है इसलिये नदी का पानी नहीं पीते थे।

पठान सेनापति हैतन खाँ द्वारा त्रिपुरा आक्रमण के उद्देश्य से गोमती नदी के किनारे अपनी छावनी स्थापित करने से उसके सैन्यों का विनाश करने के लिये त्रिपुर सेनाओं ने गोमती नदी के पानी में विषलता को मिला दिया था। यह विषलता त्रिपुरा के पहाड़ों में उत्पन्न होती है। पहाड़ी जाति के लोग इस लता को पीस कर नदी में या पर्वत के भीतर के सरोवर आदि में फेंक देते हैं। कुछ समय के पश्चात् छोटी बड़ी हर तरह की मछलियाँ विषाक्रांत हो मर कर पानी की सतह पर आ जाती हैं। यह विषलता इतनी भयानक होती है कि इसका रस पेट में जाने पर या किसी तरह शरीर में

द्विल –243

जाने पर प्राण नाश की आशंका हो जाती है। उन दिनों युद्ध में धनुर्बाण का प्रयोग होता था। उस समय कुकि आदि पहाड़ी जातियाँ तीरों में इसका रस लगाकर शत्रु के ऊपर प्रयोग करती थी। इस समय भी मछली मारने के लिये इसका प्रयोग होता है।

युवराज कृष्णमाणि खुचुं जाति के कुकियों के साथ युद्ध के समय इस विषलता के प्रभाव से मृतप्राय हो गये थे। उस समय जयन्त चन्ताई ने विषलता के उत्पत्ति का जो वर्णन किया है और इस स्थान पर अन्य कथा न कह कर उसे ''कृष्णमाला'' में उसे यथा रूप से देना ही सर्वतो भाव से संगत सोचता हूँ वह है –

सुनिया विस्मय मने होइलो राजार।
जयंत चंताई पाशे(1) पूछे(2) आरबार।।
किंचित होइया घाव युवराज पाय।
मूर्छित होइलो केने विषेर ज्वालाय।।
बोलो एई हलाहल जन्में कोन खाने।
खुचूंग कुकिये ताहा पाइलो केमने।।
सुनिया चंताई बोले सुनो नरपति।
इतिहासरूपे कही विषेर उत्पत्ति।।
खुचुंगेर राजा छिलो नामें शुभराय।
'मलाल' राजाके कहे कुकिर भाषाय।
ताँहार तनया एक रूपवती होइलो।
श्रेष्ठ एक कुकि ताके विवाह कोरिलो।
विवाह रात्रिते होइलो जामाता निधन।।
ताहार कनिष्ठ भाई छिलो छय जन।।
म्लेच्छ जाति धर्माधर्म कभु जाने नाई।
से कन्याके संग्रह कोरिलो तार भाई।।
सेओ सेइ रात्रिते गेलेन यम घर।
आर भाई संग्रह कोरिलो तारपर।।
एईरूपे छय भाई सकल मारिलो।
सर्बेर कनिष्ठ अबशिष्ठ एक रइलो।।
भाई सब मइलो देखि भावे मने मन।
बुझिते ना पारे किछु मरण कारण।।
से बोले एकक आमि बाँचि कार्य नाई।
आमि जाव जेई पथे गेलो छय भाई।।

हिन्दी अनुवाद – सुनकर राजा के मन में विस्मय हुआ। जयन्त चन्ताई से राजा ने और एक बार पूछा। ''युवराज पैर के सामान्य घाव से मूर्छित क्यों हो गया? बताओ, यह हलाहल कहाँ जन्मा है? खुचुंग कुकि को यह कैसे मिला?'' राजा की बात सुनकर चन्ताई ने कहा, ''सुनो महाराज, इतिहास के रूप में मैं इस विष की उत्पत्ति के बारे में बता रहा हूँ। जयन्त चन्ताई ने राजा को कुकि की भाषा में कहा ''खुचूंग के राजा का नाम शुभराज था। उनकी एक रूपवती कन्या थी, एक श्रेष्ठ कुकि ने उससे विवाह किया और विवाह की रात में उसकी मृत्यु हो गई। उसके छोटे छह भाई थे। म्लेच्छ जातियों में धर्माधर्म का कोई विचार नहीं रखा जाता और उसके छोटे भाई ने उससे विवाह कर लिया। किन्तु वह भी उसी रात मर गया। फिर और एक भाई ने उसे पत्नी बनाया और वह भी उसी रात मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस तरह छह भाई ही मर गये। सबसे छोटा एक भाई था। भाईयों की मृत्यु को देख उसने मन ही मन सोचा, लेकिन उनके मरने के कारण का कुछ पता नहीं चला। उसने सोचा कि अब अकेला मेरा जीना भी ठीक नहीं है और छह भाई जिस तरह मरें मै भी उसी तरह मरना चाहता हूँ।

---

(1) पाशे –करीब,
(2) पूछे –जिज्ञासा किया,

द्विल –244

ई बोलिया सेई तारे संग्रह कोरिया।
से नारीर संगे एक घरे रहे गिया।
शय्या होते अंतर होइया भिन्न स्थाने।
अग्नि ज्वालि जागिया रहिलो साबधाने।।
निद्राय से नारी यदि अचैतन्य होइलो।
देखे नाक होते एक सर्प निकलिलो(3)।।
सर्प निकालिया शय्या विचारिया चाय।
मनुष्य ना पाइया पुनि(4) नाकेते सामाय।।(5)
ता देखिया सेई कुकि भाबे मने मने।
बुझि एई सर्पे मारिआछे भाईगणे।।
एई नारी मारियाछे मोर छय भाई।
ईहाके मारिबो आमि जे कोरे गोसाई।।
एखाने थाकिले सापे खाइबो आसिया।
ईहा भाबि घर होने(6) गेलो निकलिया।।
रजनी प्रभाते सेई भाबे मने मने।
एई त नागिनी कन्या मारिव केमने।।
तवे विहारेर छले बनिता लोइया।
निर्जन अरण्य मध्ये प्रवेशिलो गिया।।
बने किया लगुड़ प्रहार दिया मारि।
थुइलो(7) खादाई(8) तथा गर्त एक कोरि।।
धरे आसि काँन्दिया कोहिलो लोक ठाँई।
पत्नी मोर कोथा गेलो उद्देश ना पाई।।
सुनिया कन्यार पिता खुचूंगेर राजा।
कन्याके विचारि चाहे संगे लोइया प्रजा।।
कन्या ना पाइया सदा करये क्रन्दन।
एकदिने रजनीते देखिलो स्वपन।।
कन्या आसि कहे पितार शियरे बसिया।
ना कान्दो ना कान्दो बापू आमार लागिया।।
सर्प आमि कन्या रूपे होइया अबतार।
आसिछिलाम छय जन कुकि बधिबार।।
ता सबार छोटो भाई आमाके मारिया।
नदी कूले बटमूले राखिछे गाड़िया।।(9)

हिन्दी अनुवाद – इस तरह सोचकर उसने भी उसे पत्नी बनाया और उस नारी के साथ जाकर एक घर में रहा। लेकिन शय्या से दूर दूसरे एक जगह उसने आग जलाकर खूब सावधानी के साथ जागता रहा। पत्नी जब नींद में बेहाश सी होकर सो रही थी तो उसके नाक से एक सर्प निकला। साँप निकलकर शय्या पर देखने लगा और किसी मनुष्य को न पाकर पुनः उसकी नाक में समा गया। यह देखकर कुकि सोचने लगा कि उसके भाइयों को इसी सर्प ने डस लिया है। इस नारी ने ही मेरे छहों भाईयों को मारा है। राजा चाहे जो भी करे लेकिन इसे मुझे मारना ही पड़ेगा। यहाँ रहने पर साँप मुझे मार देगा। यह सोचकर वह घर से निकल गया। दूसरे दिन वह सोचने लगा कि इस नागिनी कन्या को कैंसे मारूँगा? धोखा/चालाकी से विहार करने के उद्देश्य से उसे लेकर जंगल में चला गया और लाठी से पीट पीट कर उसे मार डाला और वहीं मिट्टी में गढ़ा खोद उसे दफना दिया। घर आकर लोगों के सामने प्रलाप करने लगा कि हमारी पत्नी कहाँ गई? कहीं नहीं मिल रही है। कन्या के पिता खुचूंग के राजा ने प्रजा को साथ लेकर खोजा लेकिन उसका कुछ पता नहीं चला। राजा सदा रोते रहते थे। एक दिन लड़की स्वप्न में आकर पिता के सिरहाने बैठकर कहने लगी –बापू, तुम मत रो। छह कुकियों को मारने के लिये मैं सर्प होकर तुम्हारे घर कन्या रूप में जन्मी। सबसे छोटे भाई ने मुझे मारकर नदी के किनारे बट वृक्ष के नीचे मिट्टी में दबा दिया है।

....

(3) निकनिलो –निकला, (4) पुनि –पुनः, (5)सामाय –प्रवेश, किया, (6) घर होने –घर से, (7) थुइलो –रखा, (8) खादाई –गाड़ देना, (9) गाडिया –गाढ़कर,

द्विल –245

नाभि भेदि एक लता उठिछे आमार।
इहा होते होवे तोमार सब उपकार।।
सर्पेर गरल आछे ई लतार कसे।(10)
ताते माखा तीर जार शरीरे प्रवेशे।।
विष जाले विकल होइबे सेई जन।
अल्प घाओ होइलेओ त्याजिबे जीवन।।
किन्तु एक कथा मात्र आछये विशेष।
चाथेंग नदी(1) दक्षिणेते जतो सब देश।।
से सकल देशे एई विष ना लागिबो।
एई बन भरि एई विषलता होइबो(2)।।
स्वप्न देखि खूचुंगेर नृपति जागिया।
प्रभाते पर्बते गेलो कुकिगन लोइया।।
माटी खनि सेई कन्यार पाइलो उद्देश।
देखे लता होइछे भेदिया नाभि देश।।

हिन्दी अनुवाद – मेरी नाभि से एक लता ऊपर की ओर उठ रही है। इससे तुम्हार उपचार होगा। उस लता के रस में साँप का जहरीला विष है। अगर इसके रस में डूबा तीर किसी के शरीर में प्रवेश कर जाए। तो वह व्यक्ति विष की ज्वाला से विकल होगा और अल्प घाव होने पर भी अपना प्राण त्याग देगा। किन्तु इस बात को विशेष रूप से कहना कहती हूँ, चाथेंग नदी के दक्षिण की ओर जितने देश हैं, वहाँ यह लता नहीं जन्मेगी। इस वन में ही यह लता होगी।'' स्वप्न देखकर खुचूंग के नरपति जाग गये। सवेरे कुकि प्रजाओं ने खोदा और देखा कि सही में एक लता उसकी नाभि से निकली है।

---

(10) कसे –रस से, लता को तोड़ने यह निकलता है।

(1) चाथेंग नदी –यह नदी बरबक्र (इस समय इसे बराक कहते हैं) नदी के दक्षिण की ओर स्थित हैं। वर्तमान काल में यह नाम विलुप्त हो गयी है। किस नदी को चाथेंग कहा जाता था उसे जानने का कोई उपाय नहीं है। कृष्णमाला में इस नदी के बारे में लिखा है –

''हिडिम्ब देशेर दक्षिणेते एक नदी।
बरबक्र नाम तार घोषे अद्याबधि।
खलंमा बलये त्रिपुर सकले।
कुकि सबे बसति करये तार कुले।।
रूकनी नामेते नदी ताहार दक्षिण।
तथाते बसति करये कुकिगण।।''
\+ \+ \+ \+ \+ \+ \+ \+
मनोगत कार्य सिद्धि से नदी करये।
ताहार दक्षिण स्थल सुन्दर आछये।।
कांगंलाई नामे एक पर्वतेर श्रृंग।
ताहार दक्षिणे नदी नामेते चाथेंग।। कृष्णमाला द्वितीय सर्ग

अर्थात – ''हिडिम्ब देश के दक्षिण में एक नदी बहती है। आज तक उसे बरबक्र कहते हैं। त्रिपुरा के लोग उसे खलंमा कहते हैं। उसके किनारे कुकियों का वास है। रूकनी नाम की एक नदी उसके दक्षिण में है। वहाँ पर खास तौर से कुकि ही रहते हैं।

यह नदी मनोगत कार्य में सिद्धि प्रदान करती है। उसके दक्षिण का स्थल सुन्दर है। वहाँ पर कांगंलाई नाम का एक पर्वत श्रृंग है। उसके दक्षिण में चाथेंग नदी बहती है।

उद्धृत अंश में जिन सभी नदियों का नाम आया है उनमें बरबक्र (बोराक) नदी का नाम अब तक अपरिवर्तित ही है, अन्य कोई नाम इस समय प्रचलित नहीं है।

(2) उन दिनों सम्भवतः चाथेंग नदी के दक्षिण भाग में विषलता नहीं थी अथवा उस नदी के दक्षिण की ओर के स्थानों में उस लता की विषक्रिया नहीं रहेगी। प्राचीन काल में इस तरह का विश्वास था।

द्विल –246
तार पेरे स्वप्न कुकि सब काछे कोय।
देखिया शुनिया सबे पाइलो प्रत्यय।।
विषलता सेई बने प्रचुर होइलो।
खुचूंग कुकिये विष ई कारणे पाइलो।। इत्यादि। कृष्णमाला चतुर्थ सर्ग

हिन्दी अनुवाद – इसके बाद स्वप्न की बात सभी कुकियों को बताया। देख सुनकर सभी को विश्वास हो गया। विषलता उस वन में प्रचुर मात्रा में जन्मी। खुचूंग कुकि ने इसी कारण विषलता को प्राप्त किया था।

विषलता की उत्पत्ति का यह प्रवाद वाक्य काल्पनिक होने पर भी विषलता काल्पनिक नहीं है। त्रिपुरा के जंगलों में यह विषलता सर्वत्र प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। हमने यह लता देखी है और इसका गुण को प्रत्यक्ष किया है।

प्राचीन संस्कार

डायन की कथा त्रिपुर राज्य में स्मरणातीत काल से साधारण जन समुदाय में डायन के बारे में एक संस्कार बद्धमूल होकर रहा है। यह शब्द 'डाकिनी' शब्द का अपभ्रंश है। प्राचीन काल में राजा, प्रजा सभी इस डायन के अस्तित्व में दृढ़ विश्वास करते थे। मुसलमान सेनानायक हैतन खाँ को वध करने के लिये धन्यमाणिक्य ने बलागमा नाम की डाकिनी को आह्वान कर कहा था –

आमार प्रजा खाव तोरा डाइन सब लोक।	मेरी प्रजा को तुम खाती सभी।
एखन ना खाव केनो हैतन खाँ सम्मुख।।	क्यों खाती नहीं हैतन खाँ को कभी।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 26पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 26पृ

अर्थात'' तुम डायन मेरे सब प्रजाओं को खा जाती हो। हैतन खाँ को क्यों नहीं खाती। वह तो तुम्हारे सामने है।''

पुरूष और स्त्री उसमें श्रेणी के प्रति की डायन शब्द का प्रयोग होता है। त्रिपुर भाषा में डायन को 'छेकाल' कहते हैं। लोग सोचते हैं ये मनुष्य के सभी असाध्य कार्यों को कर सकते हैं। नदी का स्रोत स्तम्भन, शुन्य पथ में गमनागमन, मंत्र बल से मनुष्य के जीवन का संहार करना आदि इनके लिये आसान कार्य है। ये इच्छा करने पर किसी को दीर्घ कालों तक रोग यंत्रणा से ग्रसित कर रख सकते हैं एवं दृष्टि मात्र से वध करने की क्षमता इनमें हैं। भोजन के समय इनकी दृष्टि पड़ने पर भोक्ता को संकटापन्न पीड़ा होना अनिवार्य है। डायन के प्रति लोगों के मन में यह विश्वास तो है ही, इसके अलावा और भी अनेक धारणाओं द्वारा इन्हें अधिकतर भयानक बना दिया है। फिर भी दो एक बद्धमूल संस्कार की बातें नीचे दी जा रही है –

1 रात को डायन के मसूड़े के दांत मुँह से बाहर निकल कर इधर उधर घूमते हैं। उन दांतों में एक नीले रंग की अग्नि प्रज्वलित रहती है। यदि किसी तरह

द्विल –247

यह दांत किसी के घर में प्रवेश कर जाये तो गृहस्थ के घर में नानाविध विपद का होना अनिवार्य है।(1)

2 ये नरखादक हैं। मंत्रबल से मनुष्य का वध कर उसका मांस भक्षण करते हैं।

3 इनकी दृष्टि इतनी भयानक है कि मंत्र उच्चारण के साथ किसी पर दृष्टि पात करने पर तत्काल मृत्यु होती है। वृक्ष के पत्ते मर जाते हैं आदि।

कोई व्यक्ति प्रकृत रूप से डायन हैं या नहीं इसकी परीक्षा की नाना तरह की प्रक्रिया भी प्रचलित है। बाहुल्य भय से उसे परित्याग करना पड़ा है।

यह दृढ़ विश्वास कुछ स्थानों पर भयानक अनिष्ट का भी कारण हो उठता है। 1291 त्रिपुराब्द में अर्थात 1881 ई सन में इस तरह की धारणा के फलस्वरूप सोनामूड़ा विभाग में (अब महकमा) एक लोमहर्षक हत्याकाण्ड हुआ था। उस विभाग के अधीन पांजिहाम राय नाम के एक रियां सरदार के गाँव में कपिराय नाम का एक व्यक्ति तंत्र मंत्र से चिकित्सा का व्यवसाय करता था। चिरपोषित विश्वास के फलस्वरूप कालाहा रियां के प्रमुख कुछ लोगों ने कपिराय को डायन बोल कर स्थिर किया। कपिराय की स्त्री खिचिमाँ से इन्होंने सब कुछ बताया व वध करने का अभिप्राय बताया। खिचिमाँ ने कहा, ''यदि वह डायन हो गया है तो उसका वध कर सकते हो।'' अतएव बेला दो प्रहर के समय पर्वत के भीतर गहन वन में दुर्भागा कपिराय को बलि प्रदान द्वारा महा समारोह में कालिका देवी की अर्चना की गई।

इस समय स्वनाम धन्य स्वर्गीय धनंजय ठाकुर सोनामुड़ा विभाग के शासक के रूप में नियुक्त थे। उनके प्रयत्न से अपराधी पकड़े गये और राज दण्ड से दण्डित हुए थे। किन्तु इस से लोगों के अंध विश्वास से कुछ भी कमी नहीं हुई। इसके पश्चात भी इस तरह के हत्याकांड के दृष्टांत विरल नहीं है।

इस समय शिक्षित समाज में डायन के आतंक की कमी होने पर भी रमणी समाज में एवं अशिक्षित जन साधारण के हृदय में प्राचीन विश्वास आज भी बरकरार है। डायन का नाम सुनते ही उनके चेहरे पर भीति का संचार होते देख गया है।

डायन या डाकिनी के अस्तित्व के बारे में विश्वास केवल त्रिपुरा में ही माना जाता है, ऐसी बात नहीं। सर्वत्र भारत में, क्या सभ्य क्या असभ्य सभी समाज में ही डाकिनी के बारे में बद्धमूल विश्वास देखा जाता है। यहाँ तक कि पुराण एवं तंत्रादि ग्रंथों में भी इसका उल्लेख और अर्चना की विधि संयोजित की गई है। ब्रह्म पुराण के अनुसार –

''सार्द्धन्च डाकिनीनान्च विकटानां त्रिकोटिभिः''।।

---

(1) आलोयार आलो के साथ इस दन्त समस्या का सम्बन्ध रहना विचित्र नहीं है।

द्विल –248

काशी खण्ड के तीसवें अध्याय में है –''डाकिनी शाकिनी भूत प्रेत बेताल राक्षसः।'' ये शिव और शक्ति के अनुचर हैं। इन्हें संहारक शक्ति का एक अंश माना जाता है। ये हमेशा मनुष्य के अमंगलदायक हैं।

किसी मानव या मानवी के प्रति ऊपर दिये गये दोषारोप कमावेश सभी देशों में पाये जाते हैं। शिशुओं की पीड़ा को देखकर डाकिनी ने पकड़ा है, कहकर लोग प्रचार करते हैं। कुछ लोगों का कहना है ये मारण और वशीकरण मंत्र के साधक हैं। इस समय यह विश्वास बहुत माने में कम होने पर भी कुकि, त्रिपुरा, मघ, कोल, भील आदि पार्वत्य समाज में अब भी पूर्णमात्रा में विद्यमान है। इस विश्वास के फलस्वरूप नाना तरह के अनिष्ट की बात पहले की कही जा चुकी है।

हिजड़े का विवरण

राजमाला के द्वितीय लहर में हम देखते हैं, महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में त्रिपुरा के सैनिक विभाग में हिजड़ो को रखा जाता था। गौड़ेश्वर होसेन शाह के सेनापति गौड़मल्लिक के त्रिपुरा आक्रमण करने पर किसी एक हिजड़े ने जो कृतित्व प्रकाश{महान कार्य} किया था, वह बड़ा ही विस्मयकारी था। इस बारे में राजमाला में लिखा है –

खोजा छिलो एक जन मंत्रणा परिपाटी।	था वहा एक खोजा मंत्रणा में सुदक्ष।
गोमती बान्धिलो सेई सोनामुड़ार भाटी।।	गोमती को बांधा उसने सोनामुडा समक्ष।।
नदी कुले बोइसे त्रिपुर रांगामाटी राज।	गोमती तट पर बैठे त्रिपुर रांगामाटी राज।
नदी बान्धि डुबाइया मारिबो समाज।।	नदी बांध, डूबा मारूगां मैं दुश्मन को आज।।
एई युक्ति कोरिया सेनाके आज्ञा दिलो।	यह युक्ति कर सेना को आज्ञा किया।
सोनामुड़ा भाटी दिया गोमती बान्धिलो।।	सोनामुडा के नीचे गोमती को बांध दिया।।
तिन दिन राखिलेक बान्धिया गोमती।	तीन दिनों तक बांध रखा गोमती।
पर दिन भांगि नदी होइया बेगबती।।	इसके बाद तोडा बांध, नदी हो गई वेगवती।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 23पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 23पृ

अर्थात –''एक हिजड़ा था उसने सब से मंत्रणा करके सोनामुड़ा के नीचे एक जगह नदी पर एक बाँध बनाया और पानी की धारा को रोक दिया। नदी के किनारे त्रिपुरा रांगामाटी (उदयपुर) के राजा बैठे थे। उसने कहा कि मैं नदी को बाँध दूँगा और दुश्मनों को डूबो कर मारूँगा। तीन दिनों तक नदी की धारा को रोक रखा था। इसके पश्चात् बाँध को तोड़ नदी वेगवती हुई''।

पठान सेनापति के साथ एक के बाद एक युद्ध में पराजित होकर त्रिपुर सेनाओं ने हिजड़े के परामर्शानुसार यह उपाय किया था। इसके फलस्वरूप नदी के बाँध के ऊपर की ओर बहुत सा पानी जमा होकर नीचे की ओर का पानी सूख गया। मुसलमानों के सूखे हुए नदी पथ से पार होते समय बाँध को तोड़ दिया गया। तीन दिनों का अवरूद्ध पानी हठात् आकर उन पर टूट पड़ा।

द्विल –249

पानी के प्रबल स्रोत से बहुत से सैनिक डूब कर मर गए। बहुत आश्रयहीन असहाय होकर से बह गए। सेनापति गौड़मल्लिक सब कुछ छोड़कर थोड़े से सिपाहियों के साथ भाग गए। पहले बताये गये हिजड़े को प्रखर बुद्धि की बात और उनके आदेश से सैनिक विभाग के परिचालना की बात की आलोचना से पता चलता है कि वे सैनिक विभाग में एक पदस्थ कर्मचारी था। इनका नाम व पदवी का राजमाला में कोई उल्लेख नहीं है।

मुसलमान शासनकाल में भी अनेक हिजड़ो का विशेष प्राधान्य और प्रतिपत्ति की बातें सुनने में आती हैं। हिजडे मुसलमान राजत्व काल की खोज हैं। उन दिनों बादशाह और नवाबों के सैनिक विभाग में हिजड़ो की सेनायें नियुक्त थी। अन्दर महल में प्रहरी के रूप में एवं बेगम महल में आने जाने के कार्यों में इन्हीं को रखा जाता था।

स्वाभाविक नपुसंकों को ही हिजड़ा कहा जाता है। इसके अलावा उन दिनों निष्ठुर आचरण के प्रक्रिया द्वारा भी बहुत से लोगों का पुरूषत्व नष्ट कर दिया जाता था। छान्दली या आतल्छि, बादामी और काफूरी इन तीन श्रेणी के हिजड़ो का यहाँ वर्गीकरण किया जाता था। शिशुकाल में जिनका उपस्थ और मुश्क छेदन किया जाता था वे आतल्छि या छान्दली कहे जाते थे, जिनका केवल मुष्क कर्तन किया जाता था उन्हें बादामी और जिनका केवल उपस्थ छेदन किया जाता था उन्हें काफूरी कहा जाता था।(1)

अधिक अर्थ लालसावश कुछ लोग अपनी संतानों को शैशव काल में ही हिजड़ा बना देते थे। इन्हें अधिक से अधिक मूल्य देकर बादशाह और नवाब लोग खरीद लेते थे। बालक किंवा युवकों को खरीद कर बलपूर्वक उन्हें हिजड़ा बनाने की नृशंस प्रथा चलती थी। बहुत सी जगहों पर से गुलाम के रूप में व्यवहार में लाये जाते थे और बहुत तरह से लांछित किये जाते थे।(2) भारत सम्राट जहाँगीर के शासन काल में इस अमानवीय और निष्ठुर प्रथा को खत्म करने के लिये कठोर राजाज्ञा प्रचारित हुई थी। किन्तु दासत्व प्रथा के बारे में उस समय कोई प्रतिकार नहीं किया गया।

श्रीहट्ट में सब से अधिक हिजड़े पाये जाते थे। सम्राट अकबर के ख्याति सम्पन्न मंत्री अबुल –फजल ने 'आइन–इ–अकबरी ग्रंथ में लिखा है,"श्रीहट्ट में अनेक हिजड़े और क्रीत दास(गुलाम) दासियाँ पाये जाते हैं।" असल में उस समय बालक बालिकाओं को बेचने वाली चीजों की तरह ऊँचे दामों में बेचा जाता था। गेइट साहब ने अपने **History of Assam** ग्रंथ में भी इसका उल्लेख किया है। अध्यापक श्रीयुत पद्मनाथ विद्याविनोद महाशय ने उसका उत्तर देते हुए बहुत सी बातों का उल्लेख किया है। श्रीहट्ट से त्रिपुरा में हिजड़ो को खोजना आसान था। संभवतः इसी वजह से त्रिपुरा के सैनिक विभाग में हिजड़ो का अस्तित्व पाया जाता है।

---

(1) आइन–इ–अकबरी –ब्लकमान 389 पृष्ठ

(2) **Yule's Marco Polo - Vol II P. 79**

Wright's Marco Polo - P. 280

द्विल –250

<u>राजमाला द्वितीय लहर में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम और संक्षिप्त परिचय</u>

(वर्णमालानुक्रमिक)

<u>अनंतमाणिक्य(61 पृष्ठ –14 पंक्ति)</u> ये महाराज विजयमाणिक्य के कनिष्ठ पुत्र थे। चन्द्र से गणना में 155 एवं त्रिपुर के अधस्तन 110 स्थानीय हैं। महाराज विजय ने ज्येष्ठ पुत्र डुंगुर को परित्याग कर कनिष्ठ अनंत को राज्य का भावी उत्तराधिकारी के रूप में करके रखा था। तदनुसार इन्होंने ही त्रिपुर सिंहासन को प्राप्त किया था। ये बाल्य काल में कुकर्मरत थे। राजा ने समझा था कि बिना सेनापति की सहायता से इस पुत्र का सिंहासन निष्कंटक नहीं होगा। इसलिये उन्होने प्रधान सेनापति गोपीप्रसाद की कन्या के साथ पुत्र का विवाह कर दिया था एवं भावी राजा के सदा कल्याण के लिये गोपीप्रसाद से प्रतिज्ञा करा लिया था। किन्तु अनंतमाणिक्य के राजगद्दी पर बैठने के थोड़े दिनों के पश्चात् गोपीप्रसाद ने उस प्रतिज्ञा का भंग कर राज्य लोभ वश अपने जामाता की हत्या कराकर स्वयं सिंहासन पर राजा बनकर बैठे। 1572 ई सन तक डेढ़ साल तक महाराज अनंत ने राज्य शासन किया था।

<u>अमरमाणिक्य(प्रथम पृष्ठ –आठ पंक्ति)</u> ये महाराज देवमाणिक्य के पुत्र एवं विजयमाणिक्य के सौतेले भाई थे। चन्द्र से अधस्तन 158 और त्रिपुर से नीचे 113 स्थानीय थे। इन्होंने उदयमाणिक्य के पुत्र जयमाणिक्य की हत्या कर पैतृक सिंहासन को प्राप्त किया था। राजमाला तृतीय लहर में इनका विस्तृत विवरण दिया जायेगा। इन्होंने 1577 ई सन् में राज्य प्राप्त किया था। इनके राजत्व काल में इनके ही आदेश से राजमाला की द्वितीय लहर की रचना हुई थी। इसीलिये महाराज अमर, धर्ममाणिक्य की तरह अमर हो गये हैं।

<u>अरिभीम(68 पृष्ठ –20 पंक्ति)</u> ये महाराज उदयमाणिक्य के एक महान सेनापति थे। अरिभीम इनका प्रकृत नाम नहीं है। अरातिमर्दन जनित उपाधि है। इनका नाम था रामदास।(1) उन दिनों सेनापतियों की साधारण उपाधि 'नारायण' थी। यह बात हम पहले ही बता चुके हैं। ये चट्टग्राम पठान युद्ध में लिप्त थे। राजमाला में इसके प्रमाण मिलते हैं। इनकी ''उड़िया नारायण' दूसरी उपाधि भी थी। इसके पश्चात् 'भांगिल फा' उपाधि के प्राप्त होने की बात भी सुनने में आती है। इस तरह की उपाधि प्राप्त होने का विवरण भांगिल फा के विवरण में मिलेगा।

....

(1) रामदासेर नाम अरिभीम नारायण। राजमाला
(रामदास का नाम अरिभीम नारायण है)

द्विल –251

आगुयान नारायण(69 पृष्ठ –24 पंक्ति) ये उदयमाणिक्य के एक सेनापतियों में से एक थे। चट्टग्राम के संग्राम में प्रधान सेनापति रणागण के सहकारी के रूप में पठानों के विरूद्ध इन्हें भेजा गया था। रणागण के अविवेचना और सावधानी के अभाववश इस युद्ध में त्रिपुरा की पराजय हुई थी।

इन्द्रमाणिक्य(37 पृष्ठ –2 पंक्ति) ये देवमाणिक्य के पुत्र एवं विजयमाणिक्य के कनिष्ठ सौतेले भाई थे। चन्द्र से अधस्तन 153 और त्रिपुर से गणना में 108 स्थानीय थे। देवमाणिक्य के परलोक गमन के पश्चात् लक्ष्मीनारायण नाम के मिथिलावासी एक ब्राह्मण ने विजयमाणिक्य को कारागार में डाल दिया और शिशु इन्द्रजीत को सिंहासन पर बैठाकर स्वहस्त में राज्य शासन का भार ग्रहण किया। इनका राजत्व एक साल से अधिक स्थायी नहीं हुआ। द्विज लक्ष्मीनारायण के अत्याचारों से सेनापति गण बौखला उठे, इन्द्रमाणिक्य के साथ उसकी हत्या एवं महाराज विजय को राजा किया गया था। इनका शासन काल 1527 ई से 1528 ई सन् तक एक साल का था।

उदयमाणिक्य(67 पृष्ठ –3 पंक्ति) इसके पहले अनंतमाणिक्य विवरण में कहा गया है कि वे अपने ससुर और सेनापति गोपीप्रसाद के द्वारा मारे गये थे। यही जामाता का वध करने वाला सेनापति ही उदयमाणिक्य नाम ग्रहण कर सिंहासन पर बैठे। उन्होने राजधानी रांगामाटी का नाम का परिवर्तन कर अपने नाम के अनुसार उदयपुर नामकरण किया। धर्म विगर्हित उपाय द्वारा अभावनीय राजपद प्राप्त कर ये महाविलासी और उच्छृंखल हो उठे थे। दो सौ चालीस विवाह करना ही इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। अतिरिक्त इन्द्रिय भोग की लालसावश पारदघटित बटी खाकर इनकी मृत्यु हुई थी। इनके शासन काल में चट्टग्राम में मुसलमानों के साथ संग्राम होने पर उस संग्राम के प्रधान सेनापति रणागण के तत्वाधान में तीन हजार सेनापति के साथ बावन हजार सेना भेजी गई थी। किन्तु रणागण का औद्धत्य और अपरिणामदर्शिता के फलस्वरूप चट्टग्राम के रास्ते में ही पठानों द्वारा त्रिपुरा की विशाल वाहिनी विध्वस्त हो गई। इस युद्ध में त्रिपुरा के चालीस हजार एवं पठानों की पाँच हजार सेना मारी गई थी। इस बार चट्टग्राम मुसलमानों के हाथ चले जाने से जो अनर्थ हुआ था, उदयमाणिक्य इस क्षति को पूरा करके न जा सके। इनका शासन काल 1572 से 1576 सन तक पाँच साल तक स्थायी हुआ था।

एकाब्बर (53 पृष्ठ –4 पंक्ति) हुमायूँ के पुत्र भारत सम्राट अकबर साधारणतः एकाब्बर या आकाब्बर नाम से परिचित थे। शेरशाह द्वारा पराजित होकर हूमायूँ, बेगम के साथ पलायन करने पर मजबूर हुए थे। इस विपदा के समय अमरकोट में अकबर का जन्म हुआ था। इनका राजत्व काल 1556 ई सन से लेकर 1605 ई सन तक स्थायी हुआ था। सदाचारी,

द्विल –252
प्रजारंजक, दयालु एवं पक्षपात शून्य थे। हिन्दु मुसलमानों को समदृष्टि से देखते थे। इसलिये इनकी सुख्याति की अतिमात्रा में वृद्धि हुई थी।

कमला(8 पृष्ठ –16 पंक्ति) महारानी कमला महादेवी, महाराज धन्यमाणिक्य की पटरानी थी। दानधर्म इनके जीवन का प्रधान व्रत था। इन्होंने ब्राह्मणों को अनेक भूमिदान किया था। कसबा नगर के नजदीक कमला सागर इनकी समुज्वल कीर्ति है। उदयपुर में भी इसी नाम से इन्होंने सरोवर खनाया था।

करा खाँ(24 पृष्ठ –27 पंक्ति) ये पठान सेनापति थे। होसेन शाह त्रिपुरेश्वर धन्यमाणिक्य के साथ युद्ध में पराजित होकर दूसरी बार हैतन खाँ के साथ इन्हें त्रिपुरा आक्रमण के लिये भेजा था। इस बार भी ये लोग युद्ध में पराजित होकर पलायन करने पर मजबूर हुए थे।

काला खाँ(4 पृष्ठ –21 पंक्ति) ये धन्यमाणिक्य के अमात्य एवं सेनापति थे। उन दिनों सेनापतियों के हाथों में ही शासन भार था। यह बात बहुत दफे कही जा चुकी है। ये रियां (रियांग) जाति के थे। इस जाति के भावी राय (राजा) 'चापिया खाँ' उपाधि पाते हैं। इसी कारण से इनकी 'खाँ' उपाधि हुई है।

काला नाजिर(43 पृष्ठ –22 पंक्ति) ये विजयमाणिक्य के सेनापति एवं प्रिय पात्र थे। इनका असाधारण शौर्य और प्रतिभा के बल पर उत्तर की ओर राज्य की सीमा बहुत दूर फैल गई थी। इन्होंने चट्टग्राम में पठान सेनापति ममारक खाँ के साथ संग्राम में असधारण वीरत्व प्रदर्शन कर वीरगति पाई थी।

कौतुक(3 पृष्ठ –22 पंक्ति) ये कान्यकुब्ज देश के ब्राह्मण थे। महाराज धर्ममाणिक्य ने वाराणसी धाम से इन्हें लाकर अपना पुरोहित नियुक्त किया था। कुमिल्ला के धर्मसागर उत्सर्ग के उपलक्ष में महाराज धर्म ने आठ ब्राह्मणो को कालियाजुडि आदि गाँवों की भूमि दान की थी। उनमें कौतुक का नाम भी पाया जाता है। इनके वंशज बहुत पहले ही विलुप्त हो गये हैं।

खड़्ग राय(25 पृष्ठ –12 पंक्ति) ये धन्यमाणिक्य के एक ओर प्रमुख सेनापति थे। हैतन खाँ ने विशाल पठान वाहिनी लेकर त्रिपुरा विजय के लिये आकर जामिरखाँ गढ़ पर आक्रमण किया। खड़्ग राय उस गढ़ के सेनानायक थे। प्रबल पराक्रम से युद्ध करके भी ये दुर्ग की रक्षा करने में समर्थ न हो सके। अंत में हैतन खाँ के हाथों पराजित होकर छयघरिया गढ़ में आश्रय लेने पर मजबूर हो गये।

गगन खाँ(4 पृष्ठ –21 पंक्ति) ये धन्यमाणिक्य के अमात्य और सेनानायक थे। धन्यमाणिक्य के समय भी वे सेनापति के पद पर नियुक्त थे। पठान सेनापति हैतन खाँ के त्रिपुरा आक्रमण के समय छयघरिया गढ़ गगन खाँ के तत्वावधान में था।

द्विल –253

जामिरखाँ गढ़ जीतकर हैतन खाँ ने छयघरिया गढ़ पर आक्रमण किया, इस समय गगन खाँ तीन पहर प्रबल विक्रम के साथ युद्ध करके अंत में पराजित और भागने पर मजबूर हो गये। इस सेना निवास पर हैतन खाँ ने अपना आधिपत्य स्थापित कर गढ़ को अपने अधिकार में ले लिया।

गजभीम(48 पृष्ठ –19 पंक्ति) ये विजयमाणिक्य के सेनापति थे। पठान सेनापति ममारक खाँ के चट्टग्राम के युद्ध में ये स्वयं उपस्थित थे और त्रिपुर सेनापति काला नाजिर के हत होने के बाद रात को जब पठान सेनायें निश्चिंत मन से गढ़ के भीतर रन्धनादि नाना कार्यों में मशगूल थी तब सेनानायक गगन खाँ के परामर्श पर त्रिपुर सेनायों ने सुरंग खोदकर उसी राह से गढ़ में धुस कर अकस्मात पठानों पर टूट पड़ी और उन्हें विध्वस्त कर दिया। सेनापति ममारक खाँ को पकड़कर लोहे के पिंजड़े में बंद कर राजदरबार में हाजिर करने पर उसे चतुर्दश देवता के सामने बलि दे दी गई। गजभीम इनका नाम नहीं था। –इनकी उपाधि थी। विशेष विलक्षणता और दक्षता के साथ बहुत से हाथियों को पकड़ने पर उन्हें यह उपाधि मिली थी।

गदाभीम(65 पृष्ठ –24पंक्ति) इनका नाम था मयुरध्वज(1)। ये अनंतमाणिक्य के मल्लगुरू थे। अनंत के ससुर और सेनापति गोपीप्रसाद (बाद में उदयमाणिक्य) ने राज्य लोभ वश जामाता को (राजा को) वध करने के लिये कृत संकल्प हुए। उन्होने गदाभीम को प्रलोभन दिखाकर राजा को मल्लविद्या सिखाते समय गला दबोच कर मारने के लिये अनुरोध किया था। धर्मभीरू गदाभीम के उनके इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार करने पर गोपी प्रसाद ने अपने भान्जे वीरमर्दन नारायण के द्वारा यह कार्य कराया था।

गरूड़ ध्वज(68 पृष्ठ –20 पंक्ति) ये उदयमाणिक्य के सेनापति अरिभीम के पुत्र थे(2)। और सेनापति पद पर आसीन थे। गरूड़ ध्वज नाम नहीं था बल्कि यह उपाधि थी। गौड़ के साथ महा पराक्रम के साथ युद्ध करके उन्हें यह उपाधि मिली थी। राजमाला में लिखा है,

गौड़ सैन्य संगे तार बहु छिलो रण।	गौड़ सैन्य साथ किया था बहुरण।
गरूड़ ध्वज ख्याति तार होइलो तखन।।	गरूड़ध्वज ख्याति हुई उस क्षण।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 69पृ

(गौड़ सेनाओं के साथ उसने बहुत युद्ध किया और तब उनकी ख्याति 'गरूड़ ध्वज' के नाम से हुई।) इस सेनापति प्रकृत नाम क्या था इसका पता नहीं चलता। राजमाला में केवल उपाधि की चर्चा है।

---

(1) "गदाभीम नारायण मयुरध्वज नाम।"
राजमाला तृल रत्नमाणिक्य खण्ड
गदाभीम नारायण का नाम मयुरध्वज था।
(गज भीम नारायण मयुरध्वज नाम। गज भीम नारायण मथुर ध्वज नाम।)
राजमाला चल रत्न और महेन्द्र माणिक्य खण्ड 22पृ अनुवादक तृल में कहीं नहीं है।
(2) गरूड़ध्वज नाम अरिभीमेर नन्दन। राजमाला
अरिभीम के पुत्र का नाम गरूड़ध्वज था।

द्विल –254

<u>गोपी प्रसाद नारायण(62 पृष्ठ –23 पंक्ति)</u> ये विजयमाणिक्य के और उसके बाद अनंतमाणिक्य के सेनापति थे। इनकी कन्या से अनंतमाणिक्य ने विवाह किया था। राजा अल्पवयस्क थे। ससुर गोपीप्रसाद जामाता के अभिभावक होकर राज कार्य परिचालना करते थे। कुछ दिनों के पश्चात् राज्य प्राप्ति की लालसा से जामाता की गोपन हत्या कराकर उदयमाणिक्य नाम ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। इनके समय राजधानी रांगामाटी का नाम 'उदयपुर' किया।

<u>गौड़ मल्लिक(22 पृष्ठ –21 पंक्ति)</u> ये गौड़श्वर होसेन शाह के सेनापति थे। धन्यमाणिक्य के शासन कल में चट्टग्राम आधिपत्य मुसलमानों के हाथों से छीन लेने पर, होसेन शाह ने हत प्रदेश का पुनरूद्धार और त्रिपुर राज्य पर अधिकार स्थापन करने के अभिप्राय से इस सेनापति को भेजा था। त्रिपुर वाहिनी ने कौशल क्रम से इनकी अधिकांश सेनाओं को गोमती के पानी में डूबोकर मार डालने से ये विपन्नावस्था में पलायन करने पर बाध्य हुए थे।

<u>चन्द्र सिंह नारायण(69 पृष्ठ –22 पंक्ति)</u> ये उदयमाणिक्य के सेनापति थे। पठान वाहिनी के साथ चट्गाँव के युद्ध में प्रधान सेनापति रणागण के साथ ये भी थे। इनकी उपाधि थी 'चन्द्र दर्प'। किस उपलक्ष में यह उपाधि उन्हें मिली थी यह जानने का कोई उपाय नहीं थी।

<u>छामथम खाँ(4 पृष्ठ –21 पंक्ति)</u> राजमाला में इनका नाम ''खाँ छामथुम'' लिखा है। ये रियां जाति के थे। धर्ममाणिक्य के अन्यतम् सेनापति और अमात्य थे।

<u>जयमाणिक्य(72 पृष्ठ –20 पंक्ति)</u> ये उदयमाणिक्य के पुत्र थे। पिता के अभाव में त्रिपुर सिंहासन पर बैठे थे। इनके शासन काल में सेनापति रणागण (रंगनारायण) ने शासन दण्ड अपने हाथों में लेकर प्रबल पराक्रांत हो उठे थे। जयमाणिक्य राजवंशज नहीं थे। इनके पिता सेनापति थे, बाद में अनंताणिक्य की हत्या कर सिंहासन पर बैठे थे। जयमाणिक्य पिता के सिंहासन पर बैठकर अधिक काल तक भोग नहीं कर सके। सेनापति अमर देव (ये देवमाणिक्य के पुत्र थे) ने इनकी हत्या कर पैतृक सिंहासन को भिन्न वंशज के हाथ से उद्धार किया था। ये 1576 –1577 ईः सन तक केवल डेढ़ साल तक राजत्व कर सके थे।

<u>जया महादेवी(67 पृष्ठ –20 पंक्ति)</u> अनंतमाणिक्य की महिषी का नाम जयावती था। ये उदयमाणिक्य (सेनापति गोपीप्रसाद) की कन्या थी। पिता द्वारा पति की हत्या के बाद ये सहमरण के लिए तैयार हुई थी। पिता के बाधा प्रदान के पश्चात् अपना संकल्प पूर्ण नहीं कर सकी। यह तेजस्विनी रमणी पिता के प्रति विरक्त होकर, उन्हें अपदस्थ करने के निमित्त कहा था, 'तुम

द्विल –255

राजा को वध करके सिंहासन पर बैठे हो तो रानी को क्यों ग्रहण नही करोंगे?’ यह बोल कर और पिता के बाँई ओर बैठने के लिये गई। पिता गोपी प्रसाद कोई उपाय न देखकर सिंहासन से कूद कर नीचे उतरे। वे कन्या से बचने के लिये चन्द्रपुर नाम के एक जगह पर राजपाट हटा ले जाने पर मजबूर हो गये थे।

जामाल खाँ पन्नी(71 पृष्ठ –24 पंक्ति) पादशाहनामा के अनुसार इनका नाम जामाल खाँ पोमारी था। ये पठान सेनापति थे। उदयमाणिक्य के शासन काल में चट्टग्राम पर पठानों का अधिकर होने के पश्चात् उस अधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिये इन्हें चट्टग्राम में रहना पड़ा था। इन्होने राजा बलदेव के साथ कामरूप में युद्ध किया था।

डांगर फा(17 पृष्ठ –8पंक्ति) ये त्रिपुर सिंहासन के 143वें भूपति थे। इनका और एक नाम हरिराय है। राजमाला प्रथम लहर की टीका में इनका विवरण लिखा गया है। इसलिये पुनः उल्लेख नहीं किया गया।

डुंगुर(61 पृष्ठ –13 पंक्ति) ये त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। दैवेज्ञ की गणना से निर्णीत छेद योग में इनका जन्म हुआ है। अतएव अस्त्राघात से इनकी मृत्यु होगी। इनका चरित्र भी अत्यन्त खराब था। इसी कारण से महाराज विजय ने तीर्थ भ्रमण उद्देश्य से उडिशा भेज कर द्वितीय पुत्र अनंत को राज्य के भावी उत्तराधिकारी के रूप में निर्वाचित किया गया था।

त्रिलोचन(10 पृष्ठ –2 पंक्ति) ये त्रिपुरा के 47वें भूपति थे। भारत सम्राट युधिष्ठिर के समकालीन थे। इनका विवरण भी प्रथम लहर में दिया गया है। यहाँ पर पुनः उल्लेख नहीं किया गया।

दायुद बादसाह(53 पृष्ठ –7 पंक्ति) ये सुलेमान कररानी के पुत्र थे। पिता के परलोक सिधारने के पश्चात् बंग के तख्त के अधिकारी बने। ये सम्राट अकबर के समकालीन थे। बंग के अधिकार प्राप्ति के कुछ दिनों के पश्चात् दायुद ने अकबर की प्रभुता को उपेक्षा की और बिहार को आक्रमण किया। किन्तु सम्राट के सेनापति मुनायेम खाँ और राजा टोडरमल के हाथों पराजित होकर सन्धि स्थापन करने पर मजबूर हुए थे। यह 1575 ई सन का घटना है। इस संधि के द्वारा दायुद का एक मात्र अधिकार उड़िष्या पर रह गया था। सेनाध्यक्ष मुनायेम खाँ के परलोक सिधारने पर दायुद ने संधि सूत्र को छिन्न करके पुनः बंग पर आक्रमण और पराजित तथा निहत हो गये। इस घटना से ही बंग भूमि पर पठानों का शासन हमेशा के लिये विलुप्त हो गया और मुगलों का अधिकार हो गया। दायुद त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य के समकालीन थे एवं उनके साथ चटग्राम संग्राम में पराजित हुए थे।

दुर्लभ चंताई(50 पृष्ठ –18 पंक्ति) इनका पूर्ण नाम दुर्लभेन्द्र चंताई था। महाराज धर्ममाणिक्य के समय से ये चतुर्दश देवता के प्रधान पूजक थे

द्विल –256

एवं उनके वर्णित विवरण के आधार पर राजमाला प्रथम लहर की रचना हुई थी। इनकी ही प्रोचना/षड्यन्त्र से समर क्षेत्र में बन्दी बनाये गये गौड़ेश्वर दायुद शाह के साला और सेनापति ममारक खाँ को चतुर्दश देवता के सामने बलि दी गई थी। यह विजयमाणिक्य के शासन काल की घटना है। इस घटना के कुछ दिन पश्चात् प्राचीन चंताई के परलोक गमन पर महाराज विजय को स्वप्नदिष्ट होने पर दुर्लभ नारायण को चंताई पद पर वरण किया था।

दुर्लभ नारायण(40 पृष्ठ –12 पंक्ति) ये विजयमाणिक्य के ससुर और सेनापति दैत्यनारायण के कनिष्ठ सहोदर थे। विजयमाणिक्य की कम उम्र की वजह से दैत्यनारायण राज काज का परिचालन करते थे। वे क्षमता के गर्व में उन्मत्त होकर पग पग पर राजा की उपेक्षा करने लगे। भ्राता के प्राधान्य की वजह से दुर्लभ नारायण उच्छृंखल हो गये थे। प्रजाओं के प्रति नाना तरह के अत्याचार और परस्त्रीहरण इनके नित्य दिन का कार्य था। अतः विजयमाणिक्य ने कोई उपाय न देखकर दैत्यनारायण के ज्येष्ठ कन्या के जामाता माधव के द्वारा उनका वध कराकर इन अत्याचारों से लोगों को छुटकारा दिलाया था।

देवमाणिक्य(25 पृष्ठ –29 पंक्ति) ये धन्यमाणिक्य के पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 152 और त्रिपुर से 107 स्थानीय राजा थे। मिथिला निवासी लक्ष्मीनारायण नामक एक तांत्रिक साधक से दीक्षा लेकर शिष्य बने थे। उसने इन पर अमिट प्रभाव विस्तार किया था। इस धूर्त ब्राह्मण की प्रोचना/षड्यन्त्र से देवमाणिक्य ने देवी के दर्शन के लिये एक के बाद एक अपने आठ सेनापतियों की श्मशान भूमि में बलि चढ़ा दी थी। अंत में श्मशान साधना के समय धूर्त ब्राह्मण राजा का वध करने में भी कुंठित नहीं हुआ। इस पाप के प्रायश्चित स्वरूप इसे भी कुछ समय पश्चात् सेनापतियों के हाथों मरना पड़ा था। देवमाणिक्य का शासन काल 1522 ई से 1527 ई सन तक स्थायी हुआ था।

दैत्यनारायण(37 पृष्ठ –16 पंक्ति) ये विजयमाणिक्य के ससुर और सेनापति थे। दैत्यनारायण और प्रमुख सेनापतियों ने मिलकर इन्द्रमाणिक्य का वध करके विजयमाणिक्य को सिंहासन प्रदान किया। दैत्यनारायण ने स्वयं शासन भार अपने हाथों में लिया और पग पग पर राजा की अवज्ञा करना शुरू किया। इस समय दैत्यनारायण और उनका भाई दुर्लभ नारायण द्वारा राज्य में नाना तरह की अत्याचार उत्पीड़न आरम्भ शुरु हुआ। महाराज विजय ने अन्य उपाय न देख दैत्यनारायण की हत्या करा कर सुशासन का पथ उन्मुक्त करने पर बाध्य होना पड़ा। दैत्यनारायण ने उडिषा से जगन्नाथ विग्रह लाकर उदयपुर में स्थापित किया था।

धन्वंतरी नारायण(63 पृष्ठ –20 पंक्ति) ये चिकित्सा व्यवसायी थे। इनके पुत्र यादुराय या यादुवैद्य महाराज विजयमाणिक्य के अंतिम काल के चिकित्सक थे। इनके त्रिपुर जाति के एवं 'नारायण' उपाधिधारी होने के प्रमाण मिलते हैं।

द्विल –257

<u>धन्यमाणिक्य(6 पृष्ठ –15 पंक्ति)</u> ये महाराज धर्ममाणिक्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। चन्द्र से अधस्तन 151 और त्रिपुर से 106 स्थानीय राजा थे। पिता के परलोक गमन के पश्चात् सेनापतियों ने इन्हे वंचित कर कनिष्ठ भ्राता प्रताप को राज गद्दी सौंपा था। कुछ दिनों के पश्चात् सेनापतियों ने ही प्रतापमाणिक्य की हत्या कर धन्यमाणिक्य को सिंहासन पर बैठाया। राजा होकर इन्होंने लक्ष्य किया कि राजा अदृष्ट व सम्पूर्ण रूप से सेनापतियों की कृपा पर निर्भर करता है। इन्होंने बड़ी चतुराई से उन्हें वध कर भविष्य की आशंका को दूर किया। इसके बाद विश्वस्त नए सेनापतियों की नियुक्ति कर सैनिक विभाग का नए सिरे से संगठन किया। इनके शासन काल में राज्य की सीमा बहुत दूर तक फैली हुई थी। चट्टग्राम के अधिकार को लेकर बार बार पठानों के साथ युद्ध किया था। बंगेश्वर होसेन शाह बार बार इनसे पराजित हुए थे। इनके शासन काल में देवार्चना में नर बलि की संख्या बहुलांक में कम हो गई थी। महाराज धन्य बंगभाषा के पोषक थे। इनके प्रयास से उत्कल खण्ड एवं ज्येतिष शास्त्र के बहुत से ग्रंथों का बंग भाषा में रचना हुई थी। शेष ग्रन्थ आजकल नहीं मिलते। इन्होने त्रिहुत से संगीतज्ञ को लाकर अपने परिवार एवं प्रजा समाज में नृत्य–गीत का प्रचलन किया था। देवालय गठन और मन्दिर प्रतिष्ठा महाराजा धन्य के अम्लान कीर्ति है। उदयपुर में मंन्दिर निर्माण और त्रिपुरा सुन्दरी मूर्ति स्थापन उल्लेखनीय है। इन्होनें बहुत दिन तक राज्य शासन किया व चेचक रोग से मृत्यु हुई। 1463 से 1515 ई तक इन्होने राजत्व किया है।

<u>धर्ममाणिक्य(2 पृष्ठ –2 पंक्ति)</u> ये महामाणिक्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। चन्द्र के अधस्तन 149 और त्रिपुर के परवर्ती 104 स्थानीय थे। महाराज धर्म पिता के रहते हुए सन्यासी भेष में तीर्थ भ्रमण में गये थे। पितृ वियोग पर राज्य में आकर सिंहासनारोहण किया। कुमिल्ला नगरी स्थित धर्मसागर इनकी महान कीर्ति है। इनके शासन काल की विशेषता यह है कि इस समय कहीं युद्धादि नहीं हुए एवं प्रजा सुख शांति से दिन रात बिताती थी। महाराज धर्म ने 1431 से 1462 ई सन तक राजत्व किया था। इनके द्वारा ही राजमाला रचना का सूत्रपात हुआ था।

<u>निर्भय नारायण</u>(45 पृष्ठ –10 पंक्ति) ये हेड़म्ब राज्य के अधीश्वर एवं त्रिपुराधिपति विजयमाणिक्य के समकालीन थे। विजयमाणिक्य ने जयन्तिया के विरूद्ध हाड़ि सेना के भेजने के पश्चात् जयंतिया राजा ने हेड़म्ब का आश्रय ग्रहण किया था। हेड़म्बाधिपति निर्भय नारायण की मध्यस्तता में उस विवाद की मीमांसा हुई थी। निर्भय नारायण के बारे में विस्तृत विवरण पहले 160– 161 पृष्ठ में दिया गया है।

द्विल –258

<u>पीरोज खाँ अन्नी(71 पृष्ठ –24 पंक्ति)</u> ये गौड़श्वर के सेनापति थे। त्रिपुरेश्वर उदयमाणिक्य के शासन काल में पठान वाहिनी के हाथों में त्रिपुरा से विच्छिन्न होकर चट्टग्राम चला गया, तब उस अधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिये बंगेश्वर ने जमाल खाँ पन्नि को चट्टल में प्रेरण किया था।

<u>पुण्यवती(39 पृष्ठ –7 पंक्ति)</u> ये त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य की महिषी थी। राजमाला में है

विजयमाणिक्य नाम होइलो नरपति।	विजयमाणिक्य नाम से नृपति हुआ।
ताहान महादेवी नाम छिलो पुण्यवति।।	उनकी महादेवी का नाम पुण्यवती था।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39 पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ

अर्थात "विजयमाणिक्य नाम के एक राजा हुए उनकी पत्नी का नाम था पुण्यवती।

श्रेणी माला की आलोचना जाना जाता है, इनका नाम था, लक्ष्मीबाला। ये प्रधान सेनापति दैत्यनारायण की कन्या थी। महाराज विजय ने अपनी राज क्षमताग्रासी दैत्यनारायण निधन से अपने राज्य का पथ निष्कटंक किया था। इसके लिये महारानी ने पति की तीव्र भर्त्सना की थी। राजा के अगोचर में पिता दैत्यनारायण के हत्यारे माधव का वध करा देने पर महाराज ने क्रुद्ध होकर इन्हें वनवास में प्रेरण किया था।

महारानी पुण्यवती होमनाबाद और तिष्णा में ब्राह्मणों को बहुत सी भूमि दान करके गई है।

<u>प्रचण्ड उजीर(45 पृष्ठ –23 पंक्ति)</u> ये विजयमाणिक्य के वजीर (मंत्री) थे।(1) पठान सेनाओं को दो महीने का वेतन प्रदान करने में विलम्ब के

....

1 वजीर पद एवं और भी कुछ पद मुसलमान शासन के अनुकरण में बनाया गया था। महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में ये सभी उपाधियाँ प्रचलित हुई थी। त्रिपुर वंशावली पुस्तिका में विजयमाणिक्य के प्रसंग में लिखा है –

"विजयमाणिक्य राजा बुद्धिमंत छिल।
कौशल कोरिया राज्य शासिते लागिल।।
उजीर सूबा नाजिर कबरा आर जे देओयान।
बरूया, हाजारी मुन्सी ठाकुर हुद्दाबान।।
ऐ समस्त आमलासह परामर्श कोरि।
शासिते लागिल राज्य करि बाहादूरी।।" आदि।

अर्थात "विजयमाणिक्य राजा बुद्धिमान था। सुकौशल पूर्वक राज्य शासन करने लगा। वजीर, सूबा, नाजिर, कबरा, दीवान, बरूआ, हजारी, मुन्सी, ठाकुर हुददाबान –इन सभी से सलाह करके बहादूरी पूर्वक राज्य –शासन करने लगे।"

त्रिपुर राज्य में किस तरह के योग्य व्यक्तियों को वजीर पद पर नियुक्त किया जाता था। कृष्णमाला ग्रंथ में उसका आभास दिया गया है –

"विमल कुलेते जन्म जे जनार हय।
देवेते द्विजेते भक्ति जाहार थाकोय।।
शास्त्रेते पंडित हय, हये धर्मे मति।
प्रजार पालन जाने, जाने राजनीति।।

द्विल –259

कारण वे सभी विद्रोही हो गये थे। इन्हें मेहेरकुल में (कुमिल्ला नगरी में) वध किया गया था। विद्रोही सेनायें राजा को वध करके राजधानी आक्रमण करने के लिये कृत संकल्प थी। महाराज विजय ने स्वयं समर क्षेत्र में इनका विनाश करके विद्रोह दमन किया था।

प्रताप(6 पृष्ठ –15 पंक्ति) (प्रतापमाणिक्य) ये धर्ममाणिक्य के कनिष्ठ पुत्र थे। पिता के परलोक गमन के पश्चात् सेनापतियों की सक्षमता से ज्येष्ठ भ्राता धन्य को वंचित करके पैतृक सिंहासन के अधिकारी हुए थे। किन्तु इनका राजत्य एक साल से अधिक स्थायी नहीं हुआ। अधार्मिक होने के कारण सेनापतियों ने रात्रि के समय इनकी हत्या कर दी। पुनः ज्येष्ठ धन्यमाणिक्य को सिंहासन प्रदान किया। इन्होंने 1463 ई सन में राज्य प्राप्त किया एवं उसी साल इनकी हत्या हो गई। महाराज प्रताप चन्द्र से 150 और त्रिपुर से गणना में 105 स्थानीय राजा थे।

प्रताप(13 पृष्ठ –8 पंक्ति) ये गौड़ राज्य के अधीनस्थ त्रिपुरा जिला के अंतर्गत बरदाखात परगना के जमींदार थे। त्रिपुरेश्वर धन्यमाणिक्य के बंग राज्य के पूर्वांचल हस्तगत करने के समय इन्होंने गौड़ेश्वर की अधीनता को छिन्न कर त्रिपुरेश्वर की वश्यता स्वीकार की थी।

प्रताप नारायण(45 पृष्ठ –29 पंक्ति) ये प्रचंड वजीर के पुत्र एवं त्रिपुराधिपति विजयमाणिक्य के सेनापति थे। प्रताप पिता के साथ मेहेरकुल (कुमिल्ला) में रहते समय त्रिपुरेश्वर के विद्रोही पठान सेनाओं के वजीर की हत्या करने पर प्रताप नारायण ने अरण्य में प्रवेश कर अपने जीवन की रक्षा की थी।

बलागमा(26 पृष्ठ –16 पंक्ति) बलागमा एक पहाड़ी रमणी थी। प्राचीन राजमाला में इसका नाम बलांमा लिखा गया है। यह रमणी डायन (डाकिनी) के रूप में परिचित थी। पठान सेनापति हैतेन खाँ के त्रिपुरा आक्रमण के निमित्त आने पर उसे हत्या करने के लिये महाराज

....

शिष्टेर रक्षण जाने दुष्टेर दमन।
इंगिते बुझिते पारे सुजन दुर्जन।
सभा उपयुक्त कथा कोहिबारे जाने।
काव्येते रसिक होय, पराक्रमी रणे।।
प्रिय वाणी कहे, होय प्रिय दरशन।
साधोये प्रभुर कार्य करि प्राणपण।।
विपदे चंचल नहे थाकये सुस्थिर।
हेन जन हईबारे उचित उजीर।। – कृष्णमाला।

अर्थात "विमल कुल में पिता का जन्म हो। देव द्विज में जिसके भीतर भक्ति हो, जो शास्त्रों में पण्डित हो और धर्म में जिसकी मति हो, जो प्रजा का पालन जानता हैं, और जिसमें राजनीति का ज्ञान हो, जो शिष्ट का रक्षण और दुष्ट का दमन जानता हो, इंगित से ही जो सुजान और दुर्जन को जान लेता हो, सभा में उपयुक्त बातें कहना जिसे आता हो, जो काव्य में रसिक और युद्ध में पराक्रमी हो, मीठी बोली बोलता हो, जो प्राण पण से प्रभु का कार्य –साधन कर लेता है, जो विपत्ति में चंचल न होकर सुस्थिर रहता है, ऐसे लोगों को वजीर करना उचित है।"

द्विल –260

धन्यमाणिक्य ने बलागमा से अनुरोध किया था। डायन के बारे में विवरण 145 पृष्ठ में देखिये।

बाणेश्वर(5 पृष्ठ –7 पंक्ति) ये राजपुराहित एवं सभापंडित थे। अपने सहोदर शुक्रेश्वर के सहयोग से इन्होंने राजमाला प्रथम लहर की रचना की थी। प्रथम लहर में बाणेश्वर का विस्तृत विवरण मिलेगा। महाराज धर्ममाणिक्य ने धर्म सागर की प्रतिष्ठा के समय दूसरे ब्राह्मणों के साथ इन्हें भी भूमि दान किया था।

विजयमाणिक्य(37 पृष्ठ –6 पंक्ति) ये महाराज देवमाणिक्य के ज्येष्ठ पुत्र थे। चन्द्र के अधस्तन 154 और त्रिपुर से 109 स्थानीय नृपति थे। पितृ वियोग पर लक्ष्मीनारायण नाम के मैथिल ब्राह्मण की प्ररोचना/षड्यन्त्र से विजय को अवरूद्ध कर उसके छोटे सौतेले भाई इन्द्रमाणिक्य को राज्यासन पर बैठाया। थोड़े दिनों के भीतर सेनापतियों ने लक्ष्मीनारायण और जामाता इन्द्रमाणिक्य की हत्या कर विजय को सिंहासन पर बैठाया। विजयमाणिक्य मात्र नाम के राजा थे। उनके ससुर और प्रधान सेनापति दैत्यनारायण राजा को साक्षी गोपाल बनाकर स्वयं राज्य शासन करने लगे। इस समय अत्याचार और अविचार से जनता में हाहाकर मच गया था। महाराज विजय ने कोई उपाय ने देखकर ससुर का वध कराने को बाध्य हो गये। इनके शासन काल में राज्य की सीमा असाधारण रूप से विस्तृत हो गई थी। गौड़ के साथ इनका बार बार युद्ध हुआ था। बंग विजयार्थ निकलकर इन्होंने गंगा के तीर तक कब्जा कर लिया था। केवल वीरता में ही नही, धर्मानुष्ठान में भी त्रिपुर राजाओं में ये अद्वितीय थे। महाराज विजय दिल्ली के सम्राट अकबर के समकालीन थे। इन्होंने 1528 ई सन से 1570 ई सन तक प्रबल पराक्रम के साथ राज्य शासन करके अंत में चेचक की बीमारी से परलोक गमन किया।

विजय दुर्लभ नारायण(61 पृष्ठ –6 पंक्ति) दुर्लभेन्द चंताई के मृत्यु के पश्चात् विजयमाणिक्य के द्वारा इन्होंने चंताई पद को (चतुर्दश देवता के प्रधान पूजक) अलंकृत किया। राजमाला में उल्लेख है कि महाराज विजय ने चतुर्दश देवता द्वारा स्वप्नदिष्ट होकर इन्हें वह पद प्रदान किया था।

वीरमर्दन नारायण(66 पृष्ठ –14 पंक्ति) ये अनंतमाणिक्य के सेनापति एवं राजा के ससुर तथा प्रधान सेनापति गोपीप्रसाद के भानजे थे। गोपी प्रसाद ने राजा की हत्या करवा कर राज्य प्राप्ति के लिये प्रयासरत हुए। इस हत्या के लिये उन्होने राजा के मल्ल–गुरू गदाभीम को अनुरोध किया था। गदाभीम ने इस घृणित प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अंत में इसी वीर मर्दन के द्वारा वह हत्याकाण्ड कराया गया था। इस कृतघ्न, विश्वासघातक ने आश्रय दाता राजा की हत्या कर वीर मर्दन नाम को कलंकित करने में बिन्दुमात्र कुण्ठा बोध नहीं किया। यह सोलहवीं सदी ई की घटना है।

द्वितीय लहर.261

भांगिल फा(71 पृष्ठ –28 पंक्ति) ये उदयमाणिक्य के उच्चतम सेनापति थे। इनकी उपाधि थी उड़िया नारायण। किसी किसी का कहना है कि उड़िया विजय हेतु इनकी यह उपाधि हुई थी। यह अनुमान सही नहीं है। राजमाला तृतीय लहर के अमरमाणिक्य खण्ड में है –

राम्बु आदि कोरी राज्य छय थाना लय।	राज्य ने किया अधीन राम्बु आदि छह थाना।
देयांग उड़िया राज्य लोइते आशय।।	उड़िया राज्य देवांग को भी चाहा था लेना।।
राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 27पृ	राजमाला तृल अमरमाणिक्य खण्ड 27पृ

अर्थात "राम्बू आदि राज्य करके छः थाने लिये। देयांग और उड़िया राज्य लेने की इच्छा थी"।

इससे यह माना जाता है कि मगों द्वारा अधिकृत राम्बू और देयांग आदि स्थानों के करीब उड़िया राज्य था। इस स्थान को जय करके ही 'उड़िया नारायण' उपाधि प्राप्त की थी(1)। अध्यापक श्रीयुत नलिनीकांत भट्टशाली महाशय का अनुमान है, उड़िष्या के किसी व्यक्ति द्वारा यह राज्य प्रतिष्ठित हुआ था। भांगिल फा ने गौड़ेश्वर के साथ चट्टग्राम के युद्ध में प्रतिपक्ष के तोप के सामने जीवन विसर्जन किया था।

भानु नारायण(57 पृष्ठ –11 पंक्ति) ये महाराज विजयमाणिक्य के शासनकाल ये श्रीहट्ट जिला के अधीन इटा परगना के तालुकदार थे। जाति में ये ब्राह्मण थे। महाराज विजय के दिग्विजय के उपलक्ष में इटा में जाने पर इन्हें बहुत बड़ा भूभाग निष्कर प्रदान किया था। इसके बाद ग्रहीता के प्रार्थनानुसार उक्त भूमि का एक चौथाई अंश राजकर धार्य हुआ था।

भृगुराम(54 पृष्ठ –22 पंक्ति) इनका नामांतर परसुराम और भार्गव है। जमदग्नि के पुत्र थे इसलिये इनका दूसरा एक नाम जामदग्न भी है। इन्होंने कार्त्तवीर्यार्जुन का निधन करके पितृ आज्ञा से मातृहत्या की थी। इस वीर पुरूष के द्वारा पृथ्वी इक्कीस बार क्षत्रियहीन हुई थी। दस अवतार में छठा अवतार भी इन्हें कहा जाता है। मातृहत्या के पाप के स्खलन के लिये इन्होंने ब्रह्मकुंड में स्नान करते समय अपने फरसा से उस कुंड के तीर का खनन कर ब्रह्मपुत्र की धारा को प्रवाहित किया था।

ममारक खाँ(46 पृष्ठ –24 पंक्ति) किसी किसी का कहना है कि इन्हें महम्मद खाँ भी कहा गया है। किन्तु पादसाहनामा में ममारक खाँ नाम ही विशुद्ध है। ये गौड़ेश्वर दायुद शाह के साला और सेनापति थे। चटगाँव के युद्ध में त्रिपुर वाहिनी द्वारा धृत और पिंजराबन्द होकर राजदरबार में लाने पर इनकी चतुर्दश देवता के सामने बलि प्रदान की गयी थी। पादसाहनामा में पाया जाता है,

....

(1) कवि भवानी दास के मयनामती गीतों में उरूया (उड़िया) राजा का नाम पाया जाता है। मेहेरकुल और पाटिकारा के राजा गोविन्दचन्द्र (नामांतर गोपीचाँद) ने उड़िया राजा को युद्ध में पराजित कर उनकी कन्या से विवाह किया था। चट्टग्राम में गोविन्द के आधिपत्य रहने के प्रमाण मयनामती के गीतों में पाया जाता है। अतएव यह उड़िया राजा राजमाला में लिखित राज्य के अधिपति थे –यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है।

द्विल –262

इन्होंने कामरूप के शासन पद पर नियुक्त होकर रांगामाटी में रहकर कुछ दिनों तक उस प्रदेश का शासन किया था।

महामाणिक्य(1 पृष्ठ –13 पंक्ति) ये राजमाला प्रथम लहर के अंतर्गत शेष राजा थे। प्रथम लहर में इनका विवरण दिया गया है। अतः यहाँ पुनः उल्लेख नहीं किया गया।

माधव(40 पृष्ठ –24 पंक्ति) ये विजयमाणिक्य के ससुर और प्रधान सेनापति दैत्यनारायण के ज्येष्ठ कन्या जामाता थे। दैत्यनारायण इन्हें बहुत चाहते थे एवं विश्वास करते थे। उनकी सारी धन सम्पति जामाता के हाथों में ही थी। यहाँ तक दैत्यनारायण द्वारा आहार प्रदान ने करने पर माधव आहार नहीं लेते थे।

विश्वास घातक माधव, विजयमाणिक्य के प्रलोभन के वश होकर ससुर को अपने हाथों से वध किया था। दैत्यनारायण की कन्या (विजय माणिक्य की महिषी) ने पितृहन्ता माधव की गुप्तचर द्वारा हत्या कराकर इसके पाप का दण्ड विधान करने की बात राजमाला में पाई जाती है।

मुकुन्द(61 पृष्ठ –22 पंक्ति) ये उड़िष्या के भूपति एवं विजयमाणिक्य के समकालीन थे। महाराज विजय के ज्येष्ठ पुत्र डुंगुर फा के कुंडली में छेद योग है, दैवज्ञ गणना से यह बात जानकर महाराज ने उस पुत्र को पुरूषोत्तम धाम में रहने के लिये भेजा। उसकी सयत्न से रक्षा करने के लिये उड़िष्यापति मुकुन्द देव को पत्र द्वारा अनुरोध किया था।

विश्वकोष में (मादलपंजी नामक पुस्तक के अनुसार) उडिष्या के भूपति वृन्दों की जो वंश सूची प्रदान की गई है उनमें तीन मुकुन्ददेव का नाम आता है। उनमें प्रथम मुकुन्ददेव प्रख्यातनामा महाराज चोरगंगा के अधस्तन 28 स्थानीय राजा थे। ये राजा रघुनाथ छोटरा के पुत्र थे। 1473 शक से 1481 शक तक राजत्व किया था। त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य के शासन काल में 1450 –1492 शक तक का था। अतएव यही मुकुन्ददेव विजयमाणिक्य समकालीन थे।

यादुवैद्य(63 पृष्ठ –20 पंक्ति) ये जाति के त्रिपुरा एवं धन्वंतरी नारायण के पुत्र थे। चिकित्सा व्यवसायी होने के नाते वैद्य उपाधि प्राप्त की थी। महाराज विजयमाणिक्य चेचक की बीमारी से आक्रांत होने पर इन्होंने ही उनकी चिकित्सा की थी। किन्तु रोग के भयानक और प्रबल आक्रमण की वजह से यह उनकी रक्षा नहीं कर पाये। इसी रोग से महाराज विजय परलोक सिधारे गये।

रणचतुर नारायण(1 पृष्ठ –11 पंक्ति) ये महाराज अमरमाणिक्य के सेनापति थे। महाराज के आदेशानुसार राजमाला द्वितीय लहर इस सेनापति द्वारा वर्णित हुई थी। इस लहर के लेखक कौन थे, राजमाला में इसका कोई उल्लेख नहीं है। इस समय यह जानने का अब और कोई उपाय भी नहीं है।

द्विल –263

<u>रणागण नारायण(69 पृष्ठ –17 पंक्ति)</u> ये उदयमाणिक्य के भगिनिपति और सेनापति थे। इनका प्रकृत नाम था रंग नारायण। चट्टग्राम के पथ में ये पठानों के द्वारा आक्रांत और विध्वस्त होकर भाग कर जीवन रक्षा कर पाये। इस युद्ध में त्रिपुरेश्वर की चालीस हजार सेना मारी गई थी और पठानों की मात्र पाँच हजार सेना मारी गई थी। ये उम्र में सबसे बड़े थे इसलिये सभी इन्हें बूढ़ा या बुड़िया भी कहते थे। उदयपुर के त्रिपुरा सुन्दरी देवी मन्दिर के उत्तर की ओर बुड़ियार दीघि (तालाब) इसी बूढ़े की कीर्ति है।

उदयमाणिक्य के परलोक गमन के पश्चात् उसका पुत्र जयमाणिक्य के समय भी रणागण सेनापति थे। ये अपने हाथों में शासन भार लेकर विशेष प्रभावशाली हो उठे थे। अंत में जयमाणिक्य का वध करके राजा होने की वृद्ध के मन में दुराशा जन्मी। किन्तु अन्य सेनापति (देवमाणिक्य पुत्र) अमरदेव दिनोंदिन पराक्रांत होते जा रहे थे, देखकर रणागण ने समझा इस प्रबल प्रतिद्वंदी के रहते उनकी आकांक्षा पूरी होने की संभावना नहीं है। इसलिये इन्होंने अमर देव की हत्या करने के लिए कोशिशें करने लगे। राजकुमार अमरदेव किसी व्यक्ति के इशारे से यह जान कर अपनी आत्म रक्षा कर सके। इसके बाद उन्होने वृद्ध रणागण की हत्या कर उसकी राजा होने की प्यास को सदा के लिये मिटा दिया।

<u>रसांगमर्दन नारायण(24पृष्ठ –15पंक्ति)</u> ये धन्यमाणिक्य के सेनापति थे। इनका प्रकृत नाम क्या था यह जानने का कोई उपाय नहीं है। रंसाग (आराकान) के कुछ अंशों को जीतने के फलस्वरूप इनको 'रसांगमर्दन' की उपाधि दी गई है। जयमाणिक्य के समय तक इनके सेनापति पद पर रहने का प्रमाण मिलता है। दुख का विषय यह है कि कहीं भी इनके नाम का उल्लेख नहीं है, केवल मात्र उपाधि का उल्लेख है।

<u>राजबल्लभ नारायण(76 पृष्ठ –30 पंक्ति)</u> ये अमरदेव के (बाद में अमरमाणिक्य) ज्येष्ठ पुत्र थे। जयमाणिक्य के मल्लविद्या के गुरू एवं सेनापति थे। अमरदेव के साथ विवाद उपस्थित होने पर जयमाणिक्य विपदग्रस्त होकर भाग खड़े हुए। उस हालत में रास्ते में ही राजबल्लभ ने उन्हें पकड़ा और हत्या कर दी।

<u>रामकवि(9 पृष्ठ –2 पंक्ति)</u> यह उनका नाम नहीं लगता। संभवतः ये रामायण गान करके 'रामकवि' हुए थे। महाराज धन्यमाणिक्य के राजा होने के कुछ समय पश्चात –

प्रेत चतुर्दशी गान वर्णिया सुनिलो।।	प्रेत चतुर्दशी गीत वर्णन कराके सुना।।
राम कवि सृजिलेक सेई तो नृपति।	राम कवि के रचे गीत सुने नृपति।
श्रीधन्य माणिक्य राजार ताते होइलो प्रीति।।	श्रीधन्य माणिक्य के मन में सुनकर हुई प्रीति।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8–9पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 8–9पृ

अर्थात "प्रेत चतुर्दशी के गान वर्णन सुना। श्रीधन्यमाणिक्य के लिए रामकवि ने सृजन किया। श्रीधन्यमाण्क्यि की उसके प्रति प्रीति उपजी।"

इससे यह समझा जाता है कि महाराज धन्य ने रामायण गान के लिए एक मंडली की रचना की थी एवं रामकवि उस दल के अधिकारी थे। इस उपलक्ष में राज दरबार से भी

द्विल –264

उन्हें यह उपाधि प्राप्त होना भी कोई विचित्र बात नहीं है। यदि यह अनुमान सत्य है तो उनका प्रकृत नाम क्या था जानने का कोई उपाय नहीं है।

रामदास(78 पृष्ठ –7 पंक्ति) यह महाराज अमरमाणिक्य के बचपन का नाम है। रणचतुर नारायण ने अमरमाणिक्य के बाल्य काल की अवस्था वर्णन के प्रसंग में कहा था –

रामदास नाम तोमार आछिलो तखन।।	रामदास नाम था उस क्षण।।
राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 78पृ	राजमाला द्विल जयमाणिक्य खण्ड 78पृ

(तब तुम्हारा नाम रामदास था)

रायकछम(24 पृष्ठ –20 पंक्ति) ये धन्यमाणिक्य के सेनापति थे। जाति में रियां थे। सैन्याध्यक्ष रायकाचाग के सहयोग से इन्होंने थानांछि आदि कुकि प्रदेशों को जय किया था। इनकी शक्ति के सहयोग से महाराज धन्य ने कई बार पठान वाहिनी को परास्त किया था। किसी किसी के अनुसार रायकाचाग, रायकछम के सहोदर भ्राता थे।

रायकाचाग(14 पृष्ठ –11 पंक्ति) इन्हें रामचयचाग भी कहा जाता था। ये रियां जाति के थे। धन्यमाणिक्य के सेनापति एवं प्रबल पराक्रमशाली थे। एक समय इनका प्राधान्य इतना बढ़ गया था कि मेकेंजि साहब(2) ने इन्हें त्रिपुरेश्वर समझ कर 'चयचाग माणिक्य' लिखा था। इनके बाहुबल से एवं रण कौशल से त्रिपुर राज्य की सीमा बहुत बढ़ गई थी और प्रतिपक्षगण भयभीत हो उठे थे। पठान शक्ति बार बार इनके हाथों विध्वस्त हुई थी। एक मात्र इस वीर्यशाली और कौशली सेनानायक के प्रभाव से महाराज धन्य सम्राट पद पर आसीन हुए थे।

लक्ष्मीनारायण(34 पृष्ठ –2 पंक्ति) ये मिथिलावासी ब्राह्मण थे। यह तांत्रिक साधक सन्यासी भेष में त्रिपुरा में उपस्थित हुए थे। महाराज देवमाणिक्य ने इनकी अलौकिक क्षमता देखकर मुग्ध होकर इनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। इनके उपदेशानुसार तान्त्रिक मतानुसार श्मशान साधना आदि योग क्रिया में प्रवृत्त हुए थे। द्विज लक्ष्मीनारायण ने राजा को दुर्बल बनाकर अपने प्रभुत्व को कायम करने की दुराकांक्षावश देवी के दर्शन कराने के प्रलोभन से एक के बाद एक आठ सेनापतियों की श्मशान में बलि चढ़वा दी। अंत में श्मशान साधना के समय वध कर दिया। देवमाणिक्य की मृत्यु के बाद उनके शिशु पुत्र इन्द्रमाणिक्य को सिंहासन पर बैठाकर लक्ष्मीनारायण ने एक साल तक राज्य शासन किया था। सेनापतियों ने उसके अत्याचारों से बाध्य होकर लक्ष्मीनारायण के साथ इन्द्रमाणिक्य की हत्या कर राज्य को अत्याचारों से मुक्ति दिलाई थी।

लक्ष्मीमहादेवी(महादेवी)(42 पृष्ठ –22 पंक्ति) ये सेनापति दैत्यनारायण की कन्या एवं विजयमाणिक्य की प्रधान महिषी थी। विजयमाणिक्य

---

(1) राजमाला जयमाणिक्य खण्ड 78 पृ

(2) **North East Frontier of Bengal P 270**

द्विल –265

ने माधव नामक व्यक्ति द्वारा दैत्यनारायण की हत्या करवाने पर, महारानी ने राजा के अगोचर में पितृहन्ता माधव की गुप्तचर द्वारा हत्या करवा दी। इस कार्य से महाराज ने क्षुब्ध होकर कुछ दिनों के लिये महारानी को निर्वासन का दण्ड दिया था। अमात्यों के अनुरोध पर पुनः उन्हें वनवास से लौटा लाये थे।

लोकतर फा(72 पृष्ठ –19 पंक्ति) ये उदयमाणिक्य के पुत्र थे और पिता के परलोक गमन के पश्चात् जयमाणिक्य उपाधि ग्रहण कर त्रिपुर सिंहासन पर बैठे थे। इसके कुछ दिन पश्चात् ही सेनापति अमर ने जयमाणिक्य के फूफा और प्रधान सेनापति रणागण की हत्या की थी। इसके पहले राजा और प्रधान सेनापति में मनोमालिन्य चल रहा था। अमर के पुत्र राजबल्लभ ने जयमाणिक्य की हत्या कर /(निधन साधन द्वारा) उस मनोमालिन्य का अवसान कर दिया था।

समरजित नारायण(75 पृष्ठ –6पंक्ति) ये रणागण के भ्राता एवं जयमाणिक्य के सेनापति थे। अमरदेव के साथ रणागण के युद्ध के समय अमर ने कौशल से रणागण का मस्तक काट कर रणागण के गढ़ में फेंक दिया था। रणागण के भ्राता छिन्न मस्तक को देख कर भयभीत हो गढ़ को त्याग कर भागने पर मजबूर हुए थे। कुछ दिन छिपकर रहने पर अमरदेव द्वारा पकड़े गए और उनकी हत्या कर दी गई थी।

साहस नारायण(76 पृष्ठ –17 पंक्ति) यह व्यक्ति सैनिक विभाग का साधारण कर्मचारी था। जयमाणिक्य के सेनापति अमरदेव के आदेश से प्रधान सेनापति रणागण का शिरच्छेद करके 'साहस नारायण' उपाधि और सेनापति का पद प्राप्त किया था। इनका नाम जाना नहीं जा सका।

सूर्य खाड़ाइत(58 पृष्ठ –21 पंक्ति) विजयमाणिक्य के शासन काल में 'खाड़ाइत' अथवा 'खाड़ातिया' उपाधिधारी एक श्रेणी की सेना राजा के अंगरक्षक के रूप में थी। सात बार धन्य सागर प्रदक्षिण करने में समर्थवान व्यक्ति ही खाड़ाइत उपाधि का अधिकारी होता था। खड़ग, चर्म(ढाल) एवं शूल इनके व्यवहार के अस्त्रों में से थे। खड़ग (तलवार) व्यवहार के लिये ही उन्हें खाड़ाइत उपाधि दी गई थी।

विजयमाणिक्य के दिग्विजय के समय सूर्य खाड़ाइत उनके सहयात्री बने थे। श्रीहट्ट जिला के अंतर्गत चौवालिस नाम के एक जगह महाराज के रहते सूर्य खाड़ाइत आदि प्रमुख राज्य के अगोचर में नगर लूटने के लिये निकले थे। उस एक नगरवासी के द्वारा सूर्य खाड़ाइत की हत्या कर दी गई थी।

हाजरा(77 पृष्ठ –23 पंक्ति) 'हाजरा' नाम नहीं है यह उपाधि है। देवमाणिक्य के शासन काल में यह व्यक्ति सैनिक विभाग में हजारी थे। पहले ही एक बार हम कह आये हैं कि जिस सैन्याध्यक्ष के अधीन एक हजार सेना रहती थी उन्हें 'हाजारी' कहा जाता था। यह हाजरा महाराज अमरमाणिक्य के मातामह एवं बाछाल जाति के थे। बाछाल लोग जातिगत स्तर पर कुछ नीचे के स्तर पर होने पर भी

द्विल –266

यह सम्बंध स्थापन पार्वत्य समाज में विशेष सम्मान के आसन पर था एवं यह सम्मान आज भी अक्षुण्य है। इस हाजरा की रसांगमर्दन नारायण के सहकारी के रूप में चट्‌टग्राम के युद्ध में रहने के प्रमाण मिलते हैं।

हैतन खाँ(24 पृष्ठ –27 पंक्ति) ये गौड़श्वर होसेन शाह के सेनापति थे। होसेन शाह धन्यमाणिक्य के साथ प्रथम युद्ध में परास्त होने पर द्वितीय बार त्रिपुरा आक्रमण के लिये हैतन खाँ करा खाँ एक सौ हाथी पाँच हजार अश्वारोही एवं एक लाख पदातिक सेना के साथ भेजा था। इस बार भी त्रिपुर सेनापति कौशल से हैतन खाँ की विशाल सेना की अधिकांश को गोमती के स्रोत में डूबा कर मारा एवं बचे हुए अल्प संख्यक सेना के साथ पलायन करना पड़ा।

होपकलाउ(31 पृष्ठ –22 पंक्ति) ये धन्यमाणिक्य के जामाता थे। राजाज्ञा से कुकि प्रदेश में स्वर्ण खान की खोज में गये थे। कुकियों ने सोचा, स्वर्ण का पता लग जाने पर त्रिपुरेश्वर अवश्य ही यहाँ एक थाना बैठायेंगे एवं इससे उन्हें नाना तरह की असुविधायें होगी इसके अलावा उन्हें स्वर्ण की खान में काम करना पड़ेगा। इसलिए उन्होने होपकलाउ को सादर ग्रहण किया एवं अतिरिक्त शराब पिला कर उसकी हत्या कर दी।

होसेन शाह(22 पृष्ठ –20 पंक्ति) बंगेश्वर मजःफर शाह अत्याचारी होने की वजह से उनके अमात्यवर्गों ने उनकी हत्या करने बाद होसेन शाह को राजपद पर प्रतिष्ठित किया। ये मजःफर के मंत्री थे। इस्लाम धर्म प्रवर्तक हजरत् रसूल महम्मद के वंश में इनका जन्म हुआ था। बहुत दुरावस्था में पड़ जाने पर इस देश में उसका आगमन हुआ और राज सरकार के अधीन साधारण कार्य में नियुक्त होकर अपनी प्रतिभा के बल पर क्रमोन्नति करते बंग का सिंहासन अधिकार करने में समर्थ हुए। इन्होने कामतापुर जय करके उसे भी अधिकार किया। त्रिपुरेश्वर धन्यमाणिक्य के साथ दो बार युद्ध में परास्त होकर तीसरी बार त्रिपुर राज्य का सामान्य अंश अपने हाथों में लिया था, पर अधिक समय तक उसे भी नहीं रख सके। होसेन सदाशय एवं बंग साहित्य के पृष्ठ पोषक थे। इनका शासन काल 1494 ई सन से 1520 ई सन तक 27 साल तक स्थायी था।

द्विल –267

राजमाला द्वितीय लहर के उल्लेखित स्थान आदि का नाम और संक्षिप्त परिचय

वर्णमालानुक्रमिक

आत्माराम(43 पृष्ठ –2451 पंक्ति) यह स्थान खासिया पर्वत के अंतर्गत है। प्राचीन काल में यहाँ खासिया राजा का सेनानिवास(थाना) था। त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य ने अपने दिग्विजय के समय इस स्थान को अपने अधिकार में और अपने राज्य में लिया था। राजमाला में है –

आत्माराम आदि जतो खासीया नृप थाना।	आत्माराम आदि जितने खासिया राज्य थाना थे।
त्रिपुरे जिनिया करे आपन सीमाना।।	त्रिपुर ने जीत कर अपना सीमान्त बनाया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ

(आत्मा राम आदि खासिया राजा के जितने थाना थे, त्रिपुरेश्वर ने उन्हें जीतकर अपनी सीमा को बढ़ाया।)

आसाम (वर्तमान में अब इसे असम कहते हैं)(24 पृष्ठ –24 पंक्ति) यह बंगाल देश के (वर्तमान में पश्चिम बंगाल) के उत्तर पूर्व कोने पर स्थित है। यह स्थान अहम्/आहोम जाति के नाम से ही शायद आसाम नाम से अभिहित हुआ है। इसका प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिष या कामरूप था। प्राचीन काल में इस राज्य की विस्तृति बहुत दूर तक फैली हुई थी। शास्त्र ग्रंथ में है –

"करतोयां समाश्रित्य यावदिक्कर वासिनी।
उत्तरस्यां कंजगिरिः करतोयात्तु पश्चिमे।।
तीर्थश्रेष्ठा दिक्षुनदी पूर्वास्यां गिरिकन्यके।
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्ष्यायाः संगमावधि।।
कामरूप इतिख्यातः सर्वशास्त्रेषु निश्चितः। योगिनी तंत्र।

मर्म "करतोया से दिक्करवासिनी तक कामरूप है। इसके उत्तर में कंजागिरि है। पश्चिम सीमा में करतोया नदी है। पूर्व सीमा में तीर्थ श्रेष्ठ दिक्षु नदी है। दक्षिण में ब्रह्मपुत्र और लक्ष्या का संगम स्थल है। यह सीमा सर्वशास्त्रानुमोदित और इसके अंतर्गत स्थान कामरूप के नाम से विख्यात है।"

इस श्लोक से उस समय वर्तमान आसाम, जलपाईगुड़ि, रंगपुर एवं कोच बिहार आदि प्रदेशों के आसाम का कामरूप राज्य के अंतर्गत होने की सूचना मिलती है।

शास्त्रानुसार आसाम (कामरूप) एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ पीठ देवी कामाख्या के अलावा और कई पीठ प्रतिष्ठित हैं। कालिका पुराण और योगिनी तंत्र आदि ग्रंथों में तीर्थ क्षेत्र का विस्तृत विवरण मिलेगा।

द्विल –268

आसाम बुरूंजी के अनुसार महीरंग नामक कोई एक दानव प्राचीन काल में आसाम के अधिपति थे। उनके वंश के और चार राजाओं ने क्रमानुसार यहाँ राजत्व किया है। इसके पश्चात् नरकासुर ने इस प्रदेश पर अपना आधिपत्य विस्तार किया। ये विष्णु के द्वारा आसाम के सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे।(1) श्री श्री कामाख्या देवी के मंदिर निर्माण के बारे में नरकासुर का एक आख्यान प्रचलित है। महाराज नरक रामायण के घटनाओं के समकालीन व्यक्ति हैं(2)।

वर्तमान गौहाटी (अब गुआहाटी) नगर में इनकी राजधानी थी। नरकासुर के बाद उनके पुत्र भगदत्त आसाम के अधिपति हुए। इन्होंने कुरूक्षेत्र की लड़ाई में दुर्योधन का पक्ष अवलम्बन किया था। भगदत्त के पश्चात् उनके वंशज और पाँच राजाओं का नाम कामरूपी बुरूंजी में पाया जाता है।

इसके पश्चात् यहाँ पर देवेश्वर नाम के एक राजा के कुछ दिनों तक राजत्व करने का प्रमाण मिलता है। ये धीवर जाति के थे, इस तरह का एक प्रवाद है। इसके कुछ दिनों के पश्चात् ब्रह्मपुत्र वंशीय ब्राह्मण राजवंश द्वारा यह प्रदेश शासित हुआ था। चीन परिब्राजक हिउ–ऐन–सियां के आसाम भ्रमण के समय (560 –561 शक) नारायण देव वंशीय बर्म्मा उपाधियुक्त भास्कर बर्म्मा के वंशज यहां राजत्व करते थे। उक्त परिब्राजक ने इस राजा को ब्राह्मण जातीय बोला था, लेकिन उपाधि द्वारा इसका क्षत्रिय परिचय मिलता है।(3) इसके पश्चात कलिंद बर्म्मा का नाम मिलता है।(4) ये भास्कर बर्म्मा के वंशज थे। इसके पश्चात् नागांक नाम के एक राजा ने इस प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापन किया था। एक लोक कथा के अनुसार इन्होंन करतोया नदी के गर्भ में जन्म ग्रहण करके ब्राह्मणत्व अर्जन किया था। यह वंश लगातार चार सौ सालों तक राज करता रहा। उसके ब्रह्मपुत्र दक्षिण में आड़िमाव नामक राजा एवं उत्तर में छुटिया जाति ने यहाँ पर अपना आधिपत्य कायम किया था। आड़िमाव के पुत्र जोंगलबलहू के राज्य लाभ करने पर काछाड़ राज के साथ सदा युद्ध–विग्रहादि होते रहने पर अपने को सुरक्षित करने के अभिप्राय से एक दुर्ग का निर्माण किया था। नौगाँव के शहरी परगना में उस दुर्ग के भग्नावशेष अब भी देखने को मिलते हैं। कपिलि नदी के किनारे शेष युद्ध में जोंगलबलहू पराजित हुए थे।

....

(1) कालिका पुराण 36 –40 अध्याय देखिये।

(2) सीता के अन्वेषण के लिये आसाम अंचल में प्रेरित वानर से सुग्रीव ने कहा था –

योजनानि चतुःषष्टि बराहो नाम पर्वतः।
सुवर्णश्रृंगः सुमहान गाबे बरूणालये।।
तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम्।
तस्मिन बसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः।

किष्किन्धाकांड 42सर्ग 30 –31श्लोक

(3) **Beal's Budhist Record Vol II. page 96**

(4) दसकुमार चरित।

द्विल –269

और भी कई–कई वंशों के आसाम में कुछ समय राजत्व करने के पश्चात् धर्मपाल का आधिपत्य स्थापित हुआ। धर्मपाल बंगाल के पालवंशीय राजा थे, ऐसी धारणा और विश्वास कुछ लोगों का है, किन्तु इस विषय में मतभेद है। यह 1097 शक की घटना है। इसके अलावा इस वंश के परवर्ती राजाओं की आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये लोग पालवंशीय राजा ही थे।

पालवंश के पतन के बाद कामतापुर के राजवंश के लोगों ने यहाँ पर कुछ दिनों तक राजत्व किया था। इसके बाद कोच और अहोम जाति का प्रभाव प्रतिष्ठित हुआ। राजा जयध्वज सिंह के समय से इस प्रदेश के प्रति मुसलमानों का हस्त प्रसारित हुआ था।

सम्राट औरंगजेब के सेनापति मीरजुमला ने आसाम पर फतह हासिल किया था। किन्तु आधिपत्य का विस्तार करने में नाकामयाब होकर 1663 ई सन में उन्हें पुनः बंगदेश लौटना पड़ा था।

कुछ दिनों के पश्चात् आसाम में अंतर्विप्लव आरंभ हुआ। इस समय अंग्रेजों ने बनिये के रूप में इस राज्य में प्रवेश किया था। देश की समृद्धि और शष्य सम्पदा देखकर ये मुग्ध हो गये एवं तब से ही उस प्रदेश को हस्तगत करने का संकल्प उनके ह्रदय में बद्धमूल हो गया। इस समय आसाम के राज गौरीनाथ सिंह, दरंग के कोचराज द्वारा राज्य–च्युत होने पर अंग्रेजों ने उनकी सहायतार्थ सेना भेजी (1792 ई सन) इसके बाद अंतर्विप्लव, शासन विश्रृंखला आदि कारणों से क्रमशः आसाम की हालत शोचनीय होने लगी। ब्रह्मराज ने सुयोग देखकर आसाम के प्रति नाना तरह के अत्याचार कराना शुरू किया। अंत में (1824 ई सन में) ब्रह्म और अंग्रजों में युद्ध हुआ। इस युद्ध के उपलक्ष में 1826 ई सन की 24 फरवरी तारीख को जो संन्धि हुई उसके फलस्वरूप आसाम का सारा निम्न प्रदेश ब्रिटिश राज्य के अधीन चला गया। उन दिनों राज्य का उत्तरांश पुरन्दर सिंह नामक एक सेनापति की देखरेख में था। 1834 ई सन में अंग्रेजों ने उसे अपना राज्य में शामिल कर लिया। तब से आसाम राज्य का अस्तिव विलोप हो गया।

इछामती(55 पृष्ठ –1633 पंक्ति) यह एक नदी का नाम है। ढाका जिला के वक्षः स्थल को चीर कर बह रही है। यह नदी साहेबगंज के यहाँ धलेश्वरी से निकल कर मदनगंज के यहाँ धलेश्वरी में ही पुनः पदार्पण करती है। यह नदी बड़ी प्राचीन है। इसका पौराणिक नाम ईक्षु नदी है। ब्रह्माण्ड पुराण में है –

इक्षु लोहित इत्येता हिमवत् पादनिसृताः।

कहावत है, इसके किनारे के जगहों में प्रचुर मात्र इक्षु (ईख) उत्पन्न होती थी। इसलिये इसका नाम इक्षु नदी पड़ गया। यह नदी जहाँ से होकर गुजरी है, रेनेलकृत मानचित्र के 16वें खण्ड में वह उपलब्ध है। इस नदी के तट पर बहुत

द्विल –270

से समृद्ध नगर, जनपद और वाणिज्य स्थल है। त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य के बंग अभियान के समय इस नदी पथ से उनके जाने की बात राजमाला में पाई जाती है।

इछामती पथे पद्मावती गेलो परे। इछामती होते हुये पद्मावती गये।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ

इस समय यह नदी पहले की तरह प्रचण्ड वेगवती नहीं है। अब पथ भ्रष्ट होकर क्षीण हो गई है।

इटा(57 पृष्ठ –10 पंक्ति) इस स्थान की गिनती एक खण्ड राज्य के रूप में थी। इस समय यह भू–भाग श्रीहट्ट जिला के एक परगना में परिणत हो गया है। त्रिपुरेश्वर महाराज स्वधर्म पा(राजमाला के अनुसार सधर्मा या सुधर्म) कैलाशहर में अपना राजपाट लेकर राजत्व करने के समय, वात्स्य गोत्रिय निधिपति नाम जनैक साग्निक ब्राह्मण उनकी सभा में उपनीत हुआ। राजा के इस प्रभावान्वित विप्र के गुण से मुग्ध होकर उनके द्वारा एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था।(1) इस यज्ञ के अंत में निधिपति ने राजा से एक विशाल भू–भाग ब्रह्मोत्र स्वरूप प्राप्त किया था। यह स्थान पहले 'मनुकुल' के नाम से प्रसिद्ध था। उन दिनों आधुनिक चवालिस, बालिशिरा, सातगाँव, छयचिरि, इन्दानगर, भानुगाछ, इन्द्रेश्वर, और बरमचाल यह आठ परगना लेकर मनुकुल प्रदेश गठित हुआ था। निधिपति ने इस दान प्राप्त भूमि में अपना बास स्थान का निर्माण किया था। उनके अनुरोध पर और कुछ ब्राह्मण आकर वहाँ वास करने लगे। कहावत है, वह स्थान जंगलाकीर्ण अवस्था में था। ब्राह्मणों ने वास भवन निर्माण के के लिये दूर स्थित उच्च स्थान से इटा(ढेला) फेंक कर स्थान निर्वाचन किया था। इस घटना से यहाँ का नाम इटा पड़ गया। उत्तरोतर इस स्थान का सौष्ठव और समृद्धि होते होते यह एक छोटे से राज्य में परिणत हो गया था। निधिपति के अधस्तन अष्टम स्थानीय भानुनारायण को त्रिपुरेश्वर से 'राजा' उपाधि मिली थी। इनकी स्थापित राजधानी का 'राजनगर' नामकरण हुआ था। अब तक वहाँ प्राचीन कीर्ति चिन्ह देखने को मिलेंगे। 'एवलातली' नाम के निधिपति के स्थापित वासस्थान पर अब भी उनके वंशज निवास करते हैं। भानुनारायण के पुत्र सुविद नारायण इटा के परवर्ती अधिकारी हैं।

यह था मुसलमान प्रभाव का काल। बंग सूबा के नियोजित दीवान 'राय' उपाधिधारी वैद्य वंशीय आनन्द नारायण राय के साथ राजस्व के बारे में समय समय पर भानु नारायण के साथ कलह उपस्थित होता था। ये लोग त्रिपुरेश्वर के आश्रित राजा कहकर बंग के दीवान की उपेक्षा करते थे। बड़ुआ पहाड़ स्थित पागड़ीया टीला में एवं पर्वतपुर में सुविद नारायण द्वारा निर्मित सेना निवास का भग्नावशेष अब भी विद्यमान है। पूर्वोक्त दीवान के साथ सामाजिक घटना को लेकर राजा को और एक नया कलह

---

(1) इस यज्ञ का विवरण और निधिपति का परिचय राजमाला प्रथम लहर के 105 पृष्ठ पर देखिये। यह 604 त्रिपुराब्द की (1194 ई सन) घटना है।

द्विल –271

उपस्थित हुआ, इस दीवान की प्ररोचना/षडयन्त्र से पठान सेनाओं द्वारा इटा राज्य आक्रांत हुआ। पाँच दिनों तक अविश्रान्त लड़ाई के पश्चात् इटा उनके हाथों में चला गया। राजा की लड़ाई में मृत्यु हुई। राजमहिषी और राजकुमारी ने आत्मजीवन की आहुति दे कर अपनी कुल मर्यादा की रक्षा की थी। राजभ्राता आदि आत्मीयवर्ग भाग गये। चारों राज पुत्र बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिये गये और वहाँ उन्हें मुसलमान धर्म में दीक्षित किया गया। ज्येष्ठानुक्रम से जामाल खाँ, कामाल खाँ, हाजी खाँ और ईशा खाँ नाम धारणपूर्वक पैतृक राज्य में लौट आये। तब से हिन्दू शासित इटा राज्य मुसलमान शासन में चला गया। यह सोलहवीं ई सदी के मध्यभाग की घटना है।

अंग्रेज शासन काल में यह प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्भुक्त एवं श्रीहट्ट जिला का एक परगना बनकर रह गया।

उत्कल(39 पृष्ठ –19 पंक्ति) प्रथम लहर की टीका (241 पृष्ठ) में इस जगह का विवरण दिया गया है। यहाँ पुनरूल्लेख निष्प्रयोजन है

उदयपुर(68 पृष्ठ –9 पंक्ति) यह स्थान कुमिला नगरी से पूर्व की ओर (नौ कोस)18 मील दूरी पर गोमती नदी के दक्षिण तट पर स्थित है। यहाँ पर 'त्रिपुरा सुन्दरी' पीठ देवी एवं त्रिपुरेश या नल नामक भैरव है। पीठस्थान के रूप में यह स्थान भारत विख्यात हो चुका है। यहाँ पर सदा सर्वदा नाना देश के तीर्थ यात्री एवं साधु सन्यासियों का समागम होता रहता है। प्रथम लहर 122 पृष्ठ में इस पीठ स्थान का विवरण मिलेगा।

इस स्थान का प्राचीन नाम रांगामाटी है। उदयमाणिक्य के शासन काल में उदयपुर नाम हुआ था।(1) लिका सम्प्रदाय के मघ राजा द्वारा यह अंचल शासित होता था। त्रिपुरेश्वर महाराज जुझारू/युझारू फा (नामांतर हिमती) ने मघ राजा को परास्त कर यहाँ पर अपना राजपाट की प्रतिष्ठा की। उस समय इन्होंने बंग देश के कुछ अंशों को जीतकर उस घटना को चिरस्मरणीय करने की अभिप्राय से एक अब्द का प्रचलन किया था, वह त्रिपुराब्द नाम से कहा जाता है। प्रथम लहर के 107 पृष्ठ में इस अब्द के प्रचलन का विवरण प्रदान किया गया है – इस समय 1337 त्रिपुराब्द है।

(इस समय 2000 लगभग सन् जब मैं अनुवाद कर रहा हूँ तब त्रिपुराब्द 1412 है अर्थात आज 75 साल पहले द्वितीय लहर की यह टीका लिखी गई है – हिन्दी अनुवादक) है। इस हिसाब से कमोवेश साढ़े तेरह सौ साल यहाँ त्रिपुरा की राजधानी स्थापित हुई थी।

महाराज जूझारू फा से कल्याणमाणिक्य (द्वितीय) तक 55 नरपतियों ने कमोवेश सौ साल पहले यहाँ रहकर राज्य शासन किया है। महाराज कृष्णमाणिक्य ने 1170 त्रिपुराब्द में वहाँ से राजपाट उठाकर अगरतला में नई राजधानी की प्रतिष्ठा की। नाना तरह के राष्ट्र विप्लव से बचने के लिये यह परिवर्तन किया गया था। तब से डेढ़ सौ साल का यहाँ के राजपाट

(1) रांगामाटी का स्थूल विवरण प्रथम लहर के 267 पृष्ठ पर दिया गया है।

द्विल –272

का गौरव विनष्ट को गया। किन्तु यह स्थान हर तरह से राजधानी के उपयुक्त था। वर्तमान राजधानी को उसकी तुलना से बहुत माने में निकृष्ट कहना होगा (अब यह बात नहीं है –2000 ई. से 75 साल पहले अगरतला जरूर उदयपुर से निकृष्ट रहा होगा – हिन्दी अनुवादक)। स्थान को सुरक्षित करने के लिये जो प्रचेष्टायें हुई थी उससे।

उस समय के सामरिक ज्ञान का परिचय मिलता है। समुन्नत पर्वत माला के सुदृढ़ वेष्टनी में यह स्थान बाहरी शत्रु के लिये दुरतिक्रमणीय हुआ है।

राष्ट्रविप्लव, अंतर्विप्लव, आत्मविरोध आदि नाना तरह के उपद्रवों के फलस्वरूप यहाँ जो हत्या काण्ड की घटना घटी थी, उसका सम्यक विवरण प्रदान करना असंभव है। हिन्दु, मुसलमान एवं बौद्धों के उत्तप्त शोणित(गर्म खून) से यह स्थान बहुत बार विप्लवित हुआ है। किसी किसी पाखण्डी षड़यंत्रकारी की प्रोचना/षड्यन्त्र से यह सुपवित्र पीठ स्थान के राज–रक्त से भी कलुषित होने के प्रमाण मिलते हैं।

यहाँ पर बहुत से सागर नाम से विशाल सरोवर, बड़े तालाब, जलाशय, राज प्रासाद, देवालय, सेनानिवास मठ, मंदिर आदि त्रिपुरा की प्राचीन समृद्धि का परिचय प्रदान करते हैं। अब यह स्थान त्रिपुर राज्य का एक उपविभाग है एवं उदयपुर में प्रधानकार्यालय स्थापित हुआ है। (दक्षिण त्रिपुरा का मुख्यालय है। इस समय जिला हैडक्वाटर है–हिन्दी अनुवादक) स्वर्गीय महाराज वीरेन्द्र किशोरमाणिक्य बहादूर ने अपने पिता को चिर स्मरणीय करने के लिए इस शहर का नाम राधाकिशोरपुर नाम दिया था(1)।

उनकोटि(59 पृष्ठ –4 पंक्ति) यह इस समय उत्तर जिला का मुख्यालय कैलासहर के अंतर्गत एक तीर्थ स्थान है। इस लहर के 107 पृष्ठ में इस तीर्थ का विवरण मिलेगा। प्रथम लहर के 97 पृष्ठ में जिस छाम्बुल नगर का विवरण दिया गया है उसके साथ इस तीर्थ क्षेत्र का घनिष्ठ सम्बंध है।

कचुयाछड़ा(75 पृष्ठ –3 पंक्ति) इसका दूसरा नाम है कलुयाछड़ा या कालुयाछड़ा। यह स्थान उदयपुर से पूर्व की ओर कलुयाछड़ा (एक बहता हुआ सोता) के तट पर स्थित है। कलुयाछड़ा ने गोमती नदी में जाकर (मिल गया) आत्मसमर्पण किया है। इसी के तट से कुछ ही दूरी पर पार्वत्य एक गाँव में अमरमाणिक्य का जन्म हुआ था।

कनोज(3 पृष्ठ –2 पंक्ति) इसका प्राचीन नाम कान्यकुब्ज, कन्यकुब्ज, महोदय, कन्याकुब्ज, गाधिपुर, कौश और कुशस्थल था –

कन्यकुब्जं महोदयं कन्याकुब्जं गाधिपुरं।
कौशं कुशस्थलंच तत्।। (हेम –4/39)।

यह स्थान फरूखाबाद जिला में काली नदी के पश्चिम तट पर गंगा और काली के संगम स्थल पर बसा हुआ है। रामायण में है –कुश नाभस्तु धर्मात्मा पुरं चक्रे महोदयम्।
बाल्मीकि रामायण –आदि काः 32/6

---

1 त्रिपुरा स्टेट गजट 11 भाग द्वितीय संख्या 12 पृष्ठ

द्विल –273

कुश के पुत्र कुशनाभ द्वारा यह नगरी स्थापित हुई है। इसके बाद उसके पुत्र गाधि ने यहाँ पर राजत्व किया था। तब से इसका दूसरा नाम गाधिपुर हो गया है। कन्याकुब्ज नाम की उत्पत्ति के बारे में रामायण में आदि काण्ड के 32 और 33 सर्ग में जो उपाख्यान सन्निवेशित हुआ है उसका स्थूल मर्म नीचे दे रहे हैं –

घृताचि अप्सरा के गर्भ से राजर्षि कुशनाभ के सौ कन्याएं उत्पन्न हुई। पूर्ण यौवना सभी अलौकिक सौन्दर्यशालिनी कन्याओं ने एक समय उद्यान में भ्रमण करते समय वायु ने सम्मुखीन होते ही विमुग्ध चित्त से इनके सामने आकर उन्हें पाने की इच्छा प्रकाश की। कन्याओं ने कहा हम स्वाधीन नहीं हैं, हमारे पिता है। वे जिसके हाथों हमें अर्पण करेंगे, उन्हें ही हम अपना स्वामी के रूप में स्वीकार करेंगी। आप के प्रस्ताव पर सम्मतिदान का हमें कोई अधिकार नहीं है।" वायु उनकी बातों से क्रुद्ध होकर उनके शरीर में प्रवेश कर सारे अंगों को तोड़ दिया। कन्याओं के इस घटना से कुब्ज होने से उस जगह का नाम 'कन्याकुब्ज' हो गया। बाद में उनकी कुब्जता दूर हो गई थी।

ई सन सत्रह शताब्दी में चीन परिब्राजक हिउयेन–सियां (Hieun Tsang) यहाँ पर आये थे। उन्होने इस स्थान के नामाकरण के बारे में जो कुछ कहा है, वह पूर्वोक्ति विवरण से सामान्य भिन्न है। उनके मत से वायु के बदलने से महावृक्षऋषि कन्याओं के लिये प्रार्थी हुए थे और उनके श्राप से उनकी देह में कुब्जता आई थी।

पाश्चात्य भूगोलविद् टलेमी ने इस स्थान को कनोगिज (**Kanogiza**) और प्लिनि, कलिनिपक्ष (**Calinipaka**)के नाम से अभिहित किया है। कुश वंश के राजत्व के पश्चात् इस प्रदेश में गुप्त वंश का अभ्युदय हुआ। इस वंश पर प्रभाकरवर्द्धन से लेकर हर्षवर्द्धन (शिलादित्य) तक तीन राजाओं का नाम चीन परिब्राजकों के भ्रमण वृत्तांत में पाया जाता है। इसके बाद कुलचुरी और पाल वशंज राजाओं ने इस स्थान पर राजत्व किया। इन लोगों ने देवशक्ति वंशज राजाओं से यह प्रदेश अपने अधिकार में लिया था। इसके पश्चात् चन्द्र राजाओं का प्राधान्य स्थापित हुआ। इस वंश के जयचन्द्र या जयचाँदही कन्नौज के शेष हिन्दु राजा थे। आदिशूर यज्ञ सम्पादनार्थ इस स्थान से पंचगोत्रीय साग्निक ब्राह्मण लाया था।

कलमी गढ़(73 पृष्ठ –7 पंक्ति) यहाँ पर त्रिपुर सेना निवास था। उदयपुर से खण्डल अभिमुखीन रास्ते के ऊपर इस दुर्ग के रहने के प्रमाण मिलते हैं। वर्तमान सोनामुड़ा शहर से दक्षिण की ओर जाते समय दो मील की दूरी पर 'दूध पुस्करिणी' नाम के एक विशाल तालाब है। इस विशाल तालाब पश्चिम की ओर विशाल भूखण्ड में इटों की दीवारो का भग्नावशेष दिखाई देता है। फिर इसके पश्चिम की ओर दक्षिण कोने में मिट्टी की दीवार और परिखा था। उसके चिन्ह अब भी मौजूद हैं। यहाँ पर सेना निवास रहने की बात कही जाती है। पर इस गढ़ का नाम क्या था, यह

द्विल –274

कोई नहीं कह सकता। राजमाला की वर्णना से मिलाने पर ऐसा लगता है यही कलमी गढ़ का भग्नावशेष है।

कैला(13 पृष्ठ –4 पंक्ति) कैलासहर, यह स्थान श्रीहट्ट जिले के सीमांत प्रदेश में मनु नदी के तट पर स्थित है। इसका प्राचीन नाम था छाम्बुल नगर। कैलासहर नाम कितना प्राचीन है और किस उपलक्ष में यह नामकरण हुआ है यह निर्णय करना असंभव है। वर्तमन कैलासहर के कुछ ही दूरी पर उनकोटि तीर्थ है और वहाँ महादेव की मूर्ति प्रतिष्ठित है। त्रिपुरा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. धनंजय ठाकुर ने कहा है यह शिवाधिष्ठित स्थान है। इसलिये कैलास के साथ हर योग से कैलासहर नाम हुआ है। स्थानीय कहावत के अनुसार इसका प्राचीन नाम कला–हावर था। श्रीहट्ट अंचल में विशाल झील को हावर कहते हैं। इस जलमय विशाल तट पर रामकला का वन था। (केले को यहाँ कला कहते हैं) इसलिये इसे कला–हावर कहते थे। फिर किसी किसी के मत से यहाँ पर कोयले की खान थी। इसे कोयला–हावर भी कहते हैं। उन लोगों के अनुसार कला–हावर या कोयला हावर से ही अंत में कैलासहर हुआ है। इसमें कौन सा कारण ग्रहणीय है यह निर्णय करना कठिन है। प्रचलित एक गाँव की कहावत से जाना जाता है–राजधानी की स्थापना के पहले किवां राजधानी के स्थानांतरण के पश्चात् किसी एक समय यहाँ का पथ बहुत ही दुर्गम था। कहावत यह है –

हाते लाठि बने धर। तबे जाबि कलाहर।।

अर्थात वन में, हाथ में लाठी धर तब जाओगे कलाहर।।

यहाँ पर जाने के लिये एक हाथ में लाठी पकड़ कर तब इस वन के उबड़ –खाबड़ पथ पर चलना पड़ता था। यहाँ पर राजधानी की स्थापना के पश्चात् साधारण जनसाधारण की कुछ सुविधा अवश्य हुई थी। अति प्राचीन काल से ही यहाँ कुकि जातियों का आवास स्थल था। दूर दूर पर कुछ कुकियों का वास है। इस समय उस अंचल में त्रिपुरेश्वर के अधीन चार दारहुला कुकि और तीन लुसाई राजा रहते हैं (यह आज 2000 ई. से 75 साल पहले की बात है। त्रिपुरा में अब कोई जमींदार या छोटे तबके राजा नहीं हैं –यह एक भारत का प्रदेश मात्र है – हिन्दी अनुवादक)। यहाँ के प्रचलित काताल और काँकचाँद की घटित आख्यायिका पहले ही दी गई है। त्रिपुरा राज्य के सदर को छोड़कर दूसरे स्थानों की तुलना में कैलासहर में संभ्रांत वंश के हिन्दु और मुसलमानों की संख्या अधिक है। यहाँ पर धनवान/वित्तशाली लोग भी अधिक हैं। बहु संख्यक कुकि राजा (अब नहीं है – हिन्दी अनुवादक), संभ्रांत वंश तालुकदार, धनशाली व्यवसायी समुदाय की वजह से यह त्रिपुर राज्य के एक विशेष मर्यादित शहर के रूप में प्रतिष्ठित है। (कैलासहर उत्तर त्रिपुरा जिला का मुख्यालय है – हिन्दी अनुवादक)। पहले यहाँ त्रिपुरा की राजधानी थी। त्रिपुरेश्वरों ने वैदिक यज्ञादि के द्वारा इसे एक पुण्य क्षेत्र में बदल दिया था। उनकोटि महात्म्य के अनुसार यह स्थान सुपवित्र तीर्थ क्षेत्र माना जाता है। यहाँ पर हर साल अशोकाष्टमी के दिन बहुत से यात्रियों का समावेश होता है।

कैलासहर एक प्रधान वाणिज्य स्थान है। पर्वतों के होने से कपास और नाना जाति की लकड़ियाँ यहाँ से बाहर भेजी जाती थी (अब ऐसा नहीं है– हिन्दी अनुवादक)। यहाँ के व्यवसाय के बहुत से लोग धनवान हुए हैं। पहले हर साल हस्ती खेदा से प्रचुर अर्थागम होता था।

द्विल –275

<u>कैलागढ़(25 पृष्ठ –9 पंक्ति)</u> यह कसबा का नामांतर है। कसबा पारसी शब्द है। इसका अर्थ है सहर या जनपद। मुसलमान शासन काल में यह नाम हुआ है।

यहाँ कुछ समय के लिये त्रिपुरा की राजधानी थी। महाराज धन्यमाणिक्य की महिषी महारानी कमला देवी द्वारा खनाया गया कमला सागर यहीं है। इस सरोवर के पूर्व तट पर छोटे से टीले के ऊपर महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में श्री श्री कालिका देवी और देवमन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है। इसके पूर्व की ओर प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष हैं और परिखा आदि अब भी हैं। इस जगह पर मुसलमानों के साथ कई बार त्रिपुरा की लड़ाई हुई है। धन्यमाणिक्य के शासन काल में होसेन शाह के सेनापति हैतन खाँ के द्वारा यह दुर्ग आक्रांत हुआ था। यह 1437 शक की घटना है।

<u>कोच(24 पृष्ठ –24 पंक्ति)</u> कोच जाति का अधिकृत प्रदेश। इस प्रदेश का विस्तृत विवरण राजमाला के प्रथम लहर के 134 पृष्ठ में दिया गया है। यहाँ पुनः उल्लेख नहीं किया गया।

खंर्च्छु /<u>खछुं(20 पृष्ठ –16 पंक्ति)</u> यह स्थान खुचुं नाम से भी पुकारा जाता था। लुसाई पहाड़ के करीब उत्तर की ओर यह स्थान है(1)। यहाँ पर खुचुं सम्प्रदाय के कुकियों का निवास स्थल होने के कारण इसका इस तरह का नाम हुआ हैं। महाराज इन्द्रमाणिक्य के शासन काल में मुसलमानों द्वारा राष्ट्र – विप्लव होने पर त्रिपुरा की परिस्थिति भयानक हो उठी थी। इस समय लुसाई और खुचुं सम्प्रदाय के कुकियों ने राज्य के उत्तर–पूर्वांचल में विद्रोह की आग प्रज्वलित की थी। इस विद्रोह के दमन के लिये युवराज कृष्णमाणिक्य (बाद में कृष्णमाणिक्य) को बहुत श्रम करना पड़ा था। इस बारे में कृष्णमाला में लिखा गया है –

''हेन काले उपद्रव पूर्वकुले(2) होइल।
बंगपाड़ा थाकि सवे समाचार पाइल।।

---

(1) खुचुं किरात बास करये जेखाने।
लुचि–दफा कुकि थाके ताहार दक्षिणे।।

अर्थात ''खुचुं किरात का जहाँ निवास है लुचि–दफा कुकि उसके दक्षिण में रहते हैं।'' कृष्णमाला।

(2) बरबक्र (बराक) नदी और उसके दक्षिण चाथेंग नदी के बीच के भूभाग को पहले ''पूर्वकुल'' कहा जाता था।

कृष्णमाला में है – कंगलाई नामें एक पर्वतेर श्रृंग।
ताहार दक्षिणे नदी नामेते चाथेंग।।
ई सब स्थानेते बोइसे यत कुकिचय।
पूर्वकलिया बलि ता सबाय कय।।'' कृष्णमाला।

अर्थात ''कंगलाई नाम का एक पर्वत श्रृंग है उसकी दक्षिण की ओर एक चाथेंग नदी बहती है। यहीं पर सभी कुकि बास करते हैं। इसे सभी पूर्वकलिया कहते हैं।

द्विल –276

खुचु दफा एक कुकि लुचि दफा(3) आर।
से सब ना थाके अधिकारे त्रिपुरार।।
तारा आसि पूर्वकुले दस्युवृत्ति करि।
मनुष्य मारिया धन लेया जाय हरि।।''

अर्थात ''इस समय पूर्वकुल में उपद्रव हुआ। बंगपाड़ा में रहते हुए यह समाचार मिला। खुचुं दफा एक कुकि और लुसाईयों की भूमि त्रिपुरा के अधिकार में न रहकर विद्रोह की घोषणा की। वे पूर्वकुल में (बरबक्र अर्थात वर्तमान बराक नदी और चाथेंग नदी के मध्यवर्ती स्थान) आकर दस्युवृत्ति कर मनुष्यों की हत्या कर धन का अपहरण कर ले जाते थे।''

राजमाला में इस प्रसंग के जो विवरण मिलते हैं उसे नीचे दिया जा रहा है –

हेडम्ब छाड़िया युबराज गैलो पुर्बकुल।	हेडम्ब छोड़ राजा गये पूर्वकुल।
खुछंग कुकीर संगे युद्ध जे बहुल।।	खुछंग कुकी के साथ युद्ध हुआ बहुल।।
* * *	* * *
चाथेंग नदीर पूर्बकुल आसिलो जखन।	चाथेंग नदी के पूर्ब किनारे आये जिस क्षण।
हेडम्ब खूछंग युद्धे उद्योग कोरेन।।	हेडम्ब खुछंग युद्ध का किया आयोजन।।
खुछंग मारिते गेलो कोबरा गोबर्द्धन।	खुछंग को मारने गया कोबरा गोबर्द्धन।
खूछंग जिनिया जय पाइलो तखन।।	खुछंग विजयी हो गया उस क्षण।।
राजमाला चल कृष्णमाणिक्य खण्ड 48पृ	राजमाला चल कृष्णमाणिक्य खण्ड 48पृ

अर्थात ''हेड़म्ब को छोड़ राजकुमार पूर्वकुल गया। खुचुं कुकि के साथ बहुत युद्ध हुआ। चाथेंग नदी जब पूर्वकुल में थी, हेड़म्ब ने खुचुं के साथ युद्ध का उद्योग किया। कोबरा गोवर्द्धन खुचुं को मारने के लिये गया और खुचुं को तब उसने जीतकर विजय प्राप्त किया।''

इस युद्ध में खुचुंगों को जीतकर जनार्दन सेनापति ने खुंचु दर्पनारायण की उपाधि प्राप्त की थी(4)।

खुचुं सम्प्रदाय के किसी कुकि राजा की कन्या से विषलता की उत्पत्ति की एक प्राचीन कहावत प्रचलित है। इसके पहले 242 पृष्ठ में वह कहानी देखी जा सकती है।

खण्डल(13 पृष्ठ –11 पंक्ति) इसके पहले मण्डल शब्द की विवृति प्रदान की गई है। प्रथम लहर 232 पृष्ठ। प्राचीन मतानुसार मण्डल शब्द का अर्थ है –''द्वादसराजकम्'' – (मेदिनी)। ''स च देशः समन्ताद्विंशतियोजनं चत्वारिंशद् योजनं वा।'' (केचित्)। मण्डल द्वादश राजक नाम से जाना जाता था अर्थात् बारह राजा के अधिकृत स्थान को मण्डल एवं उसके अधिपति को मण्डलेश्वर कहा जाता था। मण्डल से छोटे भूभाग को ''खण्डल'' कहा जाता था।

राजमाला में वर्णित खण्डल त्रिपुरा राज्य के वर्तमान बिलोनिया महकमे के पश्चिम में है। यह काल प्रभाव से त्रिपुर राजा से अलग एवं त्रिपुरेश्वर की जमींदारी के अधीन रहा है। पहले बसिक उपाधिधारी छोटे छोटे जमींदारों के द्वारा यह अचंल का शासन चलता था। यह एक विशाल परगना है। पहले यह त्रिपुरा जिले में था(अब जिला दक्षिण त्रिपुरा – हिन्दी अनुवादक) अब नोयाखाली जिले में चला गया है। (अब नोयाखाली बांग्लादेश में है देश विभाजन के पश्चात्। पहले पूर्वी पाकिस्तान में था – हिन्दी अनुवादक)।

....

(3) लुसाइयों को लुचिदफा कहा गया है

(4) जनार्दन नामें एक छिल सेनापति।
खुचुं दर्प नारायण होइल तार ख्याति।। कृष्णमाला।
अर्थात, जनार्दन नाम के एक सेनापति थे। खुचुं दर्प नारायण उपाधि से उनकी ख्याति हुई थी।

द्विल –277

<u>खामाचेब(20 पृष्ठ –14 पंक्ति)</u> बरबक्र(बराक) नदी के दक्षिण एवं चाथेंग नदी के उत्तर की ओर स्थित भूभाग को प्राचीन काल में पूर्वकुल कहा जाता था। ''लंगाई'' उपत्यका भी इस प्रदेश के अधीन था। यह कुकि प्रदेश था। खानाचेब सम्प्रदाय के कुकि लोग पहले यहाँ रहते थे। यह स्थान खामाचेब नाम से प्रसिद्ध हुआ था। यह स्थान इस समय ब्रिटिश सरकार के अधीन है। (आज 2000 ई. से 75 साल पहले यह ब्रिटिशराज्य में ही था, पर अब देश स्वाधीन है। जब यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय और आज में 75 सालों का फर्क है –अनुवादक 2000 ई)।

<u>खामारांखल(20 पृष्ठ –15 पंक्ति)</u> यह स्थान पूर्वकुल के अधीन है। छाताचुड़ा पर्वत के पूरब की ओर हिंगलाछड़ा के पूर्व किनारे पर बसा हुआ है। इस समय भी यहाँ रांखल सम्प्रदाय के कुकियों का बास है।

<u>खासिया (43 पृष्ठ –24 पंक्ति)</u> यह एक स्वतंत्र राज्य था। यह प्रदेश ब्रह्मपुत्र और सुर्म्मा नदी के मध्यभाग में स्थित है। ई सन सोलहवीं सदी के तीसरे चरण में इस प्रदेश के राजा विजयमानिक की अविमृष्यकारिता के फलस्वरूप त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य ने इस राज्य को आक्रमण किया था। हेड़म्बेश्वर निर्भयनारायण की मध्यस्थता में इस विवाद का समाधान हुआ था।

1765 ई सन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बंगदेश में दीवानी पाने के बाद से ही अंग्रेज कम्पनी वाले की लोलुप नजर श्रीहट्ट प्रदेश के ऊपर थी। इन्होंने पहले चूना और नारंगी का व्यवसाय आरम्भ किया एवं क्रमशः प्राधान्य विस्तार की चेष्टा देखकर खासिया वालों ने सन 1829 ई अप्रैल महीने में इन पर आक्रमण किया एवं दीर्घ दिनों तक लड़ाई के पश्चात् खासिया प्रदेश सम्पूर्ण रूप से अंग्रेजों के हस्तगत हुआ। इस समय पार्वत्य प्रदेश के कुछ अंश खासिया सरदारों के द्वारा और बाकी ब्रिटिश सरकार के द्वारा शासित हो रहा है (यह 2000 ई. से 75 साल से पहले की बात है जब राजमाला द्वितीय लहर का सम्पादन स्व. काली प्रसन्न सेन द्वारा हुआ था। उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष पर अंग्रेजों की हुकुमत थी। पर अब भारत वर्ष स्वाधीन है। 1947 ई से ही अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। अब खासिया आदि प्रदेश को मेघालय कहा जाता है और वह भारत का एक प्रदेश है – हिन्दी अनुवादक)।

<u>गंगानगर(25 पृष्ठ –24 पंक्ति)</u> यह स्थान उदयपुर और अमरपुर के मध्य भाग में गोमती नदी के तीरे स्थित है।

<u>गंगामण्डल(13 पृष्ठ –2 पंक्ति)</u> यह त्रिपुरा जिला का एक विशाल परगना था। यह भूभाग मुसलमान के शासन काल में त्रिपुरा राज्य से निकलकर एक स्वतंत्र निज जमींदारी में बदल गया। पहले बरदाखात के जमींदार आका सादेक ने 16,389 रूपये राजस्व के हिसाब से देने पर तैयार हो जाने के पश्चात् उनके नाम से बन्दोबस्त दे दिया गया। इसके बाद शोभाबाजार के राजा नवकृष्ण बहादूर ने इसे खरीदकर इसके अधिकारी बने थे।

<u>गोमती(22 पृष्ठ –24 पंक्ति)</u> यह एक नदी है। यह नदी अठारमुड़ा पर्वत से निकली छाइमा नदी और लंतराई पर्वत से उत्पन्न राइया नदी के सहयोग से उत्पन्न होकर डुम्बुर नाम के जल प्रपात से निकली है। त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी अमरपुर, उदयपुर, सोनामुड़ा और कुमिल्ला इसके तट पर ही बसे हैं।

द्विल –278

गौड़(13 पृष्ठ –9 पंक्ति) यहाँ पर दीर्घकाल तक बंगदेश की राजधानी थी। राजमाला प्रथम लहर के 252 पृष्ठ में इसका प्रकृत विवरण दिया गया है। यहाँ उसका पुनरूउल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

घाटला (70 पृष्ठ –4 पंक्ति) यह स्थान खण्डल और दाँड़रा के करीब है। पहले यहीं से होकर चट्टग्राम जाने की राह थी।

चण्डिगढ़(20 पृष्ठ –2 पंक्ति) सोनामुड़ा शहर से पूर्व की ओर 6 मील की दूरी पर एक साधारण से पर्वत श्रृंग पर यह गढ़ था। यह सेना निवास था। यह स्थान मेलाघर बाजार के करीब है। श्री श्रीयुत् महाराजमाणिक्य बहादूर के वर्तमान चीफ सेक्रेटरी श्रीयुत दीवान विजय कुमार सेन एम. ए. बी–एल महोदय सोनामुड़ा महकमें में मजिस्ट्रेट और कलेक्टर पद पर आसीन थे तब उस पर्वत श्रृंग की मिट्टी खुदाई पर उन्होने एक प्राचीन तोप पाया था, इस स्थान के सेना निवास होने का यह एक प्रकृष्ट प्रमाण है। यहाँ की इंटों को देखकर अनुमान लगाया जाता है इस गढ़ढ़े के चारों ओर चहार दीवारी थी। महाराज अनंतमाणिक्य का वध करके उनके ससुर और प्रधान सेनापति गोपीप्रसाद ने अपना नाम उदयमाणिक्य रखा था। अपनी बेटी को अनंतमाणिक्य की विधवा बनाकर उसे यहीं रहने को दिया था।(1)

चन्द्रपुर(68 पृष्ठ –3 पंक्ति) यह स्थान उदयपुर शहर से पूर्व–दक्षिण की ओर तीन मील की दूरी पर है। महाराज उदयमाणिक्य राजपाट यहीं पर स्थापित हुआ था। यहाँ पर महाराज उदय ने 'चन्द्रसागर' नाम से एक तालाब और 'चन्द्रगोपीनाथ' नाम से जगन्नाथ विग्रह स्थापित किया था। इस बारे में राजमाला में है –

सिंहासन तुलि निलो चन्द्रपुर ग्रामे।।	सिंहासन ले गया चन्द्रपुर ग्राम।।
राजा बले तोमा स्वामी पाटे तुमि थाको।	राजा ने कहा तुम्हारे स्वामी के सिंहासन पर रहो तुम।
चन्द्रपुर ग्रामे आमि पाट करिबेक।।	मैं सिहांसन पर बैठुंगा चन्द्रपुर ग्राम।।
* * * *	* * * *
बहुल करिया यत्न एक मठ दिलो।	बहुत यत्न करके बनाया एक मठ।
चन्द्र गोपीनाथ नाम श्रीमूर्ती स्थापिलो।।	चन्द्र गोपीनाम नाम से मूर्ति किया स्थापित।।
उदयमाणिक्य पुरी चन्द्रपुर ग्राम।	उदयमाणिक्य पुरी चन्द्रपुर ग्राम।
ताते दीधी दिलो राजा चन्द्रसागर नाम।।	वहां खनाया सरोवर 'चन्द्रसागर' नाम।।
राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 68पृ	राजमाला द्विल उदयमाणिक्य खण्ड 68पृ

अर्थात, सिंहासन को पुनः संस्थापक किया चन्द्रपुर गाँव में। राजा ने कहा तुम्हारे स्वामी के सिंहासन को लेकर तुम रहा। चन्द्रपुर मैं राजपाट बनाऊँगा। * *

* बहुत प्रयत्न से एक मठ बनाया और चन्द्र गोपीनाथ नाम से श्री विग्रह की स्थापना की। उदयमाणिक्य पूरी (राजधानी) चन्द्रपुर गाँव में भी जहाँ उन्होने चन्द्र सागर नाम से एक तालाब खनाया।''

---

(1) ''गोपीप्रसाद एई कथाय अस्वीकार हइया।
निजेई होइल राजा अमिषिक्त होइया।
कन्या प्रति गोपीप्रसाद आदेश कोरिल।
चण्डिगढ़ भूमि कन्याय जायगीर दिल।।'' त्रिपुर वंशावली।

अर्थात, गोपी प्रसाद ने इस बात को अस्वीकार किया और कन्या को चण्डीगढ़ की जागीर प्रदान किया।

द्विल –279

इस चन्द्रसागर की विस्तृत लम्बाई में 505 गज और चौड़ाई में 261 गज की है। सब मिलाकर 4/0 चार द्रोण चार कानी (192 एकड़) चौकोर भूमि में फैला है यह चन्द्र सागर। इसके दक्षिण किनारे राजभवन के भग्नावशेष अब भी दिखाई देते हैं।

चाटिग्राम(22 पृष्ठ –15 पंक्ति) इसे चट्टल, चट्टग्राम (चट्टगाँव), चाटिग्राम आदि नामों से जाना जाता है। इन नामों की उत्पत्ति के बारे में नाना तरह मत हैं। इनका उल्लेख करने से वाक्य–बाहुल्य ही होगा। ब्रह्म वासियों के अनुसार इसे "चितागाँव" नाम हुआ है। चिता का अर्थ युद्ध और गाँव का अर्थ स्थान होता है। चट्टग्राम दीर्घ दिनों तक युद्ध क्षेत्र रहा है। मघ, त्रिपुरा, मुसलमान और पूर्तगाल जाति(पर्त्तुगीज) के उत्तप्त रक्त से यह स्थान बार बार प्लावित हुआ है। इतिहास ही इसका साक्षी है। अतएव इसका चितागाँव बनाम समाचीन ही जान पड़ता है। कुछ लोगों के अनुसार समुद्र यात्रियों के दिक्निर्णय के लिये यहाँ पर चाटि(आलोक/दीप) जलाया जाता था। इस सूत्र से शायद नाम "चाटिगाँव" हुआ है। इसमें कौन सा सही है यह निर्णय करना असंभव है। यूरोपीय भ्रमणकारियों ने इसे पोर्ट–ग्रेण्डो नाम दिया है।

ये प्रदेश मघ द्वारा शासित था। बाद में हिन्दुओं के हस्तगत हुआ। उस समय त्रिपुरेश्वरों का शासनाधीन सुदीर्ध समय तक था। इसके पश्चात् त्रिपुर मघ, मुसलमान और ओलन्दाजों में चट्टग्राम को लेकर बारम्बार शक्ति की परीक्षा हुई है। इसे राष्ट्र विप्लव के फलस्वरूप चट्टग्राम कभी त्रिपुरा को कभी मघों को तो कभी मुसलमानों के हस्तगत होता रहा है। इस विप्लव के फलस्वरूप वहाँ के लोगों को सुदीर्ध काल तक अशांति और उपद्रवों को भोगना पड़ा है। अन्य किसी देश में इस तरह की परिस्थितियाँ आती रहीं हैं या नहीं, हमारी जानकारी में नहीं है। त्रिपुरेश्वर अमरमाणिक्य के शासन काल के पश्चात् विजयलक्ष्मी स्थायी रूप से मुसलमानों की अंकशायिनी हो गई थी।

चौयाल्लीस/चवालिस(58 पृष्ठ –4 पंक्ति) यह दक्षिण श्रीहट्ट के अधीन एक परगना था। विजयमाणिक्य के शासन काल में यह स्थान त्रिपुर राज्य के अधीन था। महाराज विजयमाणिक्य बंगदेश से लौटते समय शिकार के लिये कुछ दिनों तक यहाँ निवास किया था।

चौहाटिया(74 पृष्ठ –28 पंक्ति) यह स्थान उदयपुर और अमरपुर के मध्य गोमती नदी के तट पर था। इस समय यह नाम विलुप्त हो गया है।

छकड़िया घाट(28 पृष्ठ –20 पंक्ति) इसका दूसरा नाम था छघरिया गढ़। यह स्थान सदर(अगरतला) से कुछ दूरी पर चड़िलाम मौजा के दक्षिण की ओर है। यहाँ पहले मुरछुम जातीय एक पार्वत्य प्रजा का वास था। प्राचीन काल से ही यह स्थान "छयघरिया बाड़ी" नाम से जाना जाता रहा है। इसके करीब ही एक उँचे टीले पर चतुष्कोण विशिष्ट एवं दीर्घाकार के

द्विल –280

तीन घर के चिन्ह अब भी दिखाई देते हैं। यहाँ के सेनानिवास की बात अब भी लोगों के मुँह से सुनी जाती है।

छनगांग(26 पृष्ठ –2 पंक्ति) यह एक नदी का नाम है। यह गोमती नदी के पूर्वोत्तर से आकर गोमती में ही मिली है।

छत्रसिक(24 पृष्ठ –16 पंक्ति) यह स्थान आराकान के अधीन एवं रामु या राम्बुनगर के करीब है। महाराज धन्यमाणिक्य ने इस स्थान तक अपना अधिकार का विस्तार किया था।

छाईमार(20 पृष्ठ –13 पंक्ति) यह कुकि प्रदेश है एवं लुसाई पर्वत में है। यहाँ के अधिवासी द्वारा त्रिपुरा का वश्यता अस्वीकार करने पर महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में सेनापति रायकाचाग द्वारा पराजित होकर त्रिपुरा की वश्यता को स्वीकार किया था।

छाइबेम(20 पृष्ठ –13 पंक्ति) यह भी लुसाई प्रदेश के अधीन कुकि प्रदेश था। छाइमार प्रदेश के कुकियों की तरह इस जगह के कुकि सम्प्रदाय ने भी त्रिपुरा के शासन का अमान्य किया था। महाराज धन्यमाणिक्य ने पुनः इन्हें अपने वश में किया था।

छाकाचेब(20 पृष्ठ –14 पंक्ति) यह स्थान हालामों की आवास भूमि था। छाकाचेब सम्प्रदाय के हालामों की आवास भूमि की वजह से इसका ऐसा नाम पड़ा है। अब छाकाचेब सम्प्रदाय के हालाम गण कैलाशहर विभाग के अन्तर्गत कमलपुर की पहाड़ियों में है।

छाकारांखल(20 पृष्ठ –15 पंक्ति) छत्रचुड़ा के (छाताचुड़ा) पूर्व की ओर हिंगलाछड़ा पूर्व किनारे प्राचीन काल से ही रांखल सम्प्रदाय के लोग रहते आए हैं। इसी वजह से उस प्रदेश के एक अंश का नाम छाकाराखंल और दूसरे अंश क नाम खामारांखल हुआ है। यहाँ पर इस समय रांखल सम्प्रदाय के लोग ही वास करते थे।

छाम्बुल छाम्बुल नगर का विवरण राजमाला के प्रथम लहर के 253 पृष्ठ आलोचित हुआ है। यहाँ पर उसका पुनःरूल्लेख निष्प्रयोजन है।

जयन्त्या(44 पृष्ठ –11 पंक्ति) इस स्थान का वर्णन राजमाला प्रथम लहर, 255 पृष्ठ पर दिया गया है।

जामिर खाँ गढ़(25 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह स्थान छयघरिया गढ़ से 8 मील दूर पूर्व की ओर है। इस समय इस जगह का नाम "बांमा" है। यह प्राचीन दुर्ग की प्राचीर तथा खाई(पारिखा) के चिन्ह अब भी विद्यमान हैं। इटों से बनी चहारदीवारी सात हाथ की चौड़ाई लेकर है। चहारदीवारी के इटों पर 1441 अंकित है। यह शकांक हैं। इस अंक से ज्ञात होता है कि उस दुर्ग फा त्रिपुरेश्वर महाराज ध्वजमाणिक्य के शासन काल में निर्माण किया गया था। चहारदीवारी के बाहर की ओर सुप्रशस्त

द्विल –281
खाई है। उसकी गहराई किसी किसी स्थान अढ़ाई और तीन हाथ की है। इस खाई से निकाली गई मिट्टी से चहारदीवारी पर चढ़ाकर उसे अधिकाधिक मजबूत बनाया गया था। विशालगढ़ से उदयपुर तक नवनिर्मित राजपथ इस गढ़ को छेद कर बाहर निकाला गया है।

जान्हवी(55 पृष्ठ –10 पंक्ति) गंगा नदी का ही और एक नाम है। जान्हवी के नामात्पत्ति के बारे में शास्त्रों में लिखा है –

जानुद्वारा पुरा दत्ता जन्हुः संपीय कोपतः।
तस्यकन्यास्वरुपा च जान्हवी तेन कीर्त्तिता।।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण– श्री कृष्ण जन्म खण्ड।

इस पुण्यसलिला स्त्रोतस्विनी में विशेष तिथि पर स्नान का फल नीचे उल्लेख किया जाता है –

सामान्यदिवस स्नाान संकल्पं श्रृण सुन्दरि।
पुण्यं दशगुणन्चैव मौषलस्नानतः परम्।।
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रवि संक्रमणे दिने।
अमराचांपि तत्तल्यं द्विगुणं दक्षिणायने।।
ततो दशगुणं पुण्यं नरानांचोत्तरायणे।
चातुर्म्मास्यां पौर्णमास्यां अनन्तं पुण्यमेव च।।
अक्षयायांच तत्तुल्यं नैतद्वेदनिरूपितम्।
असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम्।।
सामान्यदिवसस्नानात् दानात् शतगुणं भवेत्।
मन्वन्तरायां देवेशि युगाद्यायां तथैव च।।
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च।
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां भवदुर्लभे।।
दशहरादशम्यांच युगाद्यादिसमं फलम्।
नन्दासमन्च वारूण्यां महत्पूर्व्वे चतुर्गुनम्।।
ततचतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत् पूर्वके सति।
पुण्यं कोटिगुणंचैव सामान्यस्नानतोहिषत्।।
चन्द्रोपराग समये सूर्ये दशगुणं ततः।
पुण्योऽप्यर्द्धोदये काले ततः शतगुणं फलम्।।
सर्वेषामेव संकल्पं वैष्णवानां विपर्ययः।।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, प्रकृति खण्ड

जिनारपुर(57 पृष्ठ –8 पंक्ति) यह स्थान त्रिपुरा राज्य के ही अंतर्गत था। बाद में श्रीहट्ट जिला के मौलवी बाजार के अंतर्गत एक परगना में बदल गया। महाराज विजयमानिक्य ने बंगदेश से लौटते समय

द्विल –282

यहाँ आकर एक झील खनाया था। राजमाला में है –

जिनार पुरेत राजा खाल काटि दिलो। जिनारपुर में राजा ने एक नाला बनवाया।
त्रिपुरार खाल बलि नाम तार होइलो।। त्रिपुरा खाल उसका नाम पड़ा।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ

अर्थात, जिनारपुर में राजा ने एक झील(खाल) खनाया। उसे त्रिपुरा का खाल या झील कहते थे।

डरानाम(69 पृष्ठ –16 पंक्ति) यह नाम विशुद्ध नहीं है। राजमाला में लिखा है, "डरानाम पथ होइया गौड़सैन्य जायते।" किन्तु प्राचीन राजमाला में मिलता है–"दाँड़रार पथ दिया गौड़सैन्य जाइते।" यह दाँड़रा वर्तमान लिपिका के प्रमाद से डरानाम हुआ है। इस तरह के भूल के प्रमाण और भी मिले हैं। दाँड़रा वर्तमान नोयाखाली (अब बांग्लादेश में है – हिन्दी अनुवादक) जिला के अंतर्गत फेनी महकमें का एक छोटा सा परगना है। यह स्थान त्रिपुरेश्वर की जमींदारी के अंर्तभुक्त था।

डुंगुतीर्थ(61 पृष्ठ –13 पंक्ति) इसका दूसरा नाम डम्बुर है। यह एक मनोमुग्ध कर जल प्रपात है। प्राचीन काल में यह स्थान तीर्थ के रूप में गण्य था। इस लहर के 115 पृष्ठ डम्बुर का विवरण दिया गया है।

डोम घाटी(25 पृष्ठ –24 पंक्ति) यह स्थान उदयपुर के सन्निहित दक्षिण की दिशा में है। इसका वर्तमान नाम तापर धुम या तारपा धूम है। यहाँ पर प्राचीन जलाशय और लोकालय के चिन्ह हैं। यहाँ से खण्डल जाने के लिये एक प्राचीन ईंट, पत्थर आदि से बनाया गया एक रास्ता भी है। यह बँधाया गया पथ समसेर गाजी के द्वारा बनाया गया है –ऐसा कहा जाता है।

तमकान (59 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह खोयाई का प्राचीन नाम है। यहाँ पर महाराज डुंगुर फा का एक घर था। इसका दूसरा नाम "बाल्लाघाट" है। श्रीहट्ट अंचल में बाधा को 'बाल्ला' भी कहते हैं। शत्रु पक्ष के आगमन को बाधा प्रदान करने के लिए यहाँ एक सेनानिवास था। इसी कारणवश "बाल्लाघाट" नाम हुआ है। यह स्थान त्रिपुरा राज्य का एक महकमा है। बाल्लाघाट अर्थात खोआई महकमें का सदर कार्यालय है। (बाल्ला एक रेलवे स्टेशन भी है जो अब बांलादेश में है – हिन्दी अनुवादक)

तरप(57 पृष्ठ –6 पंक्ति) यह शब्द लिपिकार के प्रमाद से विकृत हुआ है। राजमाला में लिखा है –

श्रीहट्टे चलीलो राजा विजय महावीर।। श्रीहट्ट चला राजा विजय महावीर।।
तार परे जांगाल राजा बान्धाये आज्ञाते। राजाज्ञा से तपर जंगल में घेरा डाला।
त्रिपुरार जांगाल बलि ख्याति होय ताते।। त्रिपुरा जंगल तपर नाम से ख्यात हुआ।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ

अर्थात, श्रीहट्ट में महावीर विजय राजा चले। इसके बाद महाराज की आज्ञा से एक सड़क(जांगाल) बनाई गई। त्रिपुरा का जांगाल अर्थात सड़क के रूप में उसकी ख्याति हुई।

अन्य ग्रंथ के पाठ इस प्रकार हैं –

"श्रीहट्टे त गेलेन विजय महाबीर।।
तरपे जांगाल बान्धे राजार आज्ञाये।
त्रिपुरार जांगाल बोलि अद्यापि कहये।।"

(भावार्थ ऊपर जैसा ही है।)

द्विल –283

यहाँ पर तरप के बदले 'तार पोरे' लिखा गया है। तार पोरे का अर्थ होता है उसके बाद। असल में ''तरप'' यहाँ पर ही होना चाहिए –यह निःसंकोच कहा जा सकता है।

''तरप इस समय श्रीहट्ट जिला का एक परगना होने पर भी प्राचीन काल में यह एक सामंत राज्य था। तरप के शेष हिन्दु राजा का नाम आचकनारायण था। ये त्रिपुरेश्वर के आश्रित राजा होने पर भी दूसरे स्वाधीन राजाओं से इनका प्रभाव कम नहीं था। आचकनारायण के बारे में तरप के इतिहास में मिलता है –

''आचकनारायण जो त्रिपुराधिपति के करद थे इसमें कोई सन्देह नहीं। उन दिनों जिसके ऊपर जिस देश का शासन भार दिया जाता था वे राजा के रूप में ही जनसाधारण में ख्यात और परिचित होते थे। '' ''तरप का इतिहास 32 पृष्ठ

तरप राज्य नितांत छोटा राज्य भी नहीं था। सराइल, सतर खण्डल, जोयानशाही आदि परगना भी इसी राज्य में थे। वहाँ के राजा आचक नारायण धर्मनिष्ठ, दयालु एवं प्रजावत्सल थे। ये श्रीहट्ट के राजा गौरगोविन्द के समकालीन व्यक्ति (ई चौदहवीं सदी) थे। संभवत महाराजा रत्नमाणिक्य इस समय त्रिपुरा के सिंहासन पर आसीन थे।

आचकनारायण के शासन काल में पठानों ने श्रीहट्ट के ऊपर हस्तक्षेप नहीं किया। इनके इलाके में काजी नुरउद्दीन नाम के व्यक्ति अपने पुत्र के विवाह के उपलक्ष में गोहत्या करने पर राजाज्ञा से उसे प्राण दण्ड दिया गया था। नूरउद्दीन के भ्राता हेलिमउद्दीन ने इसका प्रतिकार प्रार्थी होकर दिल्ली सम्राट के दरबार में अभियोग पेश किया और श्रीहट्ट में मुसलमान शासन के लिये दिल्ली से सैयद नासिरउददीन सेना के साथ भेजा। वे पहले श्रीहट्ट के राजा गौरगोविन्द के ध्वंस के लिये कृत संकल्प हुए, किन्तु दीर्घ दिनों तक कोशिशों के बावजूद अकृत कार्य होने पर ब्रह्म पुत्र के किनारे सेनानिवास स्थापित कर सुअवसर की प्रतीक्षा में थे। कुछ दिनों के पश्चात् शाह जलाल नाम के एक साधक की सहायता से गौरगोविन्द को परास्त कर तरप आक्रमण के निमित्त यात्रा की। राजा आचकनारायण ने भीत और संत्रस्त हृदय से सपरिवार त्रिपुरेश्वर की आश्रय प्रार्थना की। त्रिपुराधिपति ने उन्हें आश्रय प्रदान किया, किन्तु उनके राज्योद्धार के लिये चेष्टा नहीं की। आचकनारायण ने हताश हृदय से मथुरा की यात्रा की। वहीं पर उनकी मानवलीला का अंत हो गया। तब से तरप देश मुसलमानों के हाथों में चला गया।

तिष्णा(39 पृष्ठ –11 पंक्ति) यह त्रिपुरेश्वर की जमींदारी चाकलारोशनाबाद का एक विशाल परगना था और चौदह ग्राम परगना के सलंग्न दक्षिण की ओर है। कुमिल्ला से जो सुदीर्घ राज पथ चट्टग्राम तक गया है, वहाँ

द्विल –284

इस परगना के पूर्वाशं में है। विख्यात जगन्नाथ दीर्घि (तालाब) तिष्णा परगना बस –स्थित कोस्तुभमणि स्वरूप है। जिस समय चट्टग्राम पर त्रिपुरा अधीन था उस समय इस परगना के विभिन्न जगहों पर राजन्यवर्ग के लिए विश्रामगारों का निर्माण किया गया था और सुवृहत जलाशयों का भी खनन हुआ था।

त्रिपुरा का खाल (57 पृष्ठ –9 पंक्ति) यह झील श्रीहट्ट जिला के अंतर्गत जिनारपुर नाम के स्थान पर महाराज विजयमाणिक्य ने इस खाल अर्थात झील का खनन कराया था। राजमाला में है –

जिनार पुरेत राजा खाल काटि दिलो।	जिनारपुर में राजा ने एक नाला बनवाया।
त्रिपुरार खाल बलि नाम तार होइलो।।	त्रिपुरा खाल उसका नाम पड़ा।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ

त्रिपुरा का जांगाल(अर्थात सड़क)(57 पृष्ठ –7 पंक्ति) श्रीहट्ट जिला स्थित तरप परगना में महाराज विजयमाणिक्य निर्मित जांगाल/रास्ताहै। जिसका नाम त्रिपुरा का जांगाल है। इसके बारे में श्रीहट्ट के इतिहास प्रणेता महाशय ने कहा है –

राजा आचकनारायण (तरप के राजा) के बारे में ''तरफ'' अन्चल में बहुत सी कहानियाँ प्रचलित है। कहा जाता है कि राजा आचकनारायण वैष्णव थे। पूण्यप्रद बरबक्र (बराक) नदी उनकी राजधानी से काफी दूर होने पर भी वे द्रुतगामी अश्व पर सवार होकर व स्नान करने जाते थे। जहाँ पर वे स्नान करते थे उसे अब भी स्नानघाट कहा जाता है। जिसे सड़क से होकर जाते थे उसे ''त्रिपुरा का जांगाल'' कहा जाता है''।

इसके पश्चात् पुनः उन्होने कहा है –

''राजा आचकनारायण के वंश परिचयादि के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता। वे त्रिपुर वंशज को ही नृपति हो भी सकते हैं। इसलिये उनके निर्मित सड़क को त्रिपुरा का जांगाल अर्थात पथ कहा जाता है और यह भी एक कारण हो सकता है।''

श्रीहट्ट का इतिवृत द्वितीय भाग द्वितीय खण्ड, पचंम अध्याय।

कथित त्रिपुरा का जांगाल /त्रिपुरा की सड़क/ राजा आचकनारायण के बनाई हुई नहीं है और इसी लिए उसका ऐसा नाम पड़ा। यह पथ त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य का बनाया हुआ है। राजमाला में है –

श्रीहट्टे चलीलो राजा विजय महावीर।।	श्रीहट्ट चला राजा विजय महावीर।।
तार परे जांगाल राजा बान्धाये आज्ञाते।	राजाज्ञा से तपर जंगल में घेरा डाला।
त्रिपुरार जांगाल बलि ख्याति होय ताते।।	त्रिपुरा जंगल तपर नाम से ख्यात हुआ।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 57पृ

राजा आचकनारायण किस वंश के थे इसके निर्णय करने का कोई सूत्र नहीं मिला। त्रिपुर राजवंशी बहुत से व्यक्तियों ने विभिन्न जगहों पर छोटे छोटे राज्यों

द्विल –285

की स्थापना की थी –ये भी ऐसे ही किसी राजवंश के थे या नहीं, कहा जा सकतां। ये त्रिपुरा के सामन्त राजा थे केवल इतना ही अनुसंधान से ज्ञात हो सका है।

त्रिहुत(29 पृष्ठ –16 पंक्ति) यह संस्कृत के ''तीरभूक्ति'' शब्द का अपभ्रंश है। त्रिहुत के कुछ अंशों को लेकर महाराज निमि के पुत्र मिथि ने मिथिला राज्य की स्थापना की थी।

भविष्य पुराण में है –

निमेः पुत्रस्तु तत्रैव मिथिर्नाम महान स्मृतः।
प्रथमं भूजबलैर्येन तैरहूतस्य पार्श्वतः।।
निर्मितं स्वीय नाम्ना च मिथिलापुरमुत्तमम्।
पूरीजनन सामर्थ्याज्जनकः स च कीर्त्तितः।।

मर्म –निमि पुत्र मिथिः, तीरहुत एक देश में स्वनाम से मिथिलापुर नगरी निर्माण किया। पुरीजनन के सामर्थ्य हेतु वे जनक नाम से कथित हुए।

तब से ही मिथिला के नृपति अपने को ''जनक'' उपाधि धारण करते थे(1)।

शास्त्रग्रंथ द्वारा तीर भूक्ति या त्रिहुत की सीमा निम्नलिखित रूप से निर्धारण हुई है –

गंडकी तीरमारभ्य चम्पारण्यांतगं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुग्तार्भिधः स तु।।

अर्थात, विदेह या तीरभूक्ति देश गंडक नदी के किनारे से प्रारम्भ होकर चम्पारण की शेष सीमा तक विस्तृत था।''

इस त्रिहुत का मिथिला राज्य में निमि से अधस्तन 56 पुरूष महाराज कृति ने राजत्व किया है। जनकवंश के अवसान के बाद नान्यदेव नाम के किसी क्षत्रिय राजा ने तीरहुत पर आधिपत्य विस्तार किया था। नेपाल राज्य के सीमा से सटे शिमरावन का गढ़ उनकी ही कीर्ति है, जिस दुर्ग के भग्नावशेष अब भी दिखाई देते हैं। दुर्ग की दीवार पर लिखा गया शिलालेख निम्न रूप है।

नन्देन्दु बिन्दु विधुसस्मित शाक वर्षे 1019
तत् श्रावणे सितदले मुनि सिद्धितिथ्याम्।
स्वाति शनैश्चर दिने करिवैरि लग्ने।
श्रीनान्यदेव नृपति विदधीतवास्तुम्।।

इससे ज्ञात होता है कि नान्यदेव 1019 शकाब्द में (1097 ई सन) श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथि में स्वाति नक्षत्राश्रित शनिवार के दिन सिंह लग्न में इस दुर्ग की प्रतिष्ठा हुई थी।

1011 शक से 1245 शक तक इस वंश के छह राजाओं ने क्रमानुसार त्रिहुत में राजत्व किया था। इसके पश्चात् राजा भवसिंह का वंश इस राज्य पर शासन किया।

....

(1) आईन–ई–तीरहुत ग्रंथ के अनुसार जनक शब्द के अपभ्रंश से जंग शब्द की उत्पत्ति हुई है।

द्विल –286

भवसिंह कामेश्वर झा के पुत्र थे। इनके अधस्तन तृतीय पुरूष राजा शिवसिंह का आश्रम प्राप्त कर वैष्णव कवि विद्यापति ठाकुर ने अपनी प्रतिभा विस्तार किया था। शिवसिंह की छह पत्नियों में पचंम महिषी का नाम था लखिमा या लछिमादेवी। विद्यापति के पदों में है –

''राजा शिवसिंह रूपनारायण।
लछिमा देवी परमाण।।'' आदि

शिवसिंह के चचेरे भाई नरसिंह देव के शासन काल में वे बंग के सुबेदार सुलतान गियास–उद्दीन के हाथों पराजित होकर मुसलमानों को कर देने पर मजबूर हुए थे। इसके बाद भी इस वंश के कुछ व्यक्तियों ने त्रिहुत में राजत्व किया था, किन्तु वे सम्पूर्ण रूप से पठान–शासन अनुवर्ती थे। इसके पश्चात् बहुत हाथों से गुजरता हुआ द्वार–बंग के राजवंश के अधीन आया। सम्राट अकबर के समय से ही उस अंचल में मुसलमान शासन सुदृढ़ हुआ था।

त्रिहुत या मिथिला प्राचीन काल से ही विद्या चर्चा के लिये भारत विख्यात था। इस समय भी मिथिला की पंडित मण्डली आदर्श स्थानीय मानी जाती है। संगीत कला की चर्चा भी इस देश में बहुत उन्नत रही है। त्रिपुरेश्वर महाराज धन्यमाणिक्य ने त्रिहुत से नृत्य–गीत से निपुण व्यक्तियों को लाकर अपने राज्य में इस विद्या का प्रचलन किया था। राजमाला में है –

त्रिहुत देशे होइते नृत्य गीत आनि।	त्रिहुत देश से नृत्य गीतादि को लाकर।
राज्येते शिखाय गीत नृत्य नृपमणि।।	राज्य में सिखाये सभी को समझाकर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29पृ

अर्थात, त्रिहुत देश से नृत्य गीत को लेकर राज्य में राजा ने सिखाना शुरू किया।

महाराज के इस सद्–अनुष्ठान का फल आज तक त्रिपुरावासी भोग करते आ रहे हैं। राज्य के हर घर में संगीत रसज्ञ व्यक्ति मिलेगा। दुःख की बात है, जनसाधारण के अभाव की वृद्धि के साथ साथ यह गुण भी क्रमशः कमता जा रहा है।

तैकतान(26 पृष्ठ –4 पंक्ति) यह स्थान गोमती नदी के किनारे है। देवद्वार के कुछ ऊपर एवं छनगांग के दो तीन मोड़ पर नीचे है। पठान सेनापति हैतन खाँ ने त्रिपुरा आक्रमण के समय यहाँ छावनी डाला था।

थानांछि (17 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह स्थान कुकि प्रदेश के अंतर्गत है। इसका विविरण राजमाला के प्रथम लहर में 256 पृष्ठ पर प्रदान किया गया है।

थुनाइलामपाड़ा(75 पृष्ठ –4 पंक्ति) तैकतान के थोड़ा सा उत्तर की ओर छाइमा जाति के पहाड़ी प्रजाओं का वास था। जनबस्ती के चिन्ह स्वरूप एक पुरानी पूष्कर्णी अब भी विद्यमान है। इस पार्वत्य ग्राम को ''थुनाईलामपाड़ा'' नाम से पुकारा जाता है।

द्विल –287

दक्षिण बाजु(43 पृष्ठ –20 पंक्ति) राजधानी रांगामाटी के उत्तर की ओर के देशों को (आसाम आदि) दक्षिण बाजु कहा जाता था और दक्षिण की ओर वे देश जैसे चट्टग्राम आदि को बाम बाजु कहा जाता था।

देवद्वार(26 पृष्ठ –4 पंक्ति) जिस स्थान पर छनगांग गोमती नदी में आकर मिलती है उसके नीचे यह स्थान है। यहाँ पहाड़ पर पत्थरों पर बहुत सी देवियों की मूर्तियाँ पत्थरों की खुदाई करके बनाई गई है। मछिछा या मारछा (देवता मुड़ा) नाम के जगह के अनुकरण से ये सारी मूर्तियाँ बनाई होंगी। इनमें से बहुत सी मूर्तियाँ पठान सेनापति हैतन खाँ के साथ आये हुए शिल्पियों द्वारा बनाई गई होगी। राजमाला में है –

गंगानगर होइते राजा डोम घाटी पथे।	गंगानगर होते राजा डोम घाटी के पथ पर।
रहिलेक होइतन खाँ गड़ कोरि ताथे।।	रह गये हैतन खाँ वहा गढ़ बनाकर।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 25पृ
* * * *	* * * *
छन गांग तैकातान देबद्वार नाम।	छन गांग तैकातार देवद्वार नामा।
तार कत बांक उजान माछिछडा धाम।।	उसके मोड पार है माछिछडा धाम।।
होइतन खाँ संगे छिलो जतो शिल्पकर।	जितने कारीगर थे हैतन खाँ के साथ।
निर्माइछे गड़ पोरे देब बहुतर।।	निर्माण करो गढ़ कहा बहुत दूंगा पश्चात।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 26पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 26पृ

अर्थात, ‘‘गंगा नगर राज डोम घाँटी के पथ से गए और हैतन खाँ वहीं पर छावनी बना कर रहा। छन गांग नदी के तट पर तैकतान और देवद्वार नाम के स्थान इसके ऊपर की ओर हैं जहाँ बहुत नदी के मोड़ हैं – वहाँ माछिड़ा एक जगह है जहाँ हैतन खाँ के साथ आए शिलाकर लोग बहुत से देवतायों की मूर्तियों को बना रहे थे।’’

दौचापाथर(29 पृष्ठ –8 पंक्ति) साधारणतः इस स्थान को दोयापाथार कहते हैं। यह स्थान इस समय पार्वत्य चट्टग्राम के (**Chittagong Hill tract**) दीघि नाला थाना के इलाके में है। यहाँ पर बहुत से प्राचीन तालाब अब भी हैं। उन दिनों यहाँ पर त्रिपुरेश्वरों का विश्राम भवन भी था। देव स्थान के रूप में सभी इसे पवित्र स्थल मानते हैं। हर साल असंख्य बलि द्वारा यहाँ देवता की अर्चना की जाती थी। यहाँ पर बहुत सी नरबलि भी हुई है। महाराज धन्यमाणिक्य ने सभी देवालयों में नरबलि की संख्या कम कर दी थी। तब ऐसा नियम कर दिया गया था कि शत्रु को पाने पर केवल दो नरबलि यहाँ होगी। इस बारे में राजमाला में है –

पूर्बेते त्रिपुर राजा नरबलि दितो।	पहले त्रिपुर राजा नरबलि देते।
सहस्रे सहस्रे बंग बर्षे काटा जाइतो।।	सहस्र सहस्र बंगवासी हर वर्ष काटे जाते।।
श्रीधन्य माणिक्ये माना ताहाके कोरिलो।	श्रीधन्य माणिक्य ने इसे मना किया।
तद्‌बधि नरबलि निषेध होइलो।।	तब से नरबलि कर्म बन्द हो गया।।
तिन बत्सरे एक नर चतुर्दश देबे।	एक नर चतुर्दश को तीन साल बाद।
कालिकाते एक नर पाइबेक जबे।।	कालिका एक नर पायेंगी तब।।
दौचा पाथरे दुई नर शत्रु पाइले होय।	दौचा पाथर दो नर यदि शत्रु मिल जाये।
गोमती ते दुई बलि घटे जे समय। ।	गोमती में दो बलि तब हो जाये।।
इहाते अधिक बलि माना कोरे राजा।	इससे अधिक बलि मना किये राजा।
तद्‌बधि निश्चिंते रहिलो राज्य प्रजा।।	तबसे निश्चिंत होकर रहने लगी प्रजा।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 29पृ

(इसका भावार्थ 105 पृष्ठ (टीका में) दिया गया है।)

द्विल –288

त्रिपुरा की भाषा में दोयापाथर और श्वेत हाथी के बारे में एक आख्यान प्रचलित है। इस लहर के 229 पृष्ठ में वह देखने को मिलेगा।

ध्वजघाट(55 पृष्ठ –8 पंक्ति) यह स्थान ढाका जिला स्थित सुवर्णग्राम के अंतर्गत ब्रह्मपुत्र नदी का एक तीर्थ घाट है। परसुराम ने इस घाट पर स्नान करके ध्वजारोपण कर उसे उत्सर्ग किया था। तब से इस का नाम ध्वजघाट हुआ है। त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य ने सुवर्णग्राम को जीतकर यहाँ पर सहस्र सुवर्णध्वजा स्थापन कर और उसे ब्राह्मणों को दान कर विशेष यशस्वी हुए थे। उस समय उन्होने "ध्वजघाट विजयी" कहकर अपने नाम से सुवर्ण मुद्रा बनवाया था।

ध्वजनगर(60 पृष्ठ –20 पंक्ति) महाराज विजयमाणिक्य ब्रह्मपुत्र ने तट करीब से बनिया और बर्तन बेचने वाले नाना प्रकार के शिल्पकार और दूसरे व्यवसायी लोगों को अपने लोगों को लाकर विशालगढ़ के करीब बसाया था। ध्वजघाट से लाये व्यक्तियों को वहाँ पर बैठाया था इसलिये उस ग्राम का नाम ध्वजनगर रखा गया था।

धर्मनगर (59 पृष्ठ –6 पंक्ति) इस स्थान को विवरण राजमाला में प्रथम लहर के 257 पृष्ठ में दिया गया है।

धर्मपुर(62 पृष्ठ –27 पंक्ति) यह स्थान कहाँ था, इस समय इसे खोज निकालना मुश्किल है। संभवतः उस जगह के नाम का परिवर्तन हुआ है। पर, यह उदयपुर राजधानी के करीब था यह समझा जाता है।

पंचखण्ड (57 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह श्रीहट्ट जिला का एक परगना है। त्रिपुरेश्वर महाराज आदि धर्म पा के यज्ञोपलक्ष में मिथिला से पाँच साग्निक ब्राह्मण आये थे। यज्ञ समापन के पश्चात् राजा के अनुरोध पर वहाँ पर रहने के लिये वे सम्मत हुए। त्रिपुरेश्वर ने इन पाँच तपस्वियों को पाँच खण्डों में बाँट कर जो भू भाग प्रदान किया था, वहीं पंचखण्ड नाम से परिचित हुआ है। उस समय यह स्थान त्रिपुरा राज्य के अधीन था। काल प्रभाव से मुसलमानों के हाथों से होकर अंग्रेजों के हाथों में आया (अब बांग्लादेश में है –हिन्दी अनुवादक)। पंचखण्ड का विस्तृत विवरण श्रीहट्ट के इतिवृत्त प्रथम भाग, बंग का जातीय इतिहास द्वितीय भाग एवं राजमाला प्रथम लहर की आलोचना से जाना जा सकता है।

पंचद्रोणा(55 पृष्ठ –7 पंक्ति) साधारणतः यह स्थान "पाँचदोना" के नाम से परिचित है। यह ढाका जिला के महेश्वरदी परगना स्थित एक प्रसिद्ध और समृद्ध जनपद है। त्रिपुरेश्वर महाराज विजयमाणिक्य ने सुवर्णग्राम विजय के पश्चात् ब्रह्मपुत्र में स्नान के पश्चात् किसी ब्राह्मण को पाँच द्रोण भूमिदान किया था। इसी सूत्र से इस जगह का नाम पंचद्रोणा या पाँचदोना हुआ है। राजमाला में है –

"सेई राज्य जमीदार आनयें राजन।
पंचद्रोण भूमि क्रय कोरिल तखन।।

द्विल –289

सेई पंच द्रोण भूमि ब्राह्मणके दिलो।	वही पांच द्रोण भूमि ब्राह्मण को दान दिया।
सेई होने पंचद्रोणा ग्राम नाम होइलो।।	इसलिए पंचद्रोण गांव नाम हुआ।।
ध्वजधाट समीपेते पंचद्रोण ग्राम।	ध्वजघाट के समीप पंचद्रोण गांव।
विजयमाणिक्य राजा पुण्यतर धाम।।	विजयमाणिक्य राजा का पुण्य धाम है।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 55पृ

अर्थात, राजा ने जमीदार को बुलाकर उससे पाँच द्रोण भूमि खरीदकर ब्राह्मण को दिया। तब से उस गाँव का नाम पंचद्रोण हुआ। ध्वजघाट के नजदीक ही पंचद्रोणा ग्राम है। महाराज विजयमाणिक्य स्वयं पुण्य धाम स्वरूप थे''।

इस बारे में स्वर्गीय कैलाश चंद्र सिंह महाशय ने कहा है –

''महाराज विजयमाणिक्य ने ब्रह्मपुत्र में स्नान कर किसी ब्राह्मण को पंचद्रोण भूमि दान किया था। तदनुसार वह स्थान आज तक पंचद्रोण के नाम से जाना जाता है।''

कैलाश बाबू की राजमाला दूसरा भाग, चौथा अध्याय 58 पृष्ठ।

ये पांचद्रोना नाम अभी भी अक्षुण्ण है अति अल्प भूमिदान के कारण महाराज विजय जो स्मरणीय हो गये हैं, विशाल यज्ञ या दान करने पर भी बहुत से लोगों के भाग्य में यह नहीं हो पाया है।

पद्मा(52 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह नदी का नाम है। यह नदी पाबना और फरिदपुर जिला की सीमा रेखा के रूप में बहती हुई ढाका जिला के पश्चिम में यमुना के साथ मिल गई है। यह संगम स्थान गोयालन्द के समीप है एवं ''बाइस कोदालियार मोहना'' नाम से परिचित है। यहाँ पूरब की ओर बहती हुई मेघना के साथ मिलकर बंगाल की खाड़ी में आत्म समर्पण किया है। देवी भागवत, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण एवं ब्रह्माण्ड पुराण आदि ग्रंथों में इसका नाम आया है। इसके विक्रमपुर के मध्य का प्रवाहित अंश ''कीर्ति नाशा'' नाम से जाना जाता है। चाँदराय और केदार राय के कीर्ति समूहों को ध्वंस करने के कारण इसे यह नाम मिला है। सालारजंग महाराज राजबल्लभ सेन राय राइया के प्रसिद्ध कीर्ति–कलाप एवं और भी बहुत से छोटे बड़े प्राचीन कीर्तियों को कीर्तिनाशा ने उदरस्थ किया है।

पाटिकारा(13 पृष्ठ –2 पंक्ति) इस समय यह स्थान कुमिल्ला शहर के पश्चिम में मयनामती पहाड के पश्चिम किनारे को एक परगना है। यह प्रदेश अनेक वंशों के हाथों से होता हुआ नाना तरह परिवर्तनों से गुजरकर भू–कैलास के राजवंश के हाथों में आया थ।

प्राचीन काल में पाटिकारा एक स्वतंत्र राज्य था। मेहेरकुल भी इस राज्य के अधीन था ऐसा निदर्शन मिलता है। त्रिपुरा में प्राप्त लोकनाथ के ताम्रशासन से यह प्रदेश उनके आधिपत्य स्थापना के प्रमाण मिलते हैं। लोकनाथ का प्रभुत्व कहाँ तक विस्तार प्राप्त हुआ था एवं पाटिकारा आदि जनपद उनके अधिकार में आया या नहीं, यह ज्ञात करना संभव नहीं है। किसी किसी के अनुसार से शूरवंशीय राजाओं के सामंत नरपति थे। पर, इसका भी कोई निर्भर योग्य प्रमाण नहीं है। उल्लिखित ताम्रलिपि के समय निर्णय में भी मत वैषम्य दिखाई देता है।

द्विल –290

श्रद्धेय अध्यापक श्रीयुत राधागोविन्द बसाक एम ए महाशय ने इस लिपि के पाठोद्धार किया है व निर्णय किया है कि वह ई सन सातवीं सदी का उत्कीर्ण है(1)। डाक्टर बुलार ने इस लिपि को दसवीं सदी का बताया है। यह लिपि जिस समय में सम्पादित की गई हो, लोकनाथ ने वर्तमान त्रिपुरा के कुछ अंशों पर अपना आधिपत्य स्थापन किया था, आलोच्य ताम्रफलक से वह प्रमाणित होता है।

इसके पश्चात् इस अंचल में खड़ग राजगणों के आधिपत्य होने के निदर्शन पाये जाते हैं। रायपुर थाना के अंतर्गत असरफपुर गाँव में प्राप्त देव खड़ग की ताम्रलिपि से इस वंश को अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। श्रृद्धास्पद श्रीयुक्त नलिनीकांत भट्टशाली, एम. ए. महाशय ने निर्देश किया है कि ये लोग समतट के शासन कर्ता थे एवं कुमिल्ला नगरी के पश्चिम में स्थित बड़कामता या करमंत नगर में इनकी राजधानी थी(2)। उनके अनुसार समतट राज्य के अवस्थान मेघना नदी के पूर्व किनारे था। इस विषय पर मतविरोध होने से भी अन्य एक अकाट्य प्रमाण द्वारा नलिनी बाबू का मत ही सुदृढ़ लगता है। खड्ग वंशज समतट राज्य अधीश्वर खड़गादयम की महिषी रानी प्रभावती कर्त्तृक प्रतिष्ठित सुवर्णमंडित अष्टभुजा इसका प्रकृष्ट प्रमाण है(3)। इस मूर्ति के पादपीठ पर उत्कीर्ण लिपि का मर्म चाँदपुर निवासी श्रीयुत निवारणचन्द्र चक्रवर्ती से मिला है जो नीचे दिया जा रहा है(4)। उस मूर्ति के चोरी होने पर, उसे देखने का या पाद लिपि संग्रह करने का सुयोग नहीं हो सका। पाद लिपि में खड़गादयम जात खड़ग, देव खड़ग, खड़गराज, के नाम के साथ महादेवी प्रभावती को उल्लेख है। असरफपुर के ताम्रशासन में यथाक्रम में खड़गादयम, जात खड़ग, देव खड़ग, और राज राजभट्ट के नाम के सहित महादेवी का नाम भी उल्लिखित है। अतएव दोनों लिपियों में अंकित नामा व्यक्ति जो अभिन्न हैं, यह नितांत ही सहजबोध्य है।

....

(1) साहित्य ज्येष्ठ 1321 सन।

(2) **Journal of the Asiatic society of Bengal -March** 1914 एवं प्रतिभा चैत्र 1320 सन।

(3) यह मूर्ति त्रिपुरा जिला के बोगासारी परगना के अंतर्गत दौलबाड़ी(दैउल बाड़ी) निवासी बैकुण्ठचन्द्र चक्रवर्ती के घर में थी। चाँदपुर गाँव के श्रीयुक्त निवारणचन्द्र चक्रवर्ती महाशय ने इसे चन्ड़ीमुड़ा स्थित प्राचीन मन्दिर में प्रतिष्ठित किया था। कुछ दिनों के वह मूर्ति चोरी हो गई। सुना जाता है इसकी प्रतिकृति ढाका के चित्रशाला में है।

(4) पादलिपि –''स्वस्ति खड़गोद्यमो नाम के एक नरपति थे, जात खड़ग नाम के उनका एक पुत्र धराधाम में था। उसके पुत्र दाताश्रेष्ठ एंव प्रतापशाली श्रीदेव खड़ग् थे। उनके पुत्र भूपति श्रेष्ठ शत्रुविजयी खड्गराज थे। उनकी महिषी प्रभावती थी। उन्होने प्रीति व भक्ति के साथ सर्वाणी देवी को सुवर्ण भूषिता किया था।''

द्विल –291

पालवंश के राजाओं का इस अंचल में अपने आधिपत्य विस्तार के प्रमाण इस समय भी दुःष्प्राप्य नहीं है। राजा महीपाल सर्वजन विदित नरपति थे(1)। उनकी प्रतिष्ठित बाघाउड़ा में प्राप्त विष्णुमूर्ति इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।(2) इस विग्रह के पादपीठ पर उत्कीर्ण है –

ऊँ सम्बत् 3 माघ दिने 27(?) श्रीमहीपाल देव राज्ये
कीर्त्तिरियं नारायण भट्टारकाख्य समतटे बिलकिन्न
कीय परम वैष्णवस्य वनिकलोक दत्तस्य वसुदत्त सुत
स्य माता पित्रोरात्मनश्च पुण्य यशो अभिवृद्धये(3)

एतद्द्वारा राजा महीपाल के समतट में राजत्व करना प्रमाणित होता है। उनके द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह त्रिपुरा में प्राप्त होने से, उस अंचल में उनके आधिपत्य विस्तार के प्रमाण मिलते हैं।

इसके पश्चात् चन्द्र–राजाओं के आविर्भाव का काल था। ये लोग पालवंश के सामन्त राजा थे(4)। बाद में स्वातंत्र्य होने के प्रमाण हैं। किंतु किस समय किस सूत्र से ये पाल साम्राज्य से विच्छिन्न हुए थे उसका पता नहीं लग सका। महीपाल देव के साम्राज्य के समय चन्द्रद्वीप के सामन्त राजा श्रीचन्द्र देव, पूर्व बंग में अपनी स्वाधीनता की घोषणा की थी। ऐसा अनुमान है कुछ इतिहास कारों का। इनकी राजधानी विक्रमपुर में थी।

इदिलपुर और रामपाल के दोनों ताम्रशासनों में बौद्ध धर्मावलम्बी बंगाधीप श्रीचन्द्र देव का अस्तिव भी प्रमाणित होता है। इन सभी ताम्रपत्रों की आलोचना थोड़े से नपेतुले शब्दों

....

(1) पालवंशक एवं राज महीपाल का विवरण निम्नलिखित ग्रंथों में मिलेगा –गौर लेखमाला 95 अध्याय 100 पृष्ठ। **Mass Pal Kings of Bengal -By R D Banerjee,** प्रवासी –कार्तिक 1321

(2) श्रद्धेय श्रीयुक्त उपेन्द्रचन्द्र गुह बी ए, महाशय इस मूर्ति के प्रथम खोज कर्ता हैं। उन्होने, श्रद्धाष्पद अध्यापक श्रीयुक्त राधागोविन्द बसाक महाशय की सहायता से इस मूर्ति की पादपीठ लिपि का उद्धार किया। श्रद्धाभाजन श्रीयुत नलिनीकांत भट्टशाली महाशय भी इस मूर्ति के दर्शन एवं विवरण संग्रह किया हैं। यह मूर्ति त्रिपुरा के बड़ठाकुर श्रीलश्रीयुत समरेद्र चन्द्र देवबर्म्मन बहादूर के घर में थी।

(3) **Dacca Review -May 1914**

(4) "श्रीचन्द्र के ताम्रशासन में जो राजमुद्रा मिली है, वह पाल राजाओं की राजमुद्रा है। अतएव इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्र राजगण पाल राजाओं के सामंत राजा थे।"
ढाका का इतिहास –दूसरा खण्ड, आठवां अध्याय 232 पृष्ठ।

द्विल –292

में नहीं की जा सकती हैं। इसकी सहायता के लिए जो वंश सूची मिली है, आवश्यकतानुसार यहाँ पर उसकी ही आलोचना की जा रही है

(रामपाल–लिपि के अनुसार)	(इदिलपुर–लिपि के अनुसार)
।	।
पूर्णचन्द्र	(1)
।	।
सुवर्णचन्द्र	सुवर्णचन्द्र
।	।
त्रैलोक्य चन्द्र	त्रैलोक्य चन्द्र
।	।
श्रीचन्द्र देव	श्रीचन्द्र देव

श्रद्धेय अध्यापक श्रीयुक्त राधागोविन्द बसाक महोदय ने रामपाल के लिपि के पाठोद्धार के बारे में कहा है –''विक्रमपुर श्रीचन्द्र की राजधानी थी। इससे वे बंगाधिपति थे, यह निःसंशय से कहा जा सकता। विक्रमपुर श्रीचन्द्र ही मध्य युग के बौद्ध नरपति थे।''

इनसे भी ताम्रशासनों का विधिवत विवरण एवं किस समय किस सूत्र से श्रीचन्द्र देव ने पूर्वबंग में आकर अपना आधिपत्य विस्तार किया एवं विक्रमपुर में राजधानी की स्थापना की थी वे सभी विवरण यहाँ प्रदान करना असंभव है। मिस्टर जे टी रेंकिन् द्वारा प्रकशित विवरण,(1) मि ग्रीयार्सन साहब का लिखित विवरण(2) एवं 'साहित्य' सामयिक पत्र में प्रकाशित निबन्धो की(3) आलोचना से इस बारे में बहुत सारी बातें जानी जा सकती है। ढाका के इतिहास में भी इस विषय पर आलोचना हुई है(4)। इस चन्द्र–राजवंश आधिपत्य केवल विक्रमपुर में ही सीमाबद्ध नहीं था, दूसरे प्रदेशों में भी फैला था। इसमें गौड़ के (रंगपुर अंचल) में भी फैला था। दूसरे स्थानों की बाते भी कुछ कही जा रही हैं।

बंग के चन्द्र–राजाओं के साथ मेहेरकुल के चन्द्र–राजाओं के साथ जो वंशानुक्रामिक सम्बंध था, यहाँ पर उसे प्रदर्शन करना ही प्रधान उद्देश्य है। दुर्लभ मल्लिक की रचित ''गोविन्द चन्द्रेर गान'' (गोविन्दचन्द्र के गीत) से इस विषय में कुछ सूत्र पाये जाते हैं। उस गाथा में लिखा है –

सुवर्ण चन्द्र महाराज धारिचन्द्र पिता।
तार पुत्र माणिकचन्द्र सुन तार कथा।।

अर्थात, सुवर्ण चन्द्र महाराज के पिता धारी चन्द्र पिता थे। उनके पुत्र माणिकचन्द्र थे। उनकी गाथा सुनो।।''

ताम्रलिपि की सहायता से पहले जो वंश सूची दी गई है, उससे ज्ञात होता है कि श्रीचन्द्र देव के पितामह का नाम सुवर्णचन्द्र था। पूर्वोक्त ताम्रलिपि में उत्कीर्ण

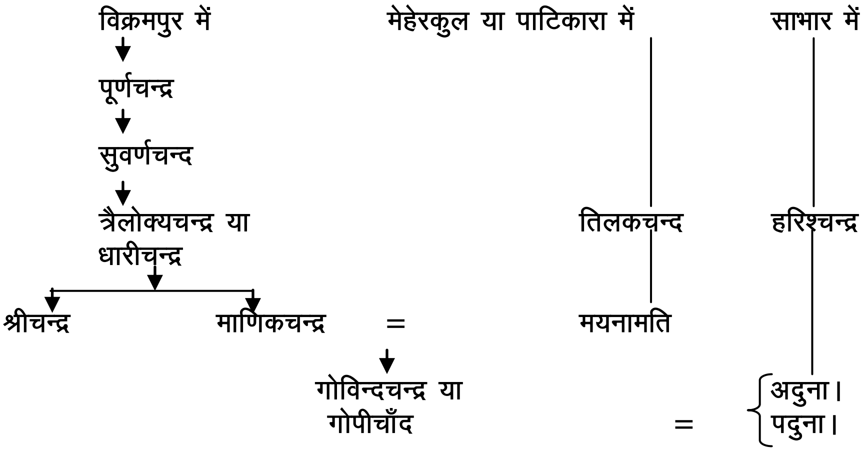
....

(1) **Dacca Review –Oct, 1922**
(2) **Journal of Asiatic Society of Bengal -1878, Part 1, page 181**
(3) साहित्य (मासिक पत्रिका) –श्रावण और भाद्र 1320
(4) ढाका का इतिहास –दूसरा खण्ड अष्टम अध्याय

द्विल –293

सुवर्ण चन्द्र और दुलर्भ मल्लिक की गाथा में लिखित सुवर्णचन्द्र अभिन्न व्यक्ति थे, इसे प्रायः सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है, पश्चात दिये गये विवरणों से भी यही प्रमाणित होगा।

ढाका साहित्य परिषद से प्रकाशित कवि भवानी दास के मयनामती के गीतों में(5) और पूर्वकथित दुर्लभ मल्लिक कृत गोविन्दचन्द्र के गीत एक ही विषय को लेकर रचित हुए हैं। मयनामती के गीतों में पाया जाता है पूर्वोक्त सुवर्णचन्द्र के वंशज माणिकचन्द्र और गोविन्दचन्द्र को पाटिकारा और मेहेरकुल का आधिपत्य मिला था। साभार के राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी कन्या अदुना और पदुना को गोविन्दचन्द्र के हाथों में सौंपाकर इस वंश के साथ वैवाहिक सम्बंध में आबद्ध हुए थे। उस पुस्तिका द्वारा विक्रमपुर, मेहेरकुल (पाटिकारा के साथ) एवं साभार के साथ चन्द्रराजाओं का अभिन्न सम्बंध की बात जानी जाती है। नीचे इसका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है –



पाटिकारा के अधिपति तिलकचन्द्र की एकमात्र कन्या मयनामती को छोड़कर और किसी संतान रहने का कोई प्रमाण नहीं है। इस कन्या को बंगेश्वर सुवर्णचन्द्र के पौत्र (श्रीचन्द्रदेव के कनिष्ठ भ्राता) माणिकचन्द्र ने विवाह किया था। इस सूत्र से वे पैतृक राज्य विक्रमपुर और ससुर के राज्य मेहेरकुल या पाटिकारा के अधिपति बने थे एवं साभार राज हश्चिन्द्र अपुत्र अवस्था में परलोक प्राप्त होने पर मानिकचन्द्र के गोविन्दचन्द्र सुसर के अधिकृत साभार सहित पूर्वोक्त पैतृक दोनों राज्यों के अधिकारी हुए थे। इस समय भी पूर्वपुरूषार्जित गौड़ का आधिपत्य एकदम विलुप्त नहीं हुआ था। रंगपुर के 'मयनामतीर कोट'(या मयनामती का कोट) आदि प्राचीन कीर्तियों से यही प्रमाणित होता है। गोविन्दचन्द्र सन्यास ग्रहण काल में आक्षेप के

....

(5) यह पुस्तिका श्रद्धाष्पद अध्यापक श्रीयुत नलिनीकांत भट्टशाली, एम. ए. महाशय द्वारा सम्पादित हुई है।

द्विल –294

साथ बोला,– मै पैतृक सम्पति को छोड़ गौड़ देश के शहर में जाऊँगा'' इससे भी गौड़ के साथ सम्पर्क सूचित होता है। गोविन्दचन्द्र की उक्ति से पूर्वोक्त अन्यान्य स्थानों के साथ सम्पर्क रहने की पुष्टि हो रही है –

''बापेर विराश एड़ि जाइमु गौड़ेर सहर।
दादार मिराश एड़ि जाबेक कमलाक नगर(1)''
तुमिही मायेर जतो बाड़ी पाटिकानगर(2)।
आम्हि बाड़ी बान्दियाछि मेहेरकुल सहर''।। इत्यादि

उस किताब के अन्य एक जगह लिखा है –

आद्य माटी आछे किन्तु मेहेरकुल नगर।
निज माटी आछे किछु विक्रमपुर सहर।।
आर आछे आइघ्य माटी तरपेर देश।
चाटीग्राम पूर्ब माटी जानिबा विशेष।।''

ऊपर के दोनों स्थानीय भाषाओं में रचित कविता का भावार्थ है, 'पिता की पैतृक सम्पत्ति को छोड़ के शहर में जाऊँगा। बड़े भाई की मिटाकादारी सम्पत्ति छोड़ कर कमलोक (कुमिल्ला) नगर जाना है। तुम्हारी माँ के सभी घर पाटिकनगर में है (मैंने अपना घर बनाया है मेहेरकुल नगर में आदि वासस्थान है मेहेरकुल पुत्र नगर में और अपना कुछ जमीन है विक्रमपुर शहर में। इसके अलावा तरप देश में भी है। पहले की मिट्टी अब भी चट्टग्राम में है।''

इस वाक्यों से गौड़, पाटिकारा या मेहेरकुल, विक्रमपुर, तरप(3) और चट्टग्राम में गोविन्दचन्द्र के आधिपत्य की बात प्रमाणित होती है।

पहले ही कहा गया है, मयनामती तिलकचन्द्र की कन्या और माणिकचन्द्र की महिषी थी। माणिकचन्द्र के पुत्र गोविन्दचन्द्र ने साभार के दोनों राजकन्याओं का (अदुना और पदुना) पाणिग्रहण किया था। मयनामती के गीतों में ठीक यही सारी बातें मिलती है

1 मयनामती अपने पुत्र गोविन्दचन्द्र से कह रही है

''तोर बापे बोलिलेक, तिलकचाँदेर झि।
तोर ज्ञान लोइले आमार हबे कि।

''तेरे पिता ने तिलक चाँद की कन्या से कहा है। तेरा ज्ञान लेने पर मेरा क्या होगा।''

इस वाक्य से ज्ञात होता है कि मयनामती तिलकचन्द्र की कन्या थी।

2 माणिकचन्द्र राजा छिलेन धर्मी बड़ राजा।
मयनाके विभा करिलो तार नवबुड़ि भारिया।।

(माणिकचन्द्र बड़े धर्मप्राण राजा थे, सुन्दर जवान नई वधु के रूप में मयनामती से उन्होने विवाह किया)।

मयनामती जो माणिकचन्द्र की भार्या थी ऊपर दिये गये वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है।

गोविन्दचन्द्र ने अपनी माता से कहा था –

3 ''एक विभा कराइला अदुना पदुना।
से सब सुन्दरी जाने आमार बेदना।।''

''अदुना पदुना से तुमने हमारा विवाह कराया। वे सुन्दरियाँ हमारी बेदना को जानती हैं।''

---

1 कमलाक या कमलांक –कुमिल्ला का प्राचीन नाम।

2 पाटिका –पाटिकारा

3 श्रीयुक्त नलिनीकांत भट्टशाली महाशय ने कहा है, ''तरप का देश संभवत रंगपुर था।'' श्रीहट्ट में तरप नाम का एक खण्ड राज्य था। वहाँ पर चन्द्र–राजाओं के आधिपत्य स्थापना का कोई प्रमाण नहीं है। मयनामती के गानों में सन्निविष्ट किसी तरप का अवस्थान निर्णय करना इस समय दुसाध्य है।

द्विल –295

अन्यत्र एक भी है जहाँ गोविन्दचन्द्र सन्यासी होंगे सुनकर पदुना ने कहा था –

"तुमि सात आमि पाँच ए मन कालेर विया।
हीरा मन्ज्माणिक्य मुक्ता लोक्ष दान दिया।।
मोर बोइन अदुनारे पाइला वेभार(1)।
धन रत्न मोर बापेर आछिल अपार।।"

अर्थात, तुम सात और मैं पाँच की भी ऐसी उम्र में हमारा विवाह हुआ। हीरा, माणिक्य और मुक्ता आदि लाखों दान देकर विवाह हुआ। हमारी बहन अदुना को विवाह में पाये हो(1)। मेरे पिता के पास अपार धन सम्पदा थी।"।

इन सभी वाक्यों से गोविन्दचन्द्र के साभार के दोनों कुमारियों के साथ विवाह का निदर्शन पाया जाता है।

सारी अवस्थाओं की पर्यालोचना से यह ज्ञात होता है विक्रमपुर के अधीश्वर श्रीचन्द्र के कनिष्ठभ्राता माणिकचन्द्र ने पाटिकारा के अधिपति तिलकचन्द्र की एक मात्र कन्या मयनामती से विवाह कर ससुराल में ही रह रहे थे। उनके पुत्र गोविन्दचन्द्र या गोपीचाँद मातामह के राज्य के अधिकारी होकर पाटिकारा एवं मेहेरकुल में राजत्व कर रहे थे। इसके अलावा और भी जाना जाता है, कि गौड़ में एक विक्रमपुर में चन्द्रराजाओं की जिस शाखा ने प्राधान्य लाभ किया था पाटिकारा के राजा माणिकचन्द्र और गोविन्दचन्द्र ने उस शाखा में ही जन्म ग्रहण किया था। गोविन्दचन्द्र के अलावा मयनामती की एक कन्या के होने का प्रवाद भी प्रचलित है(2)। किन्तु गोविन्दचन्द्र के गीतों की आलोचना से ज्ञात होता है कि मयनामती ने अपने पुत्र गोविन्दचन्द्र से कह रही है –

"सेई होइते तोर पिता ना आइसे मोर पासे।
मोर बापे कय्या राजा गेल निज देशे।।
तोर पिता मोर तोरे करये तरास।
मोर भय कोरि राजा बंचे गृहबास।।
तखन आमार गर्भ होइल छय मास।
सेइ गर्भे गोविन्दचन्द्र तोमार प्रकाश।।

दुर्ल्लभ मल्लिक –64 पृष्ठ

मेरे पिता से कहकर राजा अपने देश चले गये अर्थात, उस समय से तेरे पिता मेरे पास नहीं आये। तेरे पिता मेरे लिये त्रासित रहते हैं। मेरे मन में भय है तेरे पिता गृहत्याग न कर लें। उस समय मैं छह महीने की गर्भवती थी। उसी गर्भ के गोविन्दचन्द्र तुम प्रकाश हो।"

---

(1) उस समय कन्या के साथ उसकी कनिष्ठा भगिनी अथवा समवयस्का कुछ सखियाँ वर को दहेज के रूप में विवाह के समय दी जाती थी। वर उन्हें पत्नी स्वरूप ग्रहण करता था। यहाँ पर गोविन्दचन्द्र ने पदुना से विवाह करके भगिनी अदुना को दहेज स्वरूप प्राप्त किया था। यह प्रथा बहुत दिनों तक चलती रही। प्रभु नित्यानन्द ने सूर्यदास की नन्दिनी बसुधा देवी का पाणिग्रहण कर दहेज स्वरूप जान्हवी देवी को प्राप्त किया था। ऐसा प्रमाण मिलता है –

"बसुधा देवी के प्रभु विवाह कोरिला।
जौतुक चले जान्हवाके आत्मसात कोइलो।।" अद्वैत प्रकाश 20वां अध्याय

अर्थात, बसुधा देवी को प्रभु ने विवाह किया और दहेज स्वरूप जान्हवी को प्राप्त किया।"

(2) कहावत के अनुसार गोपीचाँद नाम के एक नरपति पर्वत पर निवास करते थे। उनकी पत्नी का नाम मयनामती था एवं कन्या का नाम लालमयी था। तदनुसार यह पर्वत लालमयी–मयनामती कहलाया।

कैलाश बाबू की राजमाला चतुर्थभाग, द्वितीय अध्याय, 420 पृष्ठ।

द्विल –296

इन वाक्यों की आलोचना गोविन्दचन्द्र के जन्म में बाद मयनामती ने पति संग प्राप्त किया या नहीं, इसमें संदेह पैदा होता है। लगता है गोविन्दचन्द्र के जन्म के पहले उनकी एक बहन की पैदाइस होना असंभव नहीं है। कुमिल्ला के पश्चिम की ओर छह मील की दूरी पर पहाड़ी के ऊपर इन लोगों की राजधानी थी। इस पर्वत के उत्तर की ओर मयनामती एवं दक्षिण की ओर को 'लालमाई' नाम से पुकारा जाता है। अतएव लालमती या लालमयी नाम की मयनामती की एक कन्या होने की बात काल्पनिक नहीं लगती।

पहले बताई गई पर्वत मालाओं के पूरब की ओर के भूभाग को इस समय मेहेरकुल और पश्चिम की ओर के भू भाग का नाम पाटिकारा हुआ है (2000ई से 75 साल पहले)। सारे हालातों के अध्ययन से जाना जाता है कि पर्वत के दोनों ओर जनपदों को लेकर कमलांक(कुमिल्ला) राज्यप्रतिष्ठित था। वहीं बाद में पाटिकारा या मेहेरकुल नामों से प्रसिद्ध हुआ है। पर्वत के ऊपर राजधानी की स्थापना कर दोनों देशों का शासन किया जाता था। मयनामती पहाड़ के करीब निश्चितपुर ग्राम में इस समय भी(2000ई से लगभग 75 साल पहले – हिन्दी अनुवादक) ईटों के स्तूप दिखाई पड़ते हैं। वहाँ माणिक्यचन्द्र और गोविन्दचन्द्र की राजधानी थी, इस तरह की धारणा कुछ दिनों से चली आ रही है, यहाँ पर कभी सम्मानित व्यक्तियों का आवास स्थल था इसमें कोई संदेह नहीं, उस ईटों के स्तूप पर इस समय निगमानन्द स्वामी का आश्रम बनाया गया है, पहाड़ी के उत्तर की ओर (जहाँ पर त्रिपुरेश्वर का विश्राम भवन प्रतिष्ठित था) मयनामती का भजनालय था। वर्तमान त्रिपुराधिपति (2000ई से लगभग 75 साल पहले –हिन्दी अनुवादक) पंचश्री मनमहाराज वीरविक्रमकिशोर माणिक्य बहादूर ने यहाँ पर कुछ स्थानों का खनन कराया था, उस समय मिट्टी के नीचे कुछ मन्दिरों के अस्तित्व मिले थे, इसके बाद खनन कार्य स्थगित हो जाने पर, यहाँ का प्रकृत तथ्य नहीं जाना जा सका, हमारा विश्वास है यहाँ पर सम्पूर्ण खनन कार्य यदि किया जाता तो कोई अभिनव ऐतिहासिक तथ्य आविष्कृत होता। मयनामती पहाड़ी पर और भी कई प्राचीन कीर्तियों का निदर्शन पड़ा हुआ है। ये कीर्तियाँ त्रिपुर राज्य की है। इन सभी कीर्तियों का विवरण यथास्थान दिये जाएंगे।

चन्द्रराजाओं का बंगदेश पर आधिपत्य विस्तार का काल निर्गम करना दुसाध्य हो गया है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ई सन बारहवीं सदी के पहले चरण में राजा श्रीचन्द्र ने बंग का शासन दण्ड धारण किया था। लेकिन इसका कोई निर्भर योग्य प्रमाण नहीं है। जो भी हो, पाटीकारा के राजा गोविन्दचन्द्र का कालनिर्णय करना ही यहाँ आवश्यक है। इस विषय की आलोचना में सुविज्ञ ग्रीयरसन साहब की बात सब से पहले मन में जाग्रत होती है। उनके अनुसार गोविन्दचन्द्र के पिता माणिकचन्द्र ई चौदहवीं सदी में विद्यमान(1)थे। श्रद्धेय सुहृद श्रीयुक्त राय दिनेशचन्द्र सेन बहादूर

---

(1) **Journal Asiatic Society of Bengal-1878, Part 1, No. 3 page 181**

द्विल –297

ने निर्धारण किया है। गोविन्दचन्द्र ने ई ग्यारहवीं सदी के अंतिम और बारहवीं के प्रथम चरण में राजत्व(2) किया था। गोविन्दचन्द्र या गोपीचाँद के बाद पाटीकारा और मेहेरकुल का आधिपत्य किसी आधार पर किसके हाथों में चला गया था, इसे जानने का कोई उपाय नहीं है। कवि भवानीदास ने कहा है –''गोपीचाँन्देर बंश नाइ भूबन जुड़िया''। (अर्थात, सारे विश्व में गोविन्दचन्द्र या गोपीचाँद का कोई वंश नहीं है)। इस पंक्ति के द्वारा ज्ञात होता है गोविन्दचन्द्र या गोपीचाँद ही चन्द्र–राजवंश के अंतिम राजा हैं। इसके बाद सम्भवतः इस अंचल का प्रभुत्व बर्म राजाओं के हाथों से होकर सेन राजा वंशों के हाथों में आया था। इसके पश्चात् (1240 ई के सन) यह प्रदेश त्रिपुर राजाओं के हाथों में आया(3)। तब से पाटीकारा त्रिपुरा की सामन्त श्रेणी में बदल गया था। किस समय किस कारणवश इस राज्य का विलोप हुआ, यह इतिहास के भी अगोचर है। सेन वंशज राजत्व के अंतिम चरण में 'चौधुरी' उपाधि धारी हीरावंत नामक एक व्यक्ति द्वारा इस अंचल के शासित होने की बात राजमाला की आलोचना से जानी जाती है।

पाटीकारा के बारे में और एक बात उल्लेखनीय है। ब्रह्म देश का इतिहास 'महाराजोयांग' ग्रंथ में लिखा है, 979 शक में (1057 ई) ब्रह्म राज 'खयनशिस' के राजत्व काल में पाटीकारा के एक राजकुमार उस राज्य में गया था। ब्रह्म राज्य ने इस कुमार के साथ अपनी इकलौती बेटी का विवाह की इच्छा प्रकाश करने पर अमात्य वर्गों ने सोचा पुत्रहीन राजा का दौहित्र ही ब्रह्म राजा का अधीश्वर होगा। अतएव विदेशी राजा कुमार के साथ विवाह होने से महाराज विदेशी राजा के हाथों में चला जायेगा। इसलिये उन्होने इस विवाह में घोर आपत्ति की। इस बीच प्रचारित हुआ कि पाटिकारा के राजकुमार के द्वारा राज कुमारी गर्भवती हो गई है। इसके कुछ ही दिनों के पश्चात् किसी अज्ञात कारणवश राज कुमार ने आत्महत्या कर ली। कालक्रम में राजकुमारी ने एक शिशु को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया 'आलं शिशु'। मातामह के मृत्यु के पश्चात् वही ब्रह्म राज्य के सिंहासन का अधिकारी बना। इन्होंने राज्य प्राप्ति के पश्चात् पितृ भूमि के दर्शन के लिये पाटिकारा आये थे एवं आराकान के साथ पितृकुल के सद्भाव की रक्षा के लिए सदा यत्नवान थे।

पूर्वकुल(20 पृष्ठ –15 पंक्ति) यह कुकि प्रदेश के अधीन एक स्थान था। पूर्वकुल के बारे में कृष्णमाला में है –

''रूफनी नामेते नदी ताहार दक्षिण।
तथाते बसति करये कुकिगण।

....

(2) तिरूमलय में उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात होता है महाराज राजेन्द्र चोल ने बंगाल के राजा गोविन्दचन्द्र को पराजित किया था। राजेन्द्र चोल 1063 से 1112 ई सन तक वर्तमान थे। गोविन्दचन्द्र उनके समकालीन एवं माणिकचन्द्र ने इसके पहले राजत्व किया था।
बंगभाषा और साहित्य चतुर्थ अध्याय 69 पृष्ठ

(3) राजमाला प्रथम लहर, 175–184 पृष्ठ

द्विल –298
से नदीर प्रभाव आछये अतिशय।
तथा बहुलोके पूजा ताहान करय।।
मनोगत कार्यसिद्धि से नदी करय।
ताहार दक्षिण स्थल सुन्दर आछय।।
कांगलाई नामें एक पर्बतेर श्रृंग।
ताहार दक्षिणे नदी नामेते चाथेंग।।
इ सब स्थानेते बोइसे यतो कुकिचय।
पूर्व कुलिया बोलि ता सबारे कय।।''

अर्थात्, ''रूफनी नाम की नदी उसके दक्षिण में बहती है। वहाँ पर सभी कुकियों का निवास है। इस नदी बहुत बड़ा प्रभाव है। वहाँ बहुत से लोग पूजा करते हैं। वह नद सबकी मनोकामना पूर्ण करती है। उसके दक्षिण का स्थल बहुत सुन्दर है। वहाँ कांगलाई नामक एक पर्वत श्रृंग है। उसक दक्षिण दिशा में चाथेंग नाम की एक नदी बहती है। सभी कुकि यहीं निवास करते हैं। इसे सभी पूर्वकुल कहते हैं।''

पूर्वकुल के बारे में इसके पहले भी आलोचना की गई है। यहाँ पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।''

फलमती तीर्थ(33 पृष्ठ –15 पंक्ति) इसका दूसरा नाम 'दुराशा' है। किसी किसी जगह 'फलमतीश्वर' नाम का भी उल्लेख मिलता है। संस्कृत राजमाला में इस तीर्थ को 'क्रमदीश्वर' कहा गया है। महाराज धन्यमाणिक्य के तीर्थ पर्यटन की वर्णना में राजमाला में लिखा गया है –

फलमतीश्वर तीर्थ दक्षिणे आधिक्य।।	फलमतीश्वर तीर्थ का दक्षिण में अधिक्य।।
फलमतीश्वर तीर्थे जरब मारिया।	फलमतीश्वर तीर्थ में जरप कर दिया।
चाटिग्राम आमल कोरे मोहर निर्माइया।।	चट्टगांव को दखल किया मोहर बनाया।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 31पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 31पृ

अर्थात, ''फलमतीश्वर तीर्थ की अधिक प्रभाव दक्षिण में है। फलमतीश्वर तीर्थ को जीतकर एक मुहर अपने नाम निकालकर चट्टग्राम पर अपना शासन चलाया।

संस्कृत राजमाला में धन्यमाणिक्य प्रसंग में मिलता है

नानातीर्थं ततोगत्वा ददर्श क्रमदीश्वरं

संस्कृत राजमाला में धन्यमाणिक्य के प्रसंग में यह पूर्वोक्त फलमतीश्वर व क्रमदीश्वर आदि चन्द्रशेखर व सीताकुंड तीर्थ का ही नामांतर मात्र है। चन्द्रनाथ माहात्म्य की आलोचना से यह स्पष्ट हो जायेगा। उस ग्रंथ में लिखा है –

ततःपश्योत् महादेवं ज्योतिर्लिंग मनोहरम्।
अष्टमूर्ति–समायुक्तं सौन्दर्यालिंगितं महत्।।''
अश्वमेध सहस्रस्य बाजपेय शतस्य च।
क्रमदीश मुखं दृष्टवा फलमाप्नोति मानवः।।
सर्वपाप विनिर्मुक्त धनधान्य सुतान्वितः
शिवत्वं लभते मर्त्यः पुनर्जन्म विवर्ज्जितः

बाराहीतंत्र, 6 पटल (चन्द्रनाथ माहात्म्यधृत)

मर्म :– इसके बाद महादेव के मनोहर ज्योतिर्मय लिंग का दर्शन करोगे। यह ज्योतिर्लिंग अष्ट मूर्ति संयुक्त सौन्दर्यमय अति उत्कृष्ट है। इस ज्योतिर्लिंग रूपी क्रमदीश्वर का मुख दर्शन करने से मानव सहस्र अश्वमेध और शत बाजपेय यज्ञ का फल लाभ करता है। मानव उनके दर्शन करके सकल पाप से मुक्त होकर

द्विल –299

धनधान्य स्त्री पुत्रादि एश्वर्य सुख भोग कर शिवत्व प्राप्त होकर और पुनर्जन्म को नहीं पाता।

''सीता कुण्ड तीर्थ त्रिपुरा राजा के अंतर्गत था। अतएव इस तीर्थ के साथ त्रिपुर राज्य का सम्पर्क बहुत प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। महाराज धन्यमाणिक्य ने शंभुनाथ के मंदिर का निर्माण कराया था एवं सनन्द द्वारा भूमिदान करके गए हैं। चन्द्रनाथ का प्राचीन मन्दिर महाराज गोविन्दमाणिक्य द्वारा निर्माण हुआ है। उसके विनष्ट होने पर वर्तमान मन्दिर के निर्माण किया गया है। अब भी इस तीर्थ उन्नति के लिये त्रिपुर राजपरिवार की विशेष प्रचेष्टा देखी जाती है (अब यह स्थान बांग्लादेश में है और त्रिपुरा में राजत्व प्रथा की विलुप्ति हो गई है।) (सम्पादक काली प्रसन्न सेन ने प्रायः 2000 ई. से 75 साल पहले की बात कही है)। महाराज राधाकिशोरमाणिक्य की महिषी स्वर्गीया महारानी तुलसीवती महादेवी की स्मृति रक्षार्थ व्यास कुण्ड में एक विरामछत्र निर्मित हुआ था –जिसका नाम ''तुलसवती विराम छत्र'' था। स्व. महाराज विरेन्द्रकिशोरमाणिक्य की अपनी माता के नाम पर उक्त मन्दिर का निर्माण कराया था। महाराज राधाकिशोरमाणिक्य की प्रधान महिषी श्रीश्रीमती महारानी रत्नमंजरी महादेवी ने सीताकुण्ड तीर्थ का उद्धार किया था। स्व. महाराज राधाकिशोरमाणिक्य द्वारा एक सुशोभन मन्दिर का निर्माण और उसमें अन्नपूर्णा देवी की मूर्ति स्थापित हुई है। स्व. कुमार नवीनकिशोर देवबर्मा महोदय के स्मृति रक्षार्थ उनकी जननी और सहधर्मिणी ने एक साथ कालभैरव का मन्दिर निर्माण किया था साथ इस पवित्र तीर्थ क्षेत्र का अच्छेद्य सम्बन्ध किसी भी समय विच्छिन्न होगा, ऐसा नहीं लगता।

बगासारि(13 पृष्ठ –3 पंक्ति)। यह त्रिपुरेश्वर के जमींदार के अधीन एक परगना था। पहले यह स्थान त्रिपुरा राज्य में था। मुसलमानों के शासन काल में त्रिपुरा के शासन से विच्छिन्न होने पर महाराज धन्यमाणिक्य ने पुनः उसे अपने हस्तगत किया था। परिणाम स्वरूप यह स्थान महाराज के जमींदारी में बदल गया। यह स्थान कुमिल्ला नगरी से (कुमिल्ला अब बांलादेश में है) दक्षिण दिशा में चौदह मील की दूरी पर है। कुमिल्ला से चट्टग्राम जाने वाली राज मार्ग इसके बीचों बीच से गुजरता है।

बंगदेश(12 पृष्ठ –27 पंक्ति) बंगलादेश। बंग के सीमा के बारे में शास्त्र में है –

''रत्नाकरं समारभ्य ब्रह्मपुत्रान्तगं शिवे।
बंगदेशो मया प्रोक्तः सर्वसिद्धि प्रदर्शकः।।''

शक्ति संगमतंत्र, सप्तम पटल।

इसके द्वारा समुद्र से ब्रह्मपुत्र नदी तक विस्तृत भूभाग को बंगदेश कहकर निर्देश किया गया है। बंगदेश नाम बहुत प्राचीन है। चन्द्रवंशज महाराज बलि के पुत्र बंग के द्वारा शासित होने पर इसका 'बंग' नामाकरण हुआ है। मत्स्य पुराण, गरूड़ पुराण, ज्योतिषतत्व, बृहत संहिता, योगविशिष्ट रामायण आदि बहुत से पुराण में और किसी किसी तंत्र ग्रंथ में इस नाम का उल्लेख मिलता है। रघुवंश में बंगदेश का नाम

द्विल –300

है (चतुर्थ सर्ग 35–38 श्लोक)। महाराज बल्लाल सेन ने अपने राज्य को पाँच भागों में विभक्त करते समय एक भाग का नाम बंग रख दिया था।(1) मुसलमान राजत्व के समय इसका नाम 'बांगाला' हुआ था। आइन–इ–अकबरी ग्रंथ में कहा गया है –पहले के जमाने में राजाओं ने जलप्लावन निवारण के लिये दस हाथ ऊँचा और बीस हाथ चौड़ा एक मेड़(आल) बनाया था। इस कारण से 'बंग–आल' (आल –मेड़) शब्दों के योग से 'बंगाल' या 'बांगाला' नाम हुआ था।

हिन्दु एवं मुसलमानों के शासन काल में बंग देश में राजधानी स्थापित थी। विद्या एवं ज्ञान के लिये बंग देश चिर प्रसिद्ध है। प्राचीन बंग के समृद्धि की कोई सीमा नहीं थी। कृषि, शिल्प एवं वाणिज्य द्वारा बंग देश ने जो ख्याति अर्जन की थी, वह अतुलनीय है। इन सभी विवरणों का वर्णन थोड़े शब्दों में नहीं किया जा सकता।

बरदाखात(13 पृष्ठ –5 पंक्ति)। यह त्रिपुरा राज्य का एक सुवृहत परगना था। पूर्व में त्रिपुरा राज्य में अन्तर्निविष्ट था। मुगलों के राजत्व काल में यह नेजामत(सामरिक) विभाग में चला गया। बरदाखात और सराइल परगने के जमींदारगण – सामरिक विभाग के लिये निर्दिष्ट संख्या में कोष नौकाएं देने के लिए मजबूर थे। इसके अलावा उन दोनों परगनाओं की आमदनी रणतरी में खर्च होती थी। इसलिये इसे 'नावरामहाल' (अर्थात नौका का इलाका) नाम से जाना जाता था।

मुगल सम्राट अकबर के समय बरदाखात परगना ईशा खाँ मसनद अली के शासनाधीन था। उस समय इसका नाम था "बलदाखाल"। द्वितीय आलमगीर(औरंगजेब) के शासन काल में (44 जलुसे –1700 ई सन) बंगाल के नवाब आजिम उसमान के एक परगने से जाने जाता है, उन दिनों यह परगना ईशा खाँ के उत्तर पुरूष दीवान हयवत् अहम्मद खाँ के हाथों में था(2)। इसके पश्चात् बहुत से व्यक्तियों के हाथों से गुजरकर मिर्जा महम्मद इब्राहिम के हाथों में आया। उनके अपुत्रक की हालात में परलोक वासी होने पर उनकी तीन कन्याओं में सम्पत्ति सम भागों में बाँट दी गई थी। उनकी कनिष्ठा कन्या के स्वामी मिर्जा होसन अली काली के उपासक थे। उनकी रचित श्यामा–संगीत अब भी गाई जाती है।

इसके पश्चात् खरीददारी सूत्रों से बहुत से लोग इस परगना के अंश विशेष के अधिकारी हुए थे। उनमें श्यामग्राम निवासी ब्राह्मण वंशज महेशनारायण राय, ढाका निवासी आमीरूद्दीन दरोगा एवं ढाका के नवाबवंश के पूर्वपुरूष खाजे अलीमियाँ का नाम उल्लेख योग्य है। इस समय (आज 2000 ई. से 75 साल पहले – हिन्दी अनुवादक) ढाका के नवाब परिवार ही इस परगना के अधिकांश के अधिकारी हैं।

त्रिपुरेश्वर धन्यमाणिक्य के शासन काल में यह परगना गौड़ेश्वर के कब्जे से छीन लिया गया था। बरदाखात के उस समय के जमींदार प्रताप राय

---

(1) **Vide Buchanon Hamilton's Hindusthan Vol 1, P. 114**

(2) **J.A.S.B. Vol XLIII, Part 1, P 214**

द्विल –301

गौड़ेश्वर की उपेक्षा कर त्रिपुरा की वश्यता स्वीकार की थी। इसके कुछ दिनों के पश्चात् यह स्थान पुनः मुसलमान शासकों हाथ चला गया एवं पूर्वोक्त अवस्था में पहुंचा था।

श्यामग्राम की "बरदेश्वरी" विग्रह विशेष प्रसिद्ध है एवं जाग्रत देवता बोल कर साधारण जनता में विश्वास है।

बामबाजु(43 पृष्ठ –20 पंक्ति)उदयपुर राजधानी दक्षिण की ओर के प्रदेश श्रीहट्ट आदि दक्षिण बाजु एवं बाईं ओर के चट्टग्राम आदि स्थान बाम बाजु के नाम से परिचित थे। महाराज विजयमाणिक्य ने इस सभी प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर राज्य के सीमा का विस्तार किया था।

बाराणसी(2 पृष्ठ –5 पंक्ति) यह काशी धाम का ही नामांतर माना जाता है। काशी क्षेत्र का विवरण प्रथम लहर के 243 पृष्ठ में दिया गया है।

बालिशिरा(59 पृष्ठ –2 पंक्ति) यह श्रीहट्ट जिला का एक परगना था। त्रिपुरेश्वर महाराज रामगंगामाणिक्य अपने अनुरक्त भृत्य रामहरि विश्वास से बीस गाँव स्थित जमींदारी का स्वमित्व प्राप्त कर वहाँ रहते समय सात गाँव और बालिशिरा के जमींदारी का अंश क्रय किया था। इस बारे में राजमाला में है –

"गौलाम आली जमिदार ढाका अवस्थिति।
आला लक्ष्मी नामे सरिक तथाय बसति।।
सात गाँव बालिशिरा साड़े नय आनि।
जमींदारी हिसा बिक्री कोरिल आपनि।।
बत्रिस हाजार टाका तार मूल्य हय।
बारो स पॅच्चीस सने नृप कोरे क्रय।।"
राजमाला रामगंगामाणिक्य खण्ड

अर्थात, "गुलाम अली जमीदार ढाका में रहते थे। आला लक्ष्मी नाम के पड़ोसी वहाँ रहते थे। सात गाँव बालिशिरा के साढ़े नौ आना जमींदारी का हिस्सा उन्होने बेच दिया –जिसका मूल्य बत्तीस हजार रूपये था। बारह सौ पचीस सन में राजा ने उसे खरीदा था।"

महाराज राम गंगा के अनुरक्त भक्त रामहरि विश्वास के दान ग्रहण की बात राजमाला में उल्लेख नहीं की गई है। स्व. कैलास चन्द्र सिंह महाशय ने लिखा है –

"रामगंगा ने स्वदेश परित्याग करना श्रेयस्कर समझकर सपरिवार बिशगांव गमन किया। उस समय एक जमीदारी खरीदने के लिए रामहरि को आदेश दिया। तब असाधारण प्रभुभक्तिपरायण रामहरि ने महाराज रामगंगा बीसगांव प्रदान कर के कहा, महाराज की कृपा ही हमारी सारी धन सम्पत्ति है। मैंने इसे महाराज के लिये ही खरीदा है। महाराज इसे ग्रहण करें।"

महाराज रामगंगा ने संतुष्ट चित्त से अपने प्रिय सहचर का दान ग्रहण किया। (कैलास बाबू की राजमाला द्वितीय भाग 13 अध्याय 149 पृष्ठ)

श्रीहट्ट के इतिवृत प्रणेता ने भी इस विषय का उल्लेख किया है(1)।

....

(1) श्रीहट्ट का इतिहास दूसरा भाग दूसरा खण्ड 130 पृष्ठ

द्विल –302

यह सात गाँव और बालिशिरा आज भी त्रिपुरेश्वर की जमींदारी में है (आज 2000 ई. से 75 साल पहले की बात है अब न राजतंत्र है और न वह स्थान त्रिपुरा में है। अब वह स्थान बांलादेश में है – हिन्दी अनुवादक)

महाराज विजयमाणिक्य ने दिग्विजय के समय यहाँ आकर विजयपुर नाम के एक गाँव की स्थापना की थी, ऐसा निदर्शन राजमाला में पाया जाता है।

विक्रमपुर(56 पृष्ठ –12 पंक्ति) यह एक विशाल परगना था। इस समय ढाका जिला का अधिकांश और फरिदपुर जिला के कुछ अंशों को लेकर यह परगना बनाया गया था(आज से प्रायः 80 साल पहले) इसके उत्तर में धलेश्वरी नदी, पूर्व सीमा में मेघना, पश्चिम में पदमा नदी एवं चन्द्रप्रताप का अल्पाश और दक्षिण में इदिलपुर आदि परगना है।

पदमा नदी द्वारा विक्रमपुर दो भागों में विभक्त हो गया है। इस विच्छिन्न उत्तरांश का नाम उत्तर विक्रमपुर एवं दक्षिणांश का नाम दक्षिण विक्रमपुर हुआ। ई सदी नवीं तक यह प्रदेश ''समतट'' के नाम से जाना जाता था। सुविज्ञ कनिंगहोम, फर्गुसन और वाटर्स आदि ऐतीहासिकारो ने समतट के बारे में जिन बातों की चर्चा की है, ढाका के इतिहास प्रणेता के अनुसार उनमें वाटर्स उक्ति सर्वतोभाव से ग्रहणनीय है।(2) उनके अनुसार ढाका दक्षिण एवं फरिदपुर के पूर्व की ओर के भू भाग का नाम समतट के नाम से विख्यात था। शेषोक्त मत ही ज्यादा निर्भर योग्य लगता है।

उज्जयिनी (उज्जैन) के अधीशासक विक्रमादित्य के नामानुसार इस प्रदेश का नाम विक्रमपुर हुआ है। एक कहावत के अनुसार दिग्विजय प्रकाश ग्रंथ में, ''विक्रमभूप वासत्वात् विक्रमपुर मतोबिंदुः'' लिखा है और विक्रमादित्य यहाँ आये थे। पर यह हकीकत नहीं है। महाराज विक्रमादित्य के यहाँ आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

विप्रकल्पलतिका ग्रंथ के अनुसार सेनवंशज विक्रमसेन विक्रमपुर नाम के प्रतिष्ठाता हैं उस ग्रंथ में लिखा है

''तद्वंशे विक्रम सेनो जातः परम धार्मिकः।
कृतवान विक्रमपुरीं स्वनाम्नाभिहितां सुधीः।। विप्रकल्पलतिका।

गौड़ के राजन्यवर्गों में विक्रमसेन का नाम मिलता है। तंत्रविभूति, विद्वोन्माद तरंगिनी एवं कथासरित्सागर आदि ग्रंथों में इसका नामोल्लेख है। विक्रमपुर में सेन राज वंशजों का आधिपत्य दीर्घ काल तक चलता रहा। अतएव विक्रमसेन के नामानुसार विक्रमपुर नामकरण होने की संभावना अधिक है।

पालवंश के शासन काल में विक्रमपुर के नाना स्थानों में बौद्ध विहार और चैत्य स्थापित हुआ था। उन सभी स्थानों में ब्रजयोगिनी का नाम विशेष रूप से

---

(2) ढाका का इतिहास प्रथम खण्ड, उपक्रमणिका 16 –17 पृष्ठ

द्विल –303

उल्लेखयोग्य है। इस समय भी जो निदर्शन आविष्कृत हो रहे हैं उनकी आलोचना से स्पष्ट ही यह प्रतीयमान होता है कि पाल राजत्व काल में विक्रमपुर में बौद्ध धर्म प्रचार के निमित्त बहुत प्रचेष्टा की गई थी।

विक्रमपुर के भाग्य में बंग की राजधानी का गौरव सुदीर्ध काल तक रहा है। उन सौभाग्य के दिनों में साग्निक ब्राह्मण का आगमन हुआ और उनके द्वारा अनुष्ठित यज्ञादि के पुण्य कार्य द्वारा रामपाल तीर्थ क्षेत्र में बदल गया था।(1) यह प्रदेश बंगीय वीर चाँद राय और केदार राय का लीला क्षेत्र रहा है(2)। सलरजंग महाराज राजबल्लभ सेन रायराइया ने अतुलनीय अट्टालिकाओं से विक्रमपुर के वक्षस्थल को भूषित किया था(3)। विक्रमपुर की वह शोभा और सौभाग्य बहुत पहले ही विनष्ट हो गई है। चाँद राय और केदार राय के शेष चिन्ह राजाबाड़ीर मठ (अर्थात राजभवन के घर का मठ) 1923 ई सन में कीर्ति ग्रासिनी कीर्तिनाशा ने उदरसात् कर लिया है।

महाराज विजयमाणिक्य ने दिग्विजय में निकलकर विक्रमपुर में पदार्पण किया था। राजमाला में है –

"विक्रमपुरेते जाइया आसिलो फिरिया" अर्थात, विक्रमपुर जाकर फिर लौट आये। इस वाक्य द्वारा ज्ञात होता है कि महाराज विक्रमपुर में जाकर अपना आधिपत्य विस्तार नहीं कर सके। इसके अलावा बाधा प्राप्त होने का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। पर गौड़ेश्वर के गुप्तचर उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रख रहे थे –इसका उल्लेख राजमाला में है। उन दिनों मुगल और पठानों के विरोध के फलस्वरूप मुसलमान शक्ति दिनोंदिन दुर्बल हो रही थी, अतएव विजयमाणिक्य का गतिरोध करने का सुअवसर पाना उनके लिये संभव नहीं हो सका।

विजय नदी(57 पृष्ठ –4 पंक्ति) यह एक कम चौड़ी पहाड़ी नदी है। सदर विभाग स्थित विशालगढ़ थाना के अधीन पश्चिमाभिमुखी होकर बहती है, तितास नदी में जाकर मिल गई है। इसका गतिपथ बड़ा टेढ़ा है। महाराज विजयमाणिक्य ने इसके कुछ मोड़ों को कटवा कर सीधा कर दिया है। इसलिये विजय नदी कहा जाता है। पहाड़ी जाति के बहुत से लोग इस नदी को "विजय नन्दी" भी कहते हैं। राजमाला कार ने इसका "विजय नन्दिनी" नाम रखा है।

विजयपुर(59 पृष्ठ –3पंक्ति) श्रीहट्ट जिला स्थित बालिशिरा परगना का एक गाँव। महाराज विजयमाणिक्य इस गाँव के प्रतिष्ठाता हैं।

विशालगढ़(25 पृष्ठ –9 पंक्ति) यह अगरतला से दक्षिण की ओर 12 मील(6 कोस=12 मील) से कुछ अधिक दूरी पर बसा हुआ एक समृद्ध–जनपद है। यहाँ पर त्रिपुरेश्वर का एक सेना निवास रहने की वजह से इसका नाम नाम विशालगढ़ हुआ। इसका विवरण प्रथम लहर के 262 पृष्ठ में प्रदान किया गया है।

....

(1) गौड़ ब्राह्मण।

(2) **Akbarnama (By Beveridge's) Part III**

(3) महाराज राजबल्लभ की जीवनी।

द्विल –304

<u>विष्णा जूड़ि(13 पृष्ठ –5 पंक्ति)</u> इसे विष्णा उड़ि नाम से भी जाना जाता है। यह स्थान श्रीहट्ट के अंतर्गत है। महाराज विजय ने दिग्विजय पर निकलने के बाद इस स्थानों पर भी अपना अधिकार कायम किया था।

<u>बेजुरा(13 पृष्ठ –4 पंक्ति)</u> इसका प्रकृत नाम बेजोड़ा था। इस नामोन्पत्ति पर एक कहावत भी प्रचलित है। सैयद मिकायेल के इस प्रदेश के सत्वाधिकारी रहते समय उनके द्वितीय पुत्र सैयद अब्बास दिल्लीश्वर के प्रसाद से शक्तिशाली होकर वहाँ के किसी उमराह की कन्या से विवाह किया था एवं सम्राट की कृपा से श्रीहट्ट में विशाल भू सम्पत्ति प्राप्त करके सस्त्रीक स्वदेश लौटते समय उनके बड़े भाई नाजिर खां ने ईर्ष्यावश रास्ते में ही उनकी हत्या कर दी। इस दुर्घटना के पश्चात् उमराह की कन्या फिर अपने स्वामी के घर न आकर रास्ते से ही अपने पिता के गृह दिल्ली लौट आई। यहीं पर स्वामी से स्त्री चिरकाल के लिये विमुक्त हो गई और तब से इस बेजोड़ा कहा जाने लगा।

बेजोड़ा श्रीहट्ट जिला के एक परगने में बदल गया। यह स्थान त्रिपुरा के हाथों से निकल जाने पर महाराज विजयमाणिक्य ने पुनः इसे अपने कब्जे में कर लिया था।

<u>बैकुंठपुर (64 पृष्ठ –20 पंक्ति)</u> उदयपुर में राजपरिवार के श्मशान क्षेत्र के लिए निर्धारित जगह को बैकुंठपुर नाम से पुकारा जाता था। अब भी यहाँ बहुत से समाधि मंदिर विद्यमान है।

<u>ब्रह्मपुत्र(54 पृष्ठ –18 पंक्ति)</u> यह स्वनाम ख्यात नदी है। ब्रह्मपुत्र के उद्भव एवं नाम की उत्पत्ति के बारे में बहुत से विवरण कालिकापुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्माण्डपुराण एवं कूर्मपुराण आदि ग्रंथों में मिलते हैं। विस्तार भय से उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया।

ब्रह्मपुत्र हिमालय पर्वत से निकलकर मिसमी जातियों के आवास स्थल (पर्वत) बीच से गुजरकर परशुराम कुण्ड में जा गिरती है। वहाँ से नवगाँव, सदिया, डिब्रूगढ़, तेजपुर, गौहाटि, गोयालपाड़ा और धुबड़ी आदि आसाम प्रदेश के जनपद समूह को अतिक्रम कर रंगपुर, मैमनसिंह और ढाका के बीच से होकर मेघना में जा गिरी है। इसका एक स्रोत सुवर्णग्राम की छाती को पार करती शीतललक्ष्या के साथ मिल गया है। ब्रह्मपुत्र का दूसरा नाम लोहित्य है।

ब्रह्मपुत्र पुण्यपद नदी है। विशेष तिथियों पर इस नदी का महात्म्य बढ़ जाता है। शास्त्र में है –

मीने मधौ शुक्लपक्षे अशोकाख्यां तथाष्टमीम्।
पिबेदशोक कलिकाः स्नायात् लोहित्य बारिणि।।
पूनर्वसौ बृषे लग्ने चैत्रेमासि सिताष्टमीम्।
लौहित्य बिरजे स्नायात् सर्वपापैः बिमुच्यते।।

स्कन्दपुराण

द्विल –305

महाराज विजयमाणिक्य बंग विजय के लिए निकलकर पहले सुवर्णग्राम को अपने अधिकार में लिया और इस तीर्थ में स्नानदानादि किया था।

भानूगाछ (13 पृष्ठ –4 पंक्ति) यह श्रीहट्ट जिला का एक परगना है। यह प्रदेश त्रिपुर राज्य के अधीन था। बाद में त्रिपुरा के शासन से अपने को विछिन्न करके स्वातंत्रेय अवलम्बन करने पर महाराज धन्यमाणिक्य ने पुनः उसे अपने अधीन कर लिया था।

भुलुया(33 पृष्ठ –14 पंक्ति) यह वर्तमान नोवाखाली का प्राचीन नाम था। इस समय भुलुया नाम का नोवाखाली जिला का एक परगना भी है।

भुलुया त्रिपुरा के अधीन एक सामंत राज्य था। जनश्रुति के अनुसार गौड़ के विख्यात राजा आदिसुर के वंशज विश्वम्भरशूर इस राज्य के प्रतिष्ठाता थे। वे चन्द्रशेखर तीर्थ दर्शन के लिए यात्रा करके नाविकों के दिक्भ्रम के फलस्वरूप कई दिनों तक भ्रमण के पश्चात् एक द्वीप में उपस्थित हुये। वहाँ आकर उन्होने अनुमान किया कि राह भूलकर वह यहाँ आए हैं। तब उन्होने कहा था –''भूल हुआ''। इस 'भूल हुआ' शब्द से ही इस जगह का नाम भुलुया हुआ। इस जगह के नाम की उत्पत्ति के बारे में दूसरे तरह के प्रवाद भी हैं, उनके कौन सा सत्य है, यह निर्णय करना असाध्य है।

विश्वम्भर वाराही देवी के उपासक थे। कहावत है कि उन्होने देवी के आदेशानुसार वहाँ पर एक नए राज्य की प्रतिष्ठा एवं पत्थर की वाराही मूर्ति की स्थापना की। यह 610 बंगाब्द की घटना है। डॉक्टर वाइज साहब ने इस बारे में जो मत प्रकाश किया है उसे नीचे दिया जा रहा है –

''The exact date of this fiction is given as the 10th of Magh, 610 Bengali year or A.D. 1203, the same year in which the first Muhammadan invasion of Bengal under Bakhtyar Khilji took place."

J.A.S.B. - Vol XL III, Part I, P.203

हन्टर साहब ने इस बारे में जो मत प्रचार किया है उसके भ्रमात्मक होने पर बहुत सी आपत्तियाँ उठी। इसलिए उसे यहाँ नहीं दिया गया।(1)डॉक्टर वाइज साहब की जनश्रुतियों पर निर्भर कर के ही समय निर्धारण किया है। इसकी विशद्धता के बारे में दृढ़ता के साथ कुछ कहने का उपाय नहीं है। राजा विश्वंभर की प्रतिष्ठित बाराही मूर्ति अब भी विद्यमान है।

राजा विश्वंभर को कोई क्षत्रिय और कुछ लोग कायस्थ बताते हैं। किसी किसी के अनुसार वे क्षत्रिय थे पर भुलुया में आकर कायस्थों के साथ मिल गये थे। विश्वंभर के आदि पुरूष प्रख्यात आदिशूर के जाति निर्णय को लेकर आज भी वाक्वितंण्डा का अंत नहीं हुआ। इस अवस्था में विश्वंभर के जाति विचार में

---

(1) **Statistical Account of Bengal. Vol VI, P. 247**

उलझना निरर्थक ही लगता है। वे चाहे किसी भी जाति के हों, पर भुलुया में आकर वे जो कायस्थों के साथ घुल मिल गये थे, यह बात सत्य है।

राजमाला के संग्राहक स्व. कैलाश चन्द्र सिंह महाराज ने राजा विश्वंभर की जो वंश सूची प्रदान की है वह नीचे दी जा रही है।(1) किन्तु यह वंशावली भी विशुद्ध जान नहीं पड़ती। राजमाला में भुलुयापति दुर्लभ राय के साथ त्रिपुरेश्वर अमरमाणिक्य का युद्ध हुआ था। कैलास बाबू प्रदत्त वंश सूची में दुर्लभ राय का नाम नहीं मिलता। हम विशुद्ध वंश सूची संग्रह करके तृतीय लहर में दे रहे हैं।

राजा विश्वंभर राय।
|
राजा गणपति राय।
|
राजा सुरानन्द खाँ।
|
राजा देवानन्द खाँ।
|
राजा कविचन्द्र खाँ
|
राजा राजबल्लभ राय
|
उदयमाणिक्य | राजमाणिक्य | लक्ष्मणमाणिक्य | गोविन्दमाणिक्य | नरसिंहमाणिक्य

लक्ष्मणमाणिक्य
|
बलराम राय

पहले ही कहा गया है, भुलुया त्रिपुरा का आधीनस्थ सामंत राज्य था। इस राज्य के राजा सदा प्रधान सामंत के रूप में माने जाते थे। त्रिपुरेश्वरों के राज्याभिषेक के समय ये ही उनके ललाट में राजटीका प्रदान करते थे एवं सभी राजाओं में अग्रगण्य होकर सबसे आगे नजर प्रदान करते थे। हर साल किसी पुण्य के दिन राजा को नजर प्रदान करना इनके कर्तव्यों में माना जाता था। महाराज अमरमाणिक्य के शासन काल में भुलुया के राजा दुर्लभ राय ने त्रिपुरा की अधीनता को अस्वीकार किया था। इसके फलस्वरूप एक युद्ध हुआ था। राजमाला की आलोचना से यह ज्ञात होता है। राजमाला के तृतीय लहर में इसकी विस्तृत आलोचना करने की इच्छा है।

भुलुया के सभी राजाओं में तीन(मूल पुस्तक में दो है, लेकिन वंशतालिका में 3 खां है— अनुवादक) व्यक्तियों ने मुसलमानों का अनुकरण कर 'खाँ' उपाधि धारणा की थी। बाद में त्रिपुरेश्वर की उपाधि अनुसरण कर माणिक्य उपाधि ग्रहण किया था। इससे यह समझा जाता है कि ये लोग नितांत ही अनुकरण प्रिय थे।

(1) कैलाश बाबू की राजमाला चतुर्थ भाग प्रथम अध्याय 394 पृष्ठ

द्विल –307

राजा लक्ष्मणमाणिक्य असाधारण वीर एवं सुपण्डित थे। ये राज कार्य के साथ साहित्य चर्चा भी करते थे। उन्होने संस्कृत भाषा में 'विख्यात विजय' नामक एक नाटक की रचना की थी। यह अर्जुन द्वारा कर्ण वध के आख्यान को लेकर रचित हुआ था। ग्रंथ के प्रारंभिक भाग के कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं। –

प्रेक्षावत् परितोष निस्तुल महामाणिक्य रत्नाकरः।
प्राक् सत्पुरूष पौरूषोत्कर कथा स्त्रोतस्वती भूधरः।।
दूप्याच्चारण चातुरी मधुकरी प्रागल्भा पुष्पाकरः।
श्रीमल्लक्ष्मण भूपते रभिनवस्तादृक् प्रबन्धोत्तरः।।
आश्रयो यस्य राजानस्तस्य बीररसस्य चेत्।
प्रबन्धो भूभुजा बद्धस्तस्मिनौपयिक श्रमः।। विख्यात विजय।

इनके द्वारा लिखा गया ''कौतुक रत्नाकर'' नाम का और एक ग्रंथ अगरतला के राज ग्रंथागार में है। ढाका विश्वविद्यालय के ग्रंथशाला में भी इसका एक खण्ड सुरक्षित है।

चन्द्रद्वीप के राजा कन्दर्प नारायण राजा लक्ष्मणमाणिक्य के समकालीन थे। इनमें पारस्परिक सद्भाव नहीं था। यह विषय और भुलुया राज्य का विवरण तृतीय लहर में आलोचित होगा।

मध्ययुग में भुलुया त्रिपुरा की वश्यता को अमान्य करने पर त्रिपुरेश्वर महाराज देवमाणिक्य ने उस राज्य पर विजय प्राप्त कर समुद्रतीर तक अपने अधिकार में कर लिया था। उस समय महाराज ने चट्टग्राम में अपना एक सेना निवास(थाना) स्थापित कर चन्द्रनाथ तीर्थ दर्शन कर स्वराज्य में लौट आये थे।

भूषणा(41 पृष्ठ –23 पंक्ति) यह मध्यबंग का एक समृद्ध नगर था। पूज्य पाद श्रीयुक्त आनन्दनाथ राय महाशय ने प्राचीन भूषणा की सीमा निम्नलिखित भाव से प्रदान की है –

''उत्तर में पद्मा और बेतरिया का क्षुद्रांश एवं कुबार साही, पश्चिम में महम्मदशाही, नलडांगा और यशोहर, दक्षिण में ढाका के अंतर्गत बाखरगंज का अंश विशेष।''(1) इस समय भूषणा के कुछ अंश खुलना और यशोहर एवं कुछ अंश फरिदपुर जिले में आ गये हैं।

भूषणा बंगीय वीर सीताराम राय का बाल्य लीला क्षेत्र रहा है। यहाँ पर उन्होने पिता के यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। सीताराम के जमींदारी प्राप्त करने के पश्चात् भूषणा के मुसलमान फौजदार के साथ संर्घष उपस्थित हुआ। इस विवाद के फलस्वरूप

---

(1) फरिदपुर का इतिहास, प्रथम खण्ड, 82 पृ

द्विल –308

फौजदार आबुतोराप बारासिया नदी के तट पर सीताराम के हाथों मारे गये और भूषणा दुर्ग सीताराम के कब्जें में आ गया।(2)

आबुतोराप के मौत के पश्चात् बंगाधीश मुर्शिदकुली खाँ ने बक्स अली खाँ नाम के एक व्यक्ति को भूषणा के लस्कर पद पर नियुक्त करके भेजा। इसके पश्चात् मुगल वाहिनी के साथ भीषण संग्राम में सीताराम आहत अवस्था में पकड़े गये और मुर्शिदाबाद लाये गये। वहीं पर सीताराम की मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के बारे में मुसलमान इतिहास रेयाजुस–सलातिन के अनुसार सीताराम को शूलबिद्ध कर मारा गया और उनके परिवार को कारारूद्ध करके रखा गया। 'तारीखे बांगाला' ग्रंथ का मत भी ऐसा ही है(3)। स्टुयर्ट साहब ने भी इन्हीं सभी इतिहासों का अनुसरण किया है। इसके अलावा सीताराम के स्त्री पुत्रों को दास के रूप में बेच देने की बात भी कहा है। यह बात उन्हें कहाँ से मिली यह ज्ञात नहीं हो सका। उनका वाक्य हम नीचे दे रहे हैं:

Buksh Aly seized Sittaram, his women, children and accomplices and sent them in irons to Moorshidabad, where Sittaram and the robbers were impaled alive and the women and children sold as slaves.

Stewart's History of Bengal P. 434.

श्रद्धास्पद श्रीयुक्त अक्षय कुमार मैत्रेय महाशय के ''सीताराम'' पाठ से अनेक विषयों की जानकारी मिलेगी। सीताराम की मृत्यु मुर्शिदाबाद में हुई थी, सत्य है। किन्तु मृत्यु का प्रकृत कारण आज भी निःसंशय चित्त से कोई कह नहीं सका। उनके परिवार वालों को कारागार में डाल देना और उन्हें बेचने की बातों को बहुत से लोग मिथ्या करार देते हैं।

भूषणा की समृद्धि एक समय बंग विख्यात हो उठी थी। शिल्प नैपुण्य के लिये भी इस स्थान की बड़ी ख्याति थी। भूषणा के अंतर्गत सातैर की ''शीतल पाटी'' प्रसिद्ध जात वस्तुओं में से थी।

त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य के शासनकाल में पठान और मुगलों के भीषण संघर्ष के फलस्वरूप मुसलमान शासन बहुत ही कमजोर पड़ गया था। इसी सुयोग को देखकर महाराज विजय ने पूर्व और मध्य बंग के अधिकांश स्थानों को हस्तगत कर लिया था। वे उस समय माधव नाम के एक व्यक्ति को भूषणा के लस्कर पद पर नियुक्त कर अपने ससुर और सेनापति दैत्यनारायण का वध किया था।(4) इसके बाद कब और किस कारण से ये सभी

....

(2) **Stewart's History of Bengal P. 433.**

(3) बांगला का इतिहास – (नवाबी आमल) 80 पृष्ठ

(4) माधव के साथ महाराज विजय वचनबद्ध थे। प्राचीन राजमाला में है –

''इ कथा सुनिया राजा सत्य निर्बन्धिल।
भुषणा राज्ये जे तोमा लस्कर कोरिल।।''

(प्राचीन राजमाला दुर्जय खण्ड)

यह बात सुनकर राजा ने वचनबद्ध होकर कहा कि मैंने तुम्हे भूषणा के राज्य में लस्कर का पद दिया।

द्विल –309

प्रदेश त्रिपुरा के हाथों से निकल गये थे, जाना नहीं जा सका। मुगल साम्राज्य प्रतिष्ठित होने के बाद उन्होने उक्त प्रदेश पर प्रभुत्व लाभ किया था। अतएव त्रिपुरा का आधिपत्य अधिक दिनों तक नहीं था, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

मनुनदी(31 पृष्ठ –30 पंक्ति) यह नदी त्रिपुर राज्यस्थित संखलं पर्वत के खोईशिव नाम के श्रृंग के करीब से निकलकर उत्तर पश्चिमाभिमुखीन प्रवाहित होकर मनुमुख नाम के स्थान पर कुशियारा(बरबक्र अर्थात बराक नदी का अंश विशेष) नदी में जाकर मिली है। कैलासहर, उनकोटि तीर्थ आदि इसी नदी के तट पर हैं। योगिनी तंत्र, उनकोटि तीर्थ माहात्म्य एवं वायुपुराण आदि ग्रंथों में मनुनदी को पुण्य–नदी कहा गया है। केवल एक प्रमाण नीचे दिया जा रहा है –

समुद्रस्योत्तर देशे ततो मनुनदी स्मृतः।
यंगत्वापि महाराजन् पित्वा पानीयमुत्तमं।।
मनुनद्यां महाराज बरबक्रेन संगमं।
तत्र स्नात्वा नरोषाति चन्द्रलोकं मनुत्तमः।। वायुपुराण।

माछि छड़ा(26 पृष्ठ –5 पंक्ति) गोमती नदी के किनारे छनगांग से कई मोड़ के ऊपर की ओर यह स्थान है। त्रिपुरा आक्रमणकारी पठान सेनापति हैतन खाँ ने यहाँ पर स्कन्धावार स्थापन किया था। उनके साथ आये भास्कर लोगों ने गोमती नदी के तीरों के पथरीले पर्वत की दीवारों पर बहुत से देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाई थी, जिसकी अधिकांश मूर्तियाँ अब भी हैं –कुछ मूर्तियाँ नीचे गिर गई हैं। इस बारे में राजमाला में है –

छन गांग तैकातान देबद्वार नाम।	छन गांग तैकातार देवद्वार नामा।
तार कत बांक उजान माछिछडा धाम।।	उसके मोड पार है माछिछडा धाम।।
होइतन खाँ संगे छिलो जतो शिल्पकर।	जितने कारीगर थे हैतन खाँ के साथ।
निर्माइछे गड़ पोरे देब बहुतर।।	निर्माण करो गढ़ कहा बहुत दूंगा पश्चात।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 26पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 26पृ

अर्थात, ''छनगांग तैकतान देवस्थानों के नाम हैं। उनके कई मोड़ के ऊपर की ओर माछिछड़ा धाम है। तैतन खाँ(हैतन खाँ) के साथ जितने मूर्तिकार शिल्पी थे, उन लोगों ने बहुत सी देवी देवताओं की मूर्तियाँ बनाई।''

इनलोगों ने माछि छा/देवतामुड़ा नाम के मूर्ती समूह का अनुसरण कर बनाया था, राजमाला की आलोचना से यह स्पष्ट होता है। राजमाला में हैतन खां के सैन्य के बारे में जो वर्णित हुआ है उसका कुछ अंश नीचे दिया गया है।

आर देखे नदी तीरे पासान प्रतिमा।	और देखती नदी तट पर पाषाणी प्रतिमा।
हिन्दू सबे पूजा करे जानिया महिमा।।	हिन्दू सब पूजे उसे, जान उसकी महिमा।।
सेई स्थाने नाम छिल माचिछा विख्यात।	नाम उसका था माचिछा विख्यात।
पुनर्जन्म नहे बोले त्रिपुरा साक्षात।।	दर्शन से पुनर्जन्म नहीं, कहे त्रिपुर साक्षात।।
राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 27पृ	राजमाला द्विल धन्यमाणिक्य खण्ड 27पृ

द्विल –310

माछि छा(27 पृष्ठ –16 पंक्ति) त्रिपुरा भाषा में इस स्थान को 'मार्च्छिल' कहते हैं। प्राचीन काल में इस अंचल में रियां जाति के लोग रहते थे। यहाँ के अधिवासियों ने त्रिपुरा की अधीनता को अमान्य करने पर महाराज धन्यमाणिक्य के शासनकाल में सेनापति राय काचाग ने उन्हें पुनः वश में किया था(1)। बंगाली समाज में यह स्थान 'देवतामुड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान उदयपुर एवं अमरपुर की सीमा पर है। यहाँ गोमती के बायें किनारे ऊँची पहाड़ी की पत्थरों की दीवार पर नाना तरह के देव और देवियों की मूर्तियाँ खोदी गई हैं। इनमें महिषासुर मर्दिनी दस भुजा मूर्ति की बात विशेष रूप से उल्लेखयोग्य है। इन सभी खुदाई की गई मूर्तियों के लिये ही इसका नाम देवतामुड़ा हुआ है। इन सभी मूर्तियों के बार में राजमाला की उक्ति माछिछड़ा के विवरण में दी गई है।

देवतामूड़ा के मूर्तियाँ त्रिपुरेश्वरों के प्राचीन कीर्ति चिन्ह हैं। किस समय किस उद्देश्य से नदी से उठाकर प्रस्तरमय उत्तुंग पर्वतीय दीवार पर इन सभी मूर्तियों को अंकित किया गया था इसका पता नहीं चलता। जिस समय बौद्ध धर्म याजकगण त्रिपुर राज्य के चारों ओर से हिन्दुओं को बौद्ध धर्म में दीक्षित कर रहे थे एवं राज्य में घुसने की कोशिशें कर रहे थे, उस समय जनसाधारण को हिन्दु धर्म के प्रति आकर्षण करने के लिए धर्मप्राण त्रिपुरेश्वर गण ने पर्वत के शिलामय दीवारों पर इन मूर्तियों को उत्कीर्ण कराया था। उन दिनों की हालातों की आलोचना से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दु राजन्य वर्ग की इस तरह की चेष्टा से ही बौद्धों में तांत्रिक सम्प्रदाय की सृष्टि हुई थी। हिन्दुओं की सहानुभूति पाने के लिये इस सम्प्रदाय की सृष्टि हुई होगी ऐसा कुछ अनुमान लोगों का अनुमान है।

खुदाई की गई मूर्तियों के कारूकार्य प्रशंसनीय है। उन दिनों त्रिपुर राज्य में भास्कर–शिल्पियों की कमी नहीं थी एवं इस तरह की शिल्प कला विशेष रूप से उन्नति कर चुकी थी। प्रतिकृतिओं के दर्शन से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। उनकोटि तीर्थ की उत्कीर्ण की गई मूर्तियों से तुलना करने पर यह प्रतीत होता है कि ये मूर्तियाँ उसके बाद की है एवं उन दिनों भास्कर शिल्प अधिकतर उत्कर्ष पर था।

माधवतला(40 पृष्ठ –16 पंक्ति) यह स्थान उदयपुर के करीब था, राजमाला में है। यहाँ पर एक बाजार था। काल के प्रवाह से स्थान का नाम भी बदल गया। इस समय माधवतला कहाँ था यह निर्णय कर पाना संभव नहीं है।

मेहेरकुल(13 पृष्ठ –2 पंक्ति) इस जगह का पूर्ण विवरण राजमाला के प्रथम लहर के 265 पृष्ठ में मिलेगा।

यमुना(55 पृष्ठ –11 पंक्ति) एक नदी का नाम है। यह नदी हिमालय पर्वत से निकलकर प्रयाग में गंगा के साथ मिल गई है। राजमालाकार

(1) इस लहर के 20 पृष्ठ की 16 पंक्ति,

द्विल –311

ने यमुना को लक्ष्य नहीं दिया है। ब्रह्मपुत्र का पश्चिम प्रवाह भी यमुना के नाम से विख्यात है। यह नदी मयमनसिंह और पाबना जिला के मध्यवर्ती सीमा के रूप में बहती हुई गोयालन्द के थोड़ा ऊपर जाकर पद्मा नदी में मिली है। राजमाला के रचयिता ने इस नदी को ही उल्लेख किया है।

यशपुर(25 पृष्ठ –22 पंक्ति) उदयपुर से उत्तर की ओर स्थित एक गाँव है। इसी स्थान से होकर उदयपुर जाया जाता था।

यात्रापुर(52 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह स्थान ढाका से पश्चिम की ओर 30 मील की दूरी पर इच्छामती नदी के किनारे स्थित है। यहाँ से पहले जल पथ से चक्करदार इच्छामती नदी से ढाका जाया जाता थे। पर इस राह से समय ज्यादा लगता था। परिव्राजक टेवारनीयर ने अपने लिखित भ्रमण वृतांत में एक सीधे रास्ते के बारे में बताया है –(1) नवाब शाइस्ता खाँ ने यहाँ पर कुछ दिनों तक निवास किया था। इनके शासन काल में यात्रापुर में मघों का उपद्रव आरंभ होने पर नवाब ने उस अत्याचार के निवारण के लिये रूकुनउद्दीन नाम के सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में नौ–सेनाओं के एक दल को भेजा था। मगों को भागने से उस समय उपद्रव खत्म हो गया था।

त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य पठान सेनापति ममारक खाँ को चट्टग्राम की लड़ाई में पकड़कर और कारारूद्ध करने पर गौड़ेश्वर सुलतान सुलेमान ने महाराज को इस आशय का पत्र दिया था कि कारारूद्ध सेनापति ममारक खाँ को छोड़ने पर यात्रापुर तक का विशाल भू भाग त्रिपुर राजा को दे देंगे। इस पत्र के पाने के पहले ही सेनापति को चतुर्दश देवता के यहाँ बलि चढ़ा दी गई थी, अतएव गौड़ेश्वर ने अनुरोध की रक्षा नहीं हो सकी। इसके कुछ दिनों के पश्चात् महाराज विजय ने दिग्विजय के समय यात्रापुर तक अधिकार किया थी। पर, यह आधिपत्य के बहुत दिनों तक स्थायी रहने का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु उन्होने मध्य बंग तक के सभी स्थानों को लूट कर अपार धन संग्रह किया था।

रत्नपुर(50 पृष्ठ –25 पंक्ति) यह उदयपुर शहर का एक अंश विशेष है। यहाँ पर चतुर्दश देवता का प्राचीन मन्दिर, लक्ष्मीनारायण का मन्दिर एवं महादेव का मन्दिर है।

यहाँ प्रतिष्ठित शिवलिंग पीठदेवी के भैरव हैं। कहावत है, इस शिवलिंग को उठाकर अगरतला लाने की बहुत कोशिशें की गई थी। यहाँ तक कि हाथी के द्वारा खींचा गया था, तथापि मिट्टी के भीतर प्रोथित हिस्से को उठाया नहीं जा सका। इस तरह के खींचे जाने पर विग्रह उत्तर पश्चिम की ओर कुछ झुक सा गया है।

(1) **Tavernier's Travels in India Book 1**

द्विल –312

महाराज विजयमाणिक्य के शासन काल में खनाया गया विजय सागर रत्नपुर मौजे में पड़ता है। महाराज वीरेन्द्र किशोरमाणिक्य ने अपने पिता की स्मृति रक्षार्थ यहाँ का नाम राधाकिशोरपुर रखा।

रसांग(24 पृष्ठ –17 पंक्ति) यह आराकान का नामांतर है। रसांग मुसलमानों द्वारा दिया गया नाम है। पारसी भाषा में आराकान को ''आराखंग'', ''रोखाम'' और ''रोशां'' आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। प्राचीन घटककारिका एवं आवयाल के पद्मावती ग्रंथ में रोशां नाम का उल्लेख मिलता है।

रसांग या अराकान प्राचीन काल में एक स्वतन्त्र राज्य थे। आराकान इतिहास के राजोयां ग्रन्थ के अनुसार इस राज्य का दैर्ध्य, मेघना की सीमा से पेगु राज्य की सीमा तक 350 मील से भी ज्यादा था।

राजोयां ग्रंथ में है, सुप्राचीन काल में काशी राजवंश के किसी व्यक्ति ने आकर यहाँ पर राज्य स्थापन किया था। उनके परलोक गमन के पश्चात् उनके पुत्र कोमी सिंह इस राज्य के अधिकरी बने। वर्तमान चाँदाशहर के करीब रामावती या रामरी नाम के एक जगह पर उन्होने राजपाट स्थापित किया। इस वंश के ही किसी राजा के दस पुत्रों में से किसी एक के ऊपर राज्य भार अर्पित होने पर बाकी भाइयों ने नाना तरह का अत्याचार आरभ किया। प्रजा ने इनके अत्याचारों से अतिष्ठ होकर कुछएक का वध किया व शेष को भगाा दिया। उसके बाद उनके एक भगिनी ने सिंहासन पर अपना आधिपत्य विस्तार किया। उन्होने रामावती से राजपाट उठाकर आराकान में नई राजधानी की प्रतिष्ठा की।

इस स्थान पर मौरीय(मौर्य) वंशजों ने एवं चन्द्रसूर्य नाम के राजा के अधस्तन वंशज कुछ व्यक्तियों ने दीर्घकाल तक राजत्व किया था। इनके बाद शान वंश के अभ्युदय का काल आया। शान वंशजों के पश्चात् पुगान देश के अनुरथ नाम के एक राजा ने इस प्रदेश पर अधिकार स्थापित किया था।

अनुरथ ने चन्द्रवंशज एक व्यक्ति को करद –राजा के रूप में आराकान में रखकर स्वदेश लौट गए। इस चन्द्रवंश के राजा पिंसा नगरी में राजधानी की स्थापना की थी। इस करद राज्य के शेष राजा मेंविलु, अपने मंत्री के हाथों मारे गये एवं उनके द्वारा राज्य पर अधिकार कर लिये जाने पर, राजा मेंविलु के उत्तराधिकारी मेवरेवयरा पुगान ने सम्राट का आश्रय ग्रहण किया। उनके मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र लेट्यामें पुगान ने राज की सहायता से पैतृक सिंहासन को प्राप्त किया था। उनकी राजधानी पीरण नगरी में स्थापित की गई थी।

इसके पश्चात् आराकान राज हिन्दु, पूर्तगीज एवं ब्रह्मराज के साथ बहुत दफे संघर्ष में लिप्त हुए थे। वे सभी विस्तृत कहानियाँ का यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है।

द्विल –313

आराकान के मघों ने कुछ दिनों तक दस्युवृत्ति से बंगदेश के नाना स्थानों में भयंकर अशांति की शुरूआत की थी। लूटपाट, नरहत्या एवं मनुष्य चोरी आदि अत्याचारों से बंगभूमि के अनेक स्थान जनशून्य हो गये। यहाँ पर सुन्दरवन का नाम सबसे पहले आता है। पूर्तगीज जलदस्यु भी इनके साथ मिलकर अत्याचार की मात्रा में वृद्धि कर देते थे।

त्रिपुरेश्वर धन्यमाणिक्य ने चट्टग्राम के समर भूमि में बंगेश्वर होसेन शाह को पराजित करके रसांग पर आक्रमण किया था। इस यात्रा में उन्होने राम्बु, छत्रसिक आदि थानों को (सेना निवासों को) अपने कब्जे में कर लिया और रसांग के (आराकान के) कुछ अंशों को अपने अधिकार में ले लिया। वहाँ पर त्रिपुरेश्वर का एक सेना निवास स्थापित हुआ एवं एक तालाब खनाया। इस युद्ध में नियोजित त्रिपुर सेनापति ने ''रसांगमर्दन नारायण'' उपाधि प्राप्त की।

रांग रंग(20 पृष्ठ –14 पंक्ति) यह लुसाई पर्वत के अंतर्गत कुकि जाति का बासस्थान था। इस स्थान के कुकियों ने त्रिपुरा की वश्यता अस्वीकार करने पर महाराज धन्यमाणिक्य के शासन काल में सेनापति रायकाचाग ने इस प्रदेश को पुनः त्रिपुरा के अधीन कर लिया था।

रांगामाटी(3 पृष्ठ –15 पंक्ति) राजमाला प्रथम लहर के 267 पृष्ठ में इसका विवरण मिलेगा।

राम्बु(24 पृष्ठ –16 पंक्ति) यह काक्सबाजार का प्राचीन नाम है। अब भी काक्स बाजार के कुछ अंश राम्बु नाम से जाने जाते हैं। यहाँ पर एक सेना निवास (थाना) था। यह बंगाल की खाड़ी के वक्षस्थल पर बसा एक छोटा सा द्वीप है। आदिनाथ से होकर रंगून जाने के रास्ते के किनारे बसा हुआ है।

रामू में रामसीता की मूर्ति प्रतिष्ठित रहने से यह स्थान एक प्रसिद्ध तीर्थ भूमि में बदल गया है। शास्त्रीय ग्रंथों में यह स्थान ''रामक्षेत्र'' के नाम से परिचित है। साधु सन्यासी इसे 'रामटेक' या 'रामकोट' कहते हैं। यह 'रामक्षेत्र', किरात देश का सीमांत, के रूप में शास्त्र वाक्यों में वर्णन मिलता है। यथा –

तप्त कुण्डं समारभ्य रामक्षेत्रान्तकं शिवे।
किरात देशो देवेशि विन्ध्यशैलेऽबतिष्ठते।। शंक्तिसंगम तंत्र।

मघों के राजत्व के समय राम्बु (रामू) चट्टग्राम का **Subsidiary headquarter** था। महाराज धन्यमाणिक्य ने आराकान अभियान के समय इस स्थान को हस्तगत किया था।

लक्ष्या(55 पृष्ठ –15 पंक्ति) यह एक नदी का नाम है। यह नदी शीतललक्ष्या के नाम से भी जानी जाती हैं। उसका उत्तरांश बानार नाम से ख्यात है। यह नदी ब्रह्मपुत्र की एक शाखा विशेष है। लाखपुर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होकर पलास, मुड़ापारा, हाजीगंज, नवीगंज आदि स्थानों से होकर नारायण गंज और मदनगंज से बहती हुई दक्षिण में धलेश्वरी नदी के साथ आ मिली है।

द्विल –314

महाराज विजयमाणिक्य बंगाभियान के समय इसी नदी पथ से होकर गये थे एवं इस नदी में स्नान करके 'लाक्षा स्नायी' का उल्लेख कर मुद्रा का निर्माण किया था। उस सिक्के से जाना जाता है यह 1480 शकाब्द अर्थात् 1558 ई सन की धटना है।

लक्ष्मीपुर(43 पृष्ठ –12 पंक्ति)यह स्थान उदयपुर शहर के करीब गोमती नदी के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। यह स्थान बाद में तीन नामों में बट गया है(1) लक्ष्मीपति (गोमती के उत्तर तट पर), (2) हीरापुर और (3) महारानी (गोमती के दक्षिण तट पर स्थित है)। यहाँ पर बहुत से तालाब, सरोवर और महाराज विजयमाणिक्य का समाधि मंदिर है।

महाराज विजयमाणिक्य ने यहीं पर राजमहिषी लक्ष्मी महादेवी को वनवास का दण्ड दिया था। तब से इस स्थान का नाम लक्ष्मीपुर हुआ है। उदयमाणिक्य की रानी ने उस नाम के बदले हीरापुर नाम रखा था। इस बारे में राजमाला में है –

हिरापुर नाम पुर्वे लक्ष्मीपुर छिलो।	हीरापुर का नाम पहले लक्ष्मीपुर था।
उदय माणिक्य रानी हिरापुर कोइलो।।	उदय माणिक्य की रानी हीरापुर की थी।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 43पृ

अर्थात, ''पहले हीरापुर का नाम लक्ष्मीपुर था। उदयमाणिक्य की महिषी का नाम हीरावती था। उन्होने अपने नामानुसार लक्ष्मीपुर का नाम हीरापुर रखा।

इस तरह से पता चलता है कि उदयमाणिक्य की महिषी का नाम हीरावती था। उन्होने अपने नामानुसार लक्ष्मीपुर का नाम हीरापुर रखा।

लंगला(13 पृष्ठ –5 पंक्ति) यह श्रीहट्ट जिला का एक परगना था। लंलाई सम्प्रदाय के कुकियों का आवासिक स्थल होने की वजह से इसका नाम लंगला हुआ। इसे लग्ला भी कहते हैं। महाराज राज आदिधर्म फा के यज्ञ के समय याज्ञिक पाँचों ब्राह्मणों को यह स्थान दान कर दिया था। अंत में कुकियों ने इसे त्याग दिया और पहाड़ों पर चले गये। तब से लंगला ब्राह्मणों की आवास स्थली में बदल गया।

कालक्रम से वह स्थान त्रिपुरा के हाथों से निकल गया एवं मुसलमान शासन के अधीन हो गया। इस समय पारसी राजपरिवार के एक व्यक्ति संसार त्यागी की अवस्था में देश भ्रमण में निकल कर भारतवर्ष आये। वह दिल्ली नगरी में उपस्थित होने पर उस समय लोदीवंशीय सम्राट ने उसका परिचय और उनके हालात आदि से अवगत होकर उन्हें सादर ग्रहण किया। सम्राट के अकाट्य अनुरोध पर परिब्राजक ने विशाल भूभाग की जागीर को ग्रहण कर लंगला परगना के अंतर्गत पृथिमपासा गाँव में अपना वास स्थान निर्वाचन किया। उन्होने हिन्दु की कन्या से विवाह किया था। उनकी स्त्री की गर्भजात संतान से पृथिमपासा की वर्तमान जमींदारवंश की धारा चली आ रही थी। इस वंश के स्वनामधन्य जमींदार परलोकगत मौलवी अली अमजद खाँ साहब का नाम विशेष रूप से उल्लेख है। इस समय उस खाँ साहब के पुत्र श्रीयुक्त मौलवी अली हायदर खाँ और श्रीयुक्त मौलवी अली असगर खाँ लंगला जमींदारी के अधिकारी हैं (आज 2000 ई. से 75 साल पहले की बात है)।

द्विल –315

लंगला प्रदेश मुसलमानों के हाथों में चले जाने के पश्चात् त्रिपुरेश्वर विजयमाणिक्य ने उस पर पुनः अपना अधिकार प्रतिष्ठित किया था, किन्तु काल के कुटिल आवर्तन के फलस्वरूप पुनः वह मुसलमानों हाथों में और अंत में अंग्रेजों के साम्राज्य के समा गया था।

लोहित्य(54 पृष्ठ –20 पंक्ति) यह ब्रह्मपुत्र नदी का नामांतर है। महाराज विजयमाणिक्य ने बंगाभियान के समय यहाँ स्नान दानादि पुण्य कार्य किया था।

श्रीहट्ट(43 पृष्ठ –26 पंक्ति) श्रीहट्ट नाम बहुत प्राचीन है। इस नाम का प्रकृत कारण निर्णय कर दुःसाहय है। देवी पुराण में 'श्रीहट्ट वासिनी' का उल्लेख मिलता है। तंत्र ग्रंथ शिव के शत नामों में ''श्रीहट्ट के श्रीहट्टकेश्वरः'' नाम का उल्लेख मिलता है। भाटेरा के ताम्र शासन में ''श्रीहट्टनाथ'' नाम उत्कीर्ण है। इसके द्वारा श्रीहट्ट का प्राचीनत्व प्रतिपादित होता हैं। सुहृद्वर श्रीयुत अच्युत चरण चौधरी तत्वनिधि महाशय के अनुसार देव देवी के नामानुसार श्रीहट्ट नगरी का नाम होना संभव है। परवर्ती युग में समग्र जिला का ही नाम श्रीहट्ट से परिचित हो गया।(1) शस्य –श्यामला श्रीहट्ट प्रदेश की भूमि 'लक्ष्मी का हाट (लक्ष्मी का बाजार) इस अर्थ के अनुसार भी इस स्थान का यह नाम होना भी विचित्र नहीं है। ईस्वी सदी सातवीं में चीनी परिब्राजक हियेन सियां ने ''शिलिचटल'' नाम का उल्लेख किया है। किसी किसी व्यक्ति के अनुसार इस नाम द्वारा श्रीहट्ट को ही अभीभूत किया गया है। फिर कुछ लोगों के अनुसार यह चट्टग्राम का नामांतर है। इस समय वैषम्य का समाधान करना कठिन है।

यह प्रदेश पहले त्रिपुरा राज्य के अधीन था। यह भूभाग 1) गौड़ या श्रीहट्ट, 2) लाऊर, 3) जयंतिया इन तीन राज्यों में विभक्त था। इन सभी राज्यों के अधिकारी गण 'त्रिपुरा के सामंत' राज में गण थे। मुसलमानों के शासन काल में यह राज्य कभी मुसलमानों के तो कभी त्रिपुरा के अधीन होता रहा। महाराज विजयमाणिक्य ने इस अंचल को हस्तगत कर श्रीहट्ट में एक सेना निवास (थाना) स्थापित किया था। सेनापति काला नाजिर को इस थाना का अधिनायक नियुक्त किया था।

सराइल(25 पृष्ठ –8 पंक्ति) इस समय (आज 2000 ई. से 75 साल पहले) यह स्थान त्रिपुरा के एक परगना में परिणत हुआ है। पहले त्रिपुरा राज्य के अंतर्गत था। होसेन शाह की सेनाओं ने सराइल के पथ से त्रिपुरा आक्रमण के निमित्त यात्रा की थी। यह महाराज धन्यमाणिक्य के समय की घटना है। महाराज अमरमाणिक्य के शासन काल में उनके पुत्र राजधर देव द्वारा यह स्थान प्रथम आबाद हुआ। इसके पश्चात् त्रिपुरा के सामंत ईशा खाँ मसनद अली इस प्रदेश के शासक बने थे। सम्राट अकबर के शासन काल में सराइल के कुछ अंश ''सतर खण्डल'' नाम की सरकार श्रीहट्ट के अंतर्गत हुई थी। बाकी अंश त्रिपुरा के शासनाधीन रह गया।

---

(1) श्रीहट्ट का इतिवृत –उत्तरांश, तृतीय भाग प्रथम खण्ड।

द्विल –316

बाद में उसका समग्र भाग ही क्रमशः मुगलों के अधीन हो गया। उस समय ईशा खाँ मसनद अली के वंशधरगण इस अंचल के जमींदार थे। बाद में उनके वंशज इसके जमींदार बने।

पहले सराइल परगना श्रीहट्ट चाकला के अधीन होने पर भी सम्राट औरंगजेब के शासन काल में बंगाल के नवाब सायेस्ता खाँ द्वारा यह अंचल ढाका के निजाम के अधीन एवं नावरामहाल के अधीन हुआ(2)। तीतास नदी के पूर्व की ओर का भूखण्ड तब भी त्रिपुरेश्वर के अधीन था, यह स्थान महाराज धर्ममाणिक्य (द्वितीय) ने दीवान नूरमहमूद के पुत्र दीवान नाछिरमहमूद को दान कर दिया। इस दान के उपलक्ष्य में त्रिपुरेश्वर ने जिस अलौकिक उदारता का प्रदर्शन किया था वह अगली लहर में वर्णना की जाएगी।

इसके पश्चात् यह परगना उत्तरोत्तर नाना व्यक्तियों के हाथों से गुजरता हुआ इस समय (2000 ई. से 75 साल पहले) उसका अधिकांश स्व. आशुतोषनाथराय महाशय के वंशजों हाथों में आया है।

सा‍म्बुल(20 पृष्ठ –12 पंक्ति) इस स्थान का विवरण राजमाला प्रथम लहर के 253 पृष्ठ में प्रदान किया गया है

सुबड़ाई खुंग(43 पृष्ठ –2 पंक्ति) यह उनकोटि तीर्थ का और एक नाम है। महाराज सुबड़ाई (त्रिलोचन) द्वारा यहाँ पर मंदिर का निर्माण हुआ था, इसलिए इसका और एक नाम सुबड़ाई खुंग हुआ है। राजमाला में है –

तार पुत्र कुमार परेते राजा होय।।	उसके बाद राजा हुए उनके पुत्र कुमार।।
किरात अलये आछे छाम्बुल नगर।	किरात देश में है छाम्बुल एक नगर।
सेई राज्ये गियाछिल शिव भक्ति तर।।	उस राज्य में गया था शिव भक्ति तर।।
सुबड़ाई खुंग नाम महादेव स्थान।	सुबड़ाई खुंग नाम है महादेव स्थान।
करिल प्रनति भक्ति सेई भाग्यबान।।	किया प्रणति भक्ति वह भाग्यवान।।
राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 42–43पृ	राजमाला प्रल तैदाक्षिण खण्ड 42–43पृ

अर्थात, उनके पुत्र बाद में राजा हुए। किरातो के देश में छाम्बुल नगर है। शिव भक्ति के लिये वहाँ पर गया था। वहाँ पर सुबड़ाई खुंग नाम का एक महादेव स्थान है। उस भाग्यवान ने वहाँ जाकर प्रणाम किया।''

संस्कृतमाला राजमाला में भी इस स्थान का उल्लेख है –

किरात राज्ये स नृपश्छाम्बुल नगरांतरे।

शिवलिंगं समाद्राक्षीत् सुबड़ाई कृते मठे आदि।

सुवर्णग्राम(44 पृष्ठ –17 पंक्ति) नामान्तर सोनारग्राम (सोने का गाँव)। इस समय यह स्थान ''पानाम'' नाम से जाना जाता है। प्रवाद के अनुसार, किसी त्रिपुरेश्वर ने इस स्थान पर बहुत से स्वर्ण का दान किया था (सुवर्ण की वर्षा)। इसलिए इसका नाम सुवर्णग्राम हुआ। यह स्थान ब्रह्मपुत्र के प्राचीन गढ़ढे से दो मील की दूरी पर है।

---

(2) नावरामहाल –द्वितीय आलमगीर सम्राट औरंगजेब के शासन काल में मघ और पूर्तगीज जल दस्युओं का दमन करने के लिये बंगाल के शासनकर्ता सायेस्ता खाँ ने खिजिरपुर (नारायण गंज का उत्तरांश) में 'नावरा' विभाग की स्थापना की। इस समरतटी विभाग के व्यय निर्वाह के लिये 112 महाल का राजस्व ''उमले नावरा'' नाम से परिचित हुआ। उस समय सराइल के जमीदार 40 कोष नौका, युद्ध के समय प्रदान करने पर मजबूर थे।

द्विल –317
यहाँ पर पहले हिन्दु राजाओं ने, बाद में पठानों की राजधानी प्रतिष्ठित की थी। इस नगरी को उस समय नाना उपायों से सुरक्षित रखा गया था।

सुवर्णग्राम एक समय हर विषय में समृद्ध था। वहाँ पर बहुत से धनवान, साधु, विद्वान, राजनैतिक आदि नाना श्रेणी के प्रसिद्ध लोगों का निवास था। शिल्प और वाणिज्य के निमित्त उन दिनों सुवर्णग्राम ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। ई सन चौदहवीं सदी में अफ्रीका देश के परिव्राजक इबन बतुता ने यहाँ बन्दर यावा द्वीप की वाणिज्य नौका को देखा था।(1) इससे इस स्थान के वाणिज्य वैभव का परिचय मिलता है। सुवर्णग्राम के कपास वस्त्र के बारे में प्रसिद्ध परिव्राजक राल्फ फिच ने विशेष रूप से उल्लेख किया है। नवाब जाफर अली खाँ ने सम्राट औरंगजेब को जो सब उत्कृष्ठ वस्त्रादि वार्षिक सलामी के तौर पर दिये थे, उसमें सफेद मसलीन 100 और सफेद सरबन्द 20, सोनार गाँव की ओर से हर साल देते थे। इसके हर मसलीन का मूल्य दो सौ रूपये और हर सरबन्द का मूल्य अस्सी रूपये निर्धारित था(2)। कृषि सम्पदा में भी सुवर्ण गाँव विशेष सम्पन्न था। यहाँ का धान और चावल भारत के बाहर भी भेजा जाता था।

यह स्थान त्रिपुरा के हस्तच्युत और मुसलमानों के करतलगत(हस्तगत) होने के पश्चात् महाराज विजयमाणिक्य ने इसे जीतकर उस क्षति की आपूर्ति की थी। इसके पश्चात् महाराज कृष्णमाणिक्य के शासन काल में समसेर गाजी द्वारा प्रतिष्ठित राजा लक्ष्मणमाणिक्य(नामांतर लवंग ठाकुर) राज्य भ्रष्ट और विताड़ित होकर सुवर्णग्राम में जाकर रहने लगे थे। उनकी दखल की भूमि अब भी राजबाड़ी (राजा का घाट) के नाम से परिचित है।

सोनामुड़ा(23 पृष्ठ –5 पंक्ति) यह स्थान कुमिल्ला नगरी से पूर्व की ओर 6 मील की दूरी पर गोमती नदी के उत्तर किनारे स्थित है। यहाँ त्रिपुरेश्वर का एक सेनानिवास था। उस सेना निवास का नाम था, ''साभारमुड़ागढ़''(3)। यह स्थान उदयपुर राजधानी से पश्चिम की ओर है। इस समय यह त्रिपुर राज्य का एक महकमा कार्यालय, जेल, अस्पताल, उच्च अंग्रेजी स्कूल आदि हैं। सोनामुड़ा नगरी के पश्चिम की ओर एक उच्च और सुदीर्घ मिट्टी की मेड़ और उसके बाहर परिखा खनाया गया मिलता है। उसका नाम है 'गाजीर कोट'। शत्रु का गतिरोध करने के उद्देश्य से इसका निर्माण हुआ था।

---

(1) **Ibn Batuta - Translation P. P. 194 - 195**

(2) ढ़ाका का इतिहास –प्रथम खण्ड, 171 पृष्ठ।

(3) महाराज नरेन्द्रमाणिक्य मुसलमानों के आक्रमण की आशंका से चितिंत हो पड़ने पर मंत्रियों ने उन्हें प्रबोध वाक्यों से परामर्श दिया था –

संराईसेर गढ़ धरिबा साबधाने।
राजनगर साभाड़ मुड़ा राखिबा जतने।। चम्पक विजय।
सोनामुड़ा का 'बनकर घाट' आजकल 'साभारमुड़ा घाट' नाम से पुकारा जाता है।

द्विल –318

महाराज धन्यमाणिक्य ने सोनामुड़ा के करीब गोमती नदी से बाँध देकर क्रमशः दो बार पठान वाहिनी को पानी में डुबोकर मारा था। इसका पूर्ण विवरण पहले प्रदान किया गया है।

हीरापुर(39 पृष्ठ –2 पंक्ति) इस स्थान का संक्षिप्त विवरण राजमाला प्रथम लहर के 237 पृष्ठ में मिलेगा।

महाराज विजयमाणिक्य के राज्य प्राप्ति के पहले सेनापतियों ने यहाँ उन्हें कारारूद्ध अवस्था में रखा था। विजयमाणिक्य ने राजा होकर अपनी महिषी लक्ष्मी महादेवी को यहाँ वनवास में भेजा था। यह स्थान उदयपुर से दो मील की दूरी पर स्थित है।

हेड़म्ब(17 पृष्ठ –11 पंक्ति) इस स्थान का विवरण राजमाला प्रथम लहर के 273 पृष्ठ पर दिया गया है।

होमनाबाद(39 पृष्ठ –10 पंक्ति) यह त्रिपुरा का एक परगना रहा है। इस समय (2000 ई. से 75 साल पहले) इस परगने का कुछ अंश नोयाखाली जिले में चला गया है। जब यह त्रिपुर राज्य में था, महाराज विजयमाणिक्य की महिषी महारानी पुण्यवती ने होमनाबाद की बहुत सी भूमि ब्राह्मणों को दान में दे दी थी। इस बारे में राजमाला में है –

विजयमाणिक्य नाम होइलो नरपति।	विजयमाणिक्य नाम से नृपति हुआ।
ताहान महादेवी नाम छिलो पुण्यवति।।	उनकी महादेवी का नाम पुण्यवती था।।
x x x x	x x x x
होमनाबादे द्विजे दिलो बहुतर ग्राम।	होमनाबाद के द्विज को बहुत सारे गाँव दिये।
तिषीनाते दिलो ग्राम ब्राह्मण अनुपाम।।	अनुपम ब्राह्मण को "तिषिना" में गाँव दिया।।
राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ	राजमाला द्विल विजयमाणिक्य खण्ड 39पृ

अर्थात, "होमनाबाद में बहुत से गाँवों को द्विजों को दान दिया। तिषिना में ब्राह्मणों की योग्यतानुसार ग्रामों को दान किया।"

होमनाबाद त्रिपुरा के सामंत राज्यों में गण्य था। उस समय कायस्थ जाति "दे" वे वंशज इस परगना के अधिकारी थे। वे "राजा" उपाधि ग्रहण करते थे। यह प्रदेश दे वंश के दौहित्र सूत्र से "दास" वंशजों के हस्तगत हुआ।

मुसलमान शासन काल में दास वंशजों की जगह मुसमलान परिवारों का आधिपत्य स्थापित हुआ। मुगल सम्राट शाह आलम (बहादुर शाह) के समय इस परिवर्तन की सूचना हुई। उन दिनों कररानी वंशज अमीर मिर्जा अब्रु खाँ इस परगना की जमींदारी के मालिक बने। बाद के अधिकरियों में नवाब साहिबा फयजन्नेछा चौधुरानी, नवाब इउछफ अली चौधरी, सैयद बसरत अली चौधरी, चौहान छत्रीय वंशज तिलकचन्द्र सिंह और साहा जातीय भजकृष्ण राय चौधरी का नाम उल्लेखयोग्य है। यह स्थान अब भी (2000 ई. से 75 साल पहले) उनके ही उत्तराधिकारी के हाथों में है।

द्विल –319

अनुक्रमणिका

(घ)

राजमाला प्रथम लहर सम्बन्ध में कुछ अभिमत
आनन्द बाजार पत्रिका
24 श्रावण — 1335

श्री राजमाला — (त्रिपुरा के राजन्य वर्गो का इतिवृत्त) प्रथम लहर, पण्डितप्रवर बाणेश्वर और शुक्रेश्वर विरचित। श्री कालीप्रसन्न सेन विद्याभूषण द्वारा सम्पादित।

प्रथम ग्रन्थ का प्रच्छदपट, कागज, मुद्रन, बंधान की प्रशंसा करते हैं। इतना सुन्दर मुद्रण और बांधा पुस्तक, बंगला भाषा में बहुत ही कम है। त्रिपुरा के राज्य—सरकार के खर्चा में राजा के घर से प्रकाशित ग्रन्थ जैसे सुदृश्य और सुमुद्रित होना था, ऐसे ही हुआ है। कुछ कुछ दुर्लभ और प्राचीन चित्र एंव मानचित्र इत्यादि इसमें सन्निविष्ट है। उस काल में इस देश में आधुनिक इतिहास लिखने की प्रथा प्रचलित नहीं था। उस समय भी कई राजवंश से इतिवृत्त रचित हुई थी। उसमे से कश्मीर की ''राजतरंगिनि'', महीशुर की ''राजाबली कथा'', त्रिपुरा की ''राजरत्नाकर'', ''राजमाला'' इत्यादि प्रसिद्ध है। आलोच्य ग्रन्थ त्रिपुरा की 'राजमाला' बंगला कविता में लगभग 500 वर्ष पूर्व में रचित हुआ था। उसमें त्रिपुरा के राजगणों का इतिवृत्त है। वह त्रिपुरा के धारावाहिक इतिहास ना होने पर भी प्राचीन त्रिपुरा तथा प्राचीन बंगला के बहुत ऐतिहासिक तथ्य इसमे मिलते है। अतएव इस ग्रन्थ के ऐतिहासिक मूल्य बहुत ज्यादा, यह बोल सकते हैं। 'राजमाला' सर्वशुद्ध छः खण्ड या लहर में विभक्त है। उसमे से वर्तमान ग्रन्थ प्रथम लहर मात्र प्रदत्त हुई है। उम्मीद करता हूं और लहरें भी कालीप्रसन्न बाबू के सम्पादन में प्रकाशित होकर बंगला साहित्य को गौरवान्वित करेगीं।

कालीप्रसन्न बाबू ने इस ग्रन्थ सम्पादन में जो विपुल परिश्रम किया है, वह पुस्तक पढ़ने से पता चलता है। त्रिपुरा के राजा एवं राजकर्मचारियों ने भी इस ग्रन्थ सम्पादन में बहुत ही मदद किया है।

कालीप्रसन्न बाबू ने इस ग्रन्थ सम्पादन में आधुनिक विज्ञान—सम्मत ऐतिहासिक रीति को अवलम्बन किया है। इस ग्रन्थ के ऐतिहासिक तथ्य के सम्बन्ध में विभिन्न पंडितगणों के मतामतों की आलोचना करके स्वयं निज सिद्धान्त प्रतिष्ठित किए हैं। समसामयिक इतिहास और शिलालिपि इत्यादि से वह प्रभूत मदद लिए हैं। पद्य में रचित मूल ग्रन्थ की पादटीका में प्राचीनशब्दादि और उनकी ऐतिहासिक व्याख्या प्रदत्त हुई है, उसके बाद 'मध्यमणि' के सम्पादक की विस्तृत टीका है। इस टीका में

त्रिपुरा के प्राचीन भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय व्यापार में पांडित्यपूर्ण आलोचना की है। यह बहुमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ जो बंगला भाषा के गौरवस्वरूप, बोलकर गण्य होगा, उसमें संदेह नहीं है।

F O R E W O R D

Sunday – Dec. 25, 1927

SHREE RAJAMALA (Vol. 1) - Edited by Sj. Kaliprasanna Sen Vidhyabhusan, Published by the "Rajmala Karjyalaya", Agartala, Tripura State, PP 316.

The illustrious, royal family of Tripura is to be congratulated on the splended publication under royal auspicies which has come to our hands - the first volume of the Rajmala or the chronicle of the princes of Tripura. Regeneration of our nation would have been much easier if we could call back the old traditions so rudely shattered by foreign despoilers, but without which, all that we build is built on sand. These traditions –the vehicle of our Indian Culture – may be rescued only if the history of our country can be restored. It is a great pleasure therefore to see that under the enlightened patronage of the Royal family of Tripura Mr. Kaliprasanna Sen Vidyabhusan has edited the first section of the ancient chronicle which contains the history of this family during the last five centuries. The printing and make-up of the book leaves nothing to be desired. The book is elegantly and artistically bound and profusely illustrated. The author's extent of knowledge is simply astounding. he has handled the multifarious facts with astonishing adroitness but there is a serious drawback which considerably diminishes the value of his work: his historical sanity is sorely at a discount. The first and foremost duty of a historian is to keep an open mind. This our author has not been able to do. A superstitious awe of the *Shastras* has overshadowed his commonsense and some of his arguments are extremely fantastic and puerile. He argues that persons mentioned in the Rigveda need not have lived previously to the time of the composition of this work because it is direct revelation and therefore preceded all men and matter. He has implicit faith in the Puranas and does not shrink even from a Kalpantara theory to synchronies the conflicting data in them and most disconcerting of all is his pious indignation at the unbelievers who have the impudence to question the correctness of the statement of the *Shastras* that people in the Golden age used to enjoy a deathless life of millions of years. Yet all this deplorable narrowness of vision hardly affects the intrinsic merit of the work. Coming to the historical period our author is master of himself. Here he is seen at his best criticising with critical acumen the absurd theories of Indian and English

writers supplementing the "chronicle of kings" with various data gleaned from multifarious sources which help the reader to visualise a state of real happiness and glory and with rare industry collecting facts and figures to prove or disprove a theory. It may reasonably be hoped that the other volumes too would be on a par with the present one and perhaps without the needless speculations on the Puranas which even though correct can accomplish but little. Lastly we have to say that the language of the chronicle does not justify the age assigned to it by the learned author - the beginning of the fifteen century. The Bengali language of that time as known to us from other sources is quite different, perhaps a complete Resorgmento took place not very long ago.

- - - - - - - - - - - -

THE STATESMAN :- Sunday, July 8, 1928 .

SHREE RAJAMALA PART I.

Edited by Kali Prasanna Sen Vidyabhusan, and published under the authority of the Tripura State.

This is a history of the kings of Tripura State as originally written by Pundit Baneshwar and Shukreshwar. The present editor has resented the original text by collating five different old Mss. found at Tipperah and he has enhanced the value of the book by giving the modern meaning of the many of the obsolete Bengali words found in the text. The most valuable portion of the book, however, is his own foreword. The result of the extensive research their embodied will enable readers to form a complete idea about the Government of an Indian State in ancient times. Several maps and a number of illustrations add to the book's merits; it is well produced. and is a valuable contribution to the history of ancient India. The original text is an interesting specimen of old Bengali Poetry.

मानसी और मर्म्मवाणी

वैशाख, 1335

श्रीराजमाला

(त्रिपुर –राजान्यवर्गों की इतिवृत्त) प्रथम लहर, सटीक और सचित्र। पंडितप्रवर बाणेश्वर और शुक्रेश्वर विरचित और श्रीकालीप्रसन्नसेन विद्याभूषण द्वारा सम्पादित। त्रिपुर राज्य की राजधानी अगरतला से सम्पादक द्वारा प्रकाशित। मूल्य का उल्लेख नहीं है, मालूम होता है, कि बेचने के लिए नहीं है। रॉयल साइज। मुद्रण, कागज और बन्धन उत्कृष्ट है। सम्पादक का निवेदन 6 पृष्ठ, प्रमाण– पंजिका

4 पृष्ठ, पूर्वाभाष 94 पृष्ठ, सूची 6 पृष्ठ, मूलग्रन्थ–71 पृष्ठ। उसके बाद विस्तृत टीका 296 पृष्ठ। सर्वशेष में 20 पृष्ठ व्यपि अनुक्रमणिका भी प्रदत्त हुई है। विराट राजसिक व्यापार।

त्रिपुर राज्य और त्रिपुर–राजवंश बंगला के लिए बहुत ही मूल्यवान हैं। वीरचन्द्र, राधाकिशोर, विरेन्द्रकिशोर जैसे महान व्यक्तियों का जिस वंश में जन्म हुआ है, उनका इतिहास जानने के लिए बंगालियों के प्राण में आग्रह होना स्वाभाविक है। इस पर्यन्त त्रिपुरा का इतिहास जानने के लिए अनुसन्धित्सुर 1850 इस्वी की बंगिय एशियाटिक –सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित पादरी लंग साहब द्वारा राजमाला के सार संकलन एवं परलोकगत ऐतिहासिक कैलाशचन्द्र सिंह द्वारा उनके विवृति 'राजमाला' छोड़कर और उपाय नहीं था। श्रीयुक्त चन्द्रोदय, विद्याविनोद संकलित सम्पूर्ण राजमाला का जो कुछ खण्ड मुद्रित हुआ था, उसका दो एक खण्ड कदाचित् किसी–किसी भाग्यवान के हाथ में देखने को मिलता था। बहुत बार राजमाला का अच्छा एक संस्करण बाहर करने की चेष्टा त्रिपुर राजसरकार से हुआ है, लेकिन हर बार हर प्रकार के बाधा विघ्न आने से वह चेष्टा व्यर्थ हुई है। कुछ दिन पहले बहुत जोरों से सुना गया है कि कालिकाता के बहुत बड़े एक अध्यापक के हाथ में राजमाला सम्पादन का भार दिया हुआ है, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ।

कालीप्रसन्नबाबू ने राजमाला के प्रथम खण्ड का बहुत ही चमत्कार से सम्पादन किया है। चन्द्रवंशिय त्रिपुर राजगणों का इतिवृत्त, शुरू से ही दशाश्ववाहित श्वेतरथ में भगवान चन्द्रमा का अद्भुत चित्र प्रदान से कालीप्रसन्नबाबू को रक्षा नहीं मिला है। * * * लेकिन इतिहास की मर्यादा जिसमें खिन्न न हो, उसके लिए अगरतला में बैठकर, जितना हो सकता है कालीप्रसन्नबाबू ने वह चेष्टा की है। वह जानकर बहुत ही आन्द हुआ है। मुसलमान युग के इतिहास सहित त्रिपुरा का इतिहास जिसमें जुड़ा हुआ है, उस स्थान में अत्यन्त सतर्कता के साथ चारों ओर देख–सुनकर कालिप्रसन्नबाबू को पादक्षेप करने होंगें, यशोधर के इतिहास के अति सूक्ष्म–सूक्ष्म घटनाओं का विवरण मिर्ज्जा नथन के बाहाई–ए–स्तान में है, राजमाला में उनका बिन्दुविसर्ग भी नहीं है। यशोधर का इतिहास लिखने से पहले बाहाई–ए–स्तान छोड़ने से नहीं चलेगा।

कालीप्रसन्नबाबू ने जितना भी किया है, उनके लिए वह धन्यवाद के पात्र है। लेकिन राजमाला का मात्र एक लहर बाहर हुआ है और अन्य लहरों के लिये हमलोग उद्ग्रीव है।

दुर्भाग्यकर्म से राजमाला की एक खॅाटि **(Original)** पुराना पुस्तक नहीं मिला। जिस पुस्तक को देखकर राजमाला सम्पादित हुई है, भाषा देखकर उनको बहुत ही आधुनिक लगते हैं। 1500 शताब्दि में रचित पुस्तक के कम से कम 300 सालो के पुराना पुस्तक मिलने से मन में खुशी होना था। अवलम्बित पुस्तको का विवरण कालिप्रसन्नबाबू ने कहीं भी दिया नहीं है – पुस्तकों की उम्र, उनका भी उल्लेख नहीं

किया है। **चन्द्रोदय विद्याविनोद की मुद्रित पुस्तक ही दुबारा मुद्रित तो नहीं कर रहे हैं ?**

पहले राजाओं के राज्यारोहण साल उनके मुद्रा से निर्णित हो सकते है, लेकिन उनके मुद्रा जितना भी कालिप्रसन्नबाबू हस्तगत कर सकते हैं, सभी की **Collotyle** फोटो देने से ठीक है। राजमाला में प्रदत्त राज्यारोहण साल हर जगह में निर्भर योग्य नहीं है ।

भारतवर्ष

चैत्र, 1334 सन

श्री राजमाला। – श्री कालीप्रसन्न सेन विद्याभूषण सम्पादित। मूल्य का उल्लेख नहीं है। भारत–विश्रुत सुप्राचीन त्रिपुर –राजवंशो की पुरावृत्त यह राजमाला है। काश्मीर की – ''राजतरगिंणी'' महीशुर के ''राजाबली'' और यह राजमाला एक ही है। बहुत दिनों से सुन रहे है किराजमाला की एक सुमार्जित संस्करण प्रकाशित होगा, बहुत से सुधी पण्डित व्यक्ति इस सम्पादन कार्य में नियुक्त हुए थे, लेकिन इस सुदीर्धकाल में भी राजमाला की यह संस्करण देखने का सौभाग्य प्राप्त हम लोगों को नहीं हुआ। सम्प्रति हमारे श्रद्धेय बन्धु – श्रीयुक्त कालिप्रसन्न सेन महाशय ने इस राजमाला के प्रथम लहर को प्रकाशित किया। ऐसे सुबृहत् राजमाला का सम्पूर्ण परिचय प्रदान करना यहां संम्भव नहीं है, हमलोग बता सकते है, इस पुस्तक सम्पादन में यत्न चेष्टा ओर अर्थव्यय की कुछ त्रुटि नहीं हुई है। प्रथम लहर सम्पादन में सम्पादक महाशय को संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला अनेक पुस्तको के साथ तथ्य मिलाना ओर बहुत अनुसंधान करना पड़ा। स्वर्गीय महाराज वीरचन्द्रमाणिक्य बहादुर त्रिपुर –इतिहास के उद्धार के लिए विशेष प्रयासि थे। उनके आज जीवित होने से वह जो आंनदित होते, वह बोला नहीं जा सकता। जो भी हो वर्तमान महाराज बहादुर, पिता के असम्पूर्ण कार्य को सम्पूर्ण करने के लिए अग्रसर हुए है, यह अत्यन्त सुख की बात है। जो लोग इतिहास पठन–पाठन करते हैं, वे लोग इस राजमाला को अभिनदिंत करेगें ही, साधारण पाठकगण भी यह पाठ करके बहुत से ऐतिहासिक तत्वों से अवगत हो सकते हैं। पुस्तक का मुद्रण, कागज, बांधन और चित्र इत्यादि त्रिपुर राजवंश के उपयुक्त है।

चुण्टा प्रकाश
भाद्र, 1338 त्रिपुराब्द

श्रीराजमाला प्रथम लहर – श्रीयुक्त कालीप्रसन्न सेन विद्याभूषण द्वारा सम्पादित और स्वाधीन त्रिपुरा के राजधानी अगरतला में राजमाला कार्यालय से प्रकाशित। यह विराट ग्रन्थ संकलन, सम्पादन, मुद्रण और प्रच्छदपट बन्धन –हर विषय में राजषिक भाव, सम्पूर्ण दैदिप्यमान है, श्रमसंकोच या व्ययसंकोच निबधंन कोइ भी विषय में बिंदु मात्र भी त्रुटि नहीं हुई है। विद्याभूषण महाशय ने ग्रन्थ को हमें उपहार प्रदान करके गौरवान्नित किया है। उनके जैसे देश विश्रुत साहित्यक और ऐतिहासिक तत्वानुसंधान निरत पण्डित व्यक्ति द्वारा संपादित ग्रन्थ की समालोचना का सुयोग लाभ करना अत्यन्त आंनददायक है, इसमें संदेह नहीं है। मूल राजमाला बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। यह संस्कृत भाषा में लिखित है। "राजरत्नाकर" नाम से त्रिपुर राजवंश की ओर एक धारावाहिक संस्कृत इतिहास है। इन दो ग्रन्थों का मर्म, पण्डित प्रवर शुक्रेश्वर ओर बाणेश्वर शर्मा एवं चतांइ दुर्लभेन्द्र नारायण द्वारा पयार छन्द(पद्य) में बांगला राजमाला को प्रकाश किया गया हैं। श्रीराजमाला में वह पाठोद्धार किया है। विद्याभूषण महाशय ने 5 पुरातन पाण्डुलिपि मिलाकर विशेष सर्तकता के साथ राजमाला का पाठोद्धार किया है। जिस स्थान से पाठान्तर मिले है, वह पादटीका में सन्निवेशपूर्वक उनके सम्बन्ध में उन्होने स्वयं वक्तव्य को लिपिबद्ध किए हैं। इनको छोड़कर बहुत से प्रयोजनीय विवरण मूल के पश्चातवर्ती टीका में सन्निविष्ट करके ग्रन्थ को एक रत्न खान में परिणत किया है। राजरत्नाकर, कृष्णमाला, श्रेणीमाला, चम्पकविजय, गाजिनामा इत्यादि बहुत से हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ, शिलालिपि, ताम्रशासन और विभिन्न युगों की मुद्रादियों की सहायता से पुरातत्व संग्रह के निमित्त उन्होनें कैसा कठोर परिश्रम किया है, पुस्तक के हर पृष्ठ में उनका प्रमाण मिलता है। ऐसे ही हमारे प्राचीन इतिहास विस्मृति की अतल तल में निमज्जित है। उनके उपर श्रमकुण्ठ सौखिन गवेसनाकारीगण ने भी चारो तरफ दृष्टिपात न करके ऐसे विभिन्न मत लिपिबद्ध किए है, जिनके उपर कोई भित्ति स्थापित नहीं किया जा सकता। विद्याभूषण महाशय प्रमाण और युक्ति बल से उन सारे विरूद्ध मत खण्डन करके प्रकृत सत्य आविष्कार की चेष्टा की है। राजमाला प्रधान भाग से त्रिपुर राजगणों की विवरण, प्रसंग क्रम में राज्य की इतिवृत्त मुलक जो भी विषय आया है, सम्पादक महाशय हर कोइ अत्यन्त दक्षता के साथ आलोचना किए है। इसलिए इतिवृत्त के हिसाब में भी यह अत्यन्त मूल्यवान ग्रन्थ हुआ है, वह बोलना बेहतर होगा।

बंगला राजमाला 6 भाग में रचित हुआ था, उनके हर एक में एक–एक लहर बताए गये है। आलोच्य ग्रन्थ में केवलमात्र प्रथम लहर प्रकाशित हुआ है। हम उम्मीद करते है कि पण्डित महाशय यथासम्भव जल्दी बाकी के 5 लहर प्रकाश करके

बहुत दिनो का अभाव पूर्ण करेगें। यह सम्पादन के अनुष्ठान स्वर्गीय महाराज बीरचन्द्रमाणिक्य बहादुर की आमल में आरम्भ हुआ था, लेकिन कार्यो में हस्तक्षेप करने का सुयोग नहीं मिला था। उनके बाद महाराजा राधाकिशोरमाणिक्य बहादुर और बिरेन्द्र किशोरमाणिक्य बहादुर के समय में भी इस संबन्ध में बहुत चेष्टा, चरित्र और अर्थहानि हुई है। किसी किसी कृतबिद्ध व्यक्ति ने निज निज तत्वानुसन्धितसार के आकांक्षा प्रदर्शनपूर्वक स्वर्गीय महाराजों को विमोहित करके केवल राजकोष की अर्थहानि किया है, ऐसा ही नहीं है, विभिन्न कार्य में भी विध्न सृष्टि किया है, ये सुनने को मिलता है। यह राजमाला पाने के लिए बहुवर्ष से देशवाशी उत्कन्ठित थे, पण्डित कालिप्रसन्न विद्याभूषण महाशय ने वह देशवासीयों के सामने उपस्थित किया है। देशवासियों के शुभाशीर्वाद उनका मस्तक पर वर्षित कर उनको चिरयशस्वि कर दिया है।

इस विशाल ग्रन्थ का कोई मूल्य लिखा नहीं है। दानशील त्रिपुराधिपति की पृष्ठ पोषकता में प्रकाशित ग्रन्थ बिना मूल्य में वितरित होगें, इनमे आश्चर्य की कोई बात नही, लेकिन सर्वसाधारण के लिए ग्रन्थ को बिना मूल्य में पाने का क्या उपाय है, वह सम्पादक महाशय कह सकते हैं। हम जानते है सौ–सौ त्रिपुरावासि राजमाला पाने के लिए आकांक्षा किए हुए है। उनके आकांक्षा कैसे चरितार्थ होगें।

———————

शिलालिपि शिलालेख
हिउयेन सियां (हियेन सां) ह्वेन सांग नाथू ला दर्रा से आया
फ़्हयान खैबर दर्रा से आया
यह किताब 1927 ई0 में छपी है।
निर्दशन निदर्शन
रसांग
पारिखा का अर्थ खाई

कलांक या कमलाक	कुमिल्ला का प्राचीन नाम।
रसांग	आराकान का प्राचीन नाम। राक्षियां(आराकान)
राम्बु	काक्स बाजार का प्राचीन नाम।
लोहित्य/लौहित्य	ब्रह्मपुत्र नदी का नामांतर

लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के पश्चिम भाग में गंगा है। पूर्व भाग में यमुना और सरस्वती है।

गौड़	श्रीहट्ट का नामांतर
त्रिहुत	मिथिला का नामांतर
प्रतिष्ठितपुर	काशी या गौहाटी
प्रतिष्ठित नगर	काशी या गौहाटी

सुवर्णग्राम (ध्वजघाट विजय)
मग/मघ दोनो ठीक हैं।
रांगामाटी(उदयपुर) रांगामाटी –त्रिपुरा की राजधानी उदयपुर का प्राचीन नाम रांगामाटी था।
चट्टगांव(पोर्टग्रेण्डो)

हेड़म्ब –	काछाड राज्य
भुलुया–	वर्तमान नोवाखाली (बंगलादेश) का प्राचीन नाम

उनकोटि और इसके आसपास के कैलासहर का प्राचीन नाम छाम्बुल नगर कहा जाता है।

उनकोटि या ऊनकोटि उनकोटि को देखें

कैलारगढ़	(जाजीनगर या कसबा)

कैलारगढ़(कसबा) में और एक धर्म सागर है।

बाल्लाघाट अर्थात	खोवाई का प्राचीन नाम है।
तमकान –	बाल्लाघाट अर्थात खोवाई
धीवर जाति –	जेले जाति – मछली पकडने वाले

कैलासहर, यह स्थान श्रीहट्ट जिले के सीमांत प्रदेश में मनु नदी के तट पर स्थित है। इसका प्राचीन नाम था छाम्बुल नगर।
कैलागढ़(13 पृष्ठ –42 पंक्ति) यह कसबा का नामांतर है।

स्वर्ग प्राप्ति 1272 त्रिपुराब्द की (1269 बंगाब्द)

त्रिपुराब्द , सन

सन	= शक + 78 वर्ष
2007 सन	= 1922 शक + 78 वर्ष
संवत	= सन + 57 वर्ष
2057 संवत	= 2000 सन + 57 वर्ष
संवत	= शक +135 वर्ष
2057 संवत	= 1922 शक +135 वर्ष

1009 त्रिपुराब्द 1521 शक आता है।
उस 1577 ई सन से 1591 ई सन के बीच किसी एक समय राजमाला की द्वितीय लहर रचित हुई थी। अतएव यह साढ़े तीन सौ साल प्राचीन ग्रंथ है

2000 ई–593= 1407 बंगााब्द या 2000 ई–590= 1410 त्रिपुराब्द

40 डेसीमल = 1 कानी 905.34 वर्ग गज = 1 डेसीमल
1000गज गुणे 270 गज = 353 डेसीमल = पोने नौ कानी
382गज गुणे 237 गज = 100 डेसीमल = ढ़ाई कानी
इसकी लम्बाई 1000 गज(एक हजार गज) है और चौडाई 270 गज है। गहराई का सतह नौ द्रोण के समान है।

आठ हाथ बराबर एक नल को चार पण के हिसाब से त्रिपुरा राज्य में जमीन नापी जाती है। भूमि का विवरण इस तरह निर्धारण किया जाता है –
20 धूर में एक क्रांति।
तीन क्रांति से एक कड़ा।
चार कड़ा से एक गंडा।
20 गंडा से एक कानी। 20 गंडा माने 20 गुणा 2 बराबर 40 डेसिमल अर्थात एक कानी।
16 कानी में एक द्रोण होता है।
(वर्तमान 2006 ई के हिसाब से
40 डेसिमेल से एक कानी जमीन होती है।
एक गंडा माने 2 डेसिमेल। इस तरह
एक द्रोण माने 40 गुणा 16 बराबर 640 डेसिमल होता है।)

त्रिपरेश्वर के जमींदारी विभाग का यही परिमापन पद्धति थी। इस प्रणाली से परिमित की गई कानी को 'तिपराई कानी' कहते हैं।

<u>तमकान (30 पृष्ठ –29 पंक्ति)</u> यह खोयाई का प्राचीन नाम है।

कमलांक(कुमिल्ला) राज्यप्रतिष्ठित था। वहीं बाद में पाटिकारा या मेहेरकुल नामों से प्रसिद्ध हुआ है।

<u>माछि छा</u> बंगाली समाज में यह स्थान 'देवतामुड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है।यह स्थान उदयपुर एवं अमरपुर की सीमा पर है।

लेखक की अन्य पुस्तके

1	1 RAJMALA Royal Size 462 page With fotoF page isbn to upload 220826
2	2 RAJMALA Royal Size 454 page With fotoF page isbn to upload 220826
3	3 RAJMALA Royal Size 457 page With fotoF page isbn to upload 220826
4	4 RAJMALA Royal Size 182 page With fotoF page isbn to upload 220826
5	book tripura at a glance HINDI fin NOV21 ISBN
6	
7	Banda History 00 front page bnd hist
8	Banda History 00.0 Banda History Index addhyay
9	Banda History 1.01 Etihasik Sanrachana o atihas
10	Banda History 1.02 Etihasik Sanrachana Gosai Himmat Bahadur etc
11	
12	Banda History 2.01 Bhaugolic
13	Banda History 2.02 Nadi Bandh Dam
14	Banda History 2.03 Minrals Soil
15	Banda History 2.04 Mitty Soil Bhumi prakar
16	Banda History 2.05 Patha Pahad ke Prakar
17	Banda History 2.06 Talab Nahar Nale
18	Banda History 2.07 Rain Jal Samasya
19	Banda History 2.08 Muhalle Namkaran
20	Banda History 2.09 Mandir and other Religious places
21	Banda History 2.10 Jansankhya Census 1901 1961
22	Banda History 2.11 Animal, Birds, Trees, Shrubs, Herbs Forests
23	
24	Banda History 3.01 Aarthik Sanrachana Economic Structure
25	Banda History 3.02 Krashi Agricultural Structure
26	Banda History 3.03 Mahua chirongi
27	Banda History 3.04 Tourism Paryatan mandir musium forest jungle
28	Banda History 3.05 Lok Hast shilp Kausal bazar Vyapaar Handicraft & trade
29	Banda History 3.06 Transport Yatayaat Sadak Rail Jal
30	Banda History 3.07 pichhadapau Backwardness Reason and Solutions
31	Banda History 3.08 pichadapan Backeardness - Industry, Causes & solution
32	Banda History 3.09 Pichhadapan Aatmhatya Backeardness Causes & solution
33	Banda History 3.10 Akal sukha Drought, Femine- Causes & solution
34	
35	Banda History 4.01 Bhaasha Sthaniya Boliya Language & Local

	Dialects
36	Banda History 4.02 NEWSPAPER Hist
37	
38	Banda History 5.01 Raaja va Rajnaitik Parivesh Kingdom & Political Scenario
39	Banda History 5.02 Fort Durg kile garh makaan Fort & Selected Building
40	
41	Banda History 6.01 aavaas gramin Rural Housing, LifeStyle
42	Banda History 6.02 Saanskratik Sanrachana Cultural Cunstruct
43	Banda History 6.03 gramin devata Reti Revaz
44	Banda History 6.04 Reti Revaz Rasm lokjeevan
45	Banda History 6.05 Sanskar 16 Sacred Rites
46	Banda History 6.06 16 sringar 16 Traditional Adornments
47	Banda History 6.07 Aabhushan Gudana Metal Craft Ornament Tattoo
48	Banda History 6.08 Veshbhusha Pahnava Attire
49	
50	Banda History 7.01 manoranjan cinema kavi Enterainment
51	Banda History 7.02 Tyohar Festival Celebration
52	Banda History 7.03 Lok chitra kala Folk Painting Art
53	Banda History 7.04 Lok Geet Folk Song
54	Banda History 7.05 Lok Natya Folk Theatre
55	Banda History 7.06 Lok Nratya Folk Dance
56	Banda History 7.07 Lok Sangeet Folk Music
57	Banda History 7.08 Lok Vadya yantra Musical Instrument
58	Banda History 7.09 kahaani Folk Tales
59	Banda History 7.10 Lok Kahavate muhavare Folk ProverbSayings Idioms
60	
61	Banda History 8.01 Food Bhojan va Bhojan Vyastha Food & Dish
62	Banda History 8.01 Food ODOC Sohan halva p8
63	Banda History 8.02 health in Food med geet Food & Health
64	Banda History 8.03 Jaati va Vyastha Caste System
65	Banda History 8.04 Lok Visvas Lokachaar Kuretiya Folk Faith, Ethos & Bad Customs
66	
67	Banda History 9.01 CLUB Maidan Club & Ground
68	Banda History 9.02 Purane Bhavan Old building
69	
70	Banda History 10.01 sambhranto ka bhramanan Elite Visit
71	
72	Banda History 11.0 Sandarbh Sabhaar Saujanya Context Reference Greatfully Courtesy